पंडवानी

परम्परा और प्रयोग



डॉ. पीसी लाल यादव

पंडवानी

परम्परा और प्रयोग

डॉ. पीसीलाल यादव

वैभव प्रकाशन

रायपुर (छत्तीसगढ़)

संस्कृति विभाग, छत्तीसगढ शासन के सहयोग से
एवं दूध मोंगरा, गंडई के संयोजन में प्रकाशित

ISBN : 81-89244-64-7

पंडवानी

परम्परा और प्रयोग

लेखक	:	डॉ. पीसीलाल यादव
सर्वाधिकार	:	लेखकाधीन
अक्षर संयोजन	:	मो. कलीम, आशू कम्प्यूटर्स, गंडई
प्रकाशक	:	वैभव प्रकाशन
		अमीनपारा चौक, पुरानीबस्ती, रायपुर छ.ग.
		दूरभाष = 0771-4038958
प्रथम संस्करण	:	2011
आवरण	:	आदिल
मूल्य	:	400 रूपये

Pandwani Parampra Aur Prayog by Dr. Pisilal Yadav

समर्पण

पंडवानी के उन समस्त लोक कलाकारों को जिन्होंने अपनी कला के माध्यम से पंडवानी को विश्व प्रसिद्धी दिलायी और छत्तीसगढ़ की माटी को गौरवान्वित किया।

भूमिका

विगत कई वर्षों से पीसीलाल यादव को लोक संस्कृति के क्षेत्र में काम करते हुए देखता रहा हूँ। वे खामोश रहकर अपने को लो-प्रोफाइल में रखते हुए निरंतर कार्य में लगे रहे हैं। उनकी रचनाएँ प्रकाशित होती रही हैं और उनके पास छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अच्छा संग्रह है। प्रकाशकों-संयोजकों का ध्यान भी उनकी ओर आकृष्ट हुआ है। उनका समीक्षा ग्रंथ पंडवानी परम्परा और प्रयोग उनकी शोध दृष्टि और कड़ी मेहनत का प्रतिफल है। मेरे निर्देशन में उन्होंने इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ से इसी विषय में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। कार्य को प्रमाणिकता प्रदान करने के लिए प्रसिद्ध पंडवानी गायक श्री रेवाराम साहू को सहनिर्देशक के रूप में जोड़ा गया। पीसीलाल के लिए उनका अमूल्य सहयोग सर्जनात्मक ताकत के रूप में मिला। उन्होंने परिचयात्मक काम से ऊपर उठकर अवधारणा मूलक काम किया है। सबल सिंह चौहान रचित महाभारत मूल महाभारत का भावानुभाव है और आज के पंडवानी गायक उस ग्रंथ को ही आधार बनाकर साभिनय कथा गायन करते हैं। इसके बावजूद उनका कथा गायन एक पुनर्सर्जना के रूप में सामने आता है। उसमें कलाकार का व्यक्तित्व ही शामिल नहीं होता, बल्कि सामयिक जीवन संदर्भ भी उसमें जुड़ते हैं। अंचल के विश्वास, जीवन शैली और उसका अंतर्मन प्रस्तुति में प्रतिबिम्बित होता है। यह विभिन्न कलाओं से मिलकर बना एक विस्मयकारी रसायन है जो मांग करता है कि उसकी विषयवस्तु और कलात्मक संरचना के रेशों को बारीकी से पकड़ा जाय। पीसीलाल ने यह काम गंभीरता से किया और अब तक हुए काम को आगे बढ़ाया।

अंचल के सामाजिक विश्वास, मानव मूल्य, संबंधों की अवधारणा के साथ ही महाभारत से पंडवानी की समानता और भिन्नता को वे रेखांकित कर सके हैं। मुझे आशा है कि डॉ. पीसीलाल निरंतर काम करते रहेंगे। लोक संस्कृति के विषय में उनकी समझ, उनका संचय और उनका गंभीर समर्पण कुछ और भी महत्वपूर्ण देगा। मेरी शुभकामनाएं ...

शांतिगीत, खैरागढ़ — *- डॉ. रमाकान्त श्रीवास्तव*

3

अपनी बात

लोक साहित्य का उद्‌गम लोक मानस है। लोक मानस की अभिव्यक्ति में लोक की भावना सन्निहित रहती है। जिसमें उसके आचार–विचार, सुख–दुख, जय–पराजय, हर्ष–विषाद आदि प्रतिबिम्बित होते हैं। लोक साहित्य की यह अजस्र धारा लोक में लोकगीतों, लोक कथाओं, लोक गाथाओं, लोकोक्तियों और पहेलियों के रूप में तरंगित होती है। श्रुति परम्परा द्वारा यह लोक में आज भी परिव्याप्त है। वैयक्तिकता का विसर्जन और सामूहिकता का सृजन लोक साहित्य की विशेषता है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल का यह कथन – "लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है , लोक कृत्सन ज्ञान और अध्ययन में संपूर्ण शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए सर्वोच्च प्रजापति है।" लोक साहित्य के नैसर्गिक सौन्दर्य और उसकी महत्ता को प्रतिपादित करता है।

छत्तीसगढ़ तो लोक साहित्य का अक्षय कोष है। छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य की विविधता, बहुलता और इसकी प्रचुरता ने लोक साहित्य के अध्येताओं को आकृष्ट किया है। पंडवानी छत्तीसगढ़ का सर्वाधिक लोकप्रिय कलारूप है। पांडवों की लोकगाथा पंडवानी आज भी वाचिक परंपरा द्वारा संरक्षित लोक की निधि है। मुझे बचपन से ही पंडवानी सुनने का सौभाग्य मिलता रहा। कुछ गायक दंत कथाएं गाते और कुछ शास्त्रोक्त कथाएं। किन्तु मेरा बाल मन इस अंतर को नहीं समझ पाया। लोक साहित्य के प्रति अध्ययन की अभिरूचि जब जागृत हुई तो इस अभिरूचि ने इस अन्तर को समझने के लिए प्रेरित किया। प्रस्तुत कृति इसी दिशा में मेरा एक विनम्र प्रयास है। छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य पर विभिन्न विद्‌वानों ने महत्वपूर्ण शोध कार्य संपन्न किया है, वे ही मेरे इस लघु प्रयास के प्रेरक व प्रकाश स्तंभ हैं। उनके अनुभव और ज्ञान का स्नेहिल प्रकाश पाकर ही इस कार्य के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ। अत: सर्वप्रथम उन सबों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। विशेषकर डा. बलदाऊ प्रसाद निर्मलकर के प्रति, जिनके शोध–प्रबंध ने मेरा मार्ग प्रशस्त किया।

पंडवानी लिपिबद्ध नहीं है। सारे पंडवानी गायक इसे अपने–अपने ढंग से

मौखिक रूप से गाते हैं। इसका कोई अविकल प्रकाशन नहीं है। इसलिए इनकी कथाओं को सहेजने में कठिनाईयां होना स्वाभाविक है। पंडवानी के संग्रहण के लिए कई पंडवानी गायक–गायिकाओं को मंच पर देखा–सुना, उनसे व्यक्तिगत संपर्क कर उनके कथा गायन को ध्वन्यांकित किया तब परिवर्तन का रूप स्पष्टत: परीलक्षित हुआ। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में आज पंडवानी लोकप्रियता के शिखर पर है। पंडवानी की समग्रता, लोक संस्कृति से संपृक्तता, लोक का प्रभाव और पंडवानी कथा गायन में प्रयोग व परिवर्तनों के कारणों की शोधपरक विवेचना के लिए लोकविद्, निर्देशक डॉ. रमाकान्त श्रीवास्तव पूर्व रीडर व हिन्दी विभागाध्यक्ष इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ ने मुझे नयी दृष्टि दी। मुझ अल्पज्ञ को अपना कुशल मार्गदर्शन प्रदान किया यह उनकी महती कृपा है। एतदर्थ मैं उनका आजन्म ऋणी रहूँगा। लोक विद् डॉ. विनय पाठक, बिलासपुर का भी हृदय से आभारी हूँ। जिन्होंने इस कार्य के लिए मुझे प्रोत्साहित किया।

पूज्य स्व. श्री झाडूराम देवांगन, पद्मश्री श्री पूनाराम निषाद, स्व.श्री रेवाराम साहू, पद्मश्री तीजन बाई, ऋतु वर्मा, खम्हनलाल अस्तुरे, प्रहलाद निषाद, स्व. अघनूराम निषाद, प्रभा यादव व अन्य सभी पंडवानी गायक–गायिकाओं के समक्ष नत–मस्तक हूँ। जिनके सक्रिय सहयोग से यह ग्रंथ पूर्ण हुआ। आदरणीय श्री भरत पटेल विभागाध्यक्ष लोक संगीत विभाग, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ व श्री कृष्णचंद्र केहरी संगीत शिक्षक के प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। जिन्होंने पंडवानी में प्रयुक्त ताल की स्वर लिपि तैयार कर मुझे अपना स्नेह प्रदान किया। छत्तीसगढ़ के यशस्वी मुख्यमंत्री डॉ. रमन सिंह ने इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की। यह उनके कला, साहित्य और संस्कृति प्रेम का अनुपम उदाहरण है। अत: उनकी सहृदयता के लिए उनके प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

और अंत में अपनी धर्मपत्नी श्रीमती राधा यादव का भी आभार व्यक्त करता हूँ। जिन्होंने इस कार्य हेतु सूत्र का काम किया।

साहित्य कुटीर, गंडई–पंडरिया — *डॉ. पीसीलाल यादव*

गणेश चतुर्थी – 23.08.2010

अनुक्रम

8

अध्याय - 1

- ❑ छत्तीसगढ़ी लोकगायन की परम्परा
- ❑ लोकगाथा : परिभाषा, लक्षण, विशेषताएं एवं वर्गीकरण
- ❑ पंडवानी : नामकरण, उद्भव और विकास, वर्गीकरण, वैशिष्ट्य
- ❑ वर्तमान स्वरूप
- ❑ अन्य क्षेत्रों की पंडवानी गायन की परम्परा से तुलना



पंडवानी गायक पद्मश्री श्री पूनाराम निषाद

छत्तीसगढ़ी कथा गायन की परम्परा

छत्तीसगढ़, भारत का हृदय प्रदेश यहां की भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अत्यंत ही समुन्नत और गौरवशाली रही है। दक्षिण कोशल के नाम से विख्यात यह क्षेत्र आज भी 'धान का कटोरा' के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ के कण-कण में लोक साहित्य, लोक कला और लोक संस्कृति की अप्रतिम गंध है, जिनमें स्थानीय लोक जीवन की झांकी मिलती है, चाहे वह लोकगीत हों, लोककथा या लोकगाथा। इनकी प्राचीन परम्परा उज्जवल रही है। इन्हीं परम्पराओं में अंचल की सांस्कृतिक चेतना के दर्शन होते हैं।

छत्तीसगढ़ भौगोलिक दृष्टि से जितना विशाल है, उससे भी विशाल यहां का लोकमानस है , जिसने अपनी संस्कृति को संरक्षित रखा है। यहां के लोकगीतों, लोकनृत्यों और लोक गाथाओं की अपनी पृथक पहचान है। छत्तीसगढ़ में गायी जाने वाली लोक गाथाओं में पंडवानी सर्वाधिक लोकप्रिय है। गांव के चौपालों से निकलकर नगरों, महानगरों, प्रान्तों और देश की सीमा को पार कर वह विश्व मंच पर प्रसिद्ध हुई है। छत्तीसगढ़ी पंडवानी भी एक लोकगाथा है, जिसमें कौरव और पांडव की कथाएं हैं। पंडवानी महाभारत से उद्भुत होकर भी अपना वैशिष्ट्य बनाए हुई है। पंडवानी गायन के विकास के विभिन्न सोपानों पर विचार करने के पूर्व लोकगाथा की उत्पत्ति पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

लोकगाथा की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये हैं ,जो प्रमाणित न होकर केवल अनुमान पर आधारित हैं। लोक गाथाओं की उत्पत्ति एक जटिल विषय है, क्योंकि इनमें से अधिकांश की कोई हस्तलिखित प्रति नहीं मिलती। अत: यह अनुमान है कि लोकगाथा की उत्पत्ति मानव सभ्यता के विकास के साथ हुई होगी, जो आज भी मौखिक परम्परा द्वारा लोक में संरक्षित है।

लोकगाथा किसी भी देश व समाज की अनिवार्य वस्तु है। प्राचीन ग्रंथों में यत्र-तत्र लोकगाथाओं का उल्लेख मिलता है, जो श्रम -परिहार और मनोरंजन का साधन है। 'लोक गाथाओं के संबंध में विभिन्न संज्ञाओं की उद्भावना की गई है। महाराष्ट्र में इसे पवाड़ा कहते हैं। गुजरात में ऐसे दीर्घ कथानक युक्त गीतों को कथा गीत कहते हैं। राजस्थानी लोक साहित्यकारों ने इन्हें कथा गीत के नाम से अभिहित किया

है। उत्तरी भारत में इनके लिए किसी निश्चित संज्ञा का प्रचलन नहीं है। प्राय: गीतों के मुख्य पात्र के आधार पर ही उनका नामकरण हो गया है। कुंवरसिंह, गोपीचंद, लोरिकी, विजयमाल, आल्हा नाम लेने पर इनसे संबंधित गीतों का आशय प्रकट हो जाता है। ग्रियर्सन ने इस प्रकार के गीतों को 'पापुलर सांग' कहा है। अंग्रेजी में इन कथात्मक गीतों को 'बैलेड' कहते हैं। 'बैलेड' शब्द लैटिन भाषा के बैलोर शब्द से निकला है, जिसका अर्थ है नृत्य करना। स्पष्ट है कि प्रारंभ में नृत्य गीतों को ही 'बैलेड' कहा जाता होगा। कालान्तर में नृत्य का अंश गौण हो गया एवं केवल कथात्मक गीतों को बैलेड कहा जाने लगा। हिन्दी में बैलेड का पर्यायवाची शब्द लोकगाथा स्वीकार किया गया है।'[1]

परिभाषा -

विभिन्न विद्वानों ने लोकगाथा को अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। श्री जी.एल. किटरेज के अनुसार लोक गाथा कथात्मक गीत है। फ्रेंक सिजविक के अनुसार 'लोक गाथा वह सरल वर्णनात्मक गीत है। जिसका सीधा संबंध जनसामान्य से होता है और जो एक दूसरे से मौखिक रूप से हस्तांतरित होती है।'[2] डॉ.मरे के अनुसार 'लोकगाथा छोटे पदों में रचित एक ऐसी प्राणमयी सरल कविता है, जिसमें कोई लोकप्रिय कथा बहुत ही विशद् रीति से कही गई हो।[3]' 'साधारण अर्थ में गाथा शब्द का शाब्दिक अर्थ 'कथा' कह सकते हैं। परन्तु कथा और गाथा में व्यापक अन्तर है। कथा कहानी मात्र है, जबकि गाथाओं में वे कहानियां सम्मिलित की जा सकती हैं, जो अत्यधिक विकसित, लम्बी हों तथा जिसके कहने, सुनने में अधिक समय लगे और जो इतिहास से संबंधित हों।'[4]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि लोकगाथा कथात्मक, गेय, मौखिक परम्परा द्वारा संरक्षित लोक का काव्य है,जो सम्पूर्ण समाज की निधि होती है और जिसका रचयिता अज्ञात होता है।

लोकगाथा के लक्षण -

लोक गाथाओं में लोक जीवन सजीव और साकार होता है। लोक जीवन के क्रिया व्यापार और हृदयोद्गार इनमें रचे-बसे होते हैं। इन लोक गाथाओं के कुछ सामान्य लक्षण होते हैं। जिसके कारण लोक गाथाओं की पृथक पहचान बनती है। सामान्यत: लोकगाथाओं में निम्न लक्षण पाये जाते हैं।

1. **कथात्मकता** - लोक गाथाओं का प्रथम लक्षण उसकी कथात्मकता होती है। कथात्मकता के कारण ही लोकगाथा और लोककथा में अन्तर निर्दिष्ट होता है। लोकगाथाओं में एक निश्चित कथा होती है, जो क्रमश: आगे बढ़ती है। ये कथाएं छोटी भी हो सकती हैं और बड़ी भी। पर अधिकतर लोक गाथाओं में कथा दीर्घ ही होती है। "प्राय: सभी लोक गाथाएं किसी न किसी कहानी को लेकर चलती हैं और ये मूलत: कहानी ही हैं, परन्तु गेय हैं।"[5]

2. **गेयता** - लोक गाथाओं में कथा और गीत दोनों का ही आनंद मिलता है। लम्बी-लम्बी कथाएं लोक गायकों द्वारा गाकर ही सुनायी जाती है। एक लोकगाथा एक से लेकर अनेक लोकधुनों में गायी जाती है। अत: गेयता लोकगाथा का दूसरा प्रमुख लक्षण है।

3. **यथार्थ चित्रण** - लोक गाथाओं में यथार्थ चित्रण होता है। लोक गायक लोकगाथा की कथावस्तु, पात्रों और चरित्रों को अपने परिवेश से जोड़ता है। अत: गाथा और भी यथार्थपरक लगती है। हालांकि लोक गाथाओं में कुछ कल्पना का भी समावेश होता है, किन्तु इसका उद्देश्य मनोरंजन है।

4. **भावात्मकता** - लोक गाथाएं भावात्मक होती हैं। फलस्वरूप श्रोताओं के अन्तर्मन में घर कर सहज तादात्म्य स्थापित कर लेती है।

5. **सरलता** - सरलता लोकगाथा का सबसे प्रमुख लक्षण है। इसमें दुरूहता के लिए जरा भी स्थान नहीं होता। ग्रामीणों की अपनी बोली व भाषा में होने के कारण लोकगाथाएं बोध गम्य होती हैं।

6. **अलंकारों का आभाव** - लोकगाथा गायक पढ़ा-लिखा नहीं होता। फलस्वरूप लोकगाथा में अलंकार की योजना नहीं होती। इसमें सीधे सच्चे भावों की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है। लोकगाथा की अनगढ़ता ही इसकी सुघड़ता है। लोकगाथा में अलंकारों का अभाव होता है।

7. **लोकोक्तियों का प्रयोग** - लोकगाथाएं निरालंकारिक तो होती हैं, किन्तु इनमें स्थानीय लोकोक्तियों का बहुतायत रूप से प्रयोग होता है। चूंकि लोकोक्तियों मेंअनुभव सिद्ध ज्ञान का कोष छिपा रहता है। अत: लोकगाथा गायक प्रचलित लोकोक्तियों का प्रयोग कर लोकगाथा को सरस बनाता है।

8. **छंद** - लोकगाथाओं में छंद का प्रयोग शास्त्रीय छंद न होकर लोक छंद के रूप में होता है। लोकछंदों में मात्राओं की अनिश्चितता बनी रहती है। लोक गायक अपने गायन के अनुसार मात्राओं की घट - बढ़ कर के भी अपनी लय व

गति बनाये रखता है।

9. **नृत्य** - लोकगाथाओं में गायन के साथ-साथ नृत्य की परंपरा दृष्टि गोचर होती है।

10. **मौखिक परंपरा** - लोक गाथाएं अपनी मौखिक परंपरा के बल से समाज में परिव्याप्त हैं। लोकगाथा की कोई हस्त लिखित प्रति नहीं मिली है। कुछ प्रकाशित हुई भी तो लोकप्रिय नहीं हुई। लोक गाथाओं की मौखिक परंपरा के विषय में फ्रेंक सिजविक ने कहा है कि - "लोक गाथा तभी तक जीवित रह सकती है जब तक मौखिक साहित्य के रूप में सुरक्षित रहती है। उसे लिपीबद्ध करने का अर्थ है, उसे मार डालना।" [6]

11. **सामाजिक धरोहर** - लोकगाथा लोक मानस में सामाजिक धरोहर के रूप में होती है। पूर्णत: निर्वैक्तिक पीढ़ी-दर पीढ़ी वाचिक परंपरा द्वारा हस्तांरित होकर। उसके निर्माण में सम्पूर्ण समाज का श्रेय होता है। अत: लोकगाथा व्यक्ति विशेष केकंठ में विराजकर भी लोक की सामाजिक धरोहर होती है।

लोकगाथा की विशेषताएँ -

लोकगाथाओं में कुछ सामान्य विशेषताएं होती हैं। और ये विशेषताएं विश्व की सभी लोकगाथाओं में प्राय: एक सामान है। ये विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

1. **रचनाकार व रचनाकाल का अज्ञात होना** - लोकगाथाओं का रचयिता और उसका रचनाकाल पूर्णत: अज्ञात होता है। पंडित राम नरेश त्रिपाठी ने लिखा हैं - "लोकगीतों के रचयिता अज्ञात स्त्री -पुरूष हैं।" [7] यही लोकगाथाओं के विषय में भी लागू होती है। छत्तीसगढ़ में अनेकों लोकगाथाएं गायी जाती हैं। इन लोकगाथाओं की रचना किसने की ? कब की ? इसका कोई पता नहीं। लोकगाथाएं लोक के कंठ पर मुखांतरित होती हुई, परिष्कृत होती गई है। निश्चित है कि इन लोक गाथाओं की रचना व्यक्ति विशेष ने की हो, किन्तु व्यक्ति की अभिव्यक्ति सामूहिक अभिव्यक्ति में परिवर्तित हो गई। इसी प्रकार लोक गाथाओं में तत्कालीन समाज के चित्रण के आधार पर काल का अनुमान लगया जा सकता है, लेकिन निश्चित रचनाकाल का निर्धारण नहीं किया जा सकता। लोक गाथा की व्यापकता सामाजिक सर्जनात्मकता का प्रतिफलन है।

2. **प्रमाणिक मूल पाठ का अभाव** - लोक गाथा का रचनाकार और रचनाकाल जब अज्ञात होता है , तब लोकगाथा के प्रमाणिक मूल पाठ का अज्ञात होना सहज और स्वाभाविक ही है। आज तक किसी भी लोकगाथा का प्रमाणिक मूल पाठ प्राप्त नहीं हो सका है। लोकगाथा का रचयिता कथा की शुरूआत कर उसे समाज के

हाथों सौप देता है, जिसकी निर्माण - प्रक्रिया लोक मानस में अनवरत चलती रहती है। फलस्वरूप लोकगाथा निरंतर परिवर्तित व परिवर्धित होती रहती है। एक ही लोकगाथा को भिन्न - भिन्न लोक गायक कुछ परिवर्तनों के साथ भिन्न-भिन्न धुनों में गाते हैं। फलस्वरूप कंठांतरित होने के साथ-साथ लोकगाथा के चरित्र पर भी परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है। एक ही गायक द्वारा विभिन्न समय व विभिन्न स्थानों पर गायी जाने वाली एक ही लोकगाथा के शब्दों और वाक्यों में परिवर्तन दिखाई पड़ता है। हालांकि मूल कथानक की दिशा नहीं बदलती। अत: इस परिवर्तन के कारण लोकगाथाओं के प्रमाणिक मूल पाठ का मिलना नितांत असंभव है। प्रो. किटरेज ने लिखा है कि - "किसी वास्तविक लोकप्रिय लोक गाथा का कोई रूप नहीं हो सकता है, कोई प्रमाणिक पाठ नहीं हो सकता।" [8] समय के साथ - साथ लोकगाथाओं में नये कथानकों का समावेश होते रहता है।

3. **संगीत एवं नृत्य का सहयोग** - लोक गाथाएं गेय होती हैं और संगीत के कारण ही जन-जन में लोक प्रिय और प्रभावोत्पादक होती हैं। लोक गायक शास्त्रीय संगीत से पूरी तरह अनभिज्ञ होते हैं। इनका संगीत तो लोक संगीत है। गाने के लिए विभिन्न लोक वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। जिससे लोक गाथाएं सुमधुर और भाव पूर्ण बनती हैं। लोक गाथाओं का आनंद तो सुनने में ही आता है, पढ़ने में नहीं। कथा गायक का स्वर कथानक के अनुकूल बदलता रहता है। जिसमें प्रेम, करूणा, क्रोध, कुटिलता सब कुछ समाहित रहती है।

कुछ लोक गाथाओं में नृत्य परंपरा के भी दर्शन होते हैं। छत्तीसगढ़ की पंडवानी व चंदैनी लोकगाथाएं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि लोक गाथाएँ संगीत व नृत्य के सामंजस्य के कारण श्रोताओं पर अपना अधिकाधिक प्रभाव डालती हैं। संगीत लोकगाथा को सजीव व साकार बनाता है।

4. **स्थानीयता** - लोकगाथाओं में स्थानीयता का पुट पाया जाता है। लोकगाथाएं मूलत: किसी भी सुदूर प्रदेशों की क्यों न हो ? वे वहां से चलकर जब अन्य प्रदेशों में पहुँचती है, तो वहां स्थानीय रंग में रंग जाती हैं। ढोलामारू, चंदैनी, गोपीचंदा, राजाभरथरी आदि लोकगाथाएं छत्तीसगढ़ में आकर स्थानीय विशेषताओं से पूरी तरह प्रभावित हो गई हैं। प्रो. किटरेज ने लिखा है कि - "लोकगाथा का निर्माण किसी घटना के कारण होता है और निर्माण के साथ ही साथ उसमें तद्देशीय वातावरण एवं स्थानीयता का भी समावेश होता है।" [9]

"नगरों तथा ग्रामों के उल्लेख के साथ-साथ इन लोक गाथाओं में समाज में

प्रचलित संस्कारों, पूजा-पाठों तथा विश्वासों का भी मिश्रण हो जाता है।"[10] इस दृष्टि से छत्तीसगढ़ में गायी जाने वाली चंदैनी का उल्लेख पर्याप्त होगा, जिसमें छत्तीसगढ़ के यादव जाति के आचार-विचार, रहन-सहन, देवी-देवताओं, जातीय -संस्कारों व विश्वासों का उल्लेख यहां तक की पात्रों व चरित्रों में भी स्थानीयता का पुट है।

5. **मौखिक परंपरा** - आज तक किसी लोकगाथा की हस्तलिखित प्रति नहीं मिली है। लोकगाथाएं मौखिक परंपरा द्वारा ही समाज में जीवित हैं। "लोक साहित्य तो सदा से मौखिक परंपरा का ही साहित्य रहा है। समाज का हृदय और समाज की वाणी ही इसका आवास है। इसलिए लिपिबद्ध करने का कभी प्रयास नहीं हुआ और मौखिक परंपरा इसकी विशेषता बन गई।"[11] यदि लोकगाथाओं को लिपिबद्ध किया भी गया तो यह विशिष्ट पाठक वर्ग की सम्पत्ति बनकर रह जायेगी और इसकी लोकप्रियता भी संदिग्ध हो जायेगी। हम देखते हैं कि महाकाव्यों की तरह सुदीर्घ लंबी लोकगाथाओं की पंक्तियां जैसे लोक गायकों के मुखाग्र पर मचलती रहती हैं। क्टिरेज का स्पष्ट मत है कि "लिपि बद्ध लोकगाथा लोकसंपत्ति न होकर साहित्य की सम्पत्ति हो जाती है।"[12]

6. **उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव** - लोकगाथाएं लोकजीवन लोकपरंपरा और लोकविश्वासों को लेकर निर्मित होती हैं। लोक जीवन का सांगोपांग वर्णन मात्र ही लोकगाथाओं का विषय है। अत: लोकगाथाओ में उपदेशात्मक प्रवृत्ति का नितांत अभाव रहता है। "लोकगाथाओं का वर्णन मात्र करना ही गायक का कार्य है। इसप्रकार लोकगाथाएं शिक्षा अथवा उपदेश नहीं देती। शिक्षा अथवा उपदेश ग्रहण करने का उत्तरदायित्व तो श्रोता पर रहता है।" [13] गायक स्वयं लोकगाथाओं का गायन करते-करते अपने जीवन व्यवहार को लोकगाथा के आदर्शों के अनुरूप ढाल लेता है, और आदर्शवाद का प्रतीक बन जाता है। लेकिन, अपनी ओर कुछ लोक गाथाओं में नृत्य परंपरा के भी दर्शन होते है। छत्तीसगढ़ की पंडवानी व चंदैनी लोकगाथायें इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। कहने का तात्पर्य है कि लोक गाथायें संगीत व नृत्य के सामंजस्य के कारण श्रोताओं पर अपना अधिकाधिक प्रभाव डालती है। संगीत लोकगाथा को सजीव व साकार बनाता हैं।

7. **अलंकृत शैली का अभाव** - लोकगाथाओं में अलंकृत शैली का पूर्णत: अभाव रहता है। लोकगाथा किसी व्यक्ति विशेष की अभिव्यक्ति नहीं होती, बल्कि उसमें सम्पूर्ण समाज का प्रदेय शामिल रहता है। अत: लोकगाथाओं में अलंकृत शैली का अभाव लोकगाथा की स्वाभाविकता है। लोकगाथाओं में यदि कुछ अलंकारिकता यत्र-तत्र मिल भी जाये तो वह सायास नहीं, बल्कि अनायास अनजाने में आई हुई होती

है। लोकगाथाओं में व्यक्ति का नहीं समिष्ट का प्रभाव होता है। अलंकृत शैली वैयक्तिकता की पहचान है। "लोकगाथा एक स्वाभाविक प्रवाह है,जो कभी समतल भूमि पर, कभी उबड़-खाबड़ रास्तों पर, कभी वन में तो कभी पहाड़ों में होकर बहता है। हमें उसमें सभी कुछ मिलेगा जो कि स्वाभाविक और यथार्थ है। अलंकृत कविता और लोकगाथा में वही अंतर है, जो बाल सौंदर्य और युवा सौंदर्य में है।" [14]

8. **टेक पदों की पुनरावृत्ति** - टेक पदों की पुनरावृत्ति लोकगाथाओं की प्रधान विशेषता है। गाथा गायक टेक पदों को बार-बार दोहराता है। जिससे गायक को सांस लेने का अवकाश मिलता है। "लोकगाथाओं के गाने का राग सम स्वर होता है तथा द्रुत गति लय में गया जाता है। टेक पदों में गाथा का महत्व इसलिए बढ़ जाता है कि प्रथम सम स्वर के कारण एक रसता निर्माण होने की जो संभावना रहती है, वह नहीं होने पाती। द्वितीय उपयोगिता यह होती है कि टेक पदों के कारण गायक को साँस लेने का अवकाश मिल जाता है।" [15] छत्तीसगढ़ी लोकगाथा चंदैनी में "ये दिन तोर" "ढोलामारू" में "अलबेला ढोला" "भरथरी" में "भाई येदे जी" तथा पंडवानी में "भाई " या "रामाहरि" तथा प्रत्येक पंक्ति के अंतिम शब्द की पुनरावृत्ति की जाती है।

9. **रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव** - इस संबंध में यह पहले विचार किया जा चुका है कि लोकगाथाओं का रचयिता अज्ञात होता है। परंतु यह तो तय है कि लोकगाथाओं का आदि गायक या रचयिता रहा होगा। इसके बावजूद भी लोकगाथा में उसके व्यक्तित्व की छाप नहीं दिखाई पड़ती। पीढ़ी -दर - पीढ़ी मुखांतरित होती लोकगाथा में अज्ञात रचनाकार का व्यक्तित्व विलीन हो जाता है। फ्रैंक सिजविक ने लिखा है कि "लोकगाथा की विशेषता उसके रचयिता के व्यक्तित्व की सत्ता में नहीं उसके व्यक्तित्व के नितांत अभाव में है।" [16]

10. **लम्बा कथानक** - प्राय: लोकगाथा का स्वरूप विशाल होता है और उसका लम्बा कथानक उसकी प्रमुख विशेषता है। कथात्मक गीतों को ही लोकगाथा कहा जाता हैं। आकार की दृष्टि से लोक गाथाएं महाकाव्य से कम नहीं होतीं। चूंकि इसमें लोक जीवन के पात्रों का सांगोपांग वर्णन होता है , जिसके सृजन में सम्पूर्ण समाज की सहभागिता होती है। फलस्वरूप लोक गाथा का कथानक अति विस्तृत और वृहद हो जाता है। छत्तीसगढ़ी लोक गाथा पंडवानी का गायन तो लगातार अट्ठारह - बीस दिनों तक चलता रहता है, इसी प्रकार चंदैनी भी। "लम्बा कथानक लोक गाथाओं की ऐसी विशेषता है जो उसे लोकगीतों से पृथक कर देती है। लोक गीतों में भावना प्रधान

होती है। उनमें जीवन के किसी अंश की ही भावपूर्ण व्यंजना रहती है। इसी प्रकार वे छोटी होती हैं। लोक गाथाओं का कर्तव्य होता है कथा कहना, अतएव वे लम्बी होती हैं।" [17]

11. **संदिग्ध ऐतिहासिकता** - लोक गाथाओं में या तो ऐतिहासिकता होती ही नहीं, और यदि होती भी है, तो उसका इतिहास संदिग्ध होता है। लोक गाथाओं में वर्णित पात्रों व स्थानों के आधार पर उसकी ऐतिहासिकता का कुछ आभास मिलता है, किन्तु यह मात्र आभास ही होगा। उसकी सप्रमाणिक ऐतिहासिकता नहीं। "लोक गाथाओं के भौगोलिक वर्णनों से उनके ऐतिहासिक सत्य का केवल आभास होता है। वस्तुतः उनकी प्रमाणिकता संदिग्ध है, और इतिहास में उनका महत्व नहीं है।" [18]

लोकगाथाओं का वर्गीकरण -

लोक गाथाओं के वर्गीकरण पर विचार करने पर हम देखते हैं कि प्रत्येक लोक गाथा एक निश्चित विषय जैसे प्रेम, वीरता या वैराग्य पर केन्द्रित है। अतः वर्गीकरण का यह एक आधार हो सकता है। जिस लोक गाथा में जिस तथ्य की प्रधानता हो उसे उस वर्ग की लोक गाथा के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। वर्गीकरण का दूसरा आधार लोक गाथा का आकार हो सकता है। कुछ लघु आकार की, कुछ मध्यम आकार की व कुछ लोक गाथाएं वृहद् आकार की होती हैं। लघु आकार वाली लोक गाथायें संक्षिप्त होती हैं, जिसमें जीवन का कोई प्रसंग विशेष जुड़ा हुआ होता है, जिसे लोक गाथा गायक रोचक ढंग से गाकर कथांश को प्रस्तुत करता है। छत्तीसगढ़ी लोक गाथाओं में श्रवणकुमार, राजा मोरध्वज, राजा हरिश्चंद्र कुछ ऐसी ही लोक गाथाएं हैं। दूसरे प्रकार की मध्यम आकार की लोक गाथाओं में जीवन - प्रसंग में कुछ विस्तार होता है। दसमत कैना, गुजरी गहिरिन,सौरंगा-सदावृज ऐसे ही मध्यम आकार वाली लोक गाथायें है। जबकि तीसरे प्रकार की लोक गाथाओं में जीवन का सांगोपांग चित्रण होता है। कुछ अन्य कथाएं भी इसमें अनुषांगिक रूप से जुड़ी रहती हैं। फलस्वरूप ऐसी लोक गाथाओं का आकार वृहद होता है। परंतु लोक गाथाओं का यह आकार के आधार पर वर्गीकरण उचित प्रतीत नहीं होता। आकार के आधार पर लोक गाथाओं का वर्गीकरण किया जा सकता है। उनमें भेदक रेखा खींची जा सकती है, परंतु आकारगत वर्गीकरण पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। अतः विषयगत भेद का आधार ही वर्गीकरण की दृष्टि से उचित होगा।

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक गाथाओं को विषय के आधार पर तीन भागों में बांटा है - [19]

1. वीर कथात्मक लोक गाथाएं
2. प्रेम कथात्मक लोक गाथाएं
3. रोमांचक कथात्मक लोक गाथाएं

लोक गाथाओं के वर्गीकरण की श्रृंखला में प्रो. गूमर के वर्गीकरण का उल्लेख किया जा सकता है। यद्यपि उनका यह वर्गीकरण अंग्रेजी लोक गाथाओं पर आधारित है, तथापि यह वर्गीकरण इतना विस्तृत एवं सांगोपांग है कि इसमें भारतीय लोक गाथओं के सभी प्रकार अंतर्भुक्त किए जा सकते है - [20]

1. प्राचीनतम गा थाएं
2. कौटुम्बिक गा थाएं
3. अलौकिक गा थाएं
4. पौराणिक गा थाएं
5. सीमांत गा थाएं
6. आरण्यक गा थाएं

प्रो. किटरेज ने लोक गाथाओं को चारण लोक गाथा व परम्परानुगत लोक गाथा के रूप में वर्गीकृत किया है। चारण लोक गाथाएं वे हैं,जो चारणों द्वारा गयी जाती हैं। जबकि परम्परानुगत लोक गाथाएं वे हैं, जो शताब्दियों से मौखिक परम्परा द्वारा प्रचारित हैं और जिनके रचयिता अज्ञात हैं। साथ ही लोक गाथाओं का काल भी संदिग्ध है। इस प्रकार लोक गाथा के सामान्यत: दो भेद दिखाई पड़ते हैं -

1. परम्परागत अथवा विकसनशील लोक गाथाएं
2. कलात्मक अथवा साहित्यिक लोक गाथाएं

परम्परागत लोक गाथाएं वे हैं जो श्रुति परम्परा द्वारा मुखांतरित होती हुई आज भी लोक जीवन में संरक्षित हैं। समय के साथ-साथ कुछ परिवर्तन भी हुए परंतु लोक जीवन से ये लोक गाथाएं कटी नहीं बल्कि और गहराई तक जुड़ी। जबकि कलात्मक अथवा साहित्यिक लोक गाथाएं व्यक्ति विशेष द्वारा लिखित एवं अपरिवर्तित होती हैं। "इनका संबंध लोक जीवन से सीधा नहीं होता। इन कलात्मक कृतियों में कवि का कौशल परिलक्षित होता है और उसमें युद्ध आदि का महत्व न्यून होता है। सबसे बड़ा अंतर यह होता है कि कलात्मक लोक गाथाएं किसी कवि विशेष द्वारा लिखी जाती हैं और उसका रूप स्थिर होता है।" [21]

छत्तीसगढ़ तो लोक साहित्य का महासागर है। यहां लोक साहित्य की समृद्ध परम्परा आज भी जीवित है। लोक साहित्य की विविध विधाओं में लोक गाथा की दृष्टि से भी अनेकों लोक गाथाएं यहां के लोक जीवन के अंग हैं । जिनमें छत्तीसगढ़ी लोक परम्पराओं, लोक विश्वासों और लोक संस्कृति की धारा तरंगित होती है। छत्तीसगढ़ी लोक गाथा के संबंध में डॉ. विजय कुमार सिन्हा के विचार दृष्टव्य हैं - "छत्तीसगढ़ में महान विभूतियों के गौरवास्पद चरित्र पर आधारित प्रबंध गीत उपलब्ध होते हैं । जिन्हें छत्तीसगढ़ का लोक मानस गाथा रूप में संरक्षित रखता है।

छत्तीसगढ़ी लोक गाथा में छत्तीसगढ़ का आदर्श जीवन - दर्शन उपलब्ध होता है, जो नई पीढ़ी के लिए मार्गदर्शन एवं प्रेरणा का कार्य करता है। छत्तीसगढ़ी लोक गाथा का प्रदर्शन क्रम एक घंटा से लेकर पच्चीस दिनों तक अनवरत चलता रहता है। लोक गाथाकार अपनी रूचि और युग की मांग के अनुसार उसमें परिवर्तन-परिवर्धन करता चला आता है। जिसमें संगीत की विविधता नृत्य की आंशिक छटा और भाव प्रवणता का त्रिकोणात्मक रूप उपलब्ध होता है।

छत्तीसगढ़ी लोकगाथा का वर्गीकरण

1. प्रेम गाथाएं
2. भक्ति संबंधी या पौराणिक गाथाएं
3. वीर गाथाएं

छत्तीसगढ़ी लोक गाथाएं[22]

- प्रेम गाथाएं
  - स्त्री पात्र प्रधान लोक गाथाएं
    1. अहिमन रानी
    2. रेवा रानी
    3. कँवलारानी
    4. रहिमन रानी
  - पुरूष प्रधान पात्र लोक गाथाएं
    1. ढोलामारू
    2. लोरिक चंदा
- पौराणिक गाथाएं
  1. फूलबासन
  2. सरवन
  3. पंडवानी
  4. देवीगाथा
  5. भरथरी
  6. गोपीचंदा
- वीर गाथाएं
  1. फूलकुंवर
  2. कल्याण सहाय
  3. राजा वीर सिंह
  4. रसालू
  5. सीताराम नायक की कथा

डॉ. बलदाऊ निर्मलकर ने छत्तीसगढ़ी लोक गाथाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है [23]-

1. पुरूष प्रधान लोक गाथा
2. नारी प्रधान लोक गाथा
3. देवी गाथा
4. वीर गाथा

छत्तीसगढ़ी लोक गाथा का उपरोक्त वर्गीकरण ठीक जान पड़ता है। किन्तु कुछ लोक कथाएं जो विलुप्त सी हैं। उनका उल्लेख इनमें नहीं आ पाया है। इन लोक गाथाओं में गुंजपड़की (हीराखान क्षत्री) सौरंगा-सदावृज, मोरध्वज दानी, हरिश्चंद्र दानी राजा बेलसरिया प्रमुख हैं। ये लोक गाथाएं छत्तीसगढ़ के लोक जीवन में रची-बसी हैं। इन लोक गाथाओं में छत्तीसगढ़ की सामाजिक व सांस्कृतिक परम्पराओं के दर्शन होते हैं।

लोक गाथा पंडवानी -

छत्तीसगढ़ में अनेकों लोक गाथाएं प्रचलित हैं, लेकिन सर्वाधिक या लोक प्रिय लोक गाथा पंडवानी ही है। विषय की दृष्टि से, पात्रों की दृष्टि और आकार की दृष्टि से भी। हालांकि पंडवानी का संबंध महाभारत से है। किन्तु स्थानीय परिवेश और स्थानीय लोक परम्पराओं के रंग में रंगी होने के कारण यह उतनी ही भिन्न भी है। पंडवानी की लोक प्रियता उसकी ऐतिहासिकता, अध्यात्म या दर्शन में नहीं हैं, बल्कि उसकी जन रंजकता में है। महाभारत की कथा तो ऐतिहासिक सत्य है। महाभारत को यदि हम इतिहास की जननी कहें, तो यह कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। अनेक ऐतिहासिक विषयों की जन्मदात्री है -महाभारत कथा। स्वयं भगवान वेदव्यास का मंतव्य है - "महाभारत धर्म ग्रंथ है, राजनीतिक दर्शन, निष्काम कर्म योग दर्शन है, भक्ति शास्त्र, अध्यात्म शास्त्र है, आर्य जाति का इतिहास है और सर्वार्थ साधक तथा सर्व शास्त्र संग्रह है और इन्ही गुणों के कारण महाभारत एक महाकाव्य है।"[24] जबकि "पंडवानी की ऐतिहासिकता का कोई प्रमाण नहीं है कि यह कब से गायी जा रही है। परंतु हाँ, महाभारत के पवित्र चरित्रों का गुणगान ही पंडवानी का मुख्य उद्देश्य है। इसी लक्ष्य को सम्मुख रखकर पंडवानी गायक इसका गायन करता है। पंडवानी महाभारत के इतिहास को संजोती है। इसे पंडवानी गायक अपनी टूटी-फूटी भाषा में रूपांतरित करता है।"[25]

नामकरण -

पंडवानी गायन की परम्परा और इसके नाम करण पर अब तक कोई

सप्रमाणिक तथ्य सामने नहीं आया है। जो भी है वह केवल अनुमान पर आधारित है। छत्तीसगढ़ की अपनी सांस्कृतिक गरिमा है। इसकी लोक मान्यताओं की विशिष्ट पहचान है। प्रत्येक कार्य के पीछे कोई न-कोई कारण होता है। और उस कारण के पीछे ही उसका नामकरण भी अवलंबित रहता है। यही बात पंडवानी के विषय में कही जा सकती है। पंडवानी की कथाएं महाभारत से ही श्रुति परम्परा से आई और स्थानीय लोक जीवन में समाहित हो गईं। परंतु महाभारत शब्द से यह अभास नहीं होता कि यह पांडवों की कथा है। सम्पूर्ण महाभारत को पढ़कर ही यह जाना जा सकता है। लेकिन ''पंडवानी'' के साथ ऐसा नहीं है। पंडवानी शब्द मात्र से ही पांडवों की कथा का बोध होता है।

''पंडवानी जैसा कि नाम से ध्वनित होता है, पांडवों की कथा है। ये कथा श्रुति परम्परा से आती है। न कि किसी महाकाव्य से। श्रुति परम्परा के कारण इसकी गायन शैली और प्रस्तुती में हमेशा लोक जीवन के ताजे रंग जगमगाते रहते हैं।'' [26] पंडवानी महाभारत का लोक रूप है और महाभारत पांडवों की कथा पर आधारित महाकाव्य है। पंडवानी पांडवों की लोक गाथा है। ''महाभारत की कथा का छत्तीसगढ़ी अनुवादी रूप और उसका गायन है ''पंडवानी''। पंडवानी में ''नी'' के योग से निष्पन्न पंडवानी का अर्थ है पांडव कथा।'' [27]

पंडवानी शब्द स्वमेव पांडव से संबंधित कथा का द्योतक है। पांडव के लिए छत्तीसगढ़ी भाषा में ''पंडवा'' शब्द प्रयुक्त होता है -

1. पंडवा + नी (प्रत्यय)
2. पंडवा + आनी (प्रत्यय)
3. पंडवा + आनी या बानी (युग्म प्रत्यय)

आनी-बानी अर्थात् विभिन्न प्रकार की कथाएं। पंडवानी में पांडवों की विभिन्न कथाओं का संग्रह है। जो स्थानीय लोक विश्वासों और लोक मान्यताओं के अनुरूप अनुप्राणित है। यही पंडवानी की सार्थकता है। पंडवानी में आद्योपांत पांडवों की कथा है। अन्य कथाएं भी हैं, जो कथा क्रम के विकास में प्रमुखता के साथ सहायक हैं। अब यह प्रश्न उठता है कि पंडवानी में पांडवों के साथ-साथ कौरंवों की भी कथाएं है। तब इसे पंडवानी ही क्यों कहा गया ? चूंकि पांडवों ने न्याय का पक्ष लिया। वे धर्म पर अडिग रहे, इसलिए उनकी जीत हुई। जो उन्हें नायकत्व प्रदान करती है। फलस्वरूप ये कथाएं पांडवों के नाम से ही लोक मानस में गहरे पैठ गयी जो आज पंडवानी के रूप में प्रचलित और प्रचारित हैं।

उद्‌भव और विकास

पंडवानी छत्तीसगढ़ अंचल की अपनी एक विशिष्ट सांस्कृतिक धरोहर है। पंडवानी गायन की परम्परा जिस रूप में छत्तीसगढ़ में प्रचलित है वैसा उसका स्वरूप भारत के अन्य क्षेत्रों में नहीं मिलता। पंडवानी की गायन परम्परा कब प्रारंभ हुई ? इस संबंध में तथ्यात्मक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। फिर भी यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि छत्तीसगढ़ में पंडवानी गायन की परम्परा प्राचीन है।

कतिपय विद्वानों का मत है कि पंडवानी गायन छत्तीसगढ़ की मूल परम्परा नहीं है, यह आयातीत है। ऐसे विद्वान जिनकी संख्या नगण्य है। शायद इन्हें छत्तीसगढ़ की ऐतिहासिक व सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि का ज्ञान नहीं है। छत्तीसगढ़ महाभारत काल की लीला भूमि रही है। देश के अन्य क्षेत्रों की तरह छत्तीसगढ़ का संबंध पांडवों के इतिहास से जुड़ा हुआ है। कुछ लोगों का विश्वास है कि "लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व छत्तीसगढ़ में हैह्यवंशी राजा राज करते थे। इसी वंश में कीर्तिवीर्य या सहस्त्र बाहु हुए उन्हें चेदिराज कहा जाता है। महाभारत के 18 प्रधान राजाओं में चेदिराज के नाम का उल्लेख मिलता है। इसके विपरीत कुछ एक इतिहासकारों का मत है, पाँचवी सदी में छत्तीसगढ़ में पांडव वंशीय राजा राज करते थे, किन्तु यह महाभारत कालीन पांडव वंश नहीं है। रायपुर और बिलासपुर में इस वंश के बहुत से ताम्र पत्र और लेख मिलें हैं। सबसे प्राचीन "बहुमनी" ग्राम का ताम्रपत्र है। जिससे वाकाटकों से पांडवों के संबंध का पता लगता है।" [28]

"लोक विश्वास का दूसरा भी एक रूप है। मोरध्वज की कथा को रतनपुर (बिलासपुर) से जोड़ा जाता है। रतनपुर में कृष्णार्जुनी तालाब है। कहा जाता है कि कृष्ण और अर्जुन ने इस अंचल की यात्रा की थी। उन्हीं की स्मृति में यह तालाब खुदवाया गया है। आज भी पूस पुन्नी के दिन यहाँ मेला भरता है। हजारों की संख्या में लोग इस पवित्र तालाब में स्नान कर अपना जन्म धन्य करते हैं। " [29]

"छत्तीसगढ़ की भौगोलिक स्थिति कुछ इस प्रकार है। जैसे वह विराट भारत माँ का हृदय स्थल हो, हृदय जो तमाम मानवीय गरिमाओं का चीर श्रोत रहा है। छत्तीसगढ़ में आरंग नामककस्बा है, जिसने कलेजे पर पत्थर रखकर वह दृश्य देखा, जिसमें पिता मोरध्वज ने पुत्र ताम्रध्वज को आरे से चिरवा रहा है। (आर+ अंग = आरंग) यह वही छत्तीसगढ़ है। " [30]

मोरध्वज वह पौराणिक पात्र है जिसकी भक्ति और दानशीलता की परीक्षा कृष्ण ने ली थी। अर्जुन को घमंड था अपनी कृष्ण भक्ति पर। भगवान ने कहा कि तुमसे

भी बढ़कर मेरा भक्त है जो दानी भी है। अर्जुन की संतुष्टि के लिए मोरध्वज की परीक्षा ली। राजा और रानी ने अपने इकलौते पुत्र को आरे से चिरा। आंखों से एक बूंद भी आंसू नहीं गिरा और पुत्र को डाल दिया शेर के सम्मुख। ये वही कृष्ण और अर्जुन हैं जो महाभारत के सूत्रधार और नायक हैं। मोरध्वज की नगरी वही आरंग है, जो आज भी इस बिश्वास को लिए हुए छत्तीसगढ़ में स्थित है। इस प्रकार जब पंडवानी के पात्रों का संबंध छत्तीसगढ़ से रहा है, तो निश्चित है कि लोगों ने उनकी महिमा का बखान किया जो आज पंडवानी के रूप में प्रचलित है। छत्तीसगढ़ में पंडों और कंवर जनजातियां निवास करती हैं, जो अपने आपको क्रमश: पांडवों और कौरवों का वंशज मानती हैं। तब तो यह कहना न्याय-संगत नहीं है कि पंडवानी आयातीत है। वस्तुत: पंडवानी गायन छत्तीसगढ़ के लोक साहित्य की मूल परम्परा है जो छत्तीसगढ़ में उद्भूत होकर पल्लवित और पुष्पित हुई है।

छत्तीसगढ़ मेहनतकश कृषक और मजदूरों की धरती है। धान का कटोरा यह छत्तीसगढ़ श्रम की पूजा करता है। कृषक और मजदूर दिनभर के कठिन परिश्रम के पश्चात् संध्या जब अपने घरों को लौटते हैं, तो श्रम-परिहार के लिए लोकगीतों, लोक गाथाओं, लोक कथाओं से अपना मनोरंजन करते हैं। आज तो मनोरंजन के विभिन्न साधन रेडियो ; टीवी; सिनेमा आदि उपलब्ध हैं। पहले मनोरंजन के इन साधनों का नामोनिशान तक न था। तब गीत और कहानी - किस्से ही ग्रामीण जनों के मनोरंजन के साधन हुआ करते थे। गीत और कथाओं में लोक रंजन के साथ-साथ जीवनोपयोगी प्रेरणाएं मिलती हैं। संभव है कि पंडवानी गायन की परम्परा भी तब से प्रारंभ हुई होगी। लोगों ने कथा को लयात्मकता दी और उसे नया रूप मिल गया।

प्राचीन काल में पंडवानी गायक केवल स्वान्त: सुखाय के रूप में गायन करता था। न कोई ताम-झाम न कोई व्यवस्था। विश्राम के क्षणों में मनोरंजन के लिए कुछ लोग आकर बैठ जाते और रात-रात भर यह सिलसिला चलता रहता। एक हाथ में तंबूरा और दूसरे हाथ में करताल लेकर "सना नना नना मोर नना नना भईया" की टेक पर कथा का विस्तार प्रारंभ हो जाता है और रागी (सहायक) खंझेड़ी बजाकर गायक के लिए पदों को दोहराता। तब शायद इस गायन को पंडवानी नहीं कहा जाता था। लोग इसे लोक भजन के नाम से ही संबोधित करते थे।

लोक गायक के लिए पढा-लिखा होना आवश्यक नहीं है। उसके गायन कौशल के लिए स्कूली शिक्षा की अनिवार्यता भी नहीं है। वह जनमानस में रचे-बसे गीतों को सुनकर अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुसार गाता है और यही बात पंडवानी

गायकों के साथ कभी हुई होगी। वे पढे- लिखे नही थे। वेद - शास्त्रों का उन्हें ज्ञान नहीं था। अत: यह स्वाभाविक है कि उनकी कथा अशास्त्रोक्त रही होगी, जो आज भी कापालिक कथा के रूप में प्रचलित है।

गायक महाभारत की कथाओं को जब गाता था, तब उसके इस गायन के पीछे कोई आर्थिक या व्यवसायिक दृष्टिकोण नहीं था। आत्म तुष्टि, भगवान का भजन और जनरंजन ही उसका उद्देश्य था। इसमें भी भगवद भजन की भावना ही प्रबल थी। अवसर और आयोजन की प्रतीक्षा किये बगैर जब इच्छा हुई, जब लोगों ने आग्रह किया, तंबूरे के तार झंकृत हो उठते और खंझेड़ी की थाप के साथ गायन की स्वर-लहरी से आंगन गूँज उठता।

पंडवानी गायन में गायकों ने तंबूरे का प्रयोग स्वर-साधन के लिए किया। क्यों कि तंबूरा (एकतारा) प्राचीन काल से प्रयोग में लाया जाता रहा है। इस प्रभाव से छत्तीसगढ़ का पंडवानी गायकअछूता नहीं रहा। स्वर -साधन के लिए सारंगी, रूंझू तथा चिकारा का भी प्रयोग किया गया। तम्बूरे की तान में ताल मिलाने के लिए करताल औंर खंझेडी का उपयोग किया गया जो आज भी प्रचलित है।

पंडवानी गायन वर्तमान में किसी जाति विशेष की वंशानुगत परम्परा नही रही, किन्तु पहले इसे विशेष समुदाय के द्वारा ही गाया जाता था। "पंडवानी विशेष प्रकार की कथा गायन है, मुख्यत: परधान एंव देवार अंशत: पारधी भिम्मा नामक जातियां इसकी परम्परागत गायक हैं। इनके अतिरिक्त भ्रमण शील समुदायों के कुछ लोग और गोंड, कंवर आदि जातियां ही पंडवानी का गायन करती हैं। किन्तु ये पंडवानी के परम्परागत गायक नही हैं, ये शौकिया तौर पर व्यक्तिगत क्षमता के साथ गाते हैं। पंडवानी परधान जाति की वंशानुगत गायकी है ये पीढ़ियों से पंडवानी का गायन अपने आस-पास के क्षेत्रों में घूमते हुए जहां पर रूक जाते थे, करते थे।"[31]

देवार जाति पहले भ्रमणशील जाति थी। घुमन्तु जीवन व्यतीत कर अपना जीवाकोपार्जन करती थी। आज भी यह जाति गायन व नृत्य से जुड़ी हुई है। देवार जाति की पंडवानी गायन कला आज भी सुनने को मिलती है और यही गायन कला इनकी उदर पूर्ति का साधन है। आज भी देवार वृद्ध जन अपने रूंझू (लोकवाद्य) के साथ पंडवानी की कथा कहते हैं। नई पीढ़ी इस गायन परम्परा से लगभग कट चुकी है। इनकी गायन शैली और इनका वाद्य सर्वथा भिन्न है। आयोजनों और मंचीय प्रदर्शन से दूर देवार जाति की यह गायन शैली इनकी बोली से ही पहचान ली जाती है। इनका यह गायन एक पात्रीय है, किसी सहयोगी की आवश्यकता नहीं। आंचलिक पृष्ठ भूमि पर

स्थानीय लोक विश्वासों और लोक मान्यताओं के अनुरूप कथा गायन इनका निजत्व है। "इनकी कथा महाभारत की ख्यात कथा के समान है, किन्तु चरित्रगत मिथक और ब्यौरे भिन्न हैं। सभी चरित्र अपने लोक में निर्मित होते हैं। और अपने परिवेश में विकास पाते हैं। इनका रोज का कार्य व्यापार परिवेशगत है, यहां पर परिवेशगत मिथकों का घटाटोप है, और लोक की आदिम ऊर्जा है। पंडवानी के इस रूप के गायक विख्यात मगहाकाव्य के लिखित महाभारत के संबंध में नहीं जानते। इस गायन में परिष्कृत साहित्यिक दखल नहीं है। यह लोक वाणी है। इस लोक गाथा का विशिष्ट चरित्र और मुख्य नायक भीम है। पंडवानी के चरित्रों का अपना नाम है जैसे कुंती यहां पर कोतमा के नाम से जानी जाती है। और भीम गजादंड नामक लाठी से जाने जाते है।" [32]

भीम इनकी कथा का नायक है। जिसका चरित्र मिथकीय प्रभाव व स्थानीय परिवेश के अनुसार उपस्थित होता है। इनकी कथा का आकर्षण भीम का पराक्रम, बुद्धि चातुर्य, हास-परिहास और विशालकाय शरीर है, जो श्रोता को चैतन्य बनाये रखता है। एक कथा प्रसंग प्रस्तुत है जिसमें भीम द्वारा अमृत पीकर कुंड खाली कर देने के पश्चात् वासुकी और भगवान के द्वारा अमृत वापस प्राप्त करने की मानवीय साजिश की गई थी -

"वासुका रे राजा
सोये हवै भइया
जाऊ देखी आवों
बोलिस है सतजोगन कैना
ये ढंग भिम्मा से भाई
कुंड के अमृत ल ददा
चार चुल्लू म भइया
सुड़ुक ले सुड़ुक डारिस भइया
सूख गईस कुंड रे भईया
सांपे मन रे दादा
नव लाख रहे हवय
बिल बिलान लागिन भाई
बहुत मिठाईस
अमरित हो दादा
पकर-पकर सांपन ला भाई

पूंछी बांट ले पकर के
मुंडी बांट ले पकर के
चचोर-चचोर भिम्मा
बाहिर फेकन लागिस भईया
भिम्मा के डकार ल सुनके
बासुक राजा रे भाई
नींद से जगे है
देखथें सांपे-सांप रे दादा
इन सब कैसे में निकरिन रे भाई
दौर के जाथे वासुक राजा
भगवान ठिगा भाई
तब कहिथे भगवान
सुन-सुन रे बासुक
तैं बन जाबे गइया
मैं बन जाहुं बघवा
जोन रस्ता धर
भिम्मा हर जाही
ओही रस्ता म राजा
मैं तोला धर लेहूँ
तैं जोर ले राजा
गइया अस नरियाबे
सांझ के बेरा रे भाई
भीम मरदाना रे दादा
अपन मन म सोंच थे
आज चुटुक कन भाई
घूमे ल जातेंव
चलदीस भीम घूमन के लाने हो
अब चले जा रहे भीम सेन रद्दा - रद्दा रे भइया
कइसे जंगल के बीज से गुजरथे भाई
बिल बिलान लागिन भाई

आगे ओहर देखथे भीम्मा रे पंडवा
एक बाघ एक गाय ल पकड़थे रे दादा
भिम्मा दौड़िस हे बचाये बर हो
हट-हट करत दौंड़िस हे भीमसन
लग गइस भीम्मा के पेट म बघवा के पंजा
बोहा गइस सफ्फा अमरित रे भाई
अँतड़ी ओझरी हाथ से संवारत हे भीम्मा
बघवा अपन काम करके भाग गइस हो
इहां भीम रे भईया
अँतड़ी - ओझरी समहारे रे भईया
ऊँहा बईद के भेष धरके
भगवान आइन दादा।
पूछथे भीम ले बईद बाबा
तोला का भइगे बेटा
अब बताय रहे हे भीम्मा हो
अतका ल सुनके रे भाई
चल दिन दोनो पानी के तीर म
भगवान रे भीम्मा रे भाई
अब निकाल के आंत ल धो रहे हैं
गांठी मारि के रे भईया
पेट ऊपर हाथ फेरिन बईद महराज
तऊने समय म ददा
भीम्मा के पेट रे भाई
जइसने पहिले रिहिस
वइसने भई गे हो ....
वा अमरित रे भईया
कुंड म पहुँच गईस
कुछ जमीन हर सोंख लिहिस
ओह धरती रे हीरा
अमरित सहिन फल देथे।

ओही धरती रे भाई
अमरित कस दाना देथे
ओही गईया रे दादा
अमरित ल चांटिस रे
तेही बर रे भईया
ओहर अमरित कस दूद देथे
अँतड़िन को दादा
पानी म धोय रहिन
तेखर बर पानी
अमरित कस सुहाथे
वा अमरित रे दादा
कुंड ले निकलके
फैल गईस रे दादा " [33]

उपरोक्त कथानक मूल महाभारत से साम्य नहीं रखता, केवल प्रसंग की साम्यता है। लोक गायक उक्त घटनाक्रम को आंचलिकता प्रदान कर परिवेश से उसका तादात्म स्थापित करता है, जो लोक गायक की बौद्धिक क्षमता पर आधारित है। धीरे-धीरे पंडवानी की गायन परम्परा में विकास हुआ और एक पात्रीय गायन का स्थान द्विपात्रीय परम्परा ने ले लिया। तम्बूरे व करताल के साथ-साथ ताल वाद्य के रूप में खंझेड़ी का प्रयोग होने लगा। तब भी गायक कापालिक कथाओं को कहते थे। तब लोक गायक पंडवानी गायक के रूप में नहीं बल्कि "भजनहा" के नाम से जाने जाते थे।

विकास की इस दिशा में पंडवानी का नया रूप सामने आने लगा। तत्कालिन जन रूचि और समय गत स्वीकृत वाद्यों का प्रयोग होने लगा। गायन परम्परा में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ, किन्तु तम्बूरे और करताल के साथ खंझेड़ी के स्थान पर ढोलक, तबला और मंजीरे का प्रयोग होने लगा। इस परिर्वतन के प्रति श्रोताओं का दृष्टिकोण सकारात्मक रहा। फलस्वरूप द्विपात्रीय गायन मंडली में सदस्यों की संख्या चार तक हो गई है। इस परिवर्तन ने श्रोताओं को आकर्षित किया और उनकी सहज स्वीकृति ले ली। चिकारा का स्थान हारमोनियम ने ले लिया। कथा गायन में संगीत की प्रधानता होने लगी। इस संबंध में पंडवानी के सुप्रसिद्ध गायक श्री झाड़ू राम देवांगन अपने संस्मरण में कहते हैं कि - "एक समय की घटना है कि श्री नारायण प्रसाद वर्मा (झीपन रवान वाले) की पंडवानी दुर्ग में चल रही थी। जो पंडवानी के पुराने गायक थे और मेरा

कार्यक्रम दुर्ग के पास कसारीडीह में। वर्मा जी केवल तम्बूरा और खंझेरी के साथ गाते थे। तब मैंने तबला, हारमोनियम और मंजीरे का प्रयोग शुरू कर दिया था। यह मेरे पंडवानी गायन की शुरूआत थी। फिर भी मेरे कार्यक्रम में श्रोताओं की भीड़ उमड़ पड़ती थी। इसका कारण केवल नये वाद्यों का प्रयोग था।" [34]

इस परिवर्तन ने पंडवानी गायकों के आयोजन स्थल को बदल डाला। आंगन से निकलकर पंडवानी गांव के चौंरा और गुड़ी में पहुँच गई। वाद्यों में क्रमशः परिवर्तन के साथ-साथ नए वाद्यों का प्रयोग होने लगा। पंडवानी गायक अब हारमोनियम, बेंजो,तबला, ढोलक, बांसुरी का प्रयोग करने लगे। मशाल के स्थान पर प्रकाश के लिए गैसबत्ती और बिजली की व्यवस्था होने लगी। अस्थायी मंच के निर्माण के साथ-साथ लाउडस्पीकर की व्यवस्था अनिवार्य हो गई। ताकि श्रोताओं की अधिकता के कारण गायक की आवाज उन तक साफ - साफ सुनाई दे सके। इस परिवर्तन ने अनेक लोगों को पंडवानी गायन के लिए प्रेरित किया। फलस्वरूप पंडवानी गायकों की संख्या में वृद्धि होने लगी। कुछ महिलाओं ने भी पंडवानी गायन का दुस्साहस किया। दुस्साहस इस मायने में कि तब महिलाओं द्वारा नृत्य या गायन के सार्वजनिक प्रदर्शन को समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था। "हमारी शादी बचपन में ही हो गई थी। नाचने-गाने के कारण हमारे ससुराल वालों ने हमें ठुकरा दिया। लोग तो हमारे साये से लड़कियों को दूर रखते थे। पड़ोस की औरतें हमारे बारे में तमाम उल-जलूल बातें करतीं ,लेकिन भैया हमने समाज का, नाते रिश्तेदार का तनिक भी ख्याल नहीं किया। मैं अपने नाचने गाने में मस्त रही।" [35]

अब पंडवानी मात्र भगवद् भजन न होकर अर्थोपार्जन का साधन बन गई है। स्वान्तः सुखाय न होकर व्यवसायिक परिधी में आ गई। पंडवानी जब व्यवसायिक दृष्टि कोण से अलग थी। तब इच्छुक व्यक्ति या गांव वाले पंडवानी गायक को नारियल भेंट करते थे, जिसे वह आमंत्रण मानकर स्वीकार कर लेता और अपनी मंडली के साथ गायन प्रस्तुत करता था। चढ़ोत्तरी के रूप में जो भी राशि और अन्न मिल जाते वही उनका पारिश्रमिक होता।

समय बदला, व्यवस्था बदली। महानगरीय मंचों ने पंडवानी गायकों को आकर्षित किया। गांव, नगर,महानगर और देश-प्रदेश की राजधानियों में लोक कला और लोक संस्कृति के आयोजनों ने पंडवानी गायन को नया आयाम दिया। इस दिशा में आकाशवाणी ने भी अपनी सार्थक भूमिका का निर्वहन किया। 2अक्टूबर सन् 1963 में रायपुर आकाशवाणी की स्थापना हुई। आकाशवाणी ने लोक कलाकारों की

खोज-खबर लीं। जिससे पंडवानी गायक व गायिकाओं को अधिक प्रचार-प्रसार मिला और पंडवानी ने छत्तीसगढ़ से बाहर अन्य प्रदेशों में भी अपनी पहचान कायम की।

छत्तीसगढ़ में पंडवानी गायक-गायिकाओं की एक लम्बी सूची है, जिन्होंने अपने अथक परिश्रम, लगन और निष्ठा के साथ पंडवानी गायन को अंतर्राष्ट्रीय ऊँचाइयाँ दी। इस दिशा में स्व. झाड़ू राम देवांगन और उनके शिष्य पद्मश्री श्री पूना राम निषाद, पद्म श्री तीजन बाई और किशोरी गाशिका कु. ऋतु वर्मा प्रमुख हैं। जिन्होंने अपनी गायन कला से पंडवानी को प्रतिष्ठित कर छत्तीसगढ़ का कला- गौरव बढ़ाया है।

सन् 1927 में दुर्ग जिले के बासिन गांव में पैदा हुए श्री झाड़ू राम देवांगन ने कापालिक शैली के स्थान पर वेदमती शैली को प्रमुखता दी और छन्दबद्ध करके उसमें लोकगीतों और लोकधुनों का समावेश किया। सन् 1984 में इन्हें शिखर सम्मान से विभूषित किया गया। 1988-89 में केन्द्र द्वारा संगीत नाटक अकादमी सम्मान तथा 1990-91 में म.प्र. सरकार द्वारा तुलसी सम्मान दिया गया। इनके पूर्व इनके शिष्य श्री पूना राम निषाद को भी संगीत नाटक अकादमी का सम्मान प्राप्त हुआ था गुरू के पूर्व शिष्य का सम्मानित होना बड़े गौरव की बात थी। फलस्वरूप पंडवानी के माध्यम से छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक गंध विदेशों में फ्रांस,जापान, इटली, रूस, अमेरिका, इरान, इराक, एडिनबरा, पूर्वी जर्मनी, पश्चिमी जर्मनी आदि में फैलने लगी।

सन् 1985 में श्रीमती तीजन बाई को फ्रांस में आयोजित "भारत महोत्सव" में पंडवानी गायन के लिए आमंत्रित किया गया। सन् 1988 में भारत सरकार की ओर से इन्हें पद्म श्री से सम्मानित किया गया जो छत्तीसगढ़ की कला का सम्मान था। श्री रेवा राम साहू और कुमारी ऋतु वर्मा ने भी पंडवानी गायन की परम्परा को ऊँचाइयाँ दी और इसे विदेशों में पहुँचाने का स्तुत्य प्रयास किया।

पंडवानी के क्रमिक विकास व उसके वर्तमान स्वरूप में आने के साथ-साथ पंडवानी गायक-गायिकाओं की संख्या में भी वृद्धि हुई है। पंडवानी जातिगत शैली और परम्परागत वाद्यों से निकलकर एक नए रूप में स्थापित हुई। कापालिक कथाओं के स्थान पर शास्त्र सम्मत कथाओं का गायन प्रारंभ हुआ। पंडवानी गायकों ने श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत का पठन और श्रवण कर उसी के अनुरूप कथा-गायन प्रारंभ किया और कल्पित कथाओं को प्रसंगानुसार क्षेपक - कथा के रूप में स्थान दिया।

सातवें-आठवें दसक में पंडवानी गायन की शैली परम्परागत रही। किन्तु नवें दशक के प्रारंभ में नये वाद्यों और लोक रूचि के अनुसार पंडवानी गायन की शैली में

किंचित परिवर्तन हुए। यह परिवर्तन संगीत- रूप में अधिक था। मंडली के सदस्यों की संख्या बढ़ी, समयगत स्वीकृत वाद्यों के द्वारा लोकगीतों और लोकधुनों का प्रयोग किया गया। भावाभिनय और व्याख्या में सामंजस्य रखा गया।

पंडवानी गायक गायन के साथ -साथ प्रसंगानुसार एकल अभिनय भी करने लगा। वर्तमान में गायक महाभारत की कथा का गायन बैठकर या खड़े होकर करता है। मुख्य गायक ही गायन के साथ तमाम महाभारतीय चरित्रों को जीता है। जिसमें रागी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गायक मात्र तम्बूरा, करताल, हाथ और मुख मुद्रा के द्वारा महाभारत के पात्रों को मंच पर अवतरित करता है।

छत्तीसगढ़ी लोक कला की सेवा के लिए जिन्होंने पंडवानी गायन को एक कर्म के रूप में अपनाया है। जो अपनी लगन और परिश्रम से पंडवानी की प्रतिष्ठा में श्री वृद्धि के लिए तन-मन से संकल्पित हैं, उन गायक-गायिकाओं की लंबी सूची है। कुछ प्रमुख गायक-गायिकाओं के नाम निम्नानुसार है -

1.	स्व. श्री झाडू राम देवांगन	-	बासीन दुर्ग
2.	पद्म श्री पूनाराम निषाद	-	रिंगनी दुर्ग
3.	पद्म श्री तीजन बाई	-	भिलाई
4.	लक्ष्मी बाई बंजारे	-	कातुल बोड़
5.	शांति बाई चेलक	-	पिरदा
6.	श्री चेतन लाल देवांगन	-	पहंदा
7.	श्री ईश्वरी चन्द्राकर	-	सीस देवरी
8.	अर्जुन साहू	-	आनंद गांव
9.	श्री बाबू लाल वर्मा	-	देवादा
10.	रेमन बाई	-	भंसुली
11.	पार्वती बाई	-	जरवाय
12.	मीना साहू	-	रनचिरई
13.	इंडिया बाई	-	भाठा गांव (भगवान)
14.	पूर्णिमा बाई	-	जामुल
15.	रंभा बाई	-	गनियारी
16.	डोमार वर्मा	-	देवर तिलदा
17.	परस राम धीवर	-	ससहा
18.	कु. ऋतु वर्मा	-	रूवा बांधा भिलाई

19.	राजा राम साहू	-	कौड़िया
20.	गंगा राम साहू	-	कौड़िया
21.	कु. प्रभा यादव	-	चंदखुरी
22.	पुनीत राम साहू	-	फुलवारी
23.	कु. सावित्री मीरा	-	रूवाबांधा
24.	सुशीला ठाकुर	-	रायपुर
25.	प्रतिभा बाई	-	पतोरा सोड़
26.	फूलबाई साहू	-	भिंभौरी
27.	टेमिन बाई	-	कोकड़ी
28.	सुकालू निषाद	-	रिंगनी
29.	चैती बाई	-	चिखली
30.	बैसाखिन बाई	-	मुर्रा
31.	चमेली निषाद	-	अकलोरडीह
32.	सुरूज बाई खांडे	-	कोरबा
33.	रेखाजलक्षत्री	-	मांढर
34.	उषा बारले	-	भिलाई
35.	सोमे शास्त्री	-	बिलासपुर
36.	थम्हन लाल अस्तुरे	-	गुनरबोड़
37.	बिसौहा दास	-	परपोड़ा (साजा)
38.	बोहरन दास	-	कुरलू
39.	प्रहलाद निषाद	-	सिंघनगढ़
40.	अगनू राम निषाद	-	छांटा
41.	दया बाई	-	दुपचेरा
42.	सुमित्रा बाई	-	गोरदी
43.	अशोक बाई साहू	-	भिंभौरी
44.	जाना बाई	-	देवरी
45.	मनमोहन सिन्हा	-	डोड़की
46.	विशाल दास	-	दनिया
47.	रामनाथ यादव	-	अकोली
48.	दसरू कोसरिया	-	घटला

49.	गुलाब वर्मा	-	कांचरी
50.	शोभा राम शिकारी	-	गनियारी
51.	स्व. रेवा राम साहू	-	बसंतपुर, राजनांदगांव
52.	कन्हैया लाल नंद	-	जुड़ा लवन
53.	प्रेम लाल साहू	-	अकोली खाती
54.	कौशिल्या बाई	-	सांकरा
55.	द्रोपती बाई साहू	-	पिरदा
56.	कुन्ती बाई गंधर्व	-	रामपुर, बेरला
57.	धीरपाल सिंह धुर्वे	-	खोलवा, गंडई
58.	अमृता साहू	-	धमधा, देवकर
59.	प्रतिमा बाई गायकवाड़	-	रूवाबांधा
60.	उत्तरा जंघेल	-	रूवाबांधा
61.	बंशी राम राजपूत	-	पेंडरी
62.	सुखदेव ध्रुव	-	पलेना
63.	धनी राम साहू	-	भरतरा
64.	परसु राम वर्मा	-	जांता
65.	सूरदास	-	नवागांव,सिमगा
66.	रतन हरिजन	-	गिरौद्पुर
67.	ढलगन राम	-	ढोलिया
68.	आशाराम	-	बिरेझर , अंजोरा
69.	गुहाराम निर्मलकर	-	छोटे टेमरी
70.	कुन्ती बाई निर्मलकर	-	बघेरा,दुर्ग
71.	टेक सिंह खुशरो	-	सरईपतेरा
72.	नीरज शर्मा	-	मेड़ेसरा
73.	स्व. फिरंगी यादव	-	पंडरिया
74.	कुंजल दास	-	कवर्धा (भालूचुआ)
75.	अरूण सेन	-	कंजी
76.	सुशील यादव	-	बटरेल
77.	चंद्रिका बाई	-	लमती जोशी (डोंगरगढ़)
78.	शत्रुहन सिंह पोर्ते	-	चमारी,रेंगाखार कला
79.	संतोष कुमार टंडन	-	खोपली
80.	हेमीन बाई जांगड़े	-	औरी
81.	खेमबाई निषाद	-	राजिम

82.	मीना डहरिया	-	कल्ले कुरूद
83.	मोहन वैष्णव	-	मोपर, बलौदा बाजार
84.	रेणु साहू	-	भिलाई
85.	अर्जुन सेन	-	बांसबिनोरी, पलारी
86.	प्रतिमा बारले	-	कवर्धा
87.	अनुसुईया गंधर्व	-	कांकेर
88.	कु. सोनिया देवांगन	-	भिलाई
89.	इन्द्राबाई जंघेल	-	कुथरेल
90.	खम्हनलाल यादव	-	कुंआपाली बिल्हा

वर्गीकरण -

छत्तीसगढ़ में गांव की गुड़ी (चबूतरा) हो या फिर किसी नगर या महानगर का भव्य मंच जैसे पंडवानी के बिना आयोजन की पूर्णता संदिग्ध हो जाती है। सांस्कृतिक आयोजनों में पंडवानी की बढ़ती लोक प्रियता इस बात का प्रमाण है।

छत्तीसगढ़ में पंडवानी गायन की दो शैलियां प्रचलित हैं-

1. वेदमती
2. कापालिक

किन्तु विभिन्न लोक कला मर्मज्ञों ने, गायक कलाकारों ने उपरोक्त शैलियों की जो व्याख्या की है उनमें किंचित विरोधाभास है। लगता है इन विद्वानों ने पंडवानी गायन शैली को स्थूल रूप में वर्गीकृत किया है या केवल कुछ गायक-गायिकाओं के कथा गायन को सुनकर। सूक्ष्म रूप में विचार किया जाय तो यह वर्गीकरण उचित प्रतीत नहीं होता ।

"पंडवानी के दो रूप छत्तीसगढ़ में प्रचलित हैं। एक में महाभारत की कथा में गायक अपनी ओर से बहुत कुछ जोड़ता-घटाता है। लोक में परिव्याप्त किवदंतियों एवं जन श्रुतियों के ताने-बाने में मूल कथा को रोचक एवं रंजक बनाता है , दूसरे में महाभारत के शास्त्रीय रूप का गायन होता है।"[36] पंडवानी की शैली निर्धारण में श्री नंदकिशोर तिवारी का मंतव्य इस प्रकार है। "कापालिक तथा वेदमती की मौखिक परम्परा के पंडवानी गायक सामान्यत: खड़े होकर ही पंडवानी का गायन करते हैं। वहीं दूसरी शाखा के पंडवानी गायक बैठकर पंडवानी गाते हैं।"[37] "पंडवानी की वेदमती तथा कापालिक शाखाओं का दर्शनीय समिश्रण तीजन बाई ने प्रस्तुत किया। वेदमती शाखा के अन्य गायक मंच पर बैठकर अपना गान अभिनय प्रस्तुत करते हैं, वहीं तीजन बाई ने

मंच पर खडे होकर पंडवानी गायन किया। कापालिक शाखा की पंडवानी में लोक प्रचलित किवदंतियों औंर स्थानीय अतीत की स्मृतियों को कुशलता पूर्वक मूल आख्यान में मिला दिया जाता है।" [38] पडंवानी की गायन शैलियों पर और भी विभिन्न विद्वानों के विचार द्दष्टव्य हैं। "पंडवानी की दो प्रचलित गायन शैलियां हैं। जो क्रमश: वेदमती और कापालिक शैलियों के नाम से जानी जाती है। शास्त्रीय नृत्य में जो नाट्य अथवा अभिनय पक्ष होता है, वह इस पारम्परिक कथा कथन शैली का प्रमुख आकर्षण है। पंडवानी कथा गायक विभिन्न मुद्राओं और भावाभिनय द्वारा नवों रसों का प्रभाव पैदा करता है और महाभारतीय दंत कथाओं और किवदंतियों का अनुगायन करता है।" [39]

"पंडवानी कथा गायन दो रूपों में किया जाता है। एक तो वेद शास्त्र में लिखित अनुसार जिसे वेद मति शाखा कहा जाता है और दूसरा, लोक मान्यताओं, लोक विश्वासों के अनुसार काल्पनिक जिसे कापालिक शाखा कहा जाता है। वेदमती शाखा के पंडवानी गायक एक ओर जहां कथा सशक्त, शिक्षाप्रद और आकर्षक शैली में प्रस्तुत करते हैं। वहीं दूसरी ओर कापालिक शाखा के गायकों की कथा मूल कथा से सरोकार न होते हुए भी लोक विश्वासों की गहरी पेठ के कारण सच्चाई से बिल्कुल करीब और अत्यंत रोचक लगती है।" [40] वेदमती शैली के अंतर्गत गायक केवल पांडवों की कथा को साधारण रूप से बताता है। जबकि कापालिक शैली में कलाकार पांडवों की कथा को नाच-गाकर मुद्रा और अभिनय के माध्यम से बताता है। मेरी शैली कापालिक कहलााती है।" [41]

पंडवानी की इन दोनों शैलियों, वेदमती व कापालिक पर डॉ. बलदाऊ प्रसाद निर्मलकर अपना मंतव्य प्रकट करते हुए लिखते हैं - "वेदमती पंडवानी से आशय उन गीतों से है, जिनकी कथा महाभारत सम्मत है, अर्थात् बुद्धिमानों से सम्मत या जो वेद से अनुमोदित है। उस कथा का गायन इसके अंतर्गत सम्मिलित है इसे बैठकर गाया जाता है। कापालिक गीत वे है जो महाभारत के किसी पर्व में नहीं मिलते। केवल छत्तीसगढ़ के गायकों में मिलते हैं। इन गायकों की कथाएं कपोल कल्पित होती हैं। इसमें लोक विश्वास की इतनी गहरी छाप पड़ी है कि कथाएं कपोल कल्पित होकर भी पांडवों से संबंधित मानी जाती है। इसे खड़े-खड़े गाया जाता है।"

उपरोक्त उद्धरणों के अध्ययन से पंडवानी की वेदमती और कापालिक शैली के भेद का निश्चित आधार तय नहीं होता। किन्हीं विद्वानों ने कथा को आधार मानकर शैलियों के भेद का निर्धारण किया है तो किन्हीं विद्वानों ने केवल गायन की मुद्रा को (बैठकर या खड़े होकर) आधार मानकर शैलियों की सीमा रेखा तय की है, इस संबंध में

पद्म श्री तीजन बाई का मंतव्य स्पष्ट है। यदि हम पंडवानी की गायन मुद्रा (बैठकर या खड़े होकर गाने की परम्परा) को ही पंडवानी की गायन शैली का मापदंड मानकर चलें तो पंडवानी की दो ही नहीं बल्कि तीन शैलियां सामने आती हैं -

1. कापालिक शैली
2. वेदमती शैली
3. हरि कीर्तन या भजन शैली

पंडवानी गायन की वर्तमान परम्परा में झाँककर यदि देखें तो इस तीसरी भजन (हरि कीर्तन) शैली के दर्शन होते हैं। जब कथा गायक तम्बूरा करताल लेकर खंझेरी वादक के सहयोग से कथा गायन करता था। जिसमें स्थानीय भाषा में गायक को "भजनहा" और "खंझेरी वादक" को "रागी" कहा जाता है। अनेक पंडित (ब्राम्हण) हरि कीर्तन के नाम से महाभारत की कथा का गायन हारमोनियम बजा कर करते हैं ये कथाएं शास्त्र सम्मत हैं। इन दोनो प्रकार के कथा गायकों की शैली को हरिकीर्तन या भजन शैली कहकर अभिहित किया जा सकता है।

पंडवानी की अर्वाचीन परम्परा के साथ-साथ प्राचीन परम्परा को देखें तो पंडवानी की प्रचलित शैलियों का मानक तय करने में सहायता मिलेगी। इस विश्लेषण में व्यक्त तृतीय शैली की तरह प्रथम भजन शैली में कथा गायक बैठकर गायन करता है। इन गायकों की कथा वेद सम्मत न होकर जन श्रुतियों पर आधारित है। महाभारत की मूल कथा से भिन्न स्थानीय लोक मान्यताओं और लोक विश्वासों के अनुरूप। चूंकि ये कथा गायक पंडवानी को बैठकर गाते हैं। क्या मात्र गायन की मुद्रा के आधार पर इस शैली को वेदमती शैली के अंतर्गत रखा जा सकता है ?

"हे भगवान ! ओती ले भीमसन गरजत आवत रहाय। एती मारत सपेटा धावन चले जावत राहय जी। ठऊंका जाय उदुप ले पहुंचा पाय भीमसन। ये ददा ! काय आगे? गोड़ ले मुड़ ल देखय भीमसन ल। अऊदेख के जो कांपना शुरू करय। हत रे ! मूंगा मैं कोनो दिन के तोर लागत रेहेंव । मोर नान-नान लइका कखरो नई होइस भगवान। धावन कथे-मोर जऊंहर होगे। अब मैं कोन उपाय करवं। भीमसन देख के कथे- इही डाहर ले आवथे तेन जैता कोती ले आवथे, कांपथे, डर्रावथे भगवान। रूप ल बदल लव भगवान इही पता बताही जैता के -

रूखकर ओटगन लेवत हावय हे रामा
नानकुन टूरा रे होवत लागे भाई।
करिया कर लुठवा रेमटा अनघटहा हे रामा

दइंतला हावय ददा हमरो कस भाई
बोंड़री ले लार चुचवावत हावय हे रामा
आंखी म लोंदा-लोंदा चिपरा भरे भाई
रब ले आघू में अभर गे हे रामा
राम-राम भईया परदेसी काहय भाई
राम-राम बाबू गोठियावत हे रामा
लद-लद कांपत हावय रस्ता म भाई
काय बड़े जनिक ओती आवत रहिस रामा
जेन ल मैं गजब जनिक देखे हवं भाई
कते डाहर ले ग मैं नई देखवं हे रामा
कांहा ले आवतथस परदेशी कहाय भाई
भीमसन पूछथे तैं कहा ले आथस कते डाहर जाथस ?
सुनी लेबे परदेसी अगा भईया ग
अरजी ल मोर बिनती ल मोर भाई
मैं रहिथवं सेन्दूरा गढ़ में राजा रे
परदेसी आय हवं जैतापुर म भाई
भारी राजा सुनेव राजा पांडवा ल देवता
एक कारज लेके आयेवं गढ़ सेन्दुरा ले भाई
जैता में आके देखथवं पंडवा के ग
सबो खटिया निकल गे मरघट्टी में भाई
अतका जब सुने भीमसन गजधारी
ओहा पूछय परदेसी ल मोर डोंगरी म भाई " [42]

वर्तमान में छत्तीसगढ़ में पंडवानी गायन का मूलाधार श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत है, जो महामुनि व्यास द्वारा रचित महाभारत पर आधारित है। आज अनेकों पंडवानी गायक और गायिका पूरी तरह श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत को ही आधार मानकर अपना कथा गायन प्रस्तुत करते हैं। चूंकि ये गायक - गायिकाएं खड़े होकर, नाच-गाकर,प्रसंगानुकूल विभिन्न आंगिक चेष्टाओं के साथ पंडवानी गाते हैं। क्या केवल इस आधार पर कि ये खड़े होकर कथा प्रस्तुत करते हैं, इनकी इस शैली को जो शास्त्र सम्मत है, कापालिक शाखा के अंतर्गत रखा जा सकता है ?

"बोल दो बिंदाबन बिहारी लाल की जय

मोर सना नना नना नना नना मोहन
मोर बीना बजावत हरि गुन गावत भईया
प्रभु आकर लाज रखबे ग मोर भाई
भरे सभा म लाज रखबे ग मोर भाई

अर्जुन अकेल्ला ब्राम्हण के सरीर धारण कर सत्य वचन पालन करे खातिर बारा बरस बर बनवास चलने लगे -

तब पाँव खड़ऊवा ये ओ
मोर पाँवे खड़ऊवा ये न
तब गले म डारे माला ग
चंदन माथ चमकन लागे ग
मोर हाथ कमंडल ददा
तब अर्जुन चले ग भाई
येदे भेष बनाके भईया
गांडीवधारी अर्जुन ग।

अर्जुन बड़े-बड़े साधु सन्यासी ल देखकर के दोनो हाथ जोड़ करके विनय पूर्वक कहे - महराज अरे सचमुच मैं सहर ल छोड़ रेवा पहाड़ म आये हवं। रेवा पहाड़ म अर्जुन ह आये हे ? ब्राम्हण के रूप ल देखिन त सब ब्राम्हण देवता कथे ! अरे भईया तैं तो क्षत्रिय पुत्र अस तोर ये सन्यासी बने के कारण होथे यार। द्रोपती ल झगरा करके छोड़ न जाने यहां तक आये हस के झगरा द्रोपती तोला कर देहे। अर्जुन लाजवस होगे।" [43]

उपरोक्त उद्धरणों से यह तथ्य स्पष्ट है कि पंडवानी गायन शैली के भेद का आधार बिंदु गायन की मुद्रा न होकर कथा है। कथा के आधार पर पंडवानी गायन की निम्न दो शैलियां प्रचलित हैं -

1. कापालिक
2. वेदमती

कापालिक शैली

वे कथाएं जो कल्पित होकर भी स्थानीय विश्वासों के अनुरूप पांडवो से सबंधित हैं, यही पंडवानी की कापालिक शैली है। इन कथाओं के लिए यह आवश्यक नहीं कि इसका संबंध महाभारत से हो। लोक विश्वासों के रंग में रंगी ये कथाएं जन रंजन का साधन हैं और यह गायन परम्परा केवल छत्तीसगढ़ में मिलती है। कापालिक शैली

उपरोक्त कापालिक कथा में पात्र और प्रसंग महाभारत के हैं , किन्तु कथा की संबंधता और घटनाएं सर्वथा भिन्न हैं। केवल कथा गायक की दिमागी कसरत और लोक विश्वासों का प्रतिफल। पंडवानी में इस तरह की और भी अनेक कथाएं हैं जैसे सेन्दूरा गढ़ की लड़ाई (नकुल बिहाव) धोबनीन गढ़ की लड़ाई (सहदेव बिहाव) आदि। श्री नारायण प्रसाद वर्मा झीपन वाले, श्री अमोली मरार सिंघनगढ़, श्री बोधी राम यादव पंडरिया कापालिक शैली के प्रमुख पंडवानी गायक थे। छत्तीसगढ़ में अब पंडवानी की इस शैली के गायक कम ही हैं। अधिकांश गायक या गायिका वेदमती शैली अपनाकर वेदमती शैली का ही निर्वहन कर रहे हैं।

वेदमती शैली

वे कथाएं जो शास्त्र सम्मत हैं, मूल महाभारत के आधार पर पंडवानी के अंतर्गत गाई जाती है। इन कथाओं की गायन परम्परा ही वेदमती शैली है। इसका गायन बैठकर और खड़े होकर दोनों ही तरह से किया जाता है। वेदमती शाखा की कथाएं मूल महाभारत से साम्य रखती हैं, किन्तु पंडवानी गायन में वेदमती शाखा के गायक श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत का अनुसरण करते हैं। इस शाखा के अंतर्गत आदि परब, सभा परब, बन परब, उद्योग परब, भीष्म परब, द्रोण परब, कर्ण परब, शैल्य परब,गदा परब, अश्वमेघ परब, स्वर्गारोहण परब, मूसल परब आदि छत्तीसगढ़ी रूपों में समाहित है। वेदमती शाखा के गायक या गायिकाओं का यह अभिमत है कि शांति परब के गायन से गायक शांति अर्थात् मृत्यु को प्राप्त करता है। अत: शांति परब का गायन नहीं करते। यह लोक विश्वास पर आस्था का प्रमाण है। जिसे अंधविश्वास भी कहा जा सकता है । किन्तु नई पीढ़ी के पंडवानी गायक श्री प्रहलाद निषाद (सिंघनगढ़) इस अभिमंत (अंध विश्वास) के विरोधी हैं। उनका स्पष्ट शब्दों में यह कथन है कि ऐसा कुछ नहीं है। मैं शांति परब की कथा का गायन करता हूँ। यह बात और है कि शांति परब की कथा अन्य परबों की कथा की तरह रोचक नहीं होती।

वेदमती शैली की भी दो गायन परम्पराएं परिलक्षित होती हैं -

1. मौखिक परम्परा
2. लिखित परम्परा

मौखिक परम्परा - मौखिकपरम्परा के अंतर्गत पंडवानी गायकों के पास कोई लिखित साहित्य नहीं होता। वह मूल कथाओं को श्रुति परम्परा के अनुसार सुनकर इसका गायन करता है। इसका मुख्य कारण इनकी निरक्षरता है। चूँकि ये पढ़- लिख नहीं सकते। अत: इनके लिए महाभारत का अध्ययन कर पाना संभव नहीं है। इनकी मंडली

नहीं भायी। वह वापस लौटने लगा, जिससे पांडव अप्रसन्न हो गये और जिसे जो मिला उसी को फेंककर शकुनि को मारने लगे। पांडवों के द्वारा उस फेंकी गई वस्तुओं को इकट्ठा कर वह वापस आया और उन वस्तुओं को प्रमाण स्वरूप दिखाकर पांडवों की मृत्यु की खबर फैला दी। इतना ही नहीं वह दुर्योधन को इस बात के लिए उकसाने लगा कि वह (दुर्योधन) अपने बेटे की शादी उत्तरा के साथ करे। दुर्योधन अपनी फौज लेकर विराट नगरी की ओर चल पड़ा। इधर भीम साधु का वेश धरकर लोहिड़ीपुर कुहूक का फूल लाने गया। दस गाड़ा फूल तोड़कर जब बाहर निकल रहा था,तब लोहिड़हपुर के बारह भाई सबरिया और बारह भाई अघरिया कोल आदि ने भीम का घेर लिया। भयानक युद्ध हुआ। सबरिया और अघरिया के पास बारह कोस का तवा था। जिसे वे गर्म करके युद्ध करते थे। तवा गरम किया जाने लगा। अर्जुन इस तथ्य को जानता था। वह दूर से ही युद्ध करने लगा। और अंततः पांडवों की विजय हुई। पांचों पांडव कुहूक फूल लेकर जब विराट नगर पहुँचे, तब दुर्योधन की सेना और पांडवों के बीच युद्ध हुआ। कौरवों को हराकर पांडवों ने अभिमन्यु की शादी उत्तरा से की।

यह कथा कल्पनाओं से भरी है। सबरिया और अघरिया छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ हैं। समूचे प्रसंग में छत्तीसगढ़ का ओज दिखाई पड़ता है। छत्तीसगढ़ की लोक कथाओं में लोक मान्यताओं का अपना वैशिष्ट्य है। लोहिड़ीपुर की लड़ाई का वर्णन इस प्रकार से हुआ है -

"बड़े-बड़े बलिमन बाना धरके दऊँड़य जी ,
धरू-धरू, अमरू-अमरू, मारू-मारू ललकारंय जी
अइसे तो सयना मोर महाजुद्ध खेलय जी
अर्जुन बली तो बान ल सम्हालय जी
बान गोड़ी वाला बान मारत हवय जी
छूटत म एक ठन अऊ लागत म दू ठन जी
बरसे हजारा तो हजारा ग ए भाई
पानी बान मारय पवन बान काटय जी
गदा बान मारय कएचा बान म काटय हो जी
बज्र बान, गदाबान, बिसीख बान, सिलोही बान
तोमर बान,फरखा बान,रामबान, विष्णु बान
बरमाबान,सिवबान,हरेक हरेकनाम,
अउ - अउ बरसा अर्जुन करिन जी।" [46]

जनश्रुतियों और वाचिक परम्परा पर आधारित है। "तमाम ऐतिहासिक उपलब्ध अभिलेखों से इतर छत्तीसगढ़ के पंडवानी गायकों के पांडवों को ढूंढ पाना अत्यंत कठिन है। कुछ एक गायक महाभारत की कथा को आधार बनाकर पंडवानी का गायन करते हैं, तो कुछ महाभारत की मूल कथाओं से सरोकर नहीं रखते। यदि सरोकार है तो लोक विश्वासों से, जिसे वे एक लंबे समय से जी रहे हैं।"[44] "इस कथा में महाभारत के पात्र ऐतिहासिक प्रतीत होते है। पर अनेक घटनाएं इतिहास में वर्णित नहीं है। सम्भवत: इनमें प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से ही पात्रों को ऐतिहासिक रूप दे दिया गया है।"[45]

महाभारत के नायक श्रीकृष्ण हैं किन्तु छत्तीसगढ़ में प्रचलित पंडवानी का नायक भीम है। भीम को इस अंचल में भीमसन कह कर सम्बोधित किया जाता है। (भीमसन कस दिखत हे टूरा ह रे) भीमसन शब्द से ही विराटकाय, बलशाली, पराक्रमी पुरूष का आभास मिलता है। उसकी युद्ध कला के वर्णन से श्रोताओं का मनोरंजन होता है। लोग भीमसन का प्रसंग सुनकर भाव विभोर हो जाते हैं - "कापालिक गायकों की कथा पांडवों से संबंधित होती है किन्तु पंडवानी का नायक भीम होता है। कापालिक पंडवानी छत्तीसगढ़ का महाभारत है। इस शाखा की पंडवानी की किसी भी कथा का मूल महाभारत की कथा से जुड़ना आवश्यक नहीं है। महाभारत के पात्र केवल मिथकीय रूप में जुड़े होते हैं। कापालिक गायक स्थानीय लोक विश्वासों, घटनाओं आदि को आधार बनाकर पंडवानी की संरचना करता है। कथा पूरी तरह उनकी दिमाग की उपज होती है। कापालिक शाखा की पंडवानी का उदाहरण निम्नानुसार है -

एक समय धर्मराज युधिष्ठिर ने अभिमन्यु के ब्याह की इच्छा व्यक्त की। सहदेव पोथी निकालकर अभिमन्यु के लिए कन्या ढूंढने लगा। निश्चय हुआ कि राजा विराट के यहां कन्या मांगी जाय। इस कार्य के लिए मामा सकुनि को लिवाने के लिए अर्जुन नंदीघोष रथ में चढ़कर गया। शकुनि ने अर्जुन के समक्ष दस्त होने का बहाना बनाया और प्रमाण स्वरूप रोहिना की छाल को कूट पीसकर घर में फैला दिया। अर्जुन शकुनि की बात को सत्य मानकर वापस चला गया। परन्तु भीम को विश्वास नहीं हुआ। भीम शकुनि को लिवाने गया। शकुनि ने फिर से वही नाटक किया। भीम ने लोहे के एक सब्बल को गरम कर शकुनि की देह बत्तीस स्थानों पर आंक (दाग) दिया और शकुनि को मोटरी बनाकर उठा लाया। शकुनि अभिमन्यु केलिए कन्या मांगने विराट नगर गया, विराट ने अभिमन्यु के लिए कन्या देना इस शर्त पर स्वीकार किया कि पांडव भाँवर (फेरे) के समय एक कांवर कुहूक का फूल देना स्वीकार लें। भीम ने एक कांवर की जगह दस गाड़ा कुहूक का फूल देना स्वीकार किया। भीम की यह बात शकुनि को

का सहयोगी सदस्य कथाओं को पढ़कर सुनाता है। फिर वह उसे अपनी क्षमता के अनुसार मौखिक रूप से ग्रहण कर कथा का गायन करता है। इन गायक-गायिकाओं में पद्म श्री तीजन बाई और कुमारी ऋतु वर्मा उल्लेखनीय है। यह भी उल्लेखनीय है कि उपरोक्त गायिकाओं ने जन साक्षरता अभियान 1990-91 के अंतर्गत साक्षर होना अर्थात् लिखना प्रारंभ किया है।

लिखित परम्परा - लिखित परम्परा के गायक-गायिकाएं श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत में रचित दोहों और चौपाइयों के आधार पर अपना पंडवानी गायन प्रस्तुत करते हैं। सम्पूर्ण कथा शास्त्रोक्त होती है। प्रसंगानुकूल बीच-बीच में दोहों और चौपाइयों को भी गाकर सुनाते हैं। चूंकि ये पढ़े-लिखे और अध्ययनशील होते हैं। अत: श्री सबल सिंह रचित महाभारत के अतिरिक्त महाभारत से संबंधित अन्य साहित्य सामग्री का अध्ययन करते हैं। और प्रसंगानुरूप उसका उल्लेख करते जाते हैं। इस श्रेणी के गायकों में श्री झाड़ू राम देवांगन, श्री पूना राम निषाद, श्री चेतन राम देवांगन, कु.प्रभा यादव, श्री ईश्वरी चन्द्रकार, श्री प्रहलाद निषाद और श्री खम्हन लाकल अस्तुरे आदि प्रमुख हैं। महाभारत की कथा और विषय से सभी परिचित हैं, पर पंडवानी के लोक गायकों द्वारा जो कथा कही जाती है। वह मूल कथा से कुछ भिन्न है। इसमें लोक रंग-रूप बहुत बड़ी मात्रा में अभिव्यक्त हुआ है। दो पंडवानी गायकों द्वारा प्रयुक्त एक ही कथा प्रसंग (कथा) करण - कुन्ती संवाद उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है। ये दोनों ही कथाएं वेदमती शैली की कहलाती हैं।

1. "अइ ए कुन्ती महतारी जेखर जबर हावय छाती
जेला कइथे ओ दाई, जेला कथे ग भईया
पांडव के महतारी ये न
ये बेटा कन्हैया
का होगे दाई
तोर बात तो मोला अइसे लागत हे कन्हैया
का बात ? मोर अर्जुन नइ बांचही ग

बिल्कुल नइ बांचही दाई जब तक करण के पास के पंचमुखी बाण ल नइ लाबे तब तक। तो मैं अभी जाथवं कन्हैया अउ करण के पास से पंचमुखी बान मांग के लानत हवं।"[47]

X X X

"नही तैं मोर सच के बेटा अस ग
ये दाई मैं नो हवं तोर बेटा ओ
मोर बेटा अस करण
नो हवं माँ
मैं सच कहिथवं तैं मोर बेटा अस ग
सुनलेबे दाई तोर पईयां लागवं ओ

बेटा करण, हव माँ सचमुच म तैं मोर महतारी अवं, एक दूसरा बात मैं ह तोला समझाये ल आये हवं करण। कइसे ? पांच पांडव के पाछू म तहूँ मोर जेठ बेटा अस ग। भाई-भाई म लड़ई मत होवय अपन संग मिलके सुन्दर सुख-दुख बांट ले करण। भाई-भाई के बीच में झगरा झन होवय न बेटा तोला समझावत हवं सुनले कुन्ती ओ मोर बाते ल नई रूके आज लड़ई ह।" [48]

2. " ओ बम भोला दरसन बर तरसे चोला
दरसन बर तरसे चोला बम भोला
अहो बम भोला

विधि के अनुसार ओ तुलसी के चौरा में परस राम के दिये हुए बाण के पूजा करथे। पर पांडव दल में राजा करन के जऊन प्रन करे राहय, विजय मुकुट जऊन राजा दुर्योधन के बांधे राहय। भगवान जऊन जा करके पांडव के भवन में पहुँचथे। अऊ भवन में पहुँच के बोलथे दीदी कुन्ती राजा दुर्योधन के दल में राजा करन ह सेना पति के ओहा भार ल ले डरे हे। के कल युद्ध में अर्जुन के सीस बचना मुश्किल हे। ओतका बात ल सुनके रानी कुन्ती कीथे - भगवान केसो, जेन समय द्रोपती के चिर खीचिस तेन समय जाके तैं मोर लाज ल बचाये प्रभु। फेर तोला लाज ल बचाये ल लगही। त भगवान केसो कथे - दीदी कुन्ती मोर पास एक यंत्र हे ये यंत्र ल धरके तोला राजा करन के पास जाय ल लगही। तैं जानथस दीदी कुन्ती के तैं कुंवारी के गर्भ में राजा करन ल

तहीं ह पैदा करे हवस भाई
कुंवारी गर्भ में

मोर कृष्ण कन्हैया काहे ग मोर भाई, दीदी कुंवारी गर्भ में तैं राजा करन ल पैदा करे हस। ओ तोर जेठ बेटा ये, जा ओखर पास में जो पंचमुखी बान ल मांग के लान ले। रानी कुन्ती हे तऊन जा करके दुख के साथ राजा करन के महल में पहुँचत राहय।" [49]

उपरोक्त दोनो ही कथाएं महाभारत के एक ही प्रसंग की कथा है। किन्तु पंडवानी गायकों द्वारा अपने-अपने ढंग से कही गई है। पंडवानी कहने के इस ढंग में

लोक का चटक रंग उभरा है। वेदमती शैली की इस कथा में लोकानुभूति की प्रमुखता है।

वैशिष्ट्य -

छत्तीसगढ़ में पंडवानी की गायन शैली अपने चरमोत्कर्ष पर है। यह अपनी विशिष्टताओं के कारण अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज में पहुंचकर लोकप्रिय हुई। वर्तमान स्वरूप प्राचीन परम्परा का प्रतिफ लन है। पंडवानी छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक धरोहर है। पंडवानी वेद व्यास रचित महाभारत का लोक रूप और छत्तीसगढ़ का लोक महाकाव्य भी है। आज पंडवानी कथा गायन ने लोक मानस को जितना प्रभावित किया है, उतना अन्य कला रूप ने नहीं। शायद यही कारण है कि पंडवानी के श्रोताओं की संख्या में वृद्धि के साथ -साथ पंडवानी गायक-गायकाओं की संख्या में भी आशातीत बढ़ोत्तरी हुई है। पंडवानी का वैशिष्ट्य ही इसकी लोक प्रियता का कारण है। इन विशिष्टताओं को निम्न बिन्दुओं पर समाविष्ट किया जा सकता है -

1. **पृथकता** - महामुनि व्यास द्वारा महाभारत की रचना की गई, जो शुद्ध संस्कृत श्लोकों में है। जिसे विद्वजनों ने पांचवे वेद की संज्ञा दी है। महाभारत अनेक कथाओं का संग्रह है , इसमें कथाओं की कथाएं हैं। जो सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध है। भारतीय जन-मानस इन कथाओं और उपकथाओं से भली-भांति परिचित है। "सम्पूर्ण महाभारत की कथा एक सूत्र में पिरोयी गई छोटी-छोटी लोक कथाओं का अद्‌भूत संग्रह है। संभवत: यही कारण है कि समूचे हिन्दुस्तान में महाभारत की कथा स्थानीय लोक विश्वासों के साथ आज भी जीवित है। अंचल विशेष की लोक मान्यताओं, भूगोल,इतिहास तथा आर्थिकी से प्रभावित होकर उस अंचल विशेष की दैनन्दनी की रुढ़ियों को आत्मसात कर महाभारत की कथाएं स्थानीय हो गई हैं। उसकी यही स्थानीयता ही उसकी रमणीयता है।"[50]

हालांकि छत्तीसगढ़ी पंडवानी कथा गायन की परम्परा महाभारत की कथाओं पर आधारित है। फिर भी यह स्थानीय लोक रंग के कारण अपनी विशिष्टता कायम रखती है। भारत के अन्य अंचलों में महाभारत की कथाओं को स्फुट गीतों के रूप में गाया जाता है, किन्तु पंडवानी की तरह गायन की परम्परा नहीं है। अत: यह महाभारत की कथा होकर भी अपनी गायन परम्परा के कारण पृथक है। प्रस्तुत है एक उदाहरण जिसमें कीचक वध की कथा वर्णित है -

"मोर रटपटा के ममा मोर उठन लागे न
मोर सालिन्द्री के पासे ग मोर पहुँचन लागे ग

कुन्ती के बेटा ....

मोर कइसे मजा के ग मोर बोलन लागे भाई

कुन्ती के बेटा भीमसेन ल सालिन्द्री जान के कहे - सालिन्द्री - ये सालिन्द्री भीमसेन कहने लगे रे नीच मैं सालिन्द्री नहीं सालेन्द्रा अवं ये भी याद रखले। भीमसेन के आवाज सुनके कहिथे - अरे बाप रे !राजा किचक हे तेन पलंग से उठकर कहने लगे - रे नीच तुमने मुझसे छल करके, तुमने मुझसे कपट करके, सालिन्द्री के रूप भेष बनाकर आया। चाहे तुम गंधर्व हो तो भी किचक से बचकर नहीं जायेगा। भीमसेन कहने लगे - राजा किचक! अरे तुम जैसे को तो हम कीचड़ में मिला दिये हैं। तो तुमको कौन पूछेगा। ये भी याद रख। राजा किचक अऊ भीमसेन के भवन में ममा कीचक अउ भीमसेन के लड़ई मात गे ममा।" [51]

"जब हाथ गोड़ ल ममा एक ठन में

मोर बइहा रे ये दिने

जब मुष्टिका प्रहार करे वहाँ रूधिर की धार बहे। हाथ गोड़ ल चुरू - मुरू ओखर पेट में भरिस ममा

मोर कुटु-मुटु

मोर कइसे मजा के मोर बोलन लागे भाई

राजा कीचक ल मार के जब अइसे मुष्टिका प्रहार करे तो उनके मुंह से रूधिर की धार बहने लगे। द्रोपती कहिथे ये पापी जीयत में रिहिस ते रिहिस, मरे म बैरी काल हो जही। खाना दे राहे तेन पात्र में ममा

मोर मुंह में पात्र टेकावन लागे भाई

नारी द्रोपती हे तऊन अपन पति ल सुना के कहने लगे हो ....। ममा उही तो हरे ते तरिया में रथे तेन जोंख ये अउ खटिया में चटके तेन ढेकना। मारबे रोगहा ल मर जाही अउ बाद में फेर जी जथे न। ममा द्रोपती राहय तेन बड़ा प्रेम के साथ पति भीम ल बतावे। अउ भीमसेन रहे तेन ओखर गोड़ ल गुटु-मुटु करके मुहाटी म सुतादिस ममा अउ खून से लिखिस -

रानी के भाई राजा के सारा

अउ कीचक भये कीन मारा

कौन मारा ? मैं मारा मैं मारा" [52]

चूंकि कीचक की मृत्यु के संबंध में भीम व द्रोपती को छोड़कर अन्य कोई कुछ भी नहीं जानता था। अत: छत्तीसगढ़ी लोक जीवन में निम्न हाना (कहावत) प्रचलित है, जो

पंडवानी की पृथकता को प्रमाणित करता है। "जर जुड़ न ताप कीचक मरगे अपने आप"

2. **विशालता (प्रलंब कथानक)** - छत्तीसगढ़ में अनेकों लोक गाथाओं के गायन की परम्परा है। जैसे पंडवानी (पांडवों की कथा) श्रवण कुमार की कथा, गोपी चंदा, भरथरी चरित्र आदि। प्रथम दोनो लोक गाथाएं पौराणिक हैं, किन्तु ये दोनों कथाएं आध्यात्मिक होकर भी भिन्न हैं। श्रवण कुमार की कथा से पितृभक्ति की प्रेरणा मिलती है। जबकि पंडवानी लोक रंजन के लिए गाई जाती है। गोपी चंदा और भरथरी चरित्र तंत्र-मंत्र और नाथ सम्प्रदाय से प्रभावित है। पंडवानी कथा गायन 18 दिनों में भी पूरी नहीं होती। जबकि अन्य लोक गाथाएं ढोलामारू, गूँज पड़की, दसमत कैना, चंदैनी आदि कम समय में पूरी कर ली जाती है। पंडवानी विस्तृत और विशाल है अन्य लोक गाथाएं संक्षिप्त। श्रवण कुमार, गोपीचंदा और भरथरी में अन्य कथाएं नहीं है। जबकि पंडवानी छोटी-छोटी कथाओं का अद्‌भूत संग्रह है। और इसमें सैकड़ों अन्य कथाएं भी विद्यमान है। अत: विशालता की दृष्टि से पंडवानी एक अकेली लोक गाथा है, जो पौराणिक होकर भी लोक गाथा के रूप में प्रचलित है। जिसका आनंद सुनने में है, पढ़ने में नहीं।

3. **टेक पदों की पुनरावृत्ति** - लोक गाथाओं की प्रमुख विशेषता है प्रलंब कथानक। लंबे कथानक के कारण कथा गायक टेक पदों की पुनरावृत्ति करता है। छत्तीसगढ़ में अनेक लोक गाथाओं की तरह ही पंडवानी में भी टेक पदों की पुनरावृत्ति की जाती है। पंडवानी कथा गायन में टेक पदों को सुनकर ही इसके स्वर लय और ताल से पंडवानी का पूर्वाभास मिल जाता है। पंडवानी गायक "रामे रामे भईया मोर रामे रामे जी "या "सना नना नना मोहन" आदि टेक पदों से अपना गायन प्रारंभ करता है। और सम्पूर्ण कथा गायन में इन पदों की शताधिक बार पुनरावृत्ति दिखाई पड़ती है। प्रस्तुत है उदाहरण -

"रामे रामे भईया रामे ग रामे भईया
रामे रामे भईया रामे ग रामे भईया [53]

x x x

"मोर सना नना नना नना नना मोहन
तरी बिना बजावत हरि गुन गावय मोहन
प्रभु आकर लाज रखबे ग भाई
भरे सभा में लाज रखबे ग मोर भाई "[54]

x x x

"ये रामे रामे रामे रामे ये ये रामा हो
हरि भजन प्रिय लागत हे रामा जय हरि
ब्रम्हा के बेटी बीना बजावत चले आ
मोर हिरदे में तैं हा भवन बना लेबे रामा " [55]

टेक पदों की पुनरावृत्ति के साथ ही साथ पंडवानी में लय पूर्ति के लिए भाई, भईया, रामा, जय हरि इत्यादि शब्दों की भी पुनरावृत्ति की जाती है, जो उपरोक्त उदाहरणों में द्दष्टव्य है।

4. **लोक महाकाव्यत्व** - काव्य भेद के अंतर्गत प्रबंध काव्य के दो भेद बताये गए है। (1) महाकाव्य (2) खंडकाव्य। महाभारत एक महाकाव्य है जिसमें महाकाव्य की सभी विशेषताएं पाई जाती हैं। चूंकि पंडवानी महाभारत का लोक और मौखिक रूप है। अतः कुछ विशेषताओं को छोड़कर महाकाव्य की सारी विशेषताएं पंडवानी में पाई जाती हैं। और यही विशेषताएं पंडवानी का महाकाव्यत्व है। "रामायण और महाभारत दो ऐसे अन्यतम महाकाव्य हैं। जिनमें सम्पूर्ण भारतीय जीवन परिलक्षित हुआ है। हमारे और आपके जीवन में भी इन महाकाव्यों का प्रभाव स्पष्ट है।"[56] पंडवानी छत्तीसगढ़ में गाई जाती है। अतः इसमें छत्तीसगढ़ी लोक जीवन का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। पंडवानी महाभारत के समांतर लोक महाकाव्य है। जिसका नायक भीम हैं पराक्रमी और क्षत्रीय है। जिसमें उनके जीवन के सम्पूर्ण पक्ष समाहित है। महाभारत की तरह पंडवानी की कथाएं विभिन्न पर्वो में गाई जाती है।

5. **चम्पू शैली का लोक महाकाव्य** - काव्य भेद के अंतर्गत चम्पू महाकाव्य का उल्लेख मिलता हैं - "गद्य - पद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यमि धीयते। " अर्थात गद्य- पद्यमय काव्य चम्पू काव्य कहलाता है। महाभारत एक लिखित महाकाव्य है। पंडवानी इसका छत्तीसगढ़ी रुपांतरण है, किन्तु पंडवानी कथा गायन में गद्य एवं पद्य दोनो ही समान रूप में प्रयुक्त होते है। इस द्दष्टि से पंडवानी उत्कृष्ट कोटि का चंपू शैली का महाकाव्य है। जिसमें लोक की अभिव्यक्ति है -

"अगा छाती लगाके भेंटन लागे भाई
अगा दल में जवान लागे मोर भाई

बड़े प्रेम के साथ मिलिन हे। राजा शैल कथे - दुर्योधन पर एक बात रिहिस। तेरा साल होगे हे पांडव मन जब ले बनवास गेहे।

भेटे ग नई होय ग हवे भईया
भेटे ग नई होय ग हवे भईया

मोला थोरिक हुकुम देते। मैं पांडव मनकरा मुलाकात कर लेतेवं। दुर्योधन कथे - ममा अगर तोला पांडव मन रोक लेही त। नहीं -नहीं तैं चिंता मत कर।

अगा सेना ल मैं ह नई ग लेगवं भाई
मैं अकेल्ला ग जावत हववं ग मोर भाई

एक बात हे भाई तुरंत वापस आ जाबे। मैं अभी आहू अइसे कहिके राजा शैल ह -

रथ में सवार ग होवन लागे भाई
घोड़ा के लगाम संभालन लागे भाई
रथ ल ग अब खेदन लागे भाई ''[57]

पूरी पंडवानी उपरोक्त ढंग से गद्य व पद्य में ही गाई जाती है।

6. **आंचलिकता** - पंडवानी में छत्तीसगढ़ अंचल की सांस्कृतिक, सामाजिक, भौगोलिक पृष्ठभूमि का समावेश मिलता है। ''लोक गाथाओं में स्थानीयता का पुट विशेष रूप से पाया जाता है। लोक गाथाएं चाहे कितने भी सुदूर प्रदेश की क्यों न हों ? शताब्दियों के भ्रमण के बाद किसी विशेष प्रांत में पहुँचने पर वे धीरे-धीरे वहां की विशेषताएं अपना लेती हैं। प्रो. किटरेज ने लिखा है कि - ''लोक गाथा का निर्माण किसी घटना के कारण होता है, निर्माण के साथ ही साथ तद्‌देशीय वातावरण एवं स्थानीयता का समावेश हो जाता है।''[58] पंडवानी का कथा गायक भी अपनी अंचल की सांस्कृतिक गरिमा से भी प्रभावित होता है। अत: वह कथाओं को स्थानीय परिवेश,रहन-सहन, तीज त्यौहार, खान-पान से जोड़ते चलता है या सहज ही इनकी अभिव्यक्ति इन कथाओं में हो जाती है। तीजा छत्तीसगढ़ का प्रमुख त्यौहार है। जिसमें स्त्रियों को उनके मायके वाले लिवा कर लाते हैं। छत्तीसगढ़ी स्त्रियां बड़ी बेसब्री से इस त्यौहार का इंतजार करती है। प्रस्तुत उदाहरण में द्रोपती अर्जुन से तीज पर्व पर ''सरगरोहनी'' अर्थात् मायके पहुँचाने का अनुरोध करती है -

''मने-मन गुने माता द्रोपती दिल में करे विचार
जब मुख बोले माता द्रोपती सुन ले जोड़ी पंडवा हमार
किया दाई मरे किया दादा मरे सगररोहनी ले मोला जीत के लाने हो
सावन भादो के महिना आवे रे भाई
तीजा पोरा में मोला जान देबे
ओतका ल सुनके राजा अर्जुन ह
एति के पिरथी ओती लहुट जाही
फेर कभू नई जाववं सरगरोहनी ओ बाई
बैरी के जगहा सरगरोहनी हावय जी

पांचों पति ल अइसने पूछ डरिस ओहा
कान्हो कुछु जवाब नई दिस
रात पहागे दिन भरगे भईया".[59]

पंडवानी में छत्तीसगढ़ अंचल के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, तीज-त्यौहार का सम्यक चित्रण है। जिसका उल्लेख अध्याय तीन में सविस्तार किया गया है। छत्तीसगढ़ के खेलों का भी पंडवानी में सजीव चित्रण मिलता है। जो पंडवानी की आंचलिकता को और भी परिपुष्ट करता है -

रामे राम ग राम ग राम भाई
रामे राम ग राम ग राम भाई

महामुनि वैशम्पायन कहने लगे - राजा जन्मेजय सौ भाई कौरव और पांच भाई पांडव

अगा खेले मैदान में जावन लागे भाई
ये दे खेल ग खेलन लागे मोर भाई

दुर्योधन कथे-भीम कभू दाम नई दय। एखर से कईसे दाम लेना चाही दुशासन -

अगा तेहां उपाय ग बताई देबे भाई

बता दुशासन कऊन से खेल खेलबो तेमे भीम से दांव लेवन। दुशासन कथे एक खेल हे -

"डंडा पचरंगा खेली लेबो भईया मोर
भईया दुर्योधन
भीमसेन दांव ग देई ग देहि भाई
तेमे कुरूपति बोलन लोगे भाई मोर"[60]

x x x

धाय वृक्ष तब भीम हलाबो, गिरे सबय तो थाह न पायों।
पेड़ हलाय दिन तो हांका, परे भूमि जिमि सब फल पाकां ॥[61]

7. **लोक छंद के रूप में** - पंडवानी में छंद विधान की योजना अनुपलब्ध है बल्कि यों कहा जाय कि पंडवानी स्वयं एक लोक छंद है, तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। "लोक गाथाओं में काव्य शास्त्र में वर्णित छंदों का प्रयोग नहीं होता। इनमें प्रयुक्त छंदों को लोक छंद कहा जा सकता है।"[62] छत्तीसगढ़ी लोक गाथाओं में छंद विधान की योजना पर अपना मंतव्य प्रकट करते हुए डॉ. विजय कुमार सिन्हा ने लिखा है - छत्तीसगढ़ी लोक गाथाओं को प्रस्तुत करने के उपक्रम में लोक गाथाकार प्राय: मात्राओं की घट-बढ़ की ओर ध्यान नहीं देता। परिणामत: मात्राओं में शिथिलता और

विभिन्नता परिलक्षित होती है। इसे शिष्ट साहित्य का दुर्लभ पक्ष कहा जा सकता है। लेकिन लोक गाथाकार संगीत लय और प्रवाह को अक्षुण्य रखता है। यही इसकी विशिष्टता है। जब मात्राएं अधिक होती हैं, तब वह द्रुतगति से निश्चित लय में उसे पूरा करता है। पंडवानी की छंद योजना के परिप्रेक्ष्य में कुछ उदाहरण प्रस्तुत है -

पद्म श्री तीजन बाई - ऽ । ऽ । ऽ । । ऽ । । ऽ ।

"मोर संग में चलना ये अर्जुन = 17

ऽ । ऽ । ऽ । । ऽ ऽ ऽ

मोर संग में चलना भाई = 16

ऽ ऽ ऽ । । । । ऽ । ऽ ।

मैं हा गांव के नजदीक में ग = 16

। ऽ । ऽ ऽ । ऽ । । ।

कभी नई जाववं केशव

काबर ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ । । ऽ ऽ

कैलाशपति कर, जी नारी मन पूजा करे भाई = 27

। ऽ । ऽ ऽ । । । । ऽ ऽ

अर्जुन मोला पति मिले भोला = 16

। ऽ । ऽ ऽ । । । । ऽ ऽ

अर्जुन मोला पति मिले भाई।[63] = 16

स्व. श्री झाडू राम देवांगन

। ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । । । । । । ऽ ऽ ।

"श्याम सुखदाई मोर हलधर के भाई ग = 23

। । । । ऽ । । । । ऽ ऽ । । ऽ ऽ ।

भजन बिना मुक्ति नई होवय भाई ग = 20

। ऽ ऽ । ऽ । । ऽ । । । । ऽ ।

अगा बार बार अर्जुन ल समझावे = 19

। । । । ऽ । । । । ऽ ऽ । । ऽ ऽ ।

भजन बिना मुक्ति नई होवय भाई ग = 20

। । । । ऽ । । ऽ । । ऽ ।

तब सुन पारथ बोलन लागे = 15

। ।। । ऽ ।।। ।ऽऽ।।ऽऽ।
भजन बिना मुक्ति नई होवय भाई ग"[64] = 20

कु. ऋतु वर्मा

।। ऽ ऽ।ऽ। ।।। ऽ।। ऽऽऽऽ
"तब पासा उठाके गए दे फेंकन लागे भाई = 24

ऽ ।।।।। ऽ ऽ ।। ।।।।। ऽऽऽऽ
मोर कपट के पासा ये ग ये दे पड़न लागे भाई = 26

ऽ ।।।ऽ ।। ।।ऽऽ।।। ।।। ऽ। ऽऽ
मोर धरती म ये दे भईया कइसे परन लागे भाई[65] = 26

श्री प्रहलाद निषाद

ऽ।।। ऽ।। ।।ऽ ।। ऽ ।।ऽऽ
"ओइसने बाने के बरसा ग चलाय भईया = 22

।। ऽ।। ।।। ऽ।। ऽ ।ऽ ऽ
ये दे कौरव दल ग भागन लागे राजा"[66] = 18

पंडवानी गायकों की गायन शैली अलग-अलग है। अत: उनके मात्रिक छंदों में विभिन्नता है। चूंकि पंडवानी में गायन के साथ-साथ व्याख्या भी की जाती है। तथा प्रसंग को आवश्यकतानुसार गद्य का रूप दिया जाता है। अत: मात्राओं की अनिश्चिता गायन में भी बनी रहती है और यही अनिश्चिता पंडवानी को एक लोक छंद के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

8. **लोककीर्तन की परम्परा** - पंडवानी छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य की समृद्ध परम्परा है। इसका प्रारंभिक गायन भगवद भजन की भावना से प्रेरित किया गया है। "लोक साहित्य मानवता का पालना है - लेखन से पहले की मानवता की संस्कृति का अमूल्य भंडार, जिसमें धर्म, दर्शन, अध्यात्म, संस्कार, कर्मकांड, काव्य, नृत्य गान आदि सभी पलते झूलते और खेलते रहे हैं। जो इन सबका समन्वित कलात्मक रूप है।"[67]

धर्म, दर्शन और अध्यात्म लोक कीर्तन के विषय रहे हैं। पंडवानी गायन मनुष्य जीवन की नश्वरता और परमपिता परमेश्वर की प्राप्ति को पंडवानी के माध्यम से अभिव्यक्त करता है।और यही उसका लक्ष्य रहा है। यह बात और है कि व्यवसायिकता की परिधि में आकर पंडवानी अब अर्थोपार्जन, प्रसिद्धी और मनोरंजन मात्र का साधन बन गई है। लोक कीर्तन की परम्परानुसार आज भी पंडवानी के प्रारंभ में मंगलाचरण

(सुमरनी) की जाती है और अंत में विसर्जन -

सुमरनी

"सदा भवानी दाहिने, सन्मुख गौरी गणेश
पांच देव रक्षा करे, ब्रम्हा, विष्णु, महेश"[68]

"रघुपति चरण मनाइके, व्यास देव धरि ध्यान
आदि पर्व भाषा रचेऊ, सबल सिंह चौहान।
अरे श्याम सुखदाई , मोर हलधर के भाई ग
भजन बिना बेड़ा पार नई होय भाई ग"[69]

कथा गायन में यदा -कदा बीच -बीच में श्रोताओं को भी ताली बजाकर हरिकीर्तन के लिए प्रेरित किया जाता है। श्रोता गायक का अनुसरण करते हैं -

गोविंद बोलो हरि गोपाल बोलो
राधा रमण हरि गोपाल बोलो।

सुमरनी की तरह ही कथा के अंत में विसर्जन किया जाता हैं -

"हरि नाम भजन कर प्राणी ग
तोर दू दिन के जिनगानी ग
हरि नाम भजन कर ....
मोरे-मोरे धन धाम संवारे
नई रही निसानी ग, हरि नाम भजन कर...........।"[70]

बोल दो बृंदाबन बिहारी लाल की जय। यही लोक कीर्तन की शैली है। इस परम्परा का निर्वाह पंडवानी की निजता है।

9. **मौखिक परम्परा** - पंडवानी की गायन परम्परा का प्रारंभ मौखिक रूप, वाणी आदान-प्रदान द्वारा ही हुई। पंडवानी का कोई लिखित साहित्य नहीं है। "मौखिक परम्परा से हम अपरिचित नहीं हैं। भारतीय साहित्य का एक वृहद अंश लिपिबद्ध होने के पूर्व मौखिक परम्परा में सुरक्षित था। पुराणकालीन शिक्षा पद्धति में मौखिक शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण थी। गुरूजनों से शिष्यों से होता हुआ प्राचीन साहित्य एक अक्षुण्ण मौखिक परम्परा में सुरक्षित रहा है। लोक साहित्य तो सदैव मौखिक परम्परा का साहित्य रहा है। समाज का हृदय और समाज की वाणी ही इसका आवास है।"[71] "लोकवाङ्मय लोक मानस की सर्जना का परिणाम है और लोक साहित्य उसी का अंग एवं अभिव्यक्ति है। इसमें मानवता के विकास की उस मंजिल की संस्कृति निहित और सुरक्षित है।

जबकि अभी लेखन पद्धति का प्रार्दुभाव नहीं हुआ था।"[72]

पंडवानी की अजस्र धारा मौखिक परम्परा के माध्यम से आज तक निरन्तर प्रवाहित हो रही है। वर्तमान में श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत को आधार ग्रंथ के रूप में पंडवानी गायकों द्वारा व्यवहृत किया जाता है। किन्तु कथाएं अपने स्थानीय परिवेश और लोक विश्वासों के रूप में ढलकर मौखिक परम्परा की रक्षा करती हैं। निम्न प्रसंग पंडवानी की मौखक परम्परा का प्रमाण है -

"भारी राजा सुनेव जैतापुर में भाई
एको झन नई हे जैतापुर में भाई
एको झन मरद घलो नई हे काहय भाई
ठाढ़ राँड़ी देखेवं जैतापुर में भाई
पाँच झन बेटा माता कोतमा के भाई
पाँचों कर खटिया मरघट्टी गये भाई
ऐसा गारी देवथे धावन ह भाई
ऐती गारी देवत हे धावन ह भाई
फरकथे भुजा भीमसेन के भाई
कोन बीर कन्दमूल खावथे भाई
तेला देखथे भीमसन ल भाई
कइसे मोर भुजा फरकथे। गाँव में कोई राजा चढ़नी करे हे का ?
गरजथे भीम्मा जंगल में जब भाई
बारा योजन के चकरई होगे भीम्मा
सोला योजन के ऊँचई होगे भीमसन
थप्प-थप्प पछीना चुहन लगे देवता
कोनो रे राजा चढ़नि करे होहय रे
ओला मंग्सा कस मसक देहवं भाई
राहेर कस करपा बिछई देहवं भाई।"[73]

10. **अलंकारिता का अभाव** - पंडवानी गाँवों की सांस्कृतिक उर्वरता का प्रतिफल है। "ग्राम गीत और महाकवियों की कविता में अंतर है। ग्राम गीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्राम गीत में रस है, महाकाव्य में अलंकार। रस स्वभाविक है और अलंकार मानव निर्मित .... ग्राम गीत प्रकृति के उद्गार हैं इनमें अलंकार नहीं केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है।"[74] पंडित रामनरेश त्रिपाठी का उक्त कथन पंडवानी पर पूर्णतः प्रतिफलित होता है। चूंकि

पंडवानी सम्पूर्ण समाज की सामूहिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। किसी व्यक्ति विशेष की नहीं। अत: पंडवानी में अलंकारिकता का अभाव है, केवल रस और माधुर्य है। छंदबद्धता से नितांत परे लोक छंद का सुंदर स्वरूप निम्न उदाहरण में दृष्टव्य है -

"साड़ी पकड़ के खींचन लागे भईया
साड़ी पकड़ के खींचन लागे भईया
बीरे दुशासन जावन लागे भईया
जऊने समय में पकड़त हवय भईया"[75]
"तैं फट जाबे धरती

x x x

मैं हा ओमा समा जाहवं
मोर कलप-कलप के
माता रोवन लागे
मैं हा ओमा समा जाहवं "[76]

उपरोक्त प्रसंग में काव्य की दृष्टि से चरणों की मात्राओं में साम्यता नहीं है, अनगढ़ है। किन्तु दुशासन की दुष्टता और द्रोपती की दीनता की सहज अभिव्यक्ति है। जिसमें रस है, लय है, माधुर्य है।

11. **संगीत, लय और अभिनय का अनूठा सामंजस्य -** "लोक गाथाओं में संगीत अनिवार्य रूप से रहता है। बिना संगीत के माध्यम से लोक गाथाओं के महत्व को हम नहीं समझ सकते हैं। लोक गाथाओं में साहित्य का अभाव रहता है। उनमें सूक्ष्म भावों की अभिव्यंजना नहीं पाई जाती अतएव संगीत ही लोक गाथाओं को भावपूर्ण एवं सुमधुर बनाता है।"[77] पंडवानी में संगीत तो है इसमें नृत्य और अभिनय भी है। गायक नृत्य और आंगिक चेष्टाओं के द्वारा पात्रों के चरित्र को अभिव्यक्त करता है।गायक अपनी मुख-मुद्रा व अभिनय के द्वारा द्रोपती की दीनता,करूणा, दुर्योधन-दुशासन की दुष्टता एवं क्रूरता, शकुनि की कुटिलता तथा भीम का रौद्र रूप सबको प्रकट कर देता है। पंडवानी एक पात्रीय अभिनय कला है। जिसमें गायक पंडवानी के समस्त पात्रों को मंच पर एक साथ जीता है -

"दुख हरो द्वारकानाथ सरन मैं तेरी
बिन काज आज महाराज लाज गई मेरी
दुख हरो द्वारकानाथ सरन मैं तेरी"[78]

तो भईया जब भगवान को याद करे कहे प्रभु आके मोर जल्दी लाज बचा। कोई लाज

बचाने वाला नई हे। अइसे कहिके दुनो हाथ जोड़ के द्रोपती जब भगवान के याद करे त तुरंत भगवान गरूड़ में बइठ के द्वारका नगर से चले आवत हे।

12. **उपदेशात्मतकता और लोकरंजन** - "लोक गाथाओं का क्रमबद्ध वर्णन करना लोक गाथाकार का मुख्य कार्य होता है। वह अपनी ओर से श्रोताओं को शिक्षा या उपदेश नहीं देता बल्कि शिक्षा और उपदेश ग्रहण करने का उत्तरदायित्व श्रोता पर ही होता है।"[79] गाथा गायक अपने गायन में लोक जीवन का सांगोपांग वर्णन करता है। इस तारतम्य में लोक जीवन के गुण-दोष सहज रूप से आ जाते हैं। जो श्रोताओं के अंतर मन में गहरे पैठ जाता है। पंडवानी गायक कथा गायन के द्वारा गुण-दोषों पर प्रकाश डालता है। और दोषों को त्यागकर गुणों को ग्रहण करने अप्रत्यक्ष रूप से आग्रह करता है। पंडवानी में धर्म,नीति, भातृ प्रेम, मित्रता, सेवा, सहयोग, सहिष्णुता, वचन पालन आदि भावनाएं भरी हुई हैं। यही प्रवृति पंडवानी की उपदेशात्मकता है। कर्म की प्रेरणा, मोह पाश से निकलने का संदेश निम्न उदाहरण में दृष्टव्य है - "अर्जुन अऊ भगवान चंदा लोक पहुँच गे। ओखर पुत्र ह रक्षा करत राहय दरवाजा के। अर्जुन जाके कथे - बेटा तैं मोला छोड़के कहां आगे, मैं तोला लेगे खातिर आये हवं। सुन के अर्जुन ल कथे - ये अर्जुन बेटा कहने में लाज नहीं आती -

अरे काको पुत्र काको जग नाती, यह संसार सपन कर साथी।

अरे तैं पहली आय मैं पीछू आयेवं तेखर तोर बेटा होगेवं। तोर मरे के बाद में अवतार होही तैं काखर बेटा होबे ?

अरे कखरो बेटा त होइबे भाई
संसार में नाता सबके हे मैं तो चंद्रमा के पुत्र बुद्धवतार अवं
चन्द्रमा पुत्र बुद्ध कर नामा, सदा करवं फाटक कर कामा।"[80]

लोक गाथाओं का कथानक लंबा होता है। यदि उसमें श्रोताओं के लिए केवल उपदेश ही है मनोरंजन नहीं तो वह निरसता पैदा करता है। पंडवानी में उपदेश के साथ-साथ स्वस्थ मनोरंजन का भी खजाना है। विभिन्न प्रसंगों में रागी तत्कालीन परिस्थितियों को समकालीन परिस्थितियों से जोड़कर एक तरह से विदूषक (जोकर) का कार्य करता है। पंडवानी गायक भी हंसी मजाक का वातावरण उत्पन्न कर श्रोताओं का मनोरंजन करता है। भीम का पराक्रम, उसकी उटपुटाँग हरकतें श्रोताओं को गुदगुदाती हैं - "कीचक कथे अइसन सेवा करइया नई पाय रेहेवं। मोर सात झन नारी रिहिस फेर अइसन सेवा नई करे रिहिन सालिन्द्री। सालिन्द्री कहिके एक ठन हाथ ल नई चपके रिहिस तेन ल उठईस ममा। रब ले ओखर हाथेच धरा गे भीमसेन के नारी। जब भीमसेन

के नारी ल पकड़ीस तब भीमसेन के हाथ-गोड़ रेचड़ाहा लागिस। राजा कीचक कथे- नारी मन के हाथ पैर तो मुलायम होथे। ये सालिन्द्री ये त सालेन्द्रा ये रे।''[81]

गायक के उपरोक्त कथन से श्रोता समुदाय खिलखिलाकर हंसते-हंसते लोट-पोट हो जाता है। पंडवानी छत्तीसगढ़ की प्रधान लोक गाथा है और इसमें लोक गाथा का सारा वैशिष्ट्य समाहित है। इसकी लोक प्रियता ही इसके वैशिष्ट्य का ठोस प्रमाण है।

अन्य क्षेत्रों के पंडवानी गायन की परम्परा से तुलना -

पंडवानी महाभारत की लोक रंगीय संरचना है। जो अपनी परिवेशगत आदिम ऊर्जा के साथ जीवित है। लोक गाथा के दो स्रोत हैं - (1) सार्वदेशिक जिसे देशज भी कहा जा सकता है, और (2) आंचलिक या क्षेत्रज। महाभारत सार्वदेशिक है, जिसकी कथाएं पूरे भारत वर्ष में प्रसिद्ध हैं। पंडवानी आंचलिक है। चूंकि पंडवानी की वेदमती शाखा वेदों और पुराणों के आधार पर गाई जाती है। अत: पंडवानी सार्वदेशिक भी कही जा सकती है। किन्तु पंडवानी जिस रूप और शैली में गाई जाती है, वह अन्यत्र अनुपलब्ध है। पंडवानी की कापालिक शैली आंचलिक स्रोत का ठोस उदाहरण है। जो स्थानीय परिवेश, लोक विश्वास और लोक आस्थाओं के आधार पर प्रचलित रही है। "महाकाव्य अवस्था के पूर्व लोक गाथाओं का फैलाव दूर-दूर तक हो जाता है। इस प्रकार उसकी कथाओं में परिवर्तन और परिवर्धन होता रहता है। वह एक संतरणशील मौखिक साहित्य बन जाता है। इस क्रिया में युगों लग जाते हैं और अंततोगत्वा एक ही गाथा अनेक रूप धारण कर अंत में गाथा चक्र के रूप में निर्मित हो जाती है।"[82]

महाभारत की कथाएं भारत के विभिन्न अंचलों में वहां की लोक रीति, रहन-सहन, तीज-त्यौहारों और परम्पराओं को आत्मसात कर स्थानीय हो गईं। इस दृष्टि से विभिन्न क्षेत्रों में महाभारत की कथा पर आधारित लोक गायन की परम्परा की पंडवानी के साथ तुलना आवश्यक प्रतीत होता है। छत्तीसगढ़ के रायपुर, बिलासपुर, बस्तर और अंबिकापुर के विभिन्न क्षेत्रों के अतिरिक्त सीमांत जिलों में पंडवानी गायन की परम्परा कहीं-कहीं विद्यमान है।

छत्तीसगढ़ से लगा हुआ मध्यप्रदेश का जिला मंडला। मंडला में भी महाभारत की कथाएं गाई जाती हैं। यहां इसे पंडुवानी के नाम से जाना जाता है। यहां प्रचलित पंडुवानी को पद्म श्री शेख गुलाब ने दो भागों में संकलित कर प्रकाशित करवाया है। पंडुवानी स्थानीय प्रधान जाति के लोगों द्वारा गाई जाती है। "प्रधान गोड़ जाति की

एक शाखा है और उनकी संख्या गोंड़ की लगभग केवल चार प्रतिशत है। सतपुड़ा के प्रदेश में तथा मुख्यत: नर्मदा के कछार में उनका मुख्य निवास है। वैसे मध्य तथा उत्तरी मध्य प्रदेश तक अत्र-तत्र उनका फैलाव है। प्रधान मूलत: कवि और गायक हैं। प्रधान एक प्रकार से गोंड़ों के चारण कहे जाते हैं।" [83]

पंडुवानी में कथाएं निम्न अध्यायों में संग्रहित हैं -

कंवरा पंडवा डंडा डहोरी खेल
पानी डुबकी खेल (भीम को जहर देना)
लाखा महल (महालक्ष्मी पूजा)
जल सेन मंग (माला देवी पूजा)
अर्जुन का ब्याह
नगर बैराट में
महाधान की लड़ाई
कैलासुगढ़ (सहदेव का ब्याह)
देश बुंदेलिया (भीम पुत्र नंदुवा का ब्याह)
लोहरीगढ़ - गोबर गढ़ (भीम पुत्र लालह बरना)
गहना के राज लालह बरना का ब्याह
कलदेव देव

महाभारत व पंडवानी में कौरव भाइयों की संख्या सौ है, किन्तु पंडुवानी में कौरवों को 21 भाई बताया गया है।

"जैता नगरी में पांच पुतुर पंडवा
और हसनानगरी में इक्कीस भाई कंवरा है रे भईया.....
जिनके आठ लाख गोरू नौ लाख छेरी
ऐरावत हाथी चले जाथे कजरी बन मोरे हीरा ....
पाछे ले जाथे रे इक्कीस भाई कंवरा मोर मालिक ....
हो... अर्जुन चले हावय लठिया धर के हो ....
हाय ... कैसे जाथे गोरू चराय ल हो ......
जाई के खिरका समुंद किनारे म पहुँच गेसी भैया
आठ लाख गोरू नौ लाख छेरी कछरा म
बिगर के चरै लगिन मोरे हीरा
बरा के बिरछा तरी कैसे कंवरा खेलथे हो ....

हाय... कैसे अर्जुन दुरहा ले देखथे हो ....
सब झन बुलाथे मिलके कंवरा
कहे सुनी लेव अर्जुन रे पंडवा ....
आजा रे भैया डंडा डहोरी खेलबो रे बाबू .... ।" [84]

इस प्रसंग में महाभारत में किसी खेल विशेष का उल्लेख नहीं मिलता। जबकि पंडवानी में डंडा पचरंगा व पंडुवानी में डंडा डहोरी खेल का जिक्र हुआ है। डंडा-पचरंगा व डंडा डहोरी एक ही खेल का भिन्न-भिन्न नाम है, जो स्थानीयता के कारण अलग-अलग जान पड़ता है। खेल की दृष्टि से इस प्रसंग में पंडवानी व पंडुवानी में साम्य है। पंडुवानी में लाखा महल का प्रसंग निम्नानुसार है -

"अब बताबे कैसे करे हवय कंवरा चतुराई मौरे भैया ....
बिना पानी के रूचि-रूचि लाखा महल बनाया है र दादा ....
लाख के थूनी, लाख के थामा लाखै के मलगा लगाए हवें भाई .....
हो ... कैसे रूचि-रूचि के महल बनाये रहे है हो ......
हाय... आ गै है, महालक्ष्मी तेवहार हो ......
अस्सी खम्ब के महल बन गै रे भैया ......
अब लिख-लिख चिट्ठी भेजैं थे पंडवन को रे भाई
हो का बोल थे कंवरा
चले आओ रे भईया पांचो पंडवा
माता कोतमा द्रोपती माता।" [85]

महाभारत में भीम का पुत्र जो हिडम्बी से पैदा हुआ उसका नाम घटोत्कच है। यही नाम पंडवानी की वेदमती शैली में भी मिलता है। किन्तु पंडवानी की कापालिक शैली में भीम के पुत्र का नाम नंदुवा, नंद झरोखा बताया जाता है। यही नाम पंडुवानी में भी मिलता है। प्रसंग लोहरीगढ़- गोबरगढ़ का है -

"नंदुवा कहथैं तैं हार गे रे नौवा
लाव ओं बाई मोर चुरिया उतार रे
नोनिया की चुरिया उतार ले हैं हो .....
सब दूरिन के हँसना परगे है हो .....
अब नंदुवा रे भैया
लालह बरन के संग मा
चूरी की झांपी घरे

गली-गली घूमत

चलै हवैं तपेसुर के महल म हो ...... ।"[86]

जिस तरह पंडवानी कौरव-पांडव की कथा होकर भी महाभारत की मूल कथा से भिन्न है, ठीक उसी प्रकार पंडुवानी भी महाभारत से भिन्न है। पंडवानी व पंडुवानी में कुछ भिन्नातओं के बाद भी समानता का दृष्टि गोचर होना इनकी स्थानीयता व महाभारत के आंचलिक लोक रूप का प्रभाव ही है।

"बेटा का मुजरामल, बेटी का ना तिल जोगन हो

सोने के महला हो, सोने के हवै सतखंडा

सोने के कलसा चमक रहे हो ...... ।"[87]

यह लोक की ही उदारता है जो आर्थिक दृष्टि से विपन्न गरीब की झोपड़ी को भी सोने का महल कहकर महिमा मंडित करता है।

"निमाड़ी लोक जीवन में अश्वत्थामा -पलायन की कहानी निमाड़ जिले के प्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग असीरगढ़ से संबंधित है। अश्वत्थामा द्रोपती के पांचों पुत्रो को मारकर भयभीत हो गया और विंध्याचल के घने वन और नर्मदा को पार कर असीरगढ़ के जंगल में आया और इस स्थान में अपने आपको सुरक्षित समझ वहीं रह गया। वहाँ एक किला बनवाया और उस किले में एक शिव मंदिर बनवाकर शिवजी की उपासना में लग गया।...... द्रोपती के शाप से वह कुष्ठ रोगी बन गया था। वह कभी -कभी वेश बदलकर समीप के गाँवो से तेल माँग लाता और उसे अपने शरीर के घावों पर लगाता। वह अपने घाव जिन वृक्षों के पत्तों से पोंछता है वे वचन नाग के वृक्ष हैं।"[88] यह लोक विश्वास है। किन्तु पंडवानी की तरह महाभारत की कथा गायन की "निमाड़ में ऐसी कोई परम्परा नही हैं।"[89] "जहां तक विभिन्न अंचलों में पंडवानी या महाभारत गाने का सवाल है, कई अंचलों में लोक गीतों और गाथा के रूप में महाभारत गाई जाती है। निमाड़ में दोहा चौपाई में महाभारत की कथाएं गाई जाती है। आदिवासियों में प्रधान जनजाति मुख्यतः पंडवानी, रामायणी और गोंडवानी गायन करने वाली जनजाति है। "[90] ये स्पष्ट है कि छत्तीसगढ़ी पंडवानी की तरह स्वतंत्र रूप से महाभारत की कथा निमाड़ में नहीं गाई जाती बल्कि "लोक गीतों में लगभग सभी अंचलों में महाभारत के छीटपुट कथा के रूप में गीत -भजन गाये जाते हैं। जिसमें द्रोपती, कृष्ण, अर्जुन, भीम, कुन्ती आदि का संक्षिप्त उल्लेख होता है।"[91] "बुंदेल खंड में 'बेरायटा' के नाम से महाभारत की कथा गायी जाती है।"[92]

"महाभारत की कथाओं का लोक धर्मी स्वरूप बुंदेली में भिन्न-भिन्न प्रकार

का है। यहां की गायन परम्परा के अंतर्गत गारी, फाग, लावनी, ख्याल भगत जैसी विधाएं आज भी चर्चित है। अधिकांश कथा गायकी फड़ साहित्य की विधा के तहत ही है। जिसमें फागें और ख्याल अधिक चलते हैं। हाँ कथा के प्रसंगों से संबंधित फुटकर लोक गीत ही यहाँ चलते हैं। सम्पूर्ण महाभारत की कथा पंडवानी के समान या "गोंड़वानी के सम्मान नहीं रहती।"[93] "इस क्षेत्र में महाभारत की कथाओं पर लोक भाषा में गायन की परम्परा नहीं है। सिर्फ होली के गीत 'फाग' जरूर कुछ महाभारत की कथाओं से संबंधित गाई जाती है।जिसका एक उदाहरण यों है -

आरिये .... गदा से टोरी टांग
दुर्योधन की ।
भीमसेन बलवान गदा से टोरी टांग
दुर्योधन की।"[94]

"बुंदेल खंड क्षेत्र में महाभारत की कथा पर आधारित लोक भाषा में कथा गायन की परम्परा पूर्व में थी, पर अब प्राय: लुप्त हो गई है। अब फुटकर लोक गीतों में उसके प्रसंग मिलते हैं।"[95] "मालवा और राजस्थान में होड़ गाया जाता है यह गोप जीवन के सजीव चित्रों से भरी-पूरी ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकट करने वाली गाथा है। इसी के अंतर्गत एकादशी, बाला बाऊ, काजलराणी पंडवकथा (पांडवकथा) रूखमणी हरण आदि मालवी के प्रबंध उल्लेखनीय हैं।"[96]

"आज भी उत्तरभारत के अनेक कबीले अपने को पांडव अथवा कौरव से जोड़ते व अपनी तरह की कथा कहते और उसे अभिनित करते हैं। गढ़वाल में पांडवों की कथा अत्यंत लोक प्रिय है। उसको पंडववर्ती कहते हैं। जिसका आशय पांडव वार्ता से है। पांडव वार्ता बहुत कुछ महाभारत के अनुसार ही चलती है, किन्तु उसके कुछ प्रसंग मौलिक भी हैं। कुन्ती का स्नान,पांडु के श्राद्ध के लिए गैंडे की खोज, अर्जुन और वासुदत्ता का प्रणय प्रसंग बहुत मार्मिक है। पस्वा (वाहन) पर देवता सवार होता है, कथा अनुसार गीत गायन के साथ पस्वा का अभिनय केन्द्रित रहता है। पांडव नृत्यों में अभिनय का रूप और भी स्पष्ट होता है। धनुष बाण के साथ समस्त नृत्य से वीर भाव की अभिव्यक्ति की जाती है। नृत्य के कुछ प्रसंग तो पूर्ण नाटकीय होते हैं। गैंडे के शिकार में बड़े कलात्मक अभिनय की आवश्यकता होती है। कद्दू पर लकड़ी की चार टांगे लगाकर उसे गैंडे मानकर बीच में रख दिया जाता है। फिर आखेट का सुंदर नृत्यमय अभिनय करते हुए उसे मारते हैं।"[97]

गढ़वाल में लोक गाथा के मुख्यत: तीन भेद पाये जाते हैं। स्थानीय शब्दों में

इन्हें जागर वार्ता,पवाड़ा और चैती कहा जाता है। जागरवार्ता धार्मिक लोक कथाएं है। पवाड़ा वीर गाथा और चैती प्रेम गाथा! ''जागर गीतों में देवताओं का जीवन और व्यक्तित्व व्यक्त होता है। प्रत्येक देवता का जीवन घटनामय होता है। इस लिए जागर कथात्मक होने को बाध्य है। देवता नाचता जाता है और पुरोहित या औजी उसकी लीला को गाता जाता है। गढ़वाल में कृष्ण और पांडव के जागर विशेष प्रसिद्ध है। पांडव के संबंध में जो गाथाएं रवांई जौनपुर में मिलती है। उनके स्रोत महाभारत में भी नहीं मिलते।'' [१४]

गढ़वाल में कृष्ण की भांति पांडव भी नचाये जाते हैं। किसी न किसी रूप में वे यहां से संबंधित रहे हैं। उनके संबंध में गढ़वाल की कुछ अपनी गाथाएं भी है। जिनका महाभारत में कोई संकेत नहीं मिलता।वे गढ़वाली जनमानस की अपनी कृतियाँ है और उनमें स्थानीय रंग बड़ा स्पष्ट है -

''परगट ह्वै जान, परगट ह्वै जान
परगट ह्वै जान, पाँच भाई पंडऊँ
परगट ह्वै जान कोन्ती माता
परगट जान ह्वै राणी द्रोपता!
कोन्ती माता होली की पंडो की माता
नंगो कू बस्तर देंदी भूकों को अन्न!
नंगो देखीक वस्त्र नी लांदी
भूकों देखीक खाणू नी खांदी
कुन्ती माता होली धर्म्याली माता
बार बरस तैं करदी मेरे दुर्बासा की सेवा
तब रिसी दुर्बासा प्रसन्न ह्वै न
कोन्ती माता तैं पुत्र बरदान दीने
तेरा पाँच पुत्र होला छेतरी माल
काटीक नी काटेन मारीक नी मारेन।
तब पांच मंत्र रिसिन दीन्या
रण लैगे कोन्ती तग मैत घर
एक दिन धर्म्याली तीर्थ नन्हेन्दी
सूरज तैं वा पाणी चढ़ौदी।
मंत्र जाप करे तब बीन

प्रभु की लीला छई कर्ण पैदा ह्वै
बार बरस पढ़े मातानधर्म मंत्र
धर्म मंत्र पढ़ीक ह्वै धर्मराज
बार वर्ष पढ़े मातान वायु मंत्र
पैदा ह्वै तब बली भीमसण
बारह वर्ष करे मातान इन्द्र को जाप
पैदा ह्वै हाँ जी अर्जुन धनुधारी।
तब बार वर्ष मातान पढ़े पांडु मंत्र
त पैदा ह्वै नकुल कुँवर
बार वर्ष पढ़े मातान ब्रम्ह मंत्र
पढ़ीक कनो ह्वै सहदेव ब्रम्ह।" [99]

उपरोक्त उदाहरण में माता कुन्ती के छः पुत्रों कर्ण,धर्मराज,भीम,अर्जुन और नकु ल-सहदेव के ज्नम की कथा है। एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें अर्जुन और नागकन्या वासुदन्ता की प्रेम कथा का चित्रण है -

"द्रोपती अर्जुन सेया छाया
रातुड़ी होए थोड़ा स्वीणा एन भौत
सुपीना म देखद अर्जुन
बाली वासुदन्ता नागु की धियाण।
मन ह्वैग मोहित, चिन्त ह्वैग चंचल
वीं की ज्वानी मा कनो उलार छौ
वीं की आंखो म माया को रैबार छौ।
समलीक मुखड़ी वीं की अर्जुन सोंचवा लैगे -
कसु कैक जौलु नाग लोक मा
तैं नाग लोक मा नाग होला डसीना
मुखड़ी का हसीला होला, पेट का गसीला।
मंद पेरो हाथी होला, सिंगू वाला खाडू
मर कबाल्या भैसा होला मैं मार्न औला।
लोहा की साबली होली लाल बणाई
चमकदी तरवारी होली ऊँकी पल्याई
नागू की चौड़ी बाड़ होली पैहरा।

कसु कैक जौलू मैं तैं नाग लोक मा
कमर कर दो अर्जुन तब उसकारा भर दो
मैंन मरण-बचण नाग लोक जाण।
रात को बगत छयो, दुरपदा सेयीं छयी
बैन कुछ बोल न चाल्यो, चल दिने नागलोके
मन्द पेंदा हाती वैन चौखालू चीरेन
लुवा की साबली नंगून तोड़ीन
तब मैं अर्जुन वसुदंता के पास
तब देखी वासुदंता हाम से हाम
धाम से धाम पूनो जसो चाम
नौणी वालो नामो जीरो वाली पींड
सुवर्ण तरूणी देई, चंदन की लता
पाई पतन्याली, आंखी रतन्याली
हीरा की सी जोत, जोन सी उदोत
तब मैं अर्जुन सोना रूप वर्णा
वासुदन्तान वो उठीक बैठाये अर्जुन
वीं को मन मोहित होई गए - ।''[100]

छत्तीसगढ़ से लगा हुआ राज्य बिहार अपनी समृद्ध लोक साहित्य के लिए सुविख्यात रहा है। किन्तु अंचल में महाभारत की कथाओं का पंडवानी की तरह गायन परम्परा नहीं है। ''पंडवानी हमारे यहां प्रचलित नहीं है। महाभारत की कथा पर न तो कोई कथा,गीत और न कोई गाथा इस क्षेत्र में पाई जाती है।''[101] इसी तरह के विचार श्री कर्मेन्दु शिशिर के हैं ''इसमें दो मत नहीं कि पूरे देश में महाभारत लोक गीतों का उपजीव्य ग्रंथ रहा है। मैंने सिर्फ भोजपुरी होली गीतों का संकलन किया था। उसमें ऐसे गीत नहीं है कृष्ण को लेकर काफी गीत हैं मगर महाभारत से जुड़े प्रसंग नही हैं।''[102] ''मैं छोटा नागपुर क्षेत्र में प्राय: 37 वर्षो से रह रहा हूँ। वहां पंडवानी का प्रचलन नहीं है। हालांकि छोटा नागपुर और छत्तीसगढ़ के कई लोक गीत रूप एक हैं। किन्तु यहां महाभारत और कभी - कभी रामायण के कथा और प्रसंगों के अभिनय से संबंधित 'छउ 'नामक नृत्य नाट्य रूप प्रचलित है। जो दिनानुदिन लोकप्रिय होता जा रहा है और जिसके प्रदर्शन पंडवानी की तरह ही दुनिया के कई देशों में हुए हैं।''[103]

छऊ एक नृत्य नाट्य है। इसमें मुखौटा लगाकर नर्तकों का दल कथा प्रसंग के

अनुसार नृत्य और अभिनय करता है। वे संवाद नहीं बोलते और न ही गीत गाते हैं। गीत गाने का कार्य गायक/गायिकाएं करती हैं। निष्कर्षत: यह बात सामने आती है कि 'छऊ' में महाभारत के प्रसंग होते है। लेकिन यह पंडवानी गायन की परम्परा से सर्वथा भिन्न एक नृत्य नाटिका है। "किन्तु पूरे प्रसंग की प्रमुख बात यह है कि छऊ के सबसे लोक प्रिय आधार प्रसंग महाभारत से लिए गए हैं।"[104] "बिहार में महाभारत गायन व सार्वजनिक पाठन की कोई परम्परा नहीं है। इस संबंध में एक पारम्परिक धारणा है कि अगर कोई महाभारत शुद्ध रूप में पाठ करता है तो उसके घर में विवाद व कलह उत्पन्न हो जायेगा।" [105]

महाभारत के शुद्ध पाठ से पाठकर्ता के परिवार में विवाद व कलह हो जायेगा। यह लोक मान्यता जिसे हम अंधविश्वास भी कह सकते हैं। इस तरह की लोक मान्यता छत्तीसगढ़ में भी प्रचलित है और कुछ लोग आज भी ऐसा मानते हैं कि हनुमान चालीसा के नित्य पाठ में अशुद्ध उच्चारण होने पर पाठकर्ता विक्षिप्त हो जाता है। परंतु इसमें सच्चाई कहां तक है ? कहा नहीं जा सकता। पंडवानी गायन का प्रचलन कम था तब वर्ग विशेष के लोगों द्वारा यह भ्रामक प्रचार किया जाता था कि जिस गांव में महाभारत (पंडवानी) की कथा होगी, उस गांव में विवाद होगा। इसलिए लोग महाभारत के आयोजन से बचते थे। पंडवानी (महाभारत) के आयोजनों के कारण शायद कथावाचकों (पंडितों) का कथावाचन प्रभावित होने लगा। उन्हें आर्थिक नुकसान होने लगा। इसलिए इस तरह का भ्रामक प्रचार किया गया, जिसे लोक मानस ने स्वीकारा नहीं। फलस्वरूप पंडवानी गायन की परम्परा दिनों - दिन बढ़ती गई। महाभारत वीरगाथा हैं। जिसमें शौर्य, पराक्रम, युद्ध, ईर्ष्या का भरपूर चित्रण है। संभव है इस कारण यदि कभी कहीं कोई अप्रिय घटना घट गई हो तो एकाध अपवाद को छोड़कर ऐसा कुछ नहीं है कि महाभारत पढ़ने या गाने से विवाद उत्पन्न हो जाता है।

श्री पूरन वर्मा आगे लिखते हैं कि 'छोटा नागपुर' बिहार का पठारी भाग है। यहां वन क्षेत्र में रहने वाले आदिवासियों की एक अपनी सांस्कृतिक पहचान है छउ नृत्य। देश- विदेशों में इस नृत्य ने प्रतिष्ठा प्राप्त की है। श्री नेपाल महतो को 'छऊ नृत्य' के लिए पद्म श्री से सम्मानित किया है। यहां भी महाभारत शुद्ध रूप में सामूहिक पाठन व गायन की कोई परम्परा नहीं है।

पश्चिम-बंगाल-महाभारत का सामूहिक गायन एवं पाठन की कोई परम्परा यहां भी नहीं है। लोग तो चैतन्य महाप्रभू के भजनों का गायन करते है।टाटा नगर में 1920 से छत्तीसगढ़ से लोग अपने जीवन यापन के लिए यहां पहुँचे। वे अपने साथ

अपने सांस्कृतिक पर्वों, त्योहारों को उसी रूप में मनाते आ रहे है जैसे कि छत्तीसगढ़ में। "उन दिनों छत्तीसगढ़ से महाभारत, भागवत पाठ, पंडवानी, नाच पार्टी दल आते थे। लोगों में बड़ी इच्छा होती थी इनका आयोजन करें और उनका आनंद उठायें।"[106]

छत्तीसगढ़ से लोग जीवकोपार्जन के लिए टाटानगर गए उन्होंने उपने साथ अपनी संस्कृति को ले जाकर सांस्कृतिक विरासत की रक्षा की। इस कारण छत्तीसगढ़ की लोक कला वहां स्थापित हुई। आज भी छत्तीसगढ़ से लोक कलाकारों का लोक सांस्कृतिक मंडल पंडवानी, नाचा, पंथी आदि कलारूपों का वहां जाकर प्रदर्शन करता है। छत्तीसगढ़ियों के कारण ही पंडवानी व अन्य लोक कलाओं ने वहां प्रतिष्ठा प्राप्त की है। इसी प्रकार महाराष्ट्र के नागपुर, चांदा (चन्द्रपुर) राजस्थान में जयपुर, गुजरात में सूरत, उत्तरप्रदेश में लखनऊ, कानपुर, आसाम के चाय बागानों व आंध्रप्रदेश के कुछ क्षेत्रों में जहां छत्तीसगढ़ के श्रमिक जीवकोपार्जन के लिए गए हुए हैं जिनकी संख्या हजारों में है, वहां भी छत्तीसगढ़ी पंडवानी की स्वर लहरी का माधुर्य हृदय को संतृप्त करती है। "मेरी जानकारी में पंडवानी गायन की यहां कोई परम्परा नहीं है। छत्तीसगढ़ से आए कलाकारों की पंडवानी लोग कल भी सुनते थे , और आज भी सुनते है, उन दिनों पंडवानी बहुचर्चित नहीं थी। फिर भी लोग गाते और सुनते रहे हैं। उसी पंडवानी से गायन की प्रेरणा लेकर एक दो व्यक्ति यहां भी उन दिनों गायन करते थे। जिनकी इच्छा होती अपने घर के सामने बैठा लेते थे।"[107]

उपरोक्त तथ्यों से यह बात स्पष्ट होती है कि विभिन्न क्षेत्रों में महाभारत की कथाएं भिन्न-भिन्न रूपों में गाई जाती है। कहीं गीत रूप में तो कहीं नृत्य नाटिका के रूप में। महाभारत की कथाएं सम्पूर्ण भारत में स्थानीय लोक रंगीय रूप से आवृत्त हैं। किन्तु कहीं भी छत्तीसगढ़ की पंडवानी की तरह उसकी कथाओं के स्वतंत्र गायन की परम्परा नहीं मिलती। पंडवानी अपने स्वरूप में छत्तीसगढ़ में ही नहीं, बल्कि देश से बाहर विदेशों में भी प्रतिष्ठित हुई है। यह पंडवानी के स्वतंत्र अस्तित्व और उसकी लोक प्रियता का प्रमाण है।

संदर्भ :-

1. लोक साहित्य डॉ. विद्या चौहान : पृष्ठ : 21
2. ओल्ड बैलेड्स - फ्रैंक सिजविक : पृष्ठ 3
3. द इंग्लिस बैलेड्स - डॉ. मरे : पृष्ठ : 8
4. महाभारत और छत्तीसगढ़ी पंडवानी का तुलनात्मक

अध्ययन: डॉ. बलदाऊ प्रससाद निर्मलकर पृष्ठ :132
5. छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन : दयाशंकर शुक्ल : पृष्ठ : 236
6. दी बैलेड : फ्रैंक सिजविक : पृष्ठ : 39
7. ग्राम गीत : पंडित रामनरेश त्रिपाठी : पृष्ठ : 21
8. इं. एंड स्का. पा. बै. : एफ. जे. चाइल्ड : भूमिका : पृष्ठ : 18
9. ....वही............पृष्ठ :23
10. भोजपुरी लोकगाथा : डॉ. सत्यव्रत सिन्हा : पृष्ठ : 31
11. .... वही............ पृष्ठ :23
12. इंग्लिश एंड स्काटिश पापुलर बैलेड्स : चाइल्ड : पृष्ठ : 31
13. भोजपुरी लोक गाथा : डॉ. सत्यव्रत सिन्हा : पृष्ठ : 33
14. .... वही............ पृष्ठ :35
15. .... वही.............पृष्ठ :36
16. दि बैलेड -फ्रैंक सिजविक : पृष्ठ :11
17. भोजपुरी लोक गाथा -डॉ.सत्यव्रत सिन्हा :पृष्ठ :38
18. ....वही .... पृष्ठ :39
19. भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन :डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय : पृष्ठ :499
20. द पापुलर बैलेडस : पृष्ठ : 135
21. साहित्य रूप :डॉ. रामअवध द्विवेदी : पृष्ठ :257
22. छत्तीसगढ़ी लोक गाथा एक अध्ययन : डॉ.विजय कुमार सिन्हा : पृष्ठ: 46
23. महाभारत और छत्तीसगढ़ी लोक गाथा पंडवानी का तुलनात्मक अध्ययन : डॉ बलदाऊ प्रसाद निर्मलकर :पृष्ठ :143
24. महाभारत आदि पर्व :नम्र निवेदन :पृष्ठ :3
25. महाभारत और छत्तीसगढ़ी लोकगाथा पंडवानी का तुलनात्मक अध्ययन : डॉ. बलदाऊ प्रसाद निर्मलकर पृष्ठ :277
26. पंडवानी प्रसंग :88: राजीव सक्सेना :चौमासा : अंक :17 पृष्ठ :100
27. झाड़ूराम देवांगन और उनकी पंडवानी गायकी बाबूलाल शुक्ल : चौमासा : अंक :4 पृष्ठ: 29
28. व्यंजना - दुर्गा महाविद्यालय रायपुर
29. छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक धरोहर है पंडवानी : नंदकिशोर तिवारी : पंडवानी मेला स्मारिका : पृष्ठ : 20 : 26 अक्टूबर 1991
30. चंदैनी - गोंदा छत्तीसगढ़ की खोज यात्रा : डॉ. एम. एल. साहू : चंदैना - गोंदा :

पृष्ठ : 17

31. पंडवानी : नवल किशोर शुक्ल : चौमासा : अंक : 11 पृष्ठ : 15

32. .... वही.......'' ....''........''....... : पृष्ठ :15

33. पंडवानी : नवल किशोर शुक्ल : चौमासा अंक : 11 : पृष्ठ :20 :21

34. श्री झाडूराम देवांगन से साक्षात्कार :दिनाँक 27.10. 91 ग्राम खोरसी जि.रायपुर

35. पंडवानी गायिका तीजन बाई से एक भेंटवाता : पवन कुमार सिंह : सबेरा -संकेत दिनांक 29. 8. 91

36. झाडूराम देवांगन एवं उनकी पंडवानी गायकी : श्री बाबूलाल शुक्ल :चौमासा :4 : पृष्ठ: 31

37. पंडवानी :नंदकिशोर तिवारी :चौमासा :अंक :4 पृष्ठ :41

38. पंडवानी प्रसंग :राजेन्द्र शर्मा :चौमासा :अंक :4 पृष्ठ 51

39. पंडवानी प्रसंग :88: संजीव सक्सेना

40. अनेक कलाओ का संगम है पंडवानी : पुनूराम साहू राज :नवभारत :21 अप्रैल 1991

41. पंडवानी गायिका तीजन बाई से एक भेंट वार्ता :पवन कुमार सिंह : सबेरा -संकेत : 29 सि. 91

42. निजी संग्रह से

43. ....वही ....

44. पंडवानी :नंद किशोर तिवारी , चौमासा अंक :4 पृष्ठ : 35

45. छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन :दया शंकर शुक्ल :पृष्ठ : 240

46. पंडवानी : झाडूराम देवांगन : नंदकिशोर तिवारी

47. निजी संग्रह से

48. ....वही ....

49. ....वही ....

50. पंडवानी - नंदकिशोर तिवारी : चौमासा : अंक 4 : पृष्ठ : 33

51. निजी संग्रह से

52. ....वही ....

53. ....वही ....

54. ....वही ....

55. ....वही ....

56. भोजपुरी लोक गाथा : डॉ. सत्यव्रत सिन्हा : पृष्ठ : 18

57. निजी संग्रह से

58. भोजपुरी लोक गाथा : डॉ. सत्यव्रत सिन्हा : पृष्ठ : 30
59. छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन : दयाशंकर शुक्ल : पृष्ठ : 265
60. निजी संग्रह से
61. महाभारत : सबल सिंह चौहान : पृष्ठ : 24
62. लोक साहित्य सिद्धांत और प्रयोग : डॉ. श्री राम शर्मा : पृष्ठ : 85
63. निजी संग्रह से
64. ....वही ....
65. ....वही ....
66. ....वही ....
67. आयाम : डॉ. केशरी नारायण शुक्ल : सापेक्ष : लोक संस्कृति अंक : पृष्ठ : 172
68. निजी संग्रह से
69. ....वही ....
70. ....वही ....
71. भोजपुरी लोक गाथा - डॉ. सत्यव्रत सिन्हा : पृष्ठ : 31
72. आयाम : डॉ. केशरी नारायण शुक्ल : सापेक्ष : लोक संस्कृति अंक : पृष्ठ : 172
73. निजी संग्रह से
74. ग्राम गीत : पंडित राम नरेश त्रिपाठी : पृष्ठ : 9
75. निजी संग्रह से
76. ....वही ....
77. भोजपुरी लोक गाथा - डॉ. सत्यव्रत सिन्हा: पृष्ठ : 28-29
78. निजी संग्रह से
79. भोजपुरी लोक गाथा - डॉ. सत्यव्रत सिंहा: पृष्ठ : 33
80. निजी संग्रह से
81. ....वही ....
82. भोजपुरी लोक गाथा - डॉ. सत्यव्रत सिन्हा: पृष्ठ : 20
83. पंडवानी : संग्रहकर्ता : श्री शेख गुलाब : भूमिका से
84. पंडवानी भाग - 1, संग्रहकर्ता श्री शेख गुलाब पृष्ठ: 66
85. ....वही..........................पृष्ठ :106
86. ....भाग-2....................... पृष्ठ :78
87. ....वही..........................पृष्ठ :38
88. निमाड़ी और उसका लोक साहित्य : डॉ. कृष्णपाल हंस पृष्ठ : 351

89. श्री नारायण उपाध्याय का पत्र परिशिष्ट में संकलित
90. श्री बसंत निरगुणे भोपाल का पत्र
91. ....वही ....
92. ....वही ....
93. श्री गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त जबलपुर का पत्र
94. श्री देवी शरण ग्रामीण बाबूपुर (नागौद) सतना का पत्र
95. डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त बरसैंया छत्तरपुर का पत्र
96. मालवी लोक साहित्य : डॉ. श्याम परमार
97. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास : पृष्ठ : 618
98. गढ़वाली लोक कथाएं : गोविन्द चातक पृष्ठ : 237
99. ....वही................. पृष्ठ 71-72
100. ....वही................. पृष्ठ 75-76
101. श्री गणेश चौबे ग्रा. पो. बंगरी (बिहार) का पत्र
102. श्री कर्मेन्द्रु शिशिर पटना (बिहार) का पत्र
103. डॉ. दिनेश्वर प्रसाद रांची (बिहार) का पत्र
104. ....वही.................
105. श्री पूरन वर्मा टाटा नगर (बिहार) जमशेदपुर का पत्र
106. ....वही.................
107. ....वही.................

अध्याय - 2

❑ महाभारत के प्रख्यात कथानक से समानताएं और विभिन्नताएं - वस्तु तत्व और पात्र



पंडवानी गायिका श्रीमती मीना साहू

महाभारत के प्रख्यात कथानक से समानताएं और विभिन्नताएं - वस्तु तत्व और पात्र

पंडवानी अलिखित और मौखिक परम्परा पर आधारित छत्तीसगढ का कला रूप है, जो अपनी गायन पद्धति के कारण अन्य लोक गाथाओं से सर्वथा भिन्न है। विषय वस्तु और पात्र महर्षि वेद व्यास के महाभारत से संबंधित होकर भी आंचलिकता और स्थानीयता के कारण अपनी अलग पहचान बनाते हैं।

पंडवानी का आधार श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत है, जो स्वंय वेदव्यास रचित महाभारत का हिन्दी अनुवादी रूप है। जैसा कि पूर्व में ही इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि पंडवानी की दो गायन शैलियां (1) कापालिक और (2) वेदमती प्रचलित है। पहले पंडवानी गायक अलिखित परंपरा के अनुरूप कापालिक कथाओं का गायन करते थे। शिक्षा के विस्तार के साथ- साथ उन्होने वेदमती शैली को प्रमुखता दी और अब अधिकांशत: पंडवानी गायक इसी शैली का निर्वहन कर रहे हैं। पंडवानी गायक ग्रामीण और श्रमिक वर्ग के होते हैं। भगवद् -भजन और श्रम -परिहार की दृष्टि से प्रारंभ हुई यह गायन परम्परा आज व्यवसायिक हो चुकी है। इन स्थितियों में मूल महाभारत के कथानक और चरित्र के प्रस्तुतीकरण में अतंर आना स्वाभाविक है। प्रस्तुत अध्याय में महाभारत के मूल कथानक और पंडवानी के कथानक की समानताओं और विभिन्नताओं पर प्रकाश डाला गया है। पंडवानी महाभारत की कथा होकर भी उसका लोक रूप है।

महाभारत में अठारह पर्व हैं और इन पर्वो में अनेक उपपर्व। महाभारत की कथा आदि पर्व से प्रारंभ होती है। इसकी कथा जन्मेजय के सर्प सत्र में जन्मेजय के भाईयों द्वारा मारे गए कुत्ते की माता सरमा से शुरू होती है। तदन्तर धौम्य के तीन शिष्य अरूण, उपमन्यु और वेद की कथाएं हैं। अपने गुरू की आज्ञानुसार अरूण खेत पर पानी रोकने के लिए जाता है और जब वह रूकता नहीं तब उस जगह पर स्वंय लेट जाता है। उपमन्यु भी गायों को चराता है, पर जब गुरू के द्वारा आश्रम की हर चीज को खाने से निषिद्ध कर दिया जाता है। तब आक के पत्ते खा वह अंधा होकर एक कुएं में गिर जाता है। तब अश्विनी कुमार उसे दृष्टिदान देते हैं।

वेद का शिष्य उत्तंक अपनी गुरूभार्या के लिए राजा पौष्य से उसकी स्त्री से

कंगन मांगने जाता हैं। लाते समय वह कंगन सर्पराज तक्षक द्वारा चुरा लिया जाता है। तक्षक के इस कार्य से असंतुष्ट होकर उत्तक सर्पनाश करने के अभिप्राय से जन्मेजय के पास जाकर उसे सर्प यज्ञ की प्रेरणा देता है।

भृगु पत्नी पुलोमा का राक्षस के द्वारा अपहरण, भृगु का अग्नि को शाप, विश्वासु गंधर्व के द्वारा मेनका से उत्पन्न प्रमद्वराका राजा प्रभति के द्वारा घृताची से उत्पन्न रूरूका विवाह, प्रमद्वराका सांप से काटे जाकर मर जाना, रूरूका विलाप एवं अपनी आधी आयु देकर उसे जीवित करना, रूरूका के द्वारा सर्पनाश की प्रतिज्ञा व डुण्डुम की कथा। फिर जत्कारू का गर्त में अधोमुख अपने पितरों को देखना, उनके उद्धार के लिए वासुकी की बहन जरूत्कारू से विवाह करना, उससे आस्तिक नामक पुत्र होना फिर क्रुद्ध होकर अपनी पत्नी को छोड़ जाना। विनता और कद्रु की कथा, सर्पो एवं गरूड़ की उत्पत्ति, समुद्र - मंथन की कथा। गरूड़ का स्वर्ग से अमृत लाना, जन्मेजय का सर्प यज्ञ और आस्तिक के द्वारा सर्पयज्ञ को रोक कर वासुकी एवं तक्षक की रक्षा का वर्णन है।''[1]

पंडवानी लोक रंजन का साधन है और इसका आयोजन सामूहिक या व्यक्तिगत रूप से किया जाता है। यह आयोजन एक दिन से लेकर अट्ठारह दिनों तक होता है। कथा प्रसंगों की गति, विस्तार कथा गायक पर निर्भर करता है। इस संबंध में प्रसिद्ध पण्डवानी गायिका तीजन बाई कहती हैं-

''ये तो मेरे ऊपर निर्भर करता है। मैं चाहूँ तो यह 15 मिनट में खत्म कर दूँ या तीस मिनट में, चाहूँ तो चालीस मिनट तक खीच दूँ या एक घंटे तक।''[2] पंडवानी का आयोजन गणेशोत्सव, दुर्गोत्सव, तीज-त्यौहार, मेला -मंड़ई, छट्ठी (संतानोत्पत्ति पर मनाया जाने वाला आनंदोत्सव) विवाह-प्रसंगो या सामाजिक अवसरों पर किया जाता है। इन आयोजनों में सम्पूर्ण महाभारत का गायन पंडवानी गायक द्वारा संभव नही है। क्योंकि कथागायन एक दिन में 3 घंटे से लेकर 5 घंटे तक होता है। इन परिस्थितियों में गायक श्रोताओं की इच्छानुरूप उनकी राय जानकर कथा का गायन प्रारंभ करता है। महाभारत में कथा का जो आदि विस्तार है वह पंडवानी में नहीं है। जिसका मुख्य कारण पंडवानी की मौखिक परम्परा है।

''महाभारत में पुरूवंश का वर्णन विस्तृत है। दुष्यंत की भार्या शकुंतला से भरत की उत्पत्ति, भरत की पत्नी सुनंदा से भुमन्यु, भुमन्यु की विजया से सुहोत्र और सुहोत्र की सुवर्णा से हस्ती का जन्म हुआ। उन्होने हस्तीनापुर बसाया। हस्ति की पत्नी यशोधरा से विकुण्ठन और विकुण्ठन की सुदेवा से अजमीढ़। अजमीढ़ की विभिन्न पत्नियों से एक सौ चौबीस पुत्र हुए जो विभिन्न वंशों के प्रर्वतक हुए उसमें भरत वंश के

प्रर्वतक का नाम संवरण था। संवरण की पत्नी तपती के गर्भ से कुरू का जन्म हुआ। कुरू की शुभांगी से विदूरथ, विदूरथ की संप्रिया से अनश्वा, अनश्वा की अमृता से परीक्षित, परीक्षित की सुयशा से भीमसेन, भीमसेन की कुमारी से प्रतिश्रवा, प्रतिश्रवा से प्रतीप हुए। प्रतीप की पत्नी सुनंदा से तीन पुत्र हुए देवापि, शान्तनु और बाल्लिक। शान्तनु राजा हुए।"[3] "आदिवंशावतरण में कृष्ण द्वैपायन व्यास की उत्पत्ति, शान्तनु की कथा -शान्तनु से सत्यवती का विवाह भीष्म प्रतिज्ञा। विचित्रवीर्य का विवाह एवं मरण, उसकी रानियॉ अंबालिका एवं अंबिका तथा दासी व्यास द्वारा धृतराष्ट्र एवं विदुर की उत्पत्ति। पाण्डु का कुन्ती एवं माद्री तथा धृतराष्ट्र का गांधारी से विवाह। पाण्डु की प्रार्थना पर कुन्ती से धर्म, वायु, इन्द्र के द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा अश्विनी के द्वारा माद्री से नकुल और सहदेव की उत्पत्ति। धृतराष्ट्र के द्वारा गांधारी से दुर्योधनादि सौ पुत्रो की उत्पत्ति का वर्णन हैं।"[4]

महाभारत में कथा का प्रारंभ कहॉ से हुआ है यह पंडवानी गायक के लिए जानने का विषय नहीं है। अपितु वह वाचिक परम्परा से निरंतर प्रवाहमान कथा का गायन करता है । कथा का प्रारंभ राजा शान्तनु से हो या दुष्यंत -शकुंतला की कथा से। कथा गायन की टेर लगी -रामे गा रामे रामे गा रामे भैया ..... और जिस प्रसंग को प्रारंभ किया पंडवानी में वह ही महाभारत की कथा का प्रारंभ है।

पंडवानी में कथा गायक प्रसंगानुसार व आयोजनों के अनुरूप कथा का श्री गणेश करता है। यथा यदि पंडवानी गायन का आयोजन संतानोत्पत्ति के शुभ अवसर पर किया गया है, तो पुत्र या पुत्री जन्म की कथा, पाण्डु पुत्रों का जन्म. विवाह - प्रसंगों में द्रोपती - स्वयंवर की कथा गाते हैं। अन्य आयोजनों में गायक श्रोताओं की इच्छा का आदर कर कथा गायन करते हैं। पंडवानी में अधिकांश कथा गायक कथा का प्रारंभ भरतवंश की उत्पत्ति की कथा दुष्यंत-शकुंतला से करते है।

राजा दुष्यंत महापराक्रमी व बली था। एक दिन राजा शिकार करने गया, साथियों से बिछुड़ कर वह कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचा। किन्तु ऋषि वहाँ नहीं थे। मेनका की पुत्री जो आश्रम मे रह रही थी, ने स्वागत- सम्मान किया। राजा उसके रूप सौन्दर्य पर मोहित हो गया और उसने प्रणय निवेदन किया। जिसे शकुंतला ने स्वीकार कर गंधर्व- विवाह कर लिया। राजा कुछ दिन वहां रहा, जिससे शकुंतला को गर्भ रह गया। राजा, शकुंतला को बाद में राजधानी बुलाने का आश्वासन दे वह मुद्रिका देकर वापस राजधानी आ गया।

कण्व ऋषि जब आश्रम में लौटे तो उन्हें सारा वृतांत मालूम हुआ। समय

पाकर शकुंतला के गर्भ से एक पुत्र पैदा हुआ। यह बालक बड़ा निर्भिक, निडर और प्रतापी हुआ जो सिंह से खेलता था। कुछ दिन बाद शकुंतला को पुत्र सहित कण्व ऋषि ने एक शिष्य के साथ राजा के पास भेज दिया। राजा ने उसे अपनी पत्नि मानने से इंकार कर दिया। जब आकाशवाणी हुई तब राजा ने उसे अपनी पत्नि स्वीकार किया और पुत्र को युवराज बनाया, जो भरत के नाम से विख्यात हुआ। इसी के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा।

पंडवानी कथा गायकों द्वारा दुष्यंत- शकुंतला की जो कथा गायी जाती है उसमें, और महाभारत में वर्णित दुष्यंत-शकुंतला कथा में साम्य है। "हस्तिनानगर में राजा दुष्यंत राहय। राजा दुष्यंत मिरगा मारे बर गे राहय। कर्दम ऋषि के पास राहय शकुंतला। शकुंतला के रुप ल देख के राजा मोहित होगे। शकुंतला से राजा भारत के जनम होवय -

"हस्तिनापुर में राजे चलावत हवे भाई।" [5]

भीष्म जन्म की कथा -

"इक्ष्वाकुवंशप्रभवा राजाऽऽसीत् पृथिवीपतिः।
महाभिष इति ख्यातः सत्यवाक् सत्य विक्रमः॥" [6]

वैशम्पायन बोले - इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न महाभिष नाम से एक प्रसिद्ध राजा हो गए हैं, जो सत्यवादी होने के साथ ही सत्य पराक्रमी भी थे। एक दिन ब्रम्हा की सभा में देवंताओं के साथ बैठे थे। तभी गंगा जी पधारीं और उसी समय तेज पवन से उनकी छाती का वस्त्र उधड़ गया। उस समय सभी ने तो नीची निगाह कर ली लेकिन राजर्षि महाभिष निशंक चित से उस नदी की तरफ देखते रहे।

इस प्रकार की दृष्टता को देख ब्रम्हा जी ने श्राप दिया कि राजन ! तुम मृत्यु लोक में जा गिरो और जिस गंगा को तुमने देखा है, वही तुम्हारा अहित करेगी। जब तुम उन पर क्रोध करोगे तो तुम्हारा श्राप दूर हो जायेगा। राजन ! वही मृत्यु लोक में आकर राजा शान्तनु हुए।

एक समय मेरू पर्वत में श्री वशिष्ठ मुनि तप कर रहे थे। उनके पास कामधेनु गाय थी। किसी समय अष्टवसु अपनी पत्नि के साथ वहां आए। उन्होंने गाय को देखा तभी उनकी पत्नियों ने गाय प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। किन्तु वासुओं के मना करने पर भी उन्होंने स्त्री स्वभाव वश हठ नहीं छोड़ा और उस गाय को चाहा। पत्नियों को प्रसन्न करने हेतु वासुओं ने एक दिन सूना आश्रम देख गाय को चुरा लिया। पश्चात्

जब वशिष्ठ ने आकर गाय को न देखा तो सारी बात तप-बल से जानी और वासुओं को श्राप दिया।

"गो वशिष्ठ की चोरी कीन्हा क्रोधित ऋषि शाप तब दीन्हा।
आपन गवस चोर भो आपा, मानुष जन्म मृत्यु परितापा ॥"[7]

एक दिन राजा शान्तनु शिकार खेलने गंगा किनारे आए तो वहां एक परम सुंदरी स्त्री को विहरते देखा। शान्तनु ने उसे अपनी पत्नि के रूप में ग्रहण किया।

अनिन्दिता गंगा राजा की मृदु और मनोहर वाणी, मंद हँसी के साथ सुनकर वसुओं के नियम को स्मरण करके उनके सामने गई और बातों से भूपति के चित को प्रसन्न करती हुई बोली - हे महिपाल ! मैं तुम्हारे वश में रहने वाली रानी बनूँगी। लेकिन मैं भला या बुरा जो भी कहूँ उसके लिए आप मुझे रोकेगें नहीं। यदि आपने मुझे किसी कार्य से रोका या अप्रिय वचन कहा तो आपका साथ छोड़ दूँगी। राजा ने शर्त मान ली। शान्तनु ने गंगा से आठ पुत्र उत्पन्न किये। जैसे ही पुत्र होता उसे वह गंगा में डूबो देती। राजा अंतिम पुत्र को डूबने से रोका । फलस्वरूप गंगा अंतरध्यान हो गई।

पंडवानी में उपरोक्त कथा समान है। किन्तु थोड़ी भिन्नता यह भी की पंडवानी गायक शान्तनु की पूर्व पत्नि का भी उल्लेख करते हैं, जिसका नाम अधमा है - जिससे ब्रम्हा ने छलकर उसका सतीत्व नष्ट किया। तत्पाश्चात् अधमा चिता जलाकर सती हो गई।

"अइसे कहिके चिता बनावत हे
जाके के चिता में जलि जावत हे
सती अधमा ये ओ।"[8]

सबल सिंह चौहान कृत महाभारत में यह दृष्टव्य है "अधमा नाम रहे पटरानी रूपवंत न जाई बखानी।"[9] तदन्तर राजा शान्तनु ने गंगा के पानी को वाणों से रोककर खड़े हुए एक तेजस्वी कुमार को देखा। गंगा ने बताया कि वह उसका प्रसव किया हुआ पुत्र है और उस गंगादत्त को राजा को सौंपकर वह चली गई। यही गंगादत्त आगे चलकर भीष्म प्रतिज्ञा के कारण भीष्म कहलाये।

बुढ़पा सहारा एक बेटा ल दे दे न

x x x

राजा शान्तनु ये लइका ल मांगत हे। लइका के नाव हे देवव्रत। देवता के आर्डर होगे लइका ल छोड़ दे लइका ल लाके शान्तनु के पास छोड़े हवे। रोज देवव्रत आवे जावे।एक दिन गंगा ह कहे , कहे का बतावंव दाई, ये लइका ह आते रहि त नई बनय।

डोकरी के रूप बनाय जा के खड़े। ओ डाहर ले आवत राहय देवव्रत कहे -"डोकरी बुडढी हट जा। उठा के हंटर जमावे। गंगा बुडढी के रूप ल छोड़ के जब अपन सही रूप में खड़ा हो जावे -

नजरे -नजर देखत हावय भाई।
गंगा के रूप ल ओ देखत हावे भाई।

माता जी संसार में माता दो हे या एक ? बेटा दुनिया में माता एक हे दो नहीं। अच्छा बताए माता जी येमा मोर मुक्ति के मारग हे।"[10]

किसी समय महिपति शान्तनु ने यमुना तट के वन में अन्जानी गंध का अनुभव किया। उन्होंने एक देव रूपिणी कन्या को देखा और मोहित हो गए। कन्या का परिचय प्राप्त कर राजा शान्तनु ने उसके पिता दासराज से उस कन्या का विवाह अपने साथ करने की याचना की। दासराज ने कहा कि - "इस कन्या के गर्भ से जो पुत्र जन्म लेगा वही आपके बाद आपके राज्य का उत्तराधिकारी होगा।" राजा निरूत्तर हो हस्तिनापुर लौट आए। मंत्री से पिता की चिन्ता का कारण जान देवव्रत ने दासराज के पास जाकर पिता के लिए वह कन्या मांगी। दासराज की शर्तो को स्वीकार करते हुए उन्होंने आजीवन विवाह न करने का प्रण किया। देवव्रत के इस दु:साध्य कार्य को देखकर शान्तनु ने उन्हें इच्छा मृत्यु का वर दिया।

सत्यवती से दो पुत्र उत्पन्न हुए। चित्रांगद और विचित्रवीर्य। राजा के स्वर्गवासी होने के बाद भीष्म जी ने इनका संरक्षण स्वयं किया। काशीराज की तीन कन्याओं का हरण कर भीष्म ने अंबिका तथा अंबालिका का विवाह विचित्रवीर्य के साथ कर दिया। और अम्बे को शल्व के पास भेज दिया।

पंडवानी में कथा गायक इस कथा को विस्तार पूर्वक कहता है। वे मत्स्योदरी मछंदरी की जन्म की कथा भी गाते हैं - "एक वैश्य सुजन नाम के राजा राहय अउ मिरगा मारे ल गे राहय जंगल । अरे बेरा ह बुड़त राहय। भौंरा-भौंरी के गुंजार देखीस आत्मा में सहन नई होइस। वीर्य ल दोना बनाके धरे खड़े राहय। तोता कथे - महाराज येला मोला देव महारानी के पास येला पहुँचा देथवं। तोता के गले मे बंधाय वीर्य अउ उड़थे। ओ तोता राहय तेन चले जात हे

उपर नदी ल पारे ये भईया तोता ह करे हे
ये देखत बाज आये हे मोर आये हे आये हे।

तैं का लेगथस सगा। एक ठन करींबाज ह उपर में भागिस, हिस्सा नई दिस। अब दोनों के मात गे उपर में लड़ई। दोना के वीर्य पानी म गिरे । मछरी ग्रहण कर लिस। दूबी म

गिरे, दुर्बासा मुनि, गोबर म गिरगे गोबरधन। बांचे राहय तेन ल चिक्कन रानी ल खवा दिस।

उही मेर दाहरा म केंवट राहय भाई। ओ दासाराम केंवट लगा के निसाना जाली में मारे हे। कहिथे धन भाग। मछरी ल काटथे। मछरी के पेट म दू झन लइका राहय। एक टूरी अऊ एक टूरा। राजा के पास लेगिस, कहिथे- "महाराज हमर घर मछरी के पेट ले दू झन लइका होय हे।" लड़का के नाम मछेन्द्रा राजा रख लय। लड़की के नाम मछंदरी रखिस तेला दासाराम केंवट रख लिस।"[11]

iꞩmɪɪ कन्या नृप केंवट को दीन्हा, मच्छोदरी नाम त्याहि कीन्हा।"[12]

मछंदरी डोंगा चलाय के लिए जहाँ पहुँचे हे,अऊ नाव पानी में डारे हे। सामने से परासर ऋषि आवाज लगाय, जहाँ देखे हे नजर लगाके। कहे ये कन्या मैं तोला देखेंव, मोला प्रेम लागत हे। मैं नाहके बर नाहकत हवं ,ये जघा डोंगा ल रोक के मोर सेवा कर लेते। कहे - मुनि मोर नादान अवस्था हे। सूर्यनारायण उदयकार हे। उठा के मारे मंतर - गुंगुर बरस गे। पुरइन के पत्ता म डोंगा रखे हे। मछंदरी सेवा करिस। जब पार में अइस, दस कदम रेंगिस, गरू -गरू लागिस। नदी किनारे म व्यास के जन्म हो जाय।

"जन्मेऊ बालक गर्भ मंझारा, पिता संग तब वन पगुधारा।"[13]

इस प्रसंग की शेष कथा पंडवानी में,महाभारत में वर्णित कथा अनुसार गाई जाती है। महाभारत में मत्स्योदरी (मछंदरी) को दासराज की कन्या के रूप में वर्णित किया गया है। पंडवानी गायक दासराज को राजा और मछंदरी को निषाद (केंवट) की कन्या के रूप में बताते हैं। सबल सिंह चौहान कृत महाभारत में भी दासराम को राजा और केंवट को मछंदरी के पालक के रूप में चित्रित किया है।

"दासाराम तहाँ कर राऊ, धीमर मीन लाइ ता दाऊ।
कन्या नृप केंवट को दीन्हा,मच्छोदरी नाम त्यहि कीन्हा ॥

x x x

बहुत प्रीति केंवट सो राऊ, कन्या पालत अपने ठाऊ।"[14]

पंडवानी में चित्रांगद की मृत्यु का वर्णन विवाह पश्चात आता है। जबकि महाभारत में उसकी मृत्यु विवाह के पूर्व ही बताई गई है। सबल सिंह चौहान कृत महाभारत भी यह प्रमाणित करता है कि विवाह के समय चित्रांगद जीवित थे।

"जीति स्वयंबर कन्या लीजै, दूनो बंधु ब्याह कर दीजै।

x x x

चित्रांगद अंबिका विवाही, विचित्र वीर्य अंबी उर ताही ।"[15]

यौवनकाल में ही भयानक क्षय रोग के कारण विचित्र वीर्य की मृत्यु हो गई। फलस्वरूप माता सत्यवती को मातृ वंश व पितृ वंश की चिंता होने लगी। उन्होंने पुत्र वधुओं से संतानोत्पत्ति के लिए भीष्म को कहा, परन्तु वे नहीं माने। अंततः सत्यवती ने वेदव्यास का ध्यान किया, जिससे वे प्रकट हो गये। वदेव्यास ने नियोग विधि से अंबिका से धृतराष्ट्र, अंबालिका से पाण्डु और दासी से धर्मात्मा विदुर को उत्पन्न किया।

"सजज्ञे विदुरो नाम कृष्ण द्वैपायानात्मजः

धृतराष्ट्रस्य च भ्राता पाण्डोश्चामित बुद्धिमान।

महाराज कृष्ण द्वैपायन के वीर्य और उसके गर्भ से धृतराष्ट्र और पाण्डु के भाई अत्यंत बुद्धिमान विदुर ने जन्म लिया।"[16]

जऊने समय कर बेरा में का बताववं तोला
सुन्दर राज चलाये हे।
सत्यवती हर देखे हे का बताववं दाई
आज बेटा,पति मोर मरगे।

मोर बेटा मरगे मोर पति मरगे। सत्यवती ह व्याकुल होके सोंचत राहय। एक घर में बइठार के भीष्म पितामह ज्ञान देवत राहय, धर्म के बात बतावत राहे। अंबालिका अऊ सुद्र दासी बोले-

विचित्र वीर्य ल बोले हे सुन ले महाराज
जवान हे तोर भाई ह
ये महलों में न जाने दिन बितावत हे

बिहनिया के गे तोर दाई, तोर भाई एके घर में झाँक आथे। विचित्र वीर्य ल होगे मंसा दसा माता के उपर में। झाँक के जाके देखते तब बड़ा प्रेम से बइठार के भीष्म सत्यवती ल सुनात रहे। सत्यवती के नींद परगे। देखेथे ब्रम्हचारी तो अंग ले वसन खुलथे। त अपन दूनों आंखी में पट्टी बांधके दांत ले कपड़ा ल सीधा करिस।

विचित्र वीर्य किहिस मैं महा पापी अंव। जेन महतारी अऊ भईया ल भरमेवं। त आके भीष्म पितामह के चरन में आके गिरगे। तैं मोर उबार के रद्दा बता। का रद्दा ? कोनो आदमी ल मंसा दसा लग हत्या लगगे त कइसे ओखर पाप ह धोवाथे। ब्रम्हचारी कहे - भाई जाके काशी में मर जावे, ओ आदमी चिता बनाके। जाके ससुरार में बारा साल ले राहय, या जाके गड़रिया घर भेड़ी चरावे या पीपर के खोह में आगी लगाके मर जावे। विचित्र वीर्य पीपर खोंड़रा में आगी लगा के मरगे। सत्यवती कहे बेटा एक तो मोर पति मरगे दूसर में दूनो बेटा मरगे। मोर तीन बहू विधवा हे। मोर लेके

चार झन। अइसे कर तैं अपन नियम ल तोड़ बेटा अऊ तैं वंस तैयार कर ले। ईमान से गउ की दाई तोर चरन के कसम हे मैं नियम ल नई तोड़ सकवं। सत्यवती दूनो आंखी ल मूंदे सुमीरन करे हावय व्यास नारायण के। व्यास नारायण दूनो हाथ जोड़े कहे माता का बात हे ? बेटा मोर तीन बहू हे अऊ आज तीनों बहू राड़ी हे। मोर घर में संतान नइ हे। माता तोर तीनो बहू ल बिना वसन के मोर सामने ले, जाय बर कहिदे।

ये मन में सोंचत हे न सती सोंचत हे न
बोले सुनो अम्बे मोर कहना ल मानो दाई।''[17]

''व्यास के आगू म पहिली अंबिका ह अइस त ओखर भयंकर रंग-रूप अऊ जटाजूट ल देख के आंखी मूंद लीस। तेखर सेती ओखर अंधवा पुत्र धृतराष्ट्र अंवतरिस। दुसरइया अंबालिका ह अपन अंग -अंग में पिड़ौंरी ल चुपर के अइस। व्यास अपनआंखी के जोती ले तेज डारिस। अंबालिका ह पिड़ौंरी पोत ले रिहिस तेखर सेती ओखर पिंवरी रोग वाले पांडु अंवतरित। तीसर म दासी ह भगवान के सुमिरन करत नाचत-गावत व्यास के सेवा करन लागिस। व्यास देव ह अपन आंखी के जोत के तेज ले विदुर नाम के धर्मात्मा पुत्र ल पैदा करिस।''

प्रस्तुत प्रसंग में विचित्र वीर्य की मृत्यु का कारण महाभारत में क्षय रोग बताया गया है। जबकि पंडवानी गायक अपने अंचल के लोक विश्वास के अनुरूप भरमा - भूति व मंसा पाप के प्रायश्चित के लिए पीपल के कोटर में घुस कर आग लगाकर आत्मदाह या फिर ससुराल में बारह वर्ष तक रहने या गड़रिया (छत्तीसगढ़ में भेड़ पालने वाली एक जाति) के घर भेंड़ चराने की ओर संकेत करता है।

''सारी पाप जाय फेर मंसा पाप नई जाय।''

यह उक्ति छत्तीसगढ़ में आज भी प्रचलित है। शक की कोई दवा ही नहीं है। इसी तारतम्य में यह उल्लेख भी कदाचित अनुपयुक्त न होगा कि छत्तीसगढ़ में गौ हत्या के प्रायश्चित के लिए इक्कीस दिन तक घर से बाहर रहना, तत्पश्चात्, 'बानबरद' जिला - दुर्ग नामक स्थान में जाकर जिस वस्तु से गौ की हत्या (मृत्यु) हुई है यथा पत्थर, लाठी को देव स्थल में चढ़ाने की परम्परा प्रचलित है। गौ हत्या के प्रायश्चित व आंतरिक शुद्धि के लिए जाति समाज के लोगो को भोज देने की प्रथा है। इस प्रकार जाने - अनजाने में हुई गौ हत्या को ''लाठी लगना'' कहा जाता है।

माता सत्यवती की आज्ञा और अनुग्रह पर महर्षि द्वैपायन अंबिका और अंबालिका से संतानोत्पत्ति के लिए सहमत हो जाते हैं। महाभारत में धृतराष्ट्र पांडु व विदुर की उत्पत्ति सहवास द्वारा बताई गई है। इसके विपरीत पंडवानी गायक पांडु व विदुर

की उत्पत्ति वेद व्यास की नेत्र ज्योति से बताते हैं। जो लोक - मर्यादा का अनुपम उदाहरण है। नियोग की परम्परा को महाभारत काल में अनैतिक नहीं माना गया। यह परम्परा मध्य युग में भी जीवित रही है। लेकिन गांव का लोक मानस इसे स्वीकार नही कर पाता। इसलिए पंडवानी गायक अपनी नैतिकता का परित्याग नहीं कर पाता। एकाधिक स्त्रियों से दैहिक संबंध को हेय दृष्टि से देखा जाता है। संबंधों की पवित्रता श्रेयस्कर है। यही लोक की मार्यादा भी है।

लोक गायक उस सामाजिक परिवेश में पलता बढ़ता है और गायन करता है जहां स्त्रियों को देवी तुल्य आदर और सम्मान प्राप्त है। समाज की अपनी जातीय परम्पराएं, परिवारिक परम्पराएं और नैतिक मान्यताएं होती हैं। छत्तीसगढ़ में अपने छोटे भाई की पत्नि को 'बहू' या 'बहुरिया' कहकर संबोधित किया जाता है। जो बेटी की तरह माननीय है। इस प्रसंग में यह दृष्टव्य है कि अंबिका और अंबालिका वेदव्यास के छोटे भाइयों की पत्नि थीं। अत: छोटे भाइयों की पत्नि से संभोग या नियोग की परम्परा को पंडवानी गायक स्वीकार नही कर पाता और अपनी नैतिकता पर आरूढ़ होकर अपने गायन के माध्यम से यह बताता है कि धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर की उत्पत्ति वेद व्यास की आंखों से निकली अलौकिक ज्योति से हुई। यह पंडवानी का लोक वैशिष्ट्य है। यह लोक मानसिकता सबल सिंह चौहान द्वारा रचित महाभारत में भी संरक्षित है -

> ''जाते मुंदि नयन जो आई, ताते व्यास बचन अस कहई।
> होय पुत्र अंबा अवतारा, महाबीर जन्महि संसारा।'' [18]
> ''श्वेत रूप देख तव चिन्हा, तहाँ व्यास अस बोले लीन्हा।
> जन्महिं पुत्र गर्भ मंझारा, पांडु होय तौ पुत्र भुवारा।'' [19]

''संस्कृति मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता है। युग-युग से समाज को विकास की प्रेरणा देती हुई यह संस्कृति, विचार, कर्म और आचरण का यथार्थ है। यही कारण है कि समान्य से समान्य व्यक्ति भी अपनी संस्कृति को समझता है। उसी के अनुरूप वह आचरण करता है।'' [20]

गांधार राज की पुत्री गांधारी जिसने महादेव से सौ पुत्र प्राप्त करने का वरदान प्राप्त किया था, का विवाह धृतराष्ट्र से हुआ। धृतराष्ट्र को जन्मान्ध देख गांधारी ने भी अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली। पांडु का विवाह राजा कुन्ती भोज की गोदपुत्री कुन्ती से हुआ। इस प्रसंग के पूर्व कर्ण जन्म की कथा आती है, जो पंडवानी का लोक प्रिय प्रसंग है और महाभारत की कथा से कुछ भिन्न भी। उग्र स्वाभावी मुनि दुर्वासा राजा सुरसेन के यहाँ पधारे। कुन्ती की सेवा से प्रसन्न होकर दुर्वासा ने उसे अभिचार युक्त मंत्र

दिया। और कहा कि "जिस देवता का स्मरण करोगी उसके प्रभाव से तुम्हारा पुत्र उत्पन्न होगा।"

"यं यं देवं त्वमेतेन मंत्रेणा वाहयिष्यासि।
तस्य तस्य प्रभावेण पुत्रस्तव भविष्यति ॥" [21]

बाल स्वाभाव वश कुन्ती ने सूर्य देव का स्मरण किया, जिसके प्रभाव से उसके गर्भ से कवच -कुण्डल युक्त पुत्र हुआ। जो कर्ण नाम से विख्यात हुआ। अनन्तर लोक मर्यादा के भय से कुन्ती ने उसे जल मे बहा दिया।

"कुन्ती चर-चर महिना ले तैं भोजन खवाये हस अउ मैं खाली हाथ कइसे जांव। कुछ दे के जाहँव। झोला डाहर हाथ ले निकालिस अउ कथे येले कुन्ती। कुन्ती कथे - "ये काये महराज ? पांच ठन माला, पांच देवता के नाम लेके सुमिरन करबे अउ तोर बेटा पांच बेटा, तैयार हो जही। मोर पांच बेटा ?

मगन कुन्ती होय हवे भाई
हांस के कुन्ती ह जवाबे देवय भाई।

ये कठवा के माला ये ओ। नान-नान कठवा के माला में ओतके रोंठ-रोंठ लइका कइसे घुसरे होही रे बइरी। निकलत नई बनिस त माला ल धराके जावत हे। विसवास नई होइस त रिसी दुर्वासा के जाय के बाद -

नदी के तट में कुन्ती पहुँचे हावय भाई ।

कुन्ती नदी के किनारे में सूर्य ल बलाये हे अउ कहे कुन्ती। सही लइका हो जही का ओ। तैं कोन अस महराज? तै बलाय हस कुन्ती, मैं आए हवं।

आँखी मुंदे कुन्ती कुछ देर रेंगत जाथे। अउ गरू -गरू लोक हे अऊ करन असन बेटा ल जन्म देहे। चारों डहर कुंती देखथे ये मेर कोनो नइहे, बने तो रेती में दबा देवं का ? कुंती रेती में दबाय के लिए सोचे है। पारब्रम्ह परमात्मा कृष्णा कइथे बड़ा गड़बड़ होत हे। कुंती के सामने पहुँचे कहे "नही कुंती तोला अइसे नई करना हे। बाल हत्या, स्त्री हत्या, गौ हत्या, बेटा ल जन्म दे के तैं हत्या करत हस। पेटी तैयार करके पेटी के अंदर में डाल देहे। डाल के बढ़ई रूप श्री कृष्ण कुंती के बिदा कर देहे। बहते -बहत बच्चा बाँचे हे -

बंसी बजइया मोरे गौवा चरइया ये
नदी में बाहत पेटी चले हवे भइया जी।"[22]

कर्ण जन्म के प्रसंग में महाभारत और पंडवानी में बहुत अधिक विभिन्नता है। महाभारत में दुर्वासा द्वारा अभिचार मंत्र देना बताया गया है। जबकि पंडवानी में मंत्र

के साथ माला का उल्लेख मिलता है। कर्ण का कान से जन्म लेना, श्री कृष्ण द्वारा बढ़ई का रूप धारण कर कुंती की सहायता करना तथा सूर्यदेव द्वारा कर्ण को अग्नि चीर देना ये सारी कथाएं पंडवानी में मिलती हैं। सबल सिंह चौहान रचित महाभारत में भी माला, कर्ण का कान से पैदा होना तथा अग्नि चीर का उल्लेख मिलता हैं।

"ऐसे मालमंत्र तौ दयऊ, मुनिवर विदा भूप सो भयऊ।"[23]

x x x

"कर्ण मार्ग कर भो अवतारा, कुंती ताहि नीर में डारा।"[24]

x x x

"तब ही सूर्य परीक्षा कीन्हा, बस्तर एक कर्ण को दीन्हा।"
अग्नि चीर जानै संसारा, जो पहिरै सो मातु तुम्हारा।"[25]

छत्तीसगढ़ के लोक जीवन में बढ़ई की महत्वपूर्ण भूमिका है। छत्तीसगढ़ कृषि प्रधान क्षेत्र है। यहाँ धान की फसल अधिक होती है। इसलिए इसे "धान का कटोरा" कहा जाता है। कृषक जीवन में कृषि उपकरणों की आवश्यकता होती है। इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बढ़ई हल, कोप्पर, दतारी, व अन्य घरेलू उपकरणों को बनाता है। कदाचित इन्ही प्रभावों के कारण पंडवानी गायक इस प्रसंग में बढ़ई की उपस्थिति बताकर पेटी (संदूक) निर्माण का उल्लेख करता है, जो स्वाभाविक लगता है।

पाण्डु की कुंती से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन हुए तथा द्वितीय पत्नी माद्री से नकुल और सहदेव। चूँकि गांधारी ज्येष्ठा थी इसलिए गांधारी के मन में भावना घर कर गयी थी कि उसका पुत्र पहले हो और राज्य का उत्तराधिकारी बने। किन्तु कुंती से युधिष्ठिर का जन्म हुआ।इसलिए गांधारी का विचलित होना स्वभाविक था।कुंती के ज्येष्ठ पुत्र का जन्म सुनकर गांधारी ने दो वर्ष का गर्भ गिरा दिया। तदन्तर व्यास की सलाह से उस मांस पिंड के सौ टुकडे कर घी के घड़ों में रखा गया। जिससे दुर्योधन आदि सौ पुत्र और एक पुत्री हुई। पंडवानी में गांधारी के गर्भकाल को बारह वर्ष का बताया गया है। "भोला भगवान के कृपा से गांधारी रहिगे गर्भ में। महिना ल कोन कहे, एक साल, दू साल, तीसरा साल गंधारी रहिगे बारा साल गर्भ में। एक दिन व्यासनारायण अइस। व्यास नारायण गांधारी के सामने कहे - बेटी - "अच्छा -अच्छा।" गंधारी कहे - "का मुनिवर भगवान देहे बारा- बारा साल होगे मैं मरत हवं टूरी अंवतरे न टूरा।" व्यास कहे - भगवान के घर देर हे अंधेर नही जरूर होही बेटा हो ही।" अउ गंधारी के गर्भ से

मांस के लोंदा जनम लेवय का बताववं तोला

देखत मन लगाय हे।

व्यास नारायण कहे बेटी कुछ होइस ? का मुनिवर ये तो मांस -लोंदा ये। सौ टुकड़ा कर सौ ठन कुंड बना के डाल दे।सौ कुंड से तोर सौ बेटा के जन्म होही। सौ कुंड में घी भरे हे सौ टुकड़ा करके डाले हे। सौ कुंड से कुरूपति के जनम होवय जेला देखे हवय अंधा राजा के ....।''[26]

इस प्रसंग में पंडवानी में गांधारी के गर्भ धारण को बारह वर्ष का बताया गया है। जबकि महाभारत में दो वर्ष।इस काल को सबल सिंह चौहान कृत महाभारत में भी बारह वर्ष का समय बताया गया है।

''उदर गर्भ तब भो प्रकाशा , बारह वर्ष यह बासा।''[27]

कौरव, पांडवो से ईर्ष्या करते थे। वे बल - बुद्धि में पांडवो से कमजोर थे, फिर भी उन्हें सताने का प्रयत्न करते। भीम बचपन से ही खेलों में कौरवों को पछाड़ देता था। जब धृतराष्ट्र पुत्र पेड़ों पर चढ़कर फल तोड़ते थे, तब भीम पेड़ों को लातों से मारता और कौरव, सभी भाई फल के साथ भूमि पर गिर पड़ते -

''प्रहार वेगाभिहताद् द्रुमाद व्याधूर्णिता स्ततः।

सफला : प्रपतन्ति स्म द्रुत : स्रस्ता : कुमारका :॥''[28]

इस प्रसंग को पंडवानी गायक छत्तीसगढ़ के ग्रामीण खेल ''डंडा -पचरंगा'' की कथा के रूप में कहता है -

''भीम बड़े कुबल हवय भाई

दुर्योधन कथे -भीम कभू दाम नई दय। एखर से कइसे दाम लेना चाही। दुशासन -

अगा तेहां उपाय बताई देबे भाई

बता दुशासन कउन से खेल खेलबो, तेमे भीम से दाँव लेन। दुशासन कथे - एक खेल हे -

डंडा -पचरंगा खेलि लेबो भइया मोर

भइया दुर्योधन

भीमसेन दाँव ग देइ ग देहि भाई

तेमा कुरूपति बोलन लागे भाई मोर

अच्छा ये भीमसेन। काये भई। का खेल ये तेन ल बताव। ये हा डंडा - पचरंगा ये। ये वटवृक्ष में सबला खेलना हे। ठीक हे। भई येखर नियम का हे। येखर नियम तैं बीरो में खड़े राह। हमन एक झन डंडा ल फेंक देबो, डंडा ल लान के तेहां

अगा घेरा म तेहां मड़ाई देबे भाई
अगा तैं हमला छुई लेबे ग मोर भाई।

ओ मन चारों डहर से डारा म चढ़े हे। येती भीमसेन डंडा ल लान के घेरा म रखिस -

अगा जाके रूख ल हलावन लागे भाई
अगा धरके रूख ल हलावन लागे भाई
सब बर -बर गिरन लागे ग मोर भाई ,
सब बर -बर गिरन लागे ग मोर भाई।
अगा माड़ी तोर फूटे ग हवय भाई
अगा खून बोहावत हवय ग मोर भाई
तोर कोहनी फूटे हवय भाई मोर।" [29]

पंडवानी गायक अपने आंचलिक परिवेश में दृष्टिगोचर होती घटनाओं, खेलकूदों से प्रसंग को जोड़ता है। 'डंडा -पचरंगा' छत्तीसगढ़ के ग्रामीण बच्चों का साधन हीन परन्तु लोक प्रिय खेल है। जिसमें खिलाड़ी (चाहे जितने भी हों) एक डंडे की सहायता से अपना मनोरंजन करते हैं। दौड़ -भाग और पेड़ में उछलकूद से उनका शारीरिक व्यायाम भी होता है।

महाभारत में यह प्रसंग केवल फल खाने के लिए पेड़ पर चढ़ने से संबंधित है। जबकि श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत में भी पेड़ चढ़कर खेलने का उल्लेख मिलता है -

"खेलत भीम और सौ भाई,भीम कहे तो जीतिन जाई।
एक वृक्ष पर हैं सब भाई, चढ़े जाइ तब भीम हराई।
धाय वृक्ष पर भीम हलाओ, गिरे सबैं तो थाह न पाओ।
पेड़ हलाय दीन तो हाकां, परे भूमि जिमि सब फल पाका।" [30]

डंडा -पचरंगा' खेल का वर्णन केवल पंडवानी में ही मिलता है।

दुर्योधन किसी न किसी प्रकार से भीम को मारना चाहता था। अत: जल क्रीड़ा के बहाने भीम को भोजन में विष दे दिया। जब वे अचेत हो गए तो उसे लताओं से बांधकर नदी में डाल दिया। भीम के शरीर के विष को नागों ने हर लिया और भीम बच गया। महाभारत में यह कथा संक्षिप्त है। किन्तु पंडवानी लोक गायक इस कथा को विस्तार देते हुए भीम और अहिरमती के विवाह की कथा कहते हैं -

"भीम के लास बोहावन लागे भाई
अहिरमती शिव पूजन लागे भाई।

बम भोला बर भईया बम भोला बर
बम भोला बर बम भोला बर भईया
धोवा चाऊँर बेलपतिया बम भोला बर।

शंकर भगवान प्रसन्न होगे कथे - ''नाग कन्या तोर का इच्छा हे बोल। अहिरमती कथे -'' मोला पति चाही महाराज।'' शंकर भगवान कथे - ''तैंहा बासी फूल चढ़ाये हस तेखर सेती जा तोला बासी माने मृत पति मिलही।'' संसो करत अहिरमती गंगा तीर अइस त एक ठन मोठ-डाँट मुर्दा बोहावत आवत रिहिस। लास ल उठइस। नई उठिस त फेर शंकर- पार्वती करा गीस, विनती करीस। शंकर भीम ल जिया दिस। तब अमृत के रक्षक नाग मन शंकर भगवान करा गीन। शंकर गुस्सागे अउ अपन त्रिशूल ले ओखर पेट फोर डरिस पार्वती बताइस के येहा भीम ए तब शंकर भगवान ओला प्राण दान दीस। उही दिन ले भीम के नाव वृकोदर परिस। भीम से अहिरमती के बल्लार नाम के पुत्र होइस। भीम नागलोक ले आके अपन माता अऊ भाई मन ले मिलिस।''[31]

पंडवानी और सबलसिंह चौहान की महाभारत में यह कथा समान है

''शंकर शाप देखिकै बारी, ता कहँ कन्या बरे बिचारी।
मृतक पुष्प ले पूजेऊमोही, मृतकै पुरूष प्राप्त होई तोही।''[32]

छत्तीसगढ़ क्षेत्र धर्म के प्रति आस्थावान रहा है। यहां के तीज-त्यौहारो, धार्मिक -अनुष्ठानों में विभिन्न देवी-देवताओं यथा -राम, कृष्ण, शंकर, दुर्गा, गणेश, आदि के साथ ही लोक व ग्राम -देवता साहड़ा देव, दुल्हादेव,ठाकुर दईया आदि की पूजा - अर्चना की जाती है। महादेव तो लोगों के आराध्य देव हैं। वे भोले शंकर हैं जो शीघ्र प्रसन्न होते हैं। उन्हें लोक देवता के रूप में पूजा जाता है। दुल्हा देव, गौरा छत्तीसगढ़ में प्रचलित महादेव के ही लोक नाम है। दीपावली के समय तो गौरा पर्व ही मनाया जाता है, जिसमें गौरी (पार्वती) और गौरा (शंकर) का विवाह सम्पन्न किया जाता है। गांव-गांव में एकाधिक शिवालय स्थापित हैं। यही कारण है कि पंडवानी कथा गायक इस प्रसंग में महादेव की भक्ति को बड़ी तन्मयता के साथ संपृक्त करता है। यह पंडवानी की निजता है ,जिसमें उसके लोक मान्य देवी-देवता साकार हो उठते हैं।

कौरवों - पांडवों की शिक्षा-दीक्षा का सम्पूर्ण दायित्व गुरू द्रोणाचार्य पर रहता है। वे उनका वेदोक्त-संस्कार कर अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देकर युद्ध कला में पारंगत करते हैं। ज्येष्ठ होने के कारण धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को युवराज बनाया। जिससे दुर्योधन और उसके मामा शकुनि ईर्ष्या से और अधिक जल उठते हैं । हस्तिनापुर का राजा कौन

होगा ? इस संबंध में पंडवानी में कथा पृथक है -

"गांधारी अऊ कुन्ती भगवान शंकर के मंदिर म अलग-अलग बेरा जावे अउ पूजा करय। ये भेद ल दूनो नई जानय।

कुन्ती पूजै प्रतिदिन जाई, औरगांधारी पूजन आई। शंकर भगवान दूनो ल कथे जेहर काली पांच ठन सोन के फूल चढ़ाही तेखर बेटा राजा बनही । कुन्ती अर्जुन ल बताइस । त अर्जुन ह कुबेर के बगीचा ले बान मारके मंदिर ल सोन के फूल से तोप दिस। जब गांधारी सिरतौन के सोन के फूल बनवाके मंदिर गिस त ऊँहा फूले-फूल म मंदिर ल तोपाय देखिस त अकबका गे। सोन के फूल तेमा सुगंध बाप रे बाप -

तोर पुत्र होई है महिराजा, पुरी हस्तिनानगर समाजा।"[33]

पंडवानी भले ही महाभारत की कथाओं से उद्‌भूत है। किन्तु, उसका लोक रूप महाभारत की कथा होकर भी कहीं -कहीं सर्वथा भिन्न है। लाक्षागृह का अग्रलिखित प्रसंग इस धारणा की पुष्टि करता है।

दुर्योधन, शकुनि और मंत्री काणिक की सलाह पर धृतराष्ट्र पांडवों को वारणावत भेजने के लिए सहमत हो जाते हैं। ताकि पांडव रूपी कांटा दुर्योधनादि कौरंवों के हृदय में चुभता है, सदा के लिए निकल जाये। पांडवों की उन्नति कौरवों को किंचित भी नहीं सुहाती। अतः दुर्योधन पांडवों को लाक्षागृह में जलाने का षड़यंत्र करता है।

लाक्षा भवन का निर्माण बिरोचन द्वारा किया जाता है। उपरोक्त षडयंत्र की जानकारी विदुर को मिलने पर विदुर द्वारा भेजे गये खनिकों ने सुरंग का निर्माण किया था। उस गुप्त - सुरंग से पांडव अपनी माता के साथ सकुशल बच निकलते हैं। उसी रात पांच बहेलिया व उनकी माता संयोगवश लाक्षागृह में जलकर मर गये।

पंडवानी में भी उपरोक्तानुसार ही लाक्षा गृह की कथा कही जाती है -

लक्ष भवन जब आगी बरे कका, लाख के भवन में - अगा गल-गल भवन गिरन लागे भईया, कुन्ती ओ...... कुन्ती के नींद खुलगे। आगी के अंजोर ल देख के कुन्ती कथे हाय दाई मैं आज कइसन सुत भुलायेंव, कुन्ती उठके उत्ती डाहर देखय तो बेरा नई उवे राहय घर ल देखथे -

मोर घर में आगी लगे हावय कका।

तब कुन्ती रोवन लागे ग मोर भाई।

पांडव लाक्षा भवन ले सुरंग ले निकलगे। लाक्षा भवन ले निकलके बड़े प्रेम के साथ एक नदी में पहुँचे। जंगल - जंगल घूमन लागे।"[34]

श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत में भी लाक्षागृह की कथा

महाभारत व पंडवानी की तरह समान रूप से समाहित है -

पांचो पुत्र संग लै लीन्हा, वरूण नगर तुरतै शुभ कीन्हा।
व्याधी एक त्रिया तब आई, तासु पति मारे बनराई।
सुरंग मार्ग तब कीन्ह पयाना, पहुँचे नदी तीर परनामा।"[35]

पंडवानी में लाक्षागृह की उपरोक्त कथा के अंतर्गत निम्नलिखित कथा भी कही जाती है, जो पंडवानी की कापालिक शैली का उदाहरण है - लाखा महल जब भभक-भभक के बरन लागिस। रतिहा के बेरा जब झकोरा चलय तब आगी आगास ल छुये। पांचो पांडव अउ माता कुन्ती सुलुंग डाहर ले निकलगे। तेखर भेद ल कोनो नई जानय। लाखा महल जब धधकन लागिस त उही परोस म एकझन घनिया तेली राहय। उही बेरा ओहा घानी पेरत राहय।

आगी के झाँक जब पहुँचन लागे भाई,
घनिहा घानी छोड़ भागन लागे जी।

आगी के आँच घनिहा घर पहुँचे त घनिहा घानी ल छोड़ घर ले निकल के भाग गे। बिहनिया गांव भर गोहार परगे। पांडव मन अपन महतारी सन जरके मरगे। घनिहा के घर वाले घनिहा ल नई पाईन त उहू मन पतियागे के घनिहा घलो लाखा महल में स्वाहा होगे। घर म रोवा-राही परगे। घनिहा के किरिया - करम के तैयारी होवन लागे भाई। दसनाहवन के मावा लोगन मन बर तरी जुरियाए राहंय। लाख महल में पंडवा अउ घनिहा के मरनी के गोठ गोठियावत राहें-

घनिहा के नाहवन जावन लागे भाई
घनहिन के चुरी फूटन लागे जी।

घटौंदा में घनहीन के चुरी उतारे के तैयारी होवन लागिस। नाऊ ह ठउँका घनहीन के जेवनी हाथ के चुरी फोरे रिहिस -

ततके म घनिहा ह आवन लागे भाई
नवहइया ठाढ़ हो देखन लागे भाई
भूत-भूत कहिके भागन लागे जी
मेड़ पार म कतको गिरन लागे न।

भूत आगे कहिके कतको भागे लगिन। घनिहा दूरिहा ले चिचिया के कहिथे - "अरे मैं जीयत हवं, मैं भूत नोहवं भागव मत।" घनिहा ल जीयत देख सबो मगन होगे। घटौंदा म जाके घनहिन ल जाके बतइन त ओखर डेरी हाथ के चुरी ल राहन दीन। तऊने दिन ले जेन हाथ के चुरी उतर गे राहय तेन जेवनी हाथ म तेली मन रांगा

पहिरथे। जेखर माई लोगन मन जेवनी हाथ में रांगा पहिरथे "तऊने मन आज के रंगहा तेली आय।"

लाक्षागृह की मूल कथा में पंडवानी व महाभारत में साम्यता है। किन्तु उपरोक्त कथा पंडवानी गायक की कल्पना शीलता और अपने आंचलिक परिवेश व संस्कृति के प्रति संपृक्‍तता का सुंदर उदाहरण है जो पंडवानी का लोक वैशिष्ट्य है।

"संस्कृति के अंतर्गत समाज की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक व्यवस्था का सम्मिलित प्रवाह निरंतर गतिमान रहता है। संस्कृति वस्तुत: व्यक्ति और समाज के मानसिक विकास का परिचायक है। लोक जीवन तो इस संस्कृति का कुबेर है। यह लोक जीवन निरंतर प्रवाहमान नदी की तरह उसे अनुप्राणित करता है। लोक कलाकारों की कला झरने की तरह कल-कल करती हुई सतत् प्रवाहमान रहती लोक कलाकरों में जीवन में और उनकी कथाओं में लोक संस्कृति व्याप्त होती है। ग्राम्य जीवन की जीवन्त झांकी का ही दूसरा नाम लोक कला है।"[36]

लोक गायक अपने परिवेश में जो देखता और अनुभव करता है वह ही वर्ण्य विषय होते हैं। उन्हें मूल कथाओं में इस तरह गुम्फित कर देता है कि उसे अलग कर पाना असंभव नहीं तो मुश्किल अवश्य है।

छत्तीसगढ़ में 'रंगहा तेली' नामक एक जाति निवास करती है। इस जाति की महिलाएं बाएं हाथ में 'चुड़ी-पटा' तथा दाएं हाथ में केवल रांगा के पटे व चुड़ा (ऐंठी) धारण करती है। महिलाओं के एक हाथ में चुड़ी व दूसरे हाथ में रांगा पहनने का कारण चाहे कुछ भी हो। किन्तु लोक गायक ने इसे अपनी दृष्टि से देखा और इस प्रथा के प्रचलन के लिए लाक्षा गृह की कथा की ओर इंगित किया।

तदन्तर पांडव अपनी माता को लेकर विशाल वन प्रदेश में जा पहुँचे। जहाँ भीम ने हिडिम्ब नामक राक्षस का वध कर उसकी बहन हिडिम्बा से विवाह किया। कुछ काल पश्चात् हिडिम्बा ने एक महान वीर, बलवान पुत्र को जन्म दिया। आगे भीम द्वारा बकासुर राक्षस के वध करने के पश्चात् पांडव व्यास जी की प्रेरणा से द्रुपत की राजधानी की ओर चल देते हैं। पंडवानी व महाभारत में इन कथाओं में साम्यता है। अत: इनकी चर्चा न कर द्रोपती के पांच पति होने की कथा पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

ब्राम्हण वेश में पांडवों ने द्रोपदी स्वयंबर के लिए प्रस्थान किया। अर्जुन ने अपने पराक्रम से आकाश-यंत्र की मछली का संधान कर द्रोपदी का वरण किया। द्रोपदी के विवाह के पश्चात् ही कौरंवों को पांडवों के जीवित होने की जानकारी हुई। पांडव द्रोपदी को लेकर अपने निवास स्थान पर आये। और कहा - "माँ देखो तो

हम क्या लाये हैं " कुन्ती अपनी कुटी में व्यस्त थी। बिना देखे ही कह दिया - "तुम सभी भाई आपस में बांट लो।" फिर सभी भाई विचार करके युधिष्ठिर की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने भाईयों से कहा - "कल्याणमयी द्रोपदी हम सब भाईयों की पत्नी होगी -

अब्रवीत्स हि तान्भातृन्मिथो भेदभयान्नृप:
सर्वेषां द्रोपदी भार्या भविष्यति हिन: शुभा।"[37]

पांडवों ने द्रोपदी को भिक्षा के रूप में माता के कुन्ती सम्मुख प्रस्तुत किया। अत: माता ने आपस में बांटने के लिए कहा। इसका उल्लेख श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत में भी मिलता है-

"पाँचो बंधु गए तब ताहाँ, कुन्ती मातु बैठी हे जाहाँ।
माता पाहि कहाँ तब जाई, तव प्रसाद हम भिक्षा पाई।
माता कहयौ भला जौ काजा, पाँचो बंधु भोग कर राजा।"[38]

x x x

"माता आज्ञा मेटत न जाई, धर्मराज भाषत समुझाई।"[39]

किन्तु पंडवानी में द्रोपदी को भीम द्वारा गदा में लटका कर लाये जाने की कथा कही जाती है।

"दुरपती के स्वयंबर में अर्जुन उपर, चकरी म घूमत मछरी के आंखी ल तरी रखे कड़ाव में छईहा देख के छेद दिस। दुरपती ह वर माला ल अर्जुन ल पहिराइस। भीम दुरपती ल मोटरा म बांध के अपन गदा म ओरमा के चलन लागिस। कुटी म आके कथे -"माता देख तो का काय लाय हन।" माता निकलिस देखीस त मोटरा गदा म ओरमे राहय। माता कहिथे - सबो भाई बांट लव। तब बिचार करके पांचो भाई पांडव दुरपती ल माता के आज्ञा मानके अपन पत्नी बनाइन।"[40]

यह कथा भले ही दंत कथा हो। लेकिन इस प्रसंग में द्रोपदी को भीम द्वारा गठरी में बांधकर लाने का उल्लेख केवल पंडवानी में हुआ है। गठरी में द्रोपदी को बांधना और गदा में लटकाकर लाना पंडवानी का लोक वैशिष्ट्य है। यह कथा पंडवानी की कापालिक शैली को और भी पुख्ता और प्रमाणिक बनाती है। जिसमें कथा गायक अपनी कल्पना से कथा को विस्तार देकर अपने परिवेश से जोड़ता है।

एक तपोवन में किसी महात्मा ऋषि की एक कन्या थी। वह रूपवती और सती होने पर भी पति नहीं पा सकी। अत: वह कठोर तप कर भगवान शंकर को प्रसन्न किया और सर्वगुण सम्पन्न शील पति की कामना की - द्रोपदी ने पति दो कहकर पांच बार

प्रार्थना की अतः उनके पांच पति हुये।

द्रोपदी के पांच पति होने के संबंध में पंडवानी मे भिन्न कथा आती है - "दुरपति पूर्व जनम के पार्वती ये एक दिन खोर म सगा - पहुना खेले बर घरघुदिंया बनाय रिहिस। जब बरदऊला नाहकिस त द्रोपती हा खलखला के हांसीस अऊ काम धेनु ल कइथे। दुनिया तोर पूजा करथे अऊ पांच ठन सांड़ लेके घुमथस तैंहा। ओ समय कामधेनु क्रोध होके श्राप देथे जा " मैं तो जानवर के रूप में पांच ठन सांड़ लेके घुमथवं। अरे जा तोला श्राप देवत हवं द्वापर के अंतिम में तोर पांच झन पति होही अउ पति ल लेके

जंगल-जंगल ओ तहूँ घूमबे बाई
येदे कइसे श्रापे देवन लागे भइया।"[41]

उद्धृत प्रसंग का उल्लेख महाभारत में नहीं है। यह केवल पंडवानी में ही मिलता है। पंडवानी गायक अपने परिवेश में इन घटनाओं को देखता है, जिसे अपनी कल्पना से लोगों की और गांव की कथा के रूप में सहज अभिव्यक्ति देता है। "विशिष्ट वर्गों के साहित्य और कलाएं अधिक संस्कृत होती है। उनमें आडम्बर, कृत्रिमता और सजावट होती है, इसलिए मन बहलाव और फैशन में ही उनकी अधिक उपयोगिता होती है। किन्तु जनता विशेषकर पिछड़ी जातियों की वार्ताएं केवल मनबहलाव और फैशन की सामग्री नहीं होती, वरण वे सांसों की तरह महत्वपूर्ण होती हैं। उनके दुखी और पिछड़े जीवन के सारे रस और आनंद उन्हीं में बिखरे होते हैं।"[42]

लोक गायक विशिष्ट का नहीं अपितु लोक का प्रतिनिधि होता है। लोक में रचे-बसे अनुभवों को अपने गायन में प्रमुखता से शामिल करता है। उसके लिए शिष्ट नहीं, बल्कि लोकप्रधान है, जिसका वह स्वयं भी एक अंग है। इनकी कला फैशन नहीं है। जिसे जब चाहा पहन लो और तब चाहा उतार दो। वह उसके लोकानुभवों की सत्यता है जो दिखावे से कोसों दूर है,और यही आडम्बरहीनता लोक की विशेषता है।

द्रोपदी स्वंयबर के पश्चात पांडव इन्द्रप्रस्थ में रहने लगे। द्रौपदी के कारण पांडवों में वाद-विवाद न हो। इसलिए नारद जी ने यह विधान बनाया कि - द्रोपती प्रत्येक भाई के यहां एक -एक वर्ष व्यतीत करेगी। यदि किसी के द्वारा इसका उल्लंघन किया जाता है, तो वह बारह वर्ष तक ब्रम्हचर्य पूर्वक वनवास करेगा।

"(एकैकस्य गृहे कृष्णा वसेद वर्षमकल्मषा)

द्रौपद्या नः सहासीनानन्योन्यं योऽभिदर्शयेत
स नो द्वादश वर्षाणि ब्रम्हचारी वने वसेत।"[43]

ब्राम्हण की गायों की रक्षा के लिए धनुष बाण की आवश्यकता पड़ने पर अर्जुन द्वारा उपरोक्त नियमोल्लंघन के कारण उन्हें बारह वर्ष का वनवास भोगना पड़ा। इस वनवास काल में अर्जुन द्वारा उलूपी से इरावन तथा चित्रांगदा से बभ्रुवाहन नामक पुत्र की उत्पत्ति की कथा महाभारत में आती है। साथ ही अर्जुन द्वारा विभिन्न तीर्थो की यात्रा व अप्सरा रूपी मगरीन के उद्धार का वर्णन है। जबकि पंडवानी में इन कथाओं का वर्णन आंशिक रूप से मिलता है। सुभद्रा हरण व खांडव बन दाह की कथा में महाभारत व पंडवानी में समानता है। जिसमें मय दानव द्वारा अतिविचित्र सभाभवन का निर्माण किया जाता है।

"मय की सभा बनाई जो है, रचना अद्‌भूत लखि मन मोहे।
महल अनेक बने शीशा के, लखि मन मोहे सुरईशा के।
जल अगाध थल नहि लखि परई, जहं थल दृगजल मन है घुमरई।
लखि विचित्र थल चित्त भ्रमि जाई, फिर संभरत नही कोटि उपाई।"[44]

राजा युधिष्ठिर ने दस सहस्त्र ब्राम्हणों को भोजन कराया। उनके मन में राजसूय यज्ञ करने की इच्छा थी। भगवान श्रीकृष्ण ने सलाह दी कि पहले आततायी राजा जरासंध का वध किया जाये, तब ही राजसूय यज्ञ सफल होगा। भीम द्वारा जरासंघ का वध किया जाता है। तत्पश्चात सभी राजाओं को आमंत्रित कर राजसूय यज्ञ प्रारंभ किया जाता है। किस राजा की पहले पूजा हो ?इस विषय पर भीष्म पिताहमह की सलाह से भगवान श्रीकृष्ण की अग्रपूजा के लिए सभी सहमत हो जाते हैं।

चेदिराज शिशुपाल इसका विरोध करता है। वह भगवान श्रीकृष्ण को एक सौ एक बार बुरा कहता है। वचनानुसार भगवान श्रीकृष्ण चक्र सुदर्शन से उसका सिर काट देते हैं। यज्ञ समाप्ति के पश्चात् सभी नरेश अपने - अपने राज्यों को वापस हो गए। दुर्योधन और शकुनि मय द्वारा निर्मित सभाभवन का अवलोकन करने लगे। दुर्योधन एक दरवाजा को खुला समझकर जा टकराया, जबकि वह बंद था। एक ताल को स्थल समझकर दुर्योधन उसमें वस्त्र सहित जा गिरा। तब उसकी दुर्दशा देखकर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव हँसने लगे। पंडवानी में यह प्रसंग इस प्रकार है -

"धर्मराज गुनथे प्राण प्रतिष्ठा होय नही हे, कोई यज्ञ करावं
अगा व्यास महराज ल पूछन लागे भाई

व्यास महराज ल हाथ जोड़ के पूछथे- महराज। त व्यासे महराज का बोलन लागे भाई -

धर्मराज अगा राजसूय यज्ञ करव मोर भाई।" [45]

"व्यास कहिथे एखर तैं चिंता मत कर। मय नाम के जेन दानव हे भइया, अर्जुन करा प्रतिज्ञा करे हावय तैं मोला छोड़ देबे त समय पर तोला काम आहूँ। मय नामक दानव हे भइया ओखर बर अइसे कोई चीज नइ हे जेन ला माया से नई बना सकय। मय नामक दानव ल व्यास देव अर्जुन जघा बलइस। मय नाम दानव आ करके रागी गदा लेइस एक मंत्र लेइस अउ चऊदा महिना में इन्द्रप्रस्थ ल अइसे बनइस रागी। जऊन जल में थल अउ थल में जल। जेन कपाट लगे हे तऊन खुल्ला,खुल्ला हे तेन बंद। अइसे मय नाम के दानव ह -

राज के स्थापना करन लागे भइया
अति विचित्र बनावन लागे भइया।" [46]

x x x

"भगवान एक ठन कचरा ल उठ इस रागी। कचरा ल उठाके एदरी दांया डाहर के बांया, बांया डाहर केल दांया डाहर फेंकिस। भीमसेन फटले इसारा ल समझगे। जरासंध ल उठइस अउ जरासंघ ल उठा के रागी ओ समय में रागी टांग ल धर के दो कुटा फाड़िस। दो कुटा फाड़के दायां के बायां अऊ बायां के ल दायां फेकि से जरासंघ के ग मृत्यु होगे भाई।" [47]

x x x

राजा दुर्योधन के विवेक खतम होगे हे। जेन कपाट ल लगे दिखथे ओ खुल्ला हे, खुल्ला हे तेन लगे हे। दुर्योधन मार हड़बीड़-हड़बीड़ गिस। खुल्ला दिखत राहय कपाट तेन म जाके -

"कइसे ग ठोकर खावन लागे भाई
कइसे दुर्योधन गिरन लागे भाई।

दुर्योधन गिरे राहय अऊ दरवाजा म ठोकर खाय राहय तेला द्रोपती देखत राहय। द्रोपती कइथे देखतो सखी येखर ददा हवय अंधवा, अंधवा के बेटा अंधवा आय ओ।" [48]

दुसरइया दिन राजसूय जज्ञ सुरू होइस। वेद-विधान के मुताबिक अघुवा-पूजा काखर करे जाय ? तब भीष्म पितामह कहिथे - "भगवान कृष्ण के अग्रपूजा करे जाय इही परम - पिता परमेश्वर सकल संसार के पालन हार ये। सबो राजा भीष्म के बात

में सहमत होगे। सिसपाल ये बात म अड़गे अऊ रिस म कथे - जेखर दाई-ददा, जात-पात -धरम के ठिकाना नइ हे। तेन चोरहा राऊत के पूजा करिहौ। मोर पूजा करव मैं सबले बड़का राजा अवं। अइसे कहिके सिसपाल भगवान ल सौ घावं गारी दिस। भगवान चुप रिहिस। जब सौ ले एक उपर होगे गारी ह, तब भगवान अपन बचन के मुताबिक अपन चक्र सुदर्शन ले सिसपाल के गर ल काट दिस।''

महाभारत में दुर्योधन व शकुनि द्वारा सभा भवन का निरीक्षण करने की कथा यज्ञोपरांत आती है। जबकि पंडवानी में यह कथा यज्ञ के पूर्व कही जाती है। इस प्रसंग में महाभारत और पंडवानी में असमानता तो यह है कि महाभारत में दुर्योधन के पानी में गिरने पर भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव हँसते है। वहीं पंडवानी में दुर्योधन की इस दशा पर द्रोपती और उसकी दासियाँ हँसती है। श्री सबल सिंह चौहान रचित महाभारत में यह प्रसंग महाभारत और पंडवानी दोनो से ही कुछ भिन्नता लिए हुए है। दुर्योधन के गिरने पर दु:शासन उसे उठाते हैं और भीम
ठहाका लगाकर हँसते हैं -

''हाहाकार भीम करि धाए,चहुँदिशी लोग दौरि सब आए।
गहिकर धाए दुशासन लीन्हा , नृपहिं बारि ते बाहर कीन्हा।''[49]

दुर्योधन की लज्जा जनक स्थिति पर द्रोपती का हँसना और द्रोपती द्वारा की गई व्यंग्योक्ति को केवल भीम दु:शासन और दुर्योधन ही सुनते हैं।

''उपर महल सुता पंचाला, तेहि देखि ये सकल हेवाला।

x x x

अंध सुवन जिमि प्रकट भये रे, मनहु श्रृंग कर सायल केरे।
अस कहि वचन द्रपद के जाता, हँसी ठठाई सुनि नृप बाता।
भीम दुशासन अऊ कूरूराई, अपर न काहू सो सुनि पाई।''[50]

इस प्रसंग में पंडवानी में सभाभवन की प्रतिष्ठा (उद्घाटन) का उल्लेख आता है, जो महाभारत में वर्णित नहीं है। छत्तीसगढ़ अंचल में नये मकान, नया कुआँ, नया मंदिर का निर्माण के बाद गृह स्वामी द्वारा इनकी विधि-विधान से पूजा- प्रतिष्ठा करवाने का प्रचलन है। जिसे 'परतिष्ठा' या 'पचिष्ठा' कहते हैं। पूजा के समय वह स्वजनों, परिजनों व इष्ट मित्रों को निमंत्रित कर भोज देता है। दान पुण्य करता है। प्रतिष्ठा के पूर्व गृह स्वामी नये कुंए का जल नहीं पीता है, नये मकान में न खाना बनाता है और न ही नये मंदिर में प्रवेश करता है। इसी प्रकार की एक और एक परम्परा वृक्षों के संबंध में यहाँ प्रचलित है। आम का वृक्ष लगाने वाला व्यक्ति जब तक इमली के साथ आम का

विवाह सम्पन्न नहीं कराता। तब तक वह और उसका परिवार उस आम वृक्ष का फल नहीं खाते। इस विवाह का आयोजन वह अलग से नहीं करता, बल्कि अपने पुत्र या पुत्री के विवाह के समय वेदोक्त रीति से आम्र वृक्ष का विवाह कर पुण्य का भागी बनता है।

पंडवानी गायक इन घटनाओं का प्रत्यक्ष दर्शी और परम्पराओं का पोषक है। ये परम्पराएं उसे विरासत में मिली हैं। अत: पंडवानी गायन में जहाँ भी इस तरह के प्रसंग आते हैं, वह अपनी परम्पराओं का उल्लेख करता है और श्रोताओं को अपनी संस्कृति की रक्षा और परम्पराओं के पालन के लिए जागृत भी।

"लोकानुभवों से अर्जित स्थापनाओं या परिणामों के लोक मान्य होने से जो लोक विश्वास हर युग में बदलते रहते हैं, उसका संबंध तत्कालिक विशिष्ट परिस्थितियों में रहता है। और जब वैसी ही परिस्थिति आती है। तब वे लोक सिद्ध विश्वास अपने आप उभरते हैं।"[51]

दुर्योधन के पानी में गिरने पर द्रोपदी की हँसी का उल्लेख महाभारत में नहीं मिलता। किन्तु पंडवानी में द्रोपदी की हँसी को दुर्योधन अपना अपमान समझता है। अपमान और बदले की आग में वह जलता रहता है। इसी के दुष्परिणाम के रूप में द्रोपदी केचिरहरण की घटना स्वमेव जुड़ जाती है। शायद इसी उद्देश्य को लेकर पंडवानी गायक सजग रहता है। घटनाओं के कारणों की खोज कर गायन को सोद्देश्य और प्रमाणिक बनाने का प्रयास करता है। द्रोपदी द्वारा की गई व्यंग्योक्ति "अंधवा के बेटा अंधवा" इस अंचल की लोकोक्ति है। महाभारत में शिशुपाल के वध के पश्चात् राजसूय यज्ञ की कथा समाप्त होती है। जबकि पंडवानी में राजसूय यज्ञ की सफलता व शुद्धि (यज्ञ मंडप में शिशुपाल वध के कारण) के लिए एक अन्य कथा का विस्तार है। प्रस्तुत कथा का उल्लेख महाभारत में नहीं है। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि यज्ञ स्थल में मानव हत्या के कारण यज्ञ की सफलता संदिग्ध है। अत: इसका निवारण आवश्यक है। पंडवानी इस प्रसंग का गायन निम्नांकित रूप में किया जाता

है - "भगवान कृष्ण कथे - यज्ञ में सिसपाल के बध होगे। देव कारज में बलि ठीक नहीं। एखर निराकरण जरूरी हे।" तब धर्मराज कहिथे - "भगवान एला कोन बताही कि जज्ञ सुफल होइस के निष्फल। भगवान बताथे - "येला सुफल भगत ह बताही। जात के कंड़रा ये फेर ओहा भगवान के बड़ा भगत आय। भगवान कृष्ण के बताये ठऊर म जाके भीम सेन सुफल भगत ल खोजन लागिस। सुफल भगत ओखर परछो ले बर कोढ़ही के रूप धर लिस।

भीम ग ओला पूछन लागे भइया
सुफल भगत ल देखे हस का भाई।
सुपल भगत तो ग मही आवं भाई
का काम हे काबर पूछत हस भईया॥

सुपल भगत तो मही आवं। का काम हे काबर पूछथस ? कोढ़ी ह सुपल भगत ये ? लहू पीब देह ले बोहावत राहय, हाथ-गोड़ के अंगरी मन गल गे राहय। कोढ़ी ल देखके भीम ल घीन होगे, फेर का करबे। भीमसेन कहय चलो महराज, भीमसेन बइठगे। भीमसेन बइठिस तहाँ ले

अगा सुपल भगत चढ़न लागे भाई
भीम के खांदे म चढ़न लागे भाई।

सुपल भगत भीमसेन के खांध म बइठिस। भीमसेन ओला खांध म बोह के -

अगा कइसे गा चलन लागे मोर भाई
भइया कइसे ले जावन लागे ग मोर भाई।

x x x

अऊ भीमसेन
कइसे ग डुबकी लगाय बर जावय भइया।

एक डुबकी लगइस अऊ डुबकी लगागे निकल के देखथे। सुपल भगत के कोढ़ी रूप गायब। सोन के समान चेहरा चमकथे। चोवा चंदन लगाये हे। मृग छाला दबाय हे। भीम कथे - "ये ददा ये तो दूसरे ये।" दऊड़त-दऊड़त अइस कथे - "ये महाराज कोढ़ी ये मेर रिहिस तेन ला देखे हस का ? कहाँ गय ?

सुपल भगत का बोलन लागय भाई। सुपल भगत ल कहां खोजे ला जाबे। सुपल भगत ल पहिचानत नइ हस का ? सुपल भगत मही आवं। जाके चरण म भीम सेन गिरगे। कहिथे महराज जो कुछ भी गलती होइस हे क्षमा करबे। ओ समय सुपल भगत अऊ भीम

अगा हस्तिनापुर बर आवन लागे भाई राजसूय यज्ञ के मंडप सजे हे -

अगा भगत ल लावन लागे ग मोर भाई
सुपल भगत ल सभा म लेगे। ओ समय सुपल भगत ल
सुपल ल कइसे परधावन लागे भइया
आरती ग कइसे करावन लागे भाई।

सुपल भगत कहे आप सदा पावन हो पवित्र हो। आपके राहत ले यज्ञ असफल

हो सकत हे केशव। ठीक हे कन्हैया ये आपके बड़प्पन हे। एक ठन बिना नेरूवा के घंटी अऊ छप्पन प्रकार के भोजन द्रौपदी अपन हाथ ले बना के देही। ओला सात कौंरा बनाहूँ अऊ ओ जेन बिना नेरूवा के घंटी ह बाज जही, सात कंवरा सात बेर, तब जान ले यज्ञ सफल होगे।

सुपल भगत ग खावन लगे भइया।

सुपल भगत हे ते रागी सफ्फा ल मता दिस अऊ मता के भइया खाय लगिस। तब छै कंवरा रागी खा डारे राहय। एक कंवरा बांचे राहय ग। द्रोपती ल भीमसेन का कथे - "येला कभू खाय-पिये ल नइ आवाय का ओ ?" त द्रोपदी कथे - "जात के कंड़रा ताय, खाय ला का जानही। अरे बेंदरा का जाने अदरक के स्वाद।" अतका ल सुनिस रागी भक्तराज सुपल भगत -

उठ के ग कइसे रेंगन लागे भईया
सुपल भगत ग रेंगन लागे भईया।

कृष्ण कथे- "भीमसेन तैं जात के ओला कंड़रा केहेस, ओखर बिना ये यज्ञ सफल नई होय। बड़ा निरादर करे द्रोपदी सुन। जा बलाके लाव ओला। कथे कन्हैया तंही जा भईया बलाके ला। भीमसेन गिरत-अपटत , दऊँड़त-दऊँड़त गिस।

जाके चरन में गिरन लागे भईया
जाके सरन में गिरन लागे जी।

भीम भईया सुपल भगत ल आदर पूर्वक लइस अऊ एक कंवरा बांचे राहय -

सुपल भगत ग खावन लागे भईया
कइसे ग घंटी ग बाजन लागे भईया।
यज्ञ ओ समय भईया सफल होगे।"[52]

छत्तीसगढ़ में एक विशेष जाति होती है। जो बांस से टोकनी, सुपा व अन्य गृहोपयोगी सामान बनाती है। यह जाति यहां कंड़रा कहलाती है। उपरोक्त कथा पंडवानी में एक उप कथा के रूप में आती है। जिसमें गायक अपने बीच जाति समुदायों के गौरवमयी अतीत का बखान कर आदर का पात्र बनता है। श्रोता जब अपने ही बीच के लोगों को कथा में पात्र के रूप में पाते हैं, तब वह कथा उनकी अपनी हो जाती है। अंचल की जाति उनके रहन-सहन, विश्वास और परम्पराओं का वर्णन कर गायक पंडवानी को लोक वैशिष्ट्य प्रदान करता है । जो अनायास सहज और सरलता से पंडवानी की कथा का वर्ण्य विषय बन जाता है।

पांडवों की श्री सम्पदा से दुर्योधन ईर्ष्या करने लगता है। मानसिक वेदना,

चित्त की उद्विगनता के कारण वह आत्म हत्या का विचार करता है। शकुनि उसे समझाता और कहता है कि - "पांडवों को बल से ही नहीं छल से ही जीता जा सकता है। मैं जुआँ खेलने में अद्वितीय हूँ। अतः युधिष्ठिर को द्युत क्रीड़ा हेतु आमंत्रित किया जाय।" बेटे के हठ के कारण धृतराष्ट्र ने पांडवों को द्युत क्रीड़ा हेतु आमंत्रित किया। शकुनि ने छल पूर्वक पांडवों का सर्वस्व जीत लिया। युधिष्ठिर सम्पत्ति, राज्य, चारों भाइयों और पत्नी द्रोपदी को भी हार गये। दु:शासन द्रोपदी के घसीटते हुए भवन में ले आया। वह दुर्योधन के आदेश पर द्रोपदी का वस्त्र उतारने लगा। निस्हाय द्रोपदी ने भगवान श्री कृष्ण का स्मरण किया। गुप्त रूप से भगवान ने द्रोपती की वस्त्र को बढ़ाकर उसकी लाज रख ली। पांडवों को पुन: द्युत क्रीड़ा हेतु आमंत्रित किया जाता है। जुएं में जिसकी हार होगी वह बारह वर्ष तक तापस वेश में वन में रहे और फिर एक वर्ष किसी नगर में अज्ञातवास। यदि एक वर्ष की अवधि में उसे पहचान लिया गया तो, उसे पुन: बारह वर्ष तक वनवास करना होगा। इस शर्त पर युधिष्ठिर द्युत क्रीड़ा में पुन: शकुनि के छल से हार जाते हैं। अत: युधिष्ठिर अपने चारों भाईयों व पत्नी द्रोपदी के साथ माता कुन्ती को विदुर के यहाँ छोड़कर वन चले गये हैं।

"एवं विलपतीं कुन्ती माँ भिवाद्य प्रण्म्य च।
पांडवा विगतानन्दा वनायैव प्रवव्रजु:॥"[53]

"दुर्योधन मामा शकुनि ल उपाय पूछे - "मामा।" शकुनि बोले - 'भांचा' तैं लड़ाई करके पांचों भाई पंडवा से बदला नई ले सकस। काबर गदा धारी भीम, बाणधारी अर्जुन येखर से तैंहा लड़ाई में कभी नई जीत सकस। अगर बदला लेना हे पांच भाई पांडव से तो दीपावली के दिन नजदीक आवथे। पांच भाई पांडव ल इहाँ बुलाय जाय। अऊ बुलवा के मोर पास हे अइसे कपट के पासा हे भांचा, जेमा मैं सारी रूपिया, पइसा, धन-दौलत सब हरा के पांच भाई पांडव ल मैं तोर दास बनाहूँ। हाथ में पासा लेके धर्मराज काला लगावथे ग। पहिली में रतन के खजाना लगाय लगिस लगा के -

तब पासा उठाके ग ये दे फेंकन लागे भाई
मोर कपट के पासा ये ग ये दे पड़न लागे भाई
मोर धरती म ये दे भईया ये कइसे पड़न लागे भाई

x x x

धर्मराज हे तऊन द्रोपती ल लगावत हे।
जब उठाके पासा ये जी मामा शकुनि फेंकय जी
मामा शकुनि उठा के जब पासा फेंकय।

मोर रानी ये द्रोपती ल ग ये लगावत हवय भाई,
मोर सारी सभा ये देखन लागे भाई।

रानी द्रोपती ल जब हारय भईया तो धर्मराज हाय कहिके अपन माथा ल धरके बइठ गे। जइसे हारय तइसे दुर्योधन बइठे राहय, कर्ण बइठे राहय खलखला-खला खला के हाँसय। दुर्योधन गद्दी में बइठे राहय उछल-उछल के हाँसय। दुर्योधन चिल्लाके बोले, कोन ल बोले ग दु:शासन ल बोले - जा तैं रानी द्रोपती ल सभा भवन में ला अउ लाकर के बिना वस्त्र के मोर जंघा में बइठा।

खुशी के मारे दुशासन चले भाई
द्रोपती ल चिल्लाके -
दुशासन ये दे कइसे बोलत हावय भाई
चलो द्रोपती मोर बड़े भईया के आर्डर हे
जल्दी चलो सभा में बलावत हे
जाके कइसे दुशासन बोले भाई
कइसे मजा के ये दुशासन बोले भाई।

x x x

मोर बीरे दुशासन दऊड़त हवे भाई
मोर दऊड़ के बाल पकड़य भाई

x x x

द्रोपती हे तऊन ये मुठ्ठी बंधाय रिहिसे येला
छोड़ के दूनो हाथ जोड़ के भगवान के याद करे
दुख हरो द्वारिका नाथ सरन मैं तेरी
बिन काज आज महराज लाज गई मेरी
दुख हरो द्वारिका नाथ सरन मैं तेरी

x x x

मोर गरूड़ में बइठके मोहन चले आवे भईया
तेला कोनो नई जाने -
ये दे कइसे चीर बढ़ावे मोर भाई।"[54]

युधिष्ठिर परन करिस मैं शैल ल मारिहौं। भीमसेन किहिस मैं दुशासन के भुजा उखाड़िहौं अउ दुर्योधन के जांघ टोरिहों। अर्जुन किहिस मैं कर्ण ल मारिहों, पितामह के परान ले हूँ। नकुल ह कृपाचार्य ल मारिहों कहिके परन करिन। दुरपति ह परन करिस जब

तक दुशासन के रक्त में मुँड़ नई मिजहौं तब तक खोपा नई पारौं

सुनहु दुशासन रूधिर तुम्हारा, जब भ शिर होई बहे पनारा
बांध कच तव करिअसनाना, कोटि भूम यदपति के आना

एक दिन के बात ये भगवान कृष्ण ह कुसियार चुहकत रिहिसे। त कुसियार के फांस में भगवान के अंगरी ह कटागे। रकत के धार धर दिस। भगवान कथे -मोर अंगरी कटागे कुछु लानव। अतका ल सुन रूक्मनि अऊ दूसर रानी मन माखुर -चूना खोजन लागिन।ऊँखर खोजत ले द्रोपती ह झपकुन अइस अउ अपन लुगरा के छोर ल चीर के भगवान के अंगरी म बांध दिस। रक्त के धार थम गे भगवान कइथे -बहिनी इही अँचरा ह तोर एक दिन काम आही, इही सेती दुरपती के चीर बढ़िस।

जेठऊनी बर फेर पासा होइस तेमा ये सरियत राहय के जेन हा ये दरी हार जही तेन ह बारा बरस के बनवास भोग ही अउ एक साल अज्ञातवास। कहूँ अज्ञातवास के समय चिनहारी होगे त फेर बारा बरिस के बनवास जाही। करम के लेखा ल कोन टारे हे भईया। श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत में भी इसी प्रकार कथा का वर्णन है -

''शकुनि सबन पुकारि, साखी कर नर नाहबहु
दीन्हेऊ पासा डारि, हारि गए नृप धर्म सुत।
x x x
मिश्रित रंग के पट बढ़े, थके दुशासन हाथ।
देवन जे देखि नहीं, ते पुरये यदुनाथ॥''[55]

प्रस्तुत प्रसंग में महाभारत और पंडवानी में कुछ अंतर को छोड़ पर्याप्त समानता है। द्युत क्रीड़ा सामंतवादी प्रवृत्ति का द्योतक है,जो महाभारत और पंडवानीमें मिलता है। सामंतवादी प्रवित्तियां शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार की पोषक हैं। दुर्व्यसन भी उसका एक अंग है। महाभारत काल में भी ये प्रवृत्तियाँ थी। दुर्योधन उसका प्रतिनिधित्व करता है। प्रवृत्तियां आज भी विद्यमान हैं।

महाभारत में द्युत क्रीड़ा किस अवसर पर खेला गया, इसका उल्लेख नहीं मिलता है। छत्तीसगढ़ में उच्च्च वर्गीय, मध्य वर्गीय और निम्न वर्गीय लोगों में दीपावली के समय जुआँ खेलने की प्रवृत्ति है। दीपावली (सुरहुत्ती) के दिन बड़े पैमाने पर जुआँ खेला जाता है। छत्तीसगढ़ में यह कथन प्रचलित है कि दीपावली के समय जो जुआँ नहीं खेलेगा, वह अगले जन्म में छू-छू (छछुन्दर) होगा। न चाहकर भी कुछ लोग इस ओर प्रवृत्त होते हैं। भले ही यह कथन जुआड़ियों के लिए उलाहना हो, लेकिन ये प्रवृत्तियां सामंतशाही को ही पोषित करती हैं। जुआं का यह ज्वार देवउठनी (एकादशी) के बाद

ही समाप्त होता है।

पंडवानी गायक इन प्रवृत्तियों का प्रत्यक्षदर्शी है। अत: अपने कथन में जुएं का उल्लेख वह प्रचलित समय विशेष के साथ करता हे। वैसे भी पासा ग्रामीणों के मनोरंजन का साधन है । जिसे चौसर भी कहा जाता है फुरसत के क्षणों में बड़े -बूढ़े इस खेल को खेलते हैं, मात्र मनोरंजन के लिए। लेकिन दुष्प्रवृत्तियों ने इसे भी अब जुएं का रूप दे दिया है।

द्रोपदी द्वारा श्रीकृष्ण की कटी ऊंगली को अपने आँचल के टुकड़े से बाँधने का उल्लेख केवल पंडवानी में मिलता है। यह महाभारत में दुर्लभ है। यह पंडवानी गायक की सजगता और आँचलिक प्रेम का उदाहरण है। जिसमें वह कटे हुए स्थान पर लगाने की सामान्य औषधि तम्बाकू -चूना का उल्लेख करता है। गांवो में किसी अंग के कटने पर प्राथमिक उपचार के रूप में तम्बाकू -चूने का प्रयोग किया जाता है।

वल्कल वस्त्र धारण कर पांडवों ने द्रोपदी के साथ हस्तिनापुर से निकल कर उत्तर दिशा में वन की ओर यात्रा आरंभ की। युधिष्ठिर ने भगवान भास्कर से स्तवन कर अक्षय पात्र प्राप्त किया। भगवान भास्कर ने कहा कि -''जब तक द्रोपदी भोजन न कर लेगी यह पात्र (बटलोई) तब तक मनवांछित भोजन देगा। यह क्रम प्रतिदिन चलता रहेगा।'' काम्यक वन में बकासुर का भाई किर्मीर युद्ध में भीम के हाथों मारा गया। अर्जुन ने इंद्र के दर्शन कर भगवान शंकर की भक्ति की। कीरात रूपी शिव ने युद्ध पश्चात अर्जुन को पाशुपत अस्त्र प्रदान किया। इंद्रलोक में उर्वशी अर्जुन को श्राप देती है कि - ''तुम्हें नर्तक होकर नपुंसकीय जीवन व्यतीत करना होगा।''

एक दिन महाक्रोधी दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यों के साथ पहुँचे। दुर्योधन ने दुर्वासा की अत्यंत सेवा की। दुर्वासा ने प्रसन्न होकर वरदान माँगने कहा। दुर्योधन ने कहा - ''आप पांडवों के पास जायें और दस सहस्त्र शिष्यों के सहित द्रापदी के यहाँ भोजन करें।'' पांडवों ने दुर्वासा का सत्कार किया। धर्मराज ने द्रोपदी से दुर्वासा और उसके दस सहस्त्र शिष्यो के भोजन प्रबंध के बारे में पूछा। इस पर द्रोपदी ने कहा कि - ''मैं भोजन कर चुँकी हूँ। अत: अक्षय - पात्र से आज भोजन नहीं मिलेगा।'' धर्मराज भय से काँप उठते हैं कि दुर्वासा मुनि अब अपने श्राप से हमें भस्म कर देंगे। द्रोपती ने भगवान श्री कृष्ण का स्मरण किया। भक्त - वत्सल भगवान श्री कृष्ण द्वारिका से तत्काल आए और कहा - ''द्रोपती मैं भूखा हूँ मुझे भोजन दो।'' द्रोपती द्वारा असमर्थता व्यक्त करने पर श्री कृष्ण ने वह अक्षय - पात्र मंगाया। उस पात्र में अन्न का एक कण चिपका हुआ था, उसे खा गए, जिससे तीनों लोक तृप्त हो गए। दुर्वासा और

उसके दस सहस्त्र शिष्य तो अत्यंत तृप्त हो गए।

पंडवानी और महाभारत में उपरोक्त प्रसंग में समानता है। महाभारत में दुखी पांडवों को वृहदस्व मुनि नल - दमयंती की कथा व महर्षि व्यास हरिशचन्द्र की कथा सुनाकर उन्हें सांत्वना देते हैं। इन कथाओं का महाभारत में सविस्तार वर्णन है, जबकि पंडवानी में यह कथा संक्षेप में कही जाती है। भीमसेन द्वारा हनुमान जी से भेंट का उल्लेख इसी पर्व के अंतर्गत मिलता है।

द्रोपदी को धौम्य आश्रम में अकेली छोड़ पांचों पांडव हिंसक पशु के शिकार के लिए जंगल चले गए। जयद्रथ दूसरे विवाह की इच्छा से शाल्य देश जा रहा था। उसने द्रोपदी को देखा और मोहित हो गया। द्रोपदी ने उसे अतिथि समझकर उसका सत्कार किया। जयद्रथ ने कहा - "सुन्दरी तुम मेरी भार्या बनो।" द्रोपदी ने कहा - "तुम दुःशाला के पति अर्थात् मेरे नंदोई भाई हो। जयद्रथ माना नहीं और उसका हरण कर ले गया। पांडवों के लौटने पर द्रोपदी को आश्रम में न पाकर वे चिंतित हुए। उन्होंने जयद्रथ का पीछा किया और उसे पकड़ लाए। भीम ने जयद्रथ का मुंडन कर केवल चार चोटियाँ रख दी। जयद्रथ अपमानित होकर चला गया।

"एव मुक्तवा सरास्तस्य पंच चक्रे वृकोदरः।
अर्धचन्द्रेण बाणेन किंचिदब्रुव तस्तदा॥"[57]

भगवान शंकर को प्रसन्न कर जयद्रथ युद्ध में पांडवों पर विजय प्राप्ति का वरदान मांगा। किन्तु भगवान शंकर ने कहा - "ऐसा नहीं हो सकता, पांडव अजेय और अवध्य हैं। तुम युद्ध में केवल एक दिन अर्जुन को छोड़कर चारों भाईयों को आगे बढ़ने से रोक सकते हो।"

"कामी वन में धौम्य ऋषि के कुटिया में दुरपति ल अकेला देख के जयद्रथ ओखर हरण कर लिस। पांडव मन पिछा कर ओला पकड़ीन। भीमसेन जयद्रथ के मुड़ ल अपन बाण म मुण्डा कर दिस। सिरिफ पांच ठन गोछी ल छोड़ दीस अऊ ओमा बेल ल बांध दीस। मुंह में कोइला अऊ छुही ल पोत दीस। गर म बड़े-बड़े धोंधी ल बांध के छोड़ दिस।"

महाभारत में जयद्रथ का मुण्डन व उसकी पांच चोटियों का उल्लेख मिलता है। जबकि पंडवानी में उसकी चोटी में बेल को गुथने का वर्णन है। साथ ही मुंह को छुही, मिट्टी और कोयला पोतकर तथा गले में घोंघे की माला लटकाकर उसे विकृत कर छोड़ा जाता है।

छुही और कोयला एक सर्व सुलभ वस्तु है। जिसे छत्तीसगढ़ में नाचा के

कलाकार अपने मुँह में लगाते हैं। जिससे उनकी मुखाकृति को देखकर दर्शक बरबस ही हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं। पंडवानी गायक जयद्रथ के दुष्कृत्य के लिए हँसी का पात्र बनाने में छुही मिट्टी व कोयले से रंगाने की बात करता है। गले में घोंघे लटकाने से जयद्रथ की आकृति और भी हास्यास्पद प्रतीत होती है। छत्तीसगढ़ में जयद्रथ जैसे दुष्कर्म करने वाले या व्यभिचारी स्त्री-पुरूषों के लिए इसी तरह के दंड का प्रावधान आज भी देखने को मिलता है। गंडई क्षेत्र के पटेल (मरार) जाति के लोगों द्वारा व्यभिचारी स्त्री-पुरूष का मुण्डन करके उसके बालों को आम रास्ते में किसी पेड़ पर लटका दिया जाता है। तत्पश्चात् ही उसे जाति में सम्मिलित किया जाता है। संभव है यह जातिगत सामाजिक प्रथा हो। किन्तु इस प्रथा के प्रचलन में व्यभिचारी को अपमानित करने की मंशा हो, ताकि इस अपमान को देखकर अन्य लोग इस तरह का व्यभिचार न करें। दुष्प्रवृत्तियों पर समाज में रोक लगे। पंडवानी गायक द्वारा जयद्रथ को उसके दुष्कर्म के लिए विकृत कर प्रस्तुत करने के पीछे भी यही धारणा मालूम होती है। चूंकि पंडवानी गायक केवलगाथा गायक ही नहीं अपितु समाज के लिए आदर्श भी होता है। इस दृष्टि से उसकी कथनी-करनी में एक रूपता झलकती हैं। वह दुष्प्रवृत्तियों को रोकने वाला और सद्प्रवृत्तियों का पोषक होता है।

श्री सबल चौहान में भी जयद्रथ वध के वर्णन में समानता है -

"देखि अकेली द्रोपती रानी, लै हरि कै भागेऊ अज्ञाना।
तौने समय पार्थ तहं आए, देख्या चरित क्रोध जिय पाये।।
दूनौ कर सिर केश उपारा, बांधे बोझ समान भुवारा।"[58]

वनवास के बारह वर्ष पूर्ण होने के बाद एक वर्ष अज्ञात वास किस प्रकार बीतेगा ? पांडव यह सोचकर चिंतित होते हैं। धर्मराज ने कहा "मत्स्य देश के राजा विराट धर्मात्मा उदार और बलवान हैं। वे पांडवो के शुभ चिंतक भी हैं। अत: हमें राजा विराट के यहाँ ही अज्ञातवास व्यतीत करना चाहिए।"

धौम्य की सलाह पर उन्होंने अपने धनुष बाण, गदादि को बांध कर नगर के बाहर शमशान भूमि में समी के वृक्ष पर टांग दिया। साथ ही एक मृतक (शव) भी उस वृक्ष पर लटका दिया, ताकि भय से वहां कोई न जा सके।

पांचों भाई व द्रोपदी क्रमश: जाकर विराट के यहां छद्म रूप धारण कर उनकी सेवा करने लगे। युधिष्ठिर कंक नाम रखकर ब्राम्हण के रूप में चौपड़ व गोट लेकर गए। भीम वल्लभ नामक पाक रसोईया, अर्जुन वृहन्नला, नकुल ग्रंथिक, सहदेव तंति पालक तथा द्रोपती सैरन्ध्री के रूप में वहां सम्मान पूर्वक रहने लगे।

एक दिन रानी सुदेष्णा का भाई तथा राज्य का सेना अधिकारी कीचक ने द्रोपदी को देखा। वह उस पर मोहित हो गया। और उससे प्रणय की याचना की।द्रोपदी ने भीम को यह बात बताई। इससे क्रोध होकर भीम ने कीचक का वध कर दिया।

पांडव बड़ा प्रेम के साथ में नाम अउ काम लेके राजा विराट के घर में चलने लगे ममा।

धर्मराज आवे बेटा ....

धर्मराज राहे तऊन अपन कंक ऋषि नाम ब्राम्हण भेष बनाके, भीम सेन तऊन जयन्त नाम अऊ पारथ अर्जुन हे तऊन

वृहन्नला नामे ....
जऊने समय के बेटी जी मोर भाई।

ममा। पांडव अज्ञातवास बिताय राजा विराट के नगर में। बड़ा प्रेम के साथ चलने लगे ममा। कंक नाम धर्मराज, वृहल्ला नाम अर्जुन, जयन्त नाम सुवारी राहय तऊन भीम। बेटा नकुल हे तऊन काम ला ग्वाल के, सहदेव पंडित सेनी नाम रखे अऊ -

सैलेन्द्री नाम द्रोपती रे राखे ममा
दासी के श्रृंगार करइया हे तऊन
हाथ में कंघी ओ मोर सैलेन्द्री मोर ममा।
नारी सुदेक्षणा भवन में
देवी सैलिन्द्री में नजर......

अरे जब ये सालिन्द्री के उपर नजर पड़ें ममा। राजा कीचक सुदेक्षणा से कहे - ''दीदी अतेक सुदर नारी, परम सुंदरी जइसे त्रेता युग में भगवान राम के नारी सीता।

x x x

राजा किचक कहने लगे याद रख ले सुदेक्षणा तुम सालिन्द्री को दे दो नहीं तो तुम्हें विराट राज्य में रहना मुश्किल होगा। राजा किचक के यहा दबकी ल सुन ममा। बार-बार सुदेक्षणा।

भईया रे कीचक ल मोर मनांवय

मगर राजा कीचक सुदेक्षणा के समझाव ल नई मानय ममा।आखरी में सुदेक्षणा कहे - ''ठीक हे रे पापी तैं बड़ा नीच हस। तब मैं चार दिन के बाद त्यौहार मनाहूँ। त मिठई - पकवान धराके तोर भवन में

तोरे पास मेहा भेजत हववं भईया
देवी द्रोपती हे तऊन भीमसेन से कहने लगे - हे तात।

मैं कइसे काहवं पर बुधियारे तैं सुरता भुलागे रतिहा
ये दिन द्रोपती देवी ये बईहा ग भीम बताय।
राजा ग कीचक मोरे येदे पीछू-पीछू आय।
तुंहर भाग बंटागे अधिया रे मोर सुरता भुलागे ... ।

ममा, भीमसेन से कहने लगे स्वामी -अब तुंहर किस्मत हे , भाग हे बचा लेव। अब मोर चोला के कोई ठिकाना नई हे मोर जिन्दगी के कोई भरोसा नई हे। भीम सेन कथे काबर ? राजा कीचक हे तऊन राजा के सारा ये जेन राजा मोर बर छोटे नियत करे हे देवता। ये लाज मोर नई बांच सकय स्वामी। नारी द्रौपदी पति कर रो-रो के जब दुख सुनाय ममा। तो भीम सेन कहने लगे - ''याद रखो नीच दुराचारी कीचक की मौत नहीं किया तो मैं पवन का बेटा नहीं।''

सालिन्द्री के भेष बनाके भीमसेन ममा। जाके भीमसेन चिमनी बरत राहय तेन ला बुझादिस। खटिया में बइठे कीचक तऊन सालिन्द्री ये सालिन्द्री कहिके सालिन्द्री बने भीमसेन ल देख के कीचक तेन मतवाला बने राहय ममा -

टोंके रे टोंके ल मोर बईया ल खोजे न
ये कोंटा ले ये जाय, ये कोंटा ले कोन्टा जाय
पांव के पैजनिया ल बईया बजावे।

कीचक कथे - ''अइसन सेवा करईया मैं नई पाय रेहेंव मोर सात झन नारी रिहिस फेर अइसन सेवा नई करे रिहिन सालिन्द्री। सालिन्द्री कहिके एक ठन हाथ ल चपके रिहिस तेने ल उठाईस ममा। रब ले ओखर हाथेच ह धरागे, भीमसेन के नारी ह। जब भीमसेन के नारी ल पकड़ीस तब भीमसेन के हाथ - गोड़ रेच्चड़हा लागिस। कीचक कथे नारी मन के हाथ पैर मुलायम होथे। ये सालिन्द्री ये त सालेन्द्रा ये रे।

X X X X

अऊ भीमसेन राहय तेन कीचक ल मार के, ओखर गोड़ ल गुटु -मुटु करके मुहाटी म सुतादिस ममा अऊ दरवाजा में खून से का लिखिस -

रानी के भाई राजा के सारा,
अऊ कीचक भये तीन्ह मारा,
कौन मारा ? मै मारा मै मारा।
जर जुड़ न ताप, कीचक मरगे आपे आप

कीचक के लहू जब गिरन लगिस त दुरपती अपन अगिन चीर में झोंक लिस। तभो दू बूँद छटक गे तेन एक बूँद हा खटिया के खटकिरवा ' ढेकना' अऊ दूसर बूँद ह

जोंक बनिस।

"ममा उही तो हरे ते तरिया में रथे तेन जोंख ये खटिया में छिंटके तेन ढेकना। मारबे रोगहा ल मर जही अऊ बाद में जी जथे न।" [59]

प्रस्तुत प्रसंग में नामों के शाब्दिक अंतर को छोड़कर कथ्यगत समानता है। श्री सबल सिंह चौहान रचित महाभारत में भी इस कथ्य की पुष्टि होती है।

अस्त्र शस्त्र बसन बर त्यागी, समी वृक्ष राखेऊ बड़ भागी।
भीमसेन एक मृतक लै आई, वृक्ष मध्य दीन्हो लटकाई॥" [60]

X X X X

"यह विधि पांचों पांडु सुत और द्रोपती बाम।
काल क्षेप पुनि करही जिति क्षुद्र सकल गुण ग्राम॥" [61]

किन्तु खटमल और जोंक की उत्पत्ति का उल्लेख न मूल महाभारत में है और न ही श्री सबल सिंह चौहान रचित महा भारत में। यह केवल पंडवानी में ही निर्दिष्ट है। पंडवानी गायक खटमल और जोंक की उत्पत्ति को दंत कथा के रूप में कहकर प्रसंग को विस्तार देता है। जोंक और खटमल को सरलता से मारा नहीं जा सकता। खटमल को मारने के बाद भी उसकी वंश वृद्धि बहुत अधिक होती है। जोंक और खटमल दोनो ही रक्त चूसते हैं। कीचक बड़ा वीर था, वह सरलता से नहीं मारा गया। छत्तीसगढ़ में कंजूस और मरणासन स्थिति में बहुत दिनों तक जीवित व्यक्ति को कीचक की संज्ञा दी जाती है।अत: कीचक से खटमल व जोंक की उत्पत्ति का आशय कीचक से जोंक व खटमल की समानता दर्शाना शायद पंडवानी गायक की मंशा हो। यह भी उल्लेखनीय है कि जोंक को मारने के लिए उस पर नमक डाला जाता है, क्यों कि वह मारने से नहीं मरता। यह वैज्ञानिक सत्य नहीं है केवल अंचल की लोक मान्यता है।

त्रिगर्त नरेश सुशर्मा युद्ध में राजा विराट को बंदी बना लेते हैं। तब, भीमसेन युधिष्ठिर की आज्ञा से राजा विराट को मुक्त कराते हैं। दुर्योधन कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि, दुशासन आदि को लेकर विराट नगर पर चढ़ाई करते हैं। जिसमें राजा विराट की साठ हजार गौओं को हॉंक ले जाते हैं। तब उत्तर कुमार वृहन्नला (अर्जुन) को सारथी बनाकर युद्ध के लिए जाते हैं। किन्तु, कौरवों की भारी सेना को देखकर वह भयभीत हो जाता है, और नगर की ओर भगने लगता है। तब अर्जुन ने अपने दिव्य अस्त्रों को समी वृक्ष से उतार कर वृहन्नला रूप का त्याग कर अपना वास्तविक रूप प्रकट किया। उत्तर कुमार ने अर्जुन से क्षमा याचना की। युद्ध में कौरव पराजित हुए और गायें मुक्त हो विराट नगर की ओर चलीं गयीं। पाण्डवों का अज्ञातवास पूर्ण हो गया

था। अत: उन्होने अपना वास्तविक रूप प्रकट कर विराट के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की। राजा विराट ने अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से कर दिया।

प्रस्तुत प्रसंग महाभारत व पंडवानी में समान रूप से वर्णित है। युद्ध के समय सहदेव द्वारा खुरहा बाण का प्रयोग पंडवानी में मिलता है - ''यदि मैं कहूँ कोनो उपाय नई करहूँ त ये दुर्योधन ह सब गऊ ल पीट के लेग जही। ये बात ल सोच के सहदेव मन म बिचार करके का करना चाही ? कहिके सहदेव नाम के वीर खड़े -खड़े खुरहा ये मंत्र अहावन करे भईया। सहदेव सोचे लगिस,कहूँ मैं कोनो उपाय नई करहूँ गाय ल पीट के लेग जही एक साल बीतगे कोनो किसम के हमला दुख नई मिलिस। सहदेव मन ही मन खुरहा नाम मंत्र आवाहन करके मारिस -

सबो गऊ ग अचल होगे भाई
जतेक गऊ राहय सारी गऊ खुरहा के मारे अचल होगे।
एको पांव गऊह ग नई चलय भाई
कौरव दल उठाय डंडा अउ गऊ के पीठ ल मारे खुरहा में।
व्याकुल गऊ मन एक पांव आग नई चल सकय।
वीर सहदेव ग देखन लागे भाई
राजा दुर्योधन का देखन लागे भाई।

सारी गऊ खुरहा के मारे अचल होगे। बाकी ग्वाल मन परान ल धर के भाग गइन।''[62]

कौरव जब गायों को हाँकने लगे तब सहदेव ने खुरहा बाण का प्रयोग किया जिससे गाएं अचल हो गई।

छत्तीसगढ़ में कृषि के बाद पशुपालन मुख्य कार्य है। क्योंकि कृषि कार्य के लिए पशुओं की आवश्यकता होती है। पशुओं में एक खुरहा नामक बीमारी होती है, जिसमें पशु के खुरों में घाव हो जाता है। इस बीमारी के कारण पशु चलने-फिरने में असक्त हो जाता है। यहाँ यह लोक मान्यता है कि पशुओं में यह बीमारी उसी समय से प्रारंभ हुई जब सहदेव ने कौरवों से गायों की रक्षा के लिए खुरहा बाण का प्रयोग किया था। वह आज पशुओं की मृत्यु का कारण बना। यह केवल लोक मान्यता है तथ्य गत सच्चाईं नहीं। पंडवानी में खुरहा बाण का वर्णन आता है वह लोक धार्मिता और उसका लोक वैशिष्ट्य है।

अचल गायों को कर्ण द्वारा हांकने का पुन: प्रयास करना और गायों द्वारा कर्ण को श्राप देना पंडवानी में वर्णित है। जिसका प्रमाण श्री सबल चौहान कृत महाभारत में

मिलता है-

"जैसे शरीर अचल भये मोरा, तैसे रण रथ अरझे तोरा।"[63]

कौरव युधिष्ठिर को युवराज पद देने के लिए तैयार नहीं हुये।पांडवों ने चाहा कि युद्ध न हो, अतः उनकी ओर से श्री कृष्ण संदेश लेकर गये फिर भी दुर्योधन नहीं माना। अंततः पांडवों और कौरवों ने युद्ध की तैयारी प्रारंभ कर दी। दोनों पक्षों ने अपने निकटतम राजाओं को युद्ध में शामिल होने के लिए निमंत्रण भेजा। कृष्ण की सलाह पर युधिष्ठिर ने भी ऐसा ही किया। धर्मराज का साथ देने लगभग चालीस हजार राजा आए। कृष्ण भगवान द्वारिका पुरी चले गए। कौरवों ने भी अपनी सेना संगठित की। अर्जुन श्री कृष्ण से सहयोग व आशीर्वाद के लिए द्वारिका पुरी गए। दुर्योधन ने भी उसी दिन द्वारिका पुरी के लिए प्रस्थान किया। दुर्योधन अपने को क्षत्रिय और कृष्ण को यादव समझकर अभिमान वश वह श्री कृष्ण के सिरहाने बैठ गया। जबकि अर्जुन अपने को श्री कृष्ण का सेवक समझकर उसके पैताने (पांवों की ओर) बैठ गया। जागने पर श्री कृष्ण ने दोनों का स्वागत किया। युद्ध में सहायता की याचना करने पर भगवान ने कहा कि "दुर्योधन तुम पहले आए और अर्जुन को मैंने पहले देखा। अतः मैं दोनों की सहायता करूंगा। एक ओर मेरी नारायणी यादवी सेना होगी और दूसरी ओर मैं स्वयं रहूँगा। परन्तु मैं न तो युद्ध करूँगा और न कोई अस्त्र उठाऊँगा।" अर्जुन ने श्री कृष्ण को अपना सर्वस्व अर्पण कर उन्हें सहायक चुना और दुर्योधन ने नारायणी सेना को। पाण्डवों की सात अक्षौणी सेना थी, जबकि कौरवों के पास ग्यारह अक्षौणी।

पाण्डवों और कौरवों के मध्य युद्ध न हो, अतः संधि के प्रयत्न किये गये। धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को समझाया, लेकिन वह नहीं माना। पाण्डवों की ओर से भगवान श्री कृष्ण संधि - प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर कौरवों के सभाभवन में गए। उन्होंने कहा - दुर्योधन पाण्डवों को केवल पाँच गांव दे दो। दुर्योधन श्री कृष्ण को कैद करने की इच्छा प्रकट करने लगा। भीष्म क्रोधित हो सभा भवन से उठकर चले गए। भगवान ने सभा भवन में अपना विश्वरूप का दर्शन कराया। वापसी में उन्होंने कर्ण को समझाया। तुम कुन्ती के ज्येष्ठ पुत्र हो अतः तुम ही राजा होगे। तुम अपने भाई पाण्डवों का पक्ष लो। जिसे कर्ण ने अस्वीकार कर दिया।

श्री कृष्ण ने पाण्डवों के पास आकर सारा वृतान्त बताया। तत्पश्चात् युद्ध हेतु सात सेनापति द्रुपद,विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकी, चेकिस्तान और भीम का चुनाव किया। धृष्टद्युम्न को प्रधान सेनापति बनाया गया। उधर दुर्योधन ने भी कृपाचार्य, द्रोणाचार्य , अश्वत्थामा, शल्य, जयद्रथ,सुदक्षिण, कृतवर्मा, कर्ण भूरिश्रवा, शकुनि

तथा बाल्हिक को सेनापति बनाया। भीष्म को प्रधान सेनापति बनाया। कर्ण ने कहा - "मैं भीष्म के जीते जी युद्ध नहीं करूँगा।" कौरव और पाण्डव दोनों ओर की सेना कुरूक्षेत्र के मैदान में युद्ध के लिए खड़ी हो गई।

उद्योग पर्व का उक्त प्रसंग महाभारत और पंडवानी में समान रूप से वर्णित है। परन्तु युद्ध मैदान की तैयारी के संबंध में पंडवानी में बिलकुल अलग ही कथा है, जो इस प्रकार है -"जिरजोधन अपन संग म अपन सेनापति मन ल धर के युद्ध के मैदान खोजे बर गइस। एक जगह भाठा म किसान अउ ओखर बेटा नांगर जोतत रिहिन। ततके बेर किसान के बेटा ल भाठा डोमी (सर्प की एक जहरीली प्रजाति) चाब दिस। मुहँ डाहर ले गाजा फेंकन लगिस, देंह करियागे परान छुटगे। किसान रोइस न गइस, बेटा के लास ल तिरिया के फेर नांगर जोतन लगिस। मंझनिया बेरा किसान के बहू बासी धर के अईस। बहू पूछिस - "तुंहर बेटा कहां हे"? किसान कथे - "सांप चाब दीस परे हे" बहू घलो रोइस न गइस। किसान बासी खावन लगिस।उही बेरा जिरजोधन अपन सेनापति संग पहुँचगे। देखथे ये तो 'निर्दयी भाठा' हे। इहां कखरो बर कोनो ल मया नइ हे। सोग-पियास, मया-ममता नइ हे। ठऊँका इही भाठा युद्ध मैदान के लइक हे कहिके -

जिरजोधन जैतखाम गाड़न लागे भईया
कौरू के जीत पण्डवा के हार सुमरन लागे जी

कौरव के जीत अउ पण्डवा के हार सुमरके जिरजोधन जैतखाम गाड़ के घर आगे। भीम ह मेड़वा खोजे बर गिस। गांव में मेड़वा घरो-घर देखिस, नइ पईस त का देखथे ? एक झन बाई पांव म महुर रंगाये अपन गोसंईया के खंदइया चढ़के आगी बर जात राहय। भीम कथे - इही आय मेड़वा जेन हा अपन बाई ल "खंदइया चढ़ाय हे"। मेड़वा ल लान के भीम ह ओला जैतखाम के तीर म टोंटा के आत ले खनके गाड़ दीस अऊ घर आगे।

रतिहा कोलिहा-कोलियाइन अपन पिलवा संग उही करा अइन। लइका मन मेड़वा ल खाय बर दौड़िन तब कोलिहइन कथे - "काली कौरव पाण्डव के युद्ध होही तेमा पाण्डव मन के हार होही अऊ कौरव के जीत। तब पण्डवा के मांस ल खाहू रे बेटा। मेड़वा भड़वा के मांस ल नई खावन।"

बड़े बिहनिया भीम मेड़वा करा गिस। तब मेड़वा बताथे रतिहा कोलिहइन ह काहत रिहिस - "ये खाम ह उल्टा गड़े हे सत डाहर ह भुँइया म अउ असत डाहर ह उपर हे। त सत रूपी पण्डवा के हार होही अउ असत रूपी कौरव के जीत। अतका सुनके भीमसेन मेड़वा ल निकालके छोड़िस अउ देवता - धामी डीह ल सुमरके जैतखाम ल

उल्टाके सोज गड़िया दीस। "[64]

यह कापालिक कथा पंडवानी के अंतर्गत वाचिक परम्परा द्वारा सुरक्षित है। कृष्ण द्वैपायन महर्षि वेद व्यास द्वारा रचित महाभारत तथा श्री सबल सिंह चौहान द्वारा रचित महाभारत में इस कथा का कोई वर्णन नहीं है।

युद्ध क्षेत्र में कौरव पाण्डव की सेना युद्ध के लिए तैयार हो गई। दोनो पक्षों से रणभेरी और शंख बजने लगे। अर्जुन के अनुरोध पर श्री कृष्ण ने अर्जुन के रथ को दोनों सेनाओं के बीच खड़ा कर दिया। अर्जुन ने युद्ध न करने की इच्छा व्यक्त की। अर्जुन रण भूमि में शोक से उद्विग्न हो गांडीव को त्यागकर रथ से उतर जमीन में बैठ गए -

"एवमुक्तवार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत
विस्म्रऽय सशरं चापं शोक संविग्न मानसः। "[65]

यहाँ पर श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता का ज्ञान दिया। जो अट्ठारह अध्यायों में विभक्त है। मोह ग्रस्त अर्जुन ज्ञान पाकर संशय रहित हो युद्ध के लिए उद्यत हुए। युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि से युद्ध की आज्ञा प्राप्त की। सबनेउन्हें विजय होने का आशीर्वाद दिया। दोनो सेनाओं में तुमूल युद्ध हुआ। तीसरे दिन भीष्म ने युधिष्ठिर की सेनाओं में हाहाकार मचा दिया। भगवान श्री कृष्ण चक्र लेकर भीष्म की ओर दौड़ पड़े।

नौवें दिन युद्ध पश्चात् रात्रि में पाण्डवों ने भीष्म से उनकी मृत्यु का उपाय पूछा। भीष्म अर्जुन को अपने आगे शिखण्डी को रखकर युद्ध करने के लिए कहा। दसवें दिन अर्जुन युद्ध में शिखण्डी को आगे कर युद्ध क्यिा और भीष्म को क्षत-विक्षत कर दिया। भीष्म की इच्छानुसार अर्जुन ने उन्हें शर-शय्या दी व बाण से ही गंगा प्रकट कर पानी पिलाया।

प्रस्तुत प्रसंग महाभारत और पंडवानी में समान रूप से वर्णित है। श्री सबल सिंह चौहान रचित महाभारत में भी यह प्रसंग उपरोक्तानुसार ही वर्णित है -

"भीष्म को बल थकित भो, भारत अर्जुन तीर।
तिल भर देह न देखिये, झांझर भयो शरीर॥ "[66]

भीष्म के शर -शय्या शयन के पश्चात दुर्योधन ने सेनापति के रूप में द्रोणाचार्य का अभिषेक किया द्रोणाचार्य की योजनानुसार त्रिगर्त नरेश सुशर्मा अर्जुन को युद्ध स्थल से दूर ले गए। भीमसेन और भगदत्त के हाथी के साथ भयंकर युद्ध हुआ। जब द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को पकड़ने में असमर्थ रहे, तब उन्होंने पांडव पक्ष के किसी श्रेष्ठ महारथी को मारने की प्रतिज्ञा कर चक्रव्यूह की रचना की। चक्रव्यूह का भेदन श्री कृष्ण,

प्रद्युम्न, अर्जुन और अभिमन्यु ही जानते थे। अभिमन्यु ने श्रेष्ठ पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए छहों द्वार के महारथियों जयद्रथ, द्रोणाचार्य, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा आदि को परास्त कर सातवें द्वार में प्रवेश किया। सातवें द्वार का प्रवेश भेद न जानने वाले सुभद्रा कुमार अभिमन्यु को द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, भूरिश्रवा, जयद्रथ, दुर्योधन व दुशासन आदि ने मिलकर मार डाला।

अर्जुन ने पुत्र शोक से संतप्त होकर जयद्रथ को सूर्यास्त के पूर्व तक मार डालने की प्रतिज्ञा की। रात्रि में अर्जुन ने भगवान शंकर का चिंतन कर पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया। सिंधुराज का वध होते न देख श्रीकृष्ण ने सूर्य को छिपाने के लिए अंधकार की सृष्टि की। जिससे अर्जुन ने अपने बाण द्वारा जयद्रथ को मार डाला। उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। कर्ण ने इन्द्र द्वारा प्रदत्त वैजयन्ती नामक शक्ति से घटोत्कच को मारा डाला। तदुपरांत भीम ने अश्वत्थामा हाथी को मार कर द्रोणाचार्य के सम्मुख जाकर कहा - अश्वत्थामा मारा गया। द्रोणाचार्य के पूछने पर युधिष्ठर ने कहा - हॉ अश्वत्थामा मारा गया जोर से कहा परंतु हाथी शब्द को धीरे कहा। यह सुनकर द्रोण प्राण त्यागकर समाधिस्थ हो गए। धृष्टद्युम्न ने अपने पिता का बदला लेने के लिए द्रोण का सिर अपने तलवार से काटकर धड़ से अलग कर दिया।

द्रोण पर्व की कथा को पंडवानी गायक प्रमुखता के साथ कहते हैं। उनकी ओजस्वी वाणी और वीरोचित अंगप्रदर्शन से श्रोता समुदाय रोमांचित हो जाता है। प्रस्तुत प्रसंग में अभिमन्यु वध की कथा द्दष्टव्य है -

''चारों दिशा से बरसत बाना

चारों दिशा से बान बरसत राहे। महादानी कर्ण क्रोध करके अश्व पर बाण चला देथे। ओखर चारों अश्व गिर के मर जाथे। जब रथ खड़ा होगे तब कोन ह दँऊड़य कोन ह बान चलावय। अभिमन्यु सोंचथे मोर सारथी मारे गय, मोर अश्व मारे गय। अस्त्र-शस्त्र भी मोर हाथ में नई हे काखर से मैं लड़ई करवं। रथ के खम्भा ह दिखत राहय। अभिमन्यु हँसते हुए कहे ह... ह... वाह रे रथ के खम्भा। मैं काहत रेहेवं मोर संग कोनो नई हे लेकिन तैं हस। रथ के खम्भा तैं नई रेहे त मैं सातवां दरवाजा में नई आतेवं -

पैर मारि खम्भा को तोड़ेऊ
पैर मार के रथ के खम्भा तोड़ दिये -
क्रोधित भए अभिमन्यु गयेऊ
क्रोधित होकर के खम्भा तोड़ करके
कौरव कटक बर भिड़े हे
रथ के खम्भा धरे अब दौड़न लागे भाई

रथ के खम्भा तोड़ अभिमन्यु कौरव मनके नाश करे लागिस। जब खम्भा के तेज ल देखय त भूरिश्रवा उठा के बान मारय। खम्भा फेंका गे। रथ के चक्का घूमत राहय। अभिमन्यु कथे ये रथ के चक्का ले संधान करवँ। रथ के चक्का निकाल लिए अऊ खड़ा होगे। रथ के पहिया हाथ में जाय त कइसे दिखय चिंता -

चक्र कुंवर के शोभत कैसे
हरि कर चक्र सुदर्शन जैसे।"[67]

द्रोणाचार्य का सेनापति के रूप में अभिषेक, युधिष्ठिर को पकड़ने का उपक्रम, चक्रव्यूह का निर्माण, राजा भगदत एवं घटोत्कय की मृत्यु तथा जयद्रथ के वध में महाभारत व पंडवानी में समानता है। वहीं अभिमन्यु वध में थोड़ी भिन्नता है। माता सुभद्रा द्वारा अभिमन्यु का वैजन्ती माला पहनाना, माला को कृष्ण द्वारा ब्राम्हण के रूप में माँगना, अभिमन्यु को दुर्योधन द्वारा छल-कपट पूर्वक मारना पंडवानी में वर्णित है - भीम द्वारा अश्वत्थामा हाथी को मारना, युधिष्ठिर द्वारा असत्य बोलना, घृष्टद्युम्न द्वारा द्रोणाचार्य का शीश काटना, स्वर्ग में अर्जुन अभिमन्यु की भेंट आदि प्रसंगों में समानता है। श्री सबल सिंह चौहान रचित महाभारत में भी यह समानता अंकित है -

"बहुपुरुसारथ गुरू कीयो, रोकि रहियो रणरत्थ।
सबहि पेलि भीतर गयो, अभिमन्यु बड़े समर्थ॥" [68]

x x x x

"जो न बांधौ जयद्रथ हिं, करहूं अग्नि प्रवेश।
यह प्रण दृढ़पारथ किये, सुधि सब सुनि नरेश॥" [69]

x x x x

"भूप युधिष्ठिर बुझि कै, तब त्यागहिं हम प्रान।
मिथ्या कहत न धर्मसुत, सदावचन परिमान॥"[70]

द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् दुर्योधन ने कर्ण का सेनापति पद पर अभिषेक किया और शल्य को उनका सारथी बनाया। युद्ध मैदान में शल्य कर्ण का उपहास कर हतोत्साहित करते और पांडवों की प्रसंशा। कर्ण ने शल्य को परशुराम व एक ब्राम्हण के श्राप से श्रापित अपने जीवन की पूर्व काल की घटना का वर्णन किया। युद्ध मैदान में कर्ण ने नकुल सहदेव और युधिष्ठिर को पराजित किया। भीमसेन ने दुशासन की बांह उखाड़ ली व उसकी छाती फाड़कर उसका गरम-गरम रक्त पीया। उधर कर्ण और अर्जुन में घमासान युद्ध होने लगा। जब कर्ण ने अश्व सेन नामक नाग बाण मारा तब श्री कृष्ण ने रथ को अपने पैर से दबा दिया, जिससे बाण अर्जुन के किरिट को जा लगा। तत्पश्चात्

कर्ण के रथ का पहिया जमीन में धस गया। उसी समय अर्जुन ने आजलिक नामक बाण से कर्ण का शीश काट डाला।

कर्ण पर्व के इस प्रसंग में कुछ असमानताओं को छोड़कर महाभारत व पंडवानी में समानता है। "मान जा बेटा अभी भी पांडव से जाके मिल जा गा। सुन ले दाई कुन्ती। का बात हे करण ! नमक मैं खाये हवं ओ राजा दुर्योधन के। चाहे लड़ई में अर्जुन मोला मारे दाई, चाहे अर्जुन ल मैं मारवं माँ। नहीं करन अर्जुन ल तैं नई मार सकस करन। काबर ? परन करे हववं दाई ओ अर्जुन मारहवं कहिके कुन्ती। देख तो करन कइसे-कइसे बात करथस बेटा। पांच झन बेटा ल बदना में मांगे हवं करन। माँ कुन्ती, पांच बेटा मांगे हस मंगनी म ओ - पांच बेटा तोर जिन्दा रिही ये दे ओ ये दाई पांच बेटा तो जीवित रही माँ। अर्जुन ल मैं मारहूँ।

दाने तोला मांगत हवं करन
मांगे ले दाने तोला कहिथवं दाई
मांग ले दाई बरदान मांग ले
परशु राम देहे पंचमुखी बान
वही ये दे बाने तैंहर देदे ग करन
ठीक हे तैं तो मोर जान ल मांग ले दाई कुन्ती। ले
माँ ले परसुराम के दिये पंचमुखी बान ल ले माँ ले।

x x x x

इन्द्र वचन सुनावत हवे दाई
तेखर वचन ल करन सुनत हवे भाई

मोर मांगे वरदान ल देबे करन। बिलकुल दुहुँ महाराज। मांग ले बरदान। अगर नई देबे बरदान तब। दुहुँ मांग के तो देख भाई। अइसे तब मोर कवच कुण्डल ल दान में दे दे।

मुड़ धरके करन बइठथ हे, चोला नई बांचे राम। हे भगवान ! अब मोर परान नई बांचही तइसे लागत हे। माता कुन्ती ह मोर पंचमुखी बान मांग के लेगे। अउ ये साधु के कला बनाके इन्द्र देव मोर कवच कुण्डल मांगत हे।

महराज आप मन ल कवच कुण्डल चाही। हव। लो महराज मोर तरफ ले कवच कुण्डल ल लो। ह:ह: तभी करन को करन दानी कहते है दुनिया में।"[71]
दूसर दिन युद्ध में कर्ण अऊ अर्जुन म घोर संग्राम होवन लागिस -

सन-सन, सन-सन बान छुटन लागे भाई
अर्जुन करन में रन होवन लागे भाई।

कर्ण बान मारिस त अर्जुन के रथ हवा में उड़ाय लगिस तब, ध्वजा में बइठे हनुमान जी ह रथ ल दाबिस। कर्ण के रथ गाय श्राप ले भुंईया म अचल होगे। ओतके बेर अर्जुन ह बान ले कर्ण ल मार डरिस। ओतके बेर कृष्ण अऊ अर्जुन दानी करन के दान के परछो ले बर गिन। भगवान कथे तें बड़ा दानी हस करन हमला सोन के दान कर तब हम जानबो। कर्ण कथे - "भगवान ये दे पखरा ल उठा के दे।" त भगवान कथे - "हम बनी करके दान नई लेवन जी जाने।"

घिलर के करन पथरा धरन लागे भाई।
पथरा मार दांत टोरन लागे भाई ॥

दानी करन घिलर के पथरा ल उठइस अउ अपन दांत ल टोरके भोगवती गंगा में धोके दान करिस। भगवान कथे - "वरदान मांग करन। " करन वरदान मांगथे कहिथे - "भगवान मोर चिता कुंवारी धरती म जलना चाही। भगवान देखथे कोनो मेर धरती कुंवारी नई बांचे हे। तब करन के प्रान त्यागने के बाद कृष्ण अपन जेवनी हथेरी म ओखर चिता ल रच दाह संस्कर करिस। "

हनुमान द्वारा रथ को दबाना श्री सबल सिंह चौहान रचित महाभारत में प्रमाणित है।

"उपर बल कीन्हेऊं हनुमाना, रथ गड़ि गयो पाताल समाना। "[72]

साधु स्वाभाव कृपाचार्य रणस्थल के भयंकर दृश्य को दृष्टिपात कर उद्विग्न हो जाते हैं, तथा दुर्योधन को संधि के लिए कहते हैं, लेकिन दुर्योधन नहीं मानता। उन्होंने सेनापति के पद पर शल्य का अभिषेक किया। युद्ध में पांडव और कौरव सेना फिर जूझने लगी। नकुल ने कर्ण के तीनों पुत्रों चित्रसेन, सत्यसेन, और सुक्षेण का वध कर दिया। शल्य और धर्मराज युधिष्ठिर में घोर संग्राम हुआ। युधिष्ठिर ने प्रचंड शक्ति से शल्य का प्राणांत कर दिया।

शल्य पर्व की कथा संक्षिप्त है। इस प्रसंग में केवल कौरवों के चौथे सेनापति शल्य का युधिष्ठिर के हाथों मरने का वर्णन है। महाभारत व पंडवानी में कथ्य की दृष्टि से पूरी समानता है। पंडवानी में इस पर्व में पैदल युद्ध का वर्णन है -

धर्मराज युद्ध करन लागे भाई
खाड़ा म सैल ल मारन लगे जी।

पंडवानी गायक शल्य के वध के लिए धर्मराज द्वारा छत्तीसगढ़ का स्थानीय शस्त्र खाड़ा के प्रयोग का गायन करता है। जबकि महाभारत में प्रचंड शक्ति का उल्लेख मिलता है। खाड़ा कुल्हाड़ी की तरह एक घातक हथियार है। जिसका आकार-प्रकार कुल्हाड़ी से

काफी बड़ा लंबवत और बनावट में उससे भिन्न होता है।

सहदेव ने शकुनि का संहार किया। अर्जुन ने सुशर्मा का वध किया। कुरूक्षेत्र में कौरव सेना नष्ट हो गई। केवल दुर्योधन, कृपाचार्य और कृत वर्मा बचे। भय के मारे भागकर क्लांत दुर्योधन प्राण रक्षा के लिए पिता के पास गया। फिर माता गांधारी के पास। गांधारी ने कहा - "पुत्र तुम्हारी प्राण रक्षा का उपाय केवल युधिष्ठिर ही बता सकते हैं।" अत: वह डरते-डरते युधिष्ठिर के पास गया। युधिष्ठिर ने बताया कि तुम्हारी माता सती साध्वी है। तुम नग्न अवस्था में अपनी माँ के पास जाओ। वह तुम्हारे जिस अंग को देख लेगी वह वज्र का हो जायेगा। दुर्योधन नग्नावस्था में माता के पास जाने लगा। तब कृष्ण ने कहा - "माँ के पास इस हालत में जाओगे लज्जा नहीं आती। तब वह फूलों के हार से जांघ को ढँक गांधारी के पास गया। गाधांरी ने पट्टी खोलकर देखा। जांघ को छोड़कर सारा शरीर वज्र का हो गया। तत्पश्चात् दुर्योधन सरोवर में छिप गया।व्याधों की सूचना पर पांडवों ने सरोवर में दुर्योधन को ललकारा। दुर्योधन और भीम में गदा युद्ध हुआ। श्री कृष्ण का संकेत पाकर भीमसेन ने दुर्योधन के जंघा पर गदा का प्रहार कर जांघों को तोड़ दिया।

"अगा महाभारत भूमि ल कइसे गा घूमत फिरथे। का करवं दाई संग के एकोझन संगवारी नई दिखत हे। ये सारथी पूरा मरगे का।" राजा दुर्योधन चारों तरफ घूमे लागिस। त खून के लोहित नदी बोहाथे। बड़े-बड़े मुर्दा मन -

ओही गंगा में कइसे बोहावत हे रामा जय हरि
ओ गंगा में भइया बड़े -बड़े मुर्दा आवत हे राजा दुर्योधन
ये खून के गंगा ल देखन लागे भाई
का करवं दाई शोणित गंगा नदी बहथे। ये केंवट कोनो नई दिखत हे।
ये मुर्दा उपर में नाहक जतेंव का ?

बड़े -बड़े मुर्दा में राजा दुर्योधन चढ़ के चलिस पर कोई पार नई कर सकिस। बीच धार में बालक मुर्दा -

अरे बालक कर मुर्दा गदा में तीरन लागे भाई

रागी गुरू राजा दुर्योधन ह तऊने बालक के मुर्दा ल गदा में खींच के अऊ छाती में बइठके

मोर बोहि नदी ल दाई मोर दाई ओ......
बालक के छाती म दाई दाई
खून के गंगा ल मोर पार हो जाये राजा।

का कहवं दाई ये काखर लइका ये मोला नदी ल पार कर दीस कहिके जाकर के मुकुट के प्रकाश ग देखिस। अरे..... अरे....... बेटा लखनी अस। मैं काखर बेटा ये काहत हवं।

बंस बूड़गे दाई बेटा ये मोरे ओ रामा जय हरि.....
मुड़ी धरके ओ दुर्योधन रोवत हे रामा जय हरि ......
अरे बेटा।'' 73

दुर्योधन बेटा ल माटी दे के घर म भानमती करा अइस। कहिथे मोर परान के रक्षा कर। भानमती किहिस भगवान अऊसत के द्रोहिल के मैं रक्षा नई कर सकवं। दुर्योधन पिता के भवन गिस। फेर माता कथे - बेटा जा स्नान करके बिना बसन गाय नांगा मोर करा आबे। असनांद करके दुर्योधन बिन बसन जावन लगिस। त कृष्ण साधु रूप धर के कथे - ''तोला लाज नई लागय महतारी करा बिना बसन के जावथस। कम से कम केरा के पाना ल कनिहा म बांध ले'' दुर्योधन केरा पाना ल कनिहा म बांध लिस। माता गांधारी -

गंधारी पट्टी खोल के देखन लागे भाई
तोपाये जांघ कांचा रहिगे ग मोर भाई।

तहाँ ले दुर्योधन व्यास सरोवर म जाके लुकागे। शिकारी के बताय के मुताबिक श्रीकृष्ण अऊपाडंव सरोवर में आके दुर्योधन ल ललकारिन

दुर्योधन कइसे निकलन लागे भाई मोर।

त लक्ष्मी बांहा धर बइठारे। फेर दुर्योधन नई मानिस निकलगे। दुर्योधन अऊ भीम में गदा युद्ध होइस। कृष्ण के आरो पाके मौका देख भीम गदा मार के दुर्योधन के जांघ ल राई -छाई कर दिस।

युद्ध समाप्ति के बाद दुर्योधन महाभारत के अनुसार अपने पिता, माता, युधिष्ठिर के बाद पुन: माता के पास आता है, फिर सरोवर में छिप जाता है। जबकि पंडवानी के अनुसार वह युद्ध में ही हाथी के सुण्ड में छिप जाता है। रात होने पर वह अपने पुत्र की लाश के सहारे रक्त की नदी पार करता है। उसकी पत्नी भानमती उसे शरण देने से इंकार करती है। यह पंडवानी में ही प्रमाणित है। प्राण रक्षार्थ वह पिता के पास फिर माता गांधारी के पास आता है। माता गांधारी उसके जांघ को छोड़कर सारे शरीर को वज्र का बना देती है। वह व्यास सरोवर में छिप जाता है, जहॉं उसे लक्ष्मी बाहर निकलने से मना करती है। दुर्योधन व भीम में गदा युद्ध होता है। दुर्योधन की जांघ पर गदा प्रहार कर वर्णन महाभारत व पंडवानी दोनों में ही निर्दिष्ट है। श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत में भी

यह प्रमाणित है -

"कृष्ण भीम कह जांघ बताई, निरखि वृकोदर घात लगाई।"

अश्वत्थामा कृपाचार्य और कृतवर्मा दुर्योधन के समीप आए। मरणासन्न दुर्योधन ने सेनापति पद पर अश्वत्थामा का अभिषेक किया। तीनों सूर्यास्त के बाद सेना शिविर में लौट आए। रात्रि में वट वृक्ष पर अश्वत्थामा ने एक उल्लू के कपट पूर्ण क्रूर कर्म को देखा। सोये हुए कौवों पर आक्रमण कर उल्लू ने उन्हें मार डाला। इस घटना से प्रेरित होकर अश्वत्थामा ने पांडव शिविर में प्रवेश कर सोये हुए धृष्टद्युम्न उत्तमौजा, युधामन्यु और द्रोपदी के पांचों पुत्रों की हत्या कर दी।

अश्वत्थामा के इस दुष्कृत्य से पांडव दुःखी हुए। कृष्णा द्रोपदी विलाप करने लगी। उसने प्रतिज्ञा की कि द्रोण पुत्र के माथे की मणि लाने पर ही अन्न ग्रहण करूंगी। श्री कृष्ण सहित युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम वहाँ पहुँचे जहाँ अश्वत्थामा बैठा था। उन्हें देखकर अश्वत्थामा ने घबराकर दिव्यास्त्र छोड़ दिया -

"इत्यैक्त्वा राजशार्दुल, द्रोणपुत्र प्रतापवान।
सर्वलोक प्रमोहार्थ तदस्त्रं प्रभु मोच ह॥" [74]

अर्जुन ने भी दिव्यास्त्र के संहार के लिए शिव का स्मरण कर पाशुपत अस्त्र का प्रक्षेपण किया। नारद व वेद के कहने पर अर्जुन ने अपने अस्त्र को रोक लिया। किन्तु अश्वत्थामा अपने दिव्यास्त्र को लौटाना नहीं जानता था। अत: दिव्यास्त्र उत्तरा के गर्भ में गिरा। प्राण दान के बदले अश्वत्थामा ने अपने मस्तक की मणि पांडवों को दे दी और शापित जीवन लेकर जंगल की ओर चला गया।

प्रस्तुत प्रसंग महाभारत में समान रूप से वर्णित है। इस प्रसंग की कथा में भिन्नता नहीं है। श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत में भी मूल महाभारत व पंडवानी की तरह प्रसंगों में समानता है -

"पाँच बंधु के पांचों जाये, रूप समान भेद नहीं पाये।
खंग घाव तब द्रोण की कीन्हे, पांचो शीश बामकर लीन्हे।"[75]

x x x

"शीश चीरि श्री हरि मणि लीन्हे,पाछे छोरि द्रोण सुत दीन्हे।"[76]

धर्मराज युधिष्ठिर युद्ध क्षेत्र में वीरगति प्राप्त योद्धाओं का दाह संस्कार करते हैं। राज्यभिषेक के पश्चात् युधिष्ठिर अपने भाईयों व श्री कृष्ण के साथ भीष्म पितामह के पास जाते हैं। भीष्म पितामह युधिष्ठिर को राज्य करने का आदेश दे पांडवों को नीति

की शिक्षा देते हैं। अंठावन दिनों तक शर-शय्या में पड़े रहने के बाद देह त्याग भीष्म परमात्मा में लीन हो जाते हैं। श्री कृष्ण की सलाह पर युधिष्ठिर अश्वमेघ यज्ञ का आयोजन करते हैं। व्यास जी ने अश्वमेघ का घोड़ा शास्त्रोक्त विधि से छोड़ा। जिसके पीछे-पीछे अर्जुन अपनी सेना के साथ आगे बढ़ने लगे। अर्जुन त्रिगतों, प्राग्ज्योतिषपुर के राजा ब्रम्हदत्त व सुधन्वा को हराकर मणिपुर पहुँचे। अर्जुन का पुत्र बभ्रुवाहन वहाँ का राजा था।युद्ध में बभ्रुवाहन के बाण से अर्जुन मूर्छित हो गिर पड़े। चित्रांगदा विलाप करने लगी। फिर उलूपी ने संजीवनी मणि को बभ्रुवाहन को दिया और कहा - "इसे तुम अपने पिता की छाती पर रख दो।" बभ्रुवाहन वैसा ही किया। अर्जुन जीवित हो गए। पिता पुत्र का मिलन हुआ। अर्जुन ने बभ्रुवाहन को अपनी दोनों माताओं के साथ अश्वमेघ यज्ञ में आने का निमंत्रण दिया।

प्रस्तुत प्रसंग में कथ्य और पात्र की दृष्टि से महाभारत और पंडवानी में समानता हैं। किन्तु स्थान की दृष्टि से भिन्नता है। महाभारत में उल्लेखित मणिपुर को पंडवानी गायक रतनपुर अभिहित करते हैं। रतनपुर का राजा बभ्रुवाहन जो कि अर्जुन का पुत्र था, वह अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा रोक लेता है। दोनों में युद्ध होता है। पंडवानी में यह कथा निम्न प्रकार है -

घोड़ा ग रतनपुर आवन लागे भाई।
बभ्रुवाहन ग रोकन लागे मोर भाई।

अश्वमेघ यज्ञ के घोड़ा ल बभ्रुवाहन छेंक लिस। अपन पिता के आरती उतार पैलगी करन लागिस। अर्जुन ह मोर बेटा नोहस कहिके बभ्रुवाहन ल लतिया दीस। बभ्रुवाहन के जी आगी बरन होगे। जुद्ध में बभ्रुवाहन अपन पिता अर्जुन के टोंटा ल काट दीस। ओही बेरा चित्रांगदा तुलसी चौरा के पूजा करत रिहिस -

दूध गा लहू दिखन लागे भाई।
आरती के दिया बुझावन लागे भाई।

आरती के दिया बुतागे, चौंरा में चढ़ाय दूध लहू होगे। चित्रांगदा अऊ उलूपी अर्जुन के मुड़ी ल कोरा म मढ़ा सती होय बर तियार होगे। एती कुन्ती ल सपना होइस त धर्मराज ल सब हाल बताइस। धर्मराज भगवान कृष्ण संग रतनपुर अइस। बभ्रुवाहन पाताल लोक ले अमृत लइस। भगवान कृष्ण अर्जुन के मुड़ी ल ओखर धड़ में जोड़

दीस। अर्जुन जीगे अउ अश्वमेघ यज्ञ में अपन दूनो महतारी संग आए बर बभ्रुवाहन ल नेवता दीस।

लोकमान्यताओं के अनुसार महाभारत में वर्णित मणिपर को ही रतनपुर बताया जाता है, जो वर्तमान में छत्तीसगढ़ में बिलासपुर जिलान्तर्गत है। शाब्दिक दृष्टि से भी मणि और रत्न में साम्यता है। शायद यही शाब्दिक साम्यता इस लोकमान्यता का लोक आधार है। जो भी हो पंडवानी गायक महाभारत की कथा को अपने अंचल से जोड़कर गर्व का अनुभव करता है।

कुछेक पंडवानी गायक अश्वमेघ यज्ञ के घोड़े को रतनपुर पहुँचने के साथ आरंग पहुँचना भी निर्दिष्ट करते हैं। स्थानीय लोक मान्यताओं के अनुसार आरंग (जिला - रायपुर) राजा मोरध्वज की नगरी है। राजा मोरध्वज श्री कृष्ण के परमभक्त थे। अतः उन्होंने पांडवों का आधिपत्य स्वीकार कर अजुर्न का सत्कार किया था।

ये प्रसंग महाभारत में भले ही वर्णित न हो, किन्तु उपरोक्त मान्यताएं यहाँ लोक मानस में परिव्याप्त हैं।

पंडवानी गायक शांति पर्व की कथा को छोड़कर अश्वमेघ पर्व तक की कथा का गायन करते है। छत्तीसगढ़ में यह अंधविश्वास प्रचलित है कि शांति पर्व की कथा का गायन करने से पंडवानी गायक शांत हो जाता है। अर्थात वह मृत्यु को प्राप्त करता है। इसलिए पंडवानी गायक मृत्यु की आशंका और भय के कारण महाभारत के शांति पर्व का गायन नहीं करते।

महाभारत एवं पंडवानी की कथाओं के विश्लेषण के बाद यह स्वमेव स्पष्ट है कि पंडवानी महाभारत से अद्‌भूत होकर भी अपनी आंचलिकता, लोकग्राह्यता और स्थानीयता के कारण वस्तुतत्व और कथ्य की दृष्टि से साम्यता रखते हुए भी विभिन्नता लिए हुई है। अधिकांशतः पंडवानी गायक कापालिक कथाओं को छोड़कर वेदोक्त और प्रमाणिक कथाओं का गायन करते हैं। पंडवानी गायकों की स्कूली शिक्षा कम होती है। वे वेद व्यास कृत संस्कृत महाभारत का अध्ययन न कर श्री सबल सिंह चौहान रचित महाभारत का पठन करते हैं।

अतः पंडवानी की कथा वेदव्यास कृत महाभारत की अपेक्षा श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत से अधिक साम्य रखती है।

वस्तु तत्व की दृष्टि से महाभारत में जितनी विविधता और विशालता है पात्रों की द्दष्टि से भी वह उतनी ही विस्तीर्ण और वैविध्यपूर्ण है। चूंकि विषय के विस्तार में पात्रों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। महाकाव्य के संबंध में तो यह बात और भी सोलह आने लागू होती है। महाकाव्य में पात्रों की अधिकता होती है। सम्पूर्ण घटना क्रम पात्रों के द्वारा ही आगे बढ़ता है। महाभारत कथाओं का महासागर है, इसमें मोती की तरह पात्रों का समावेश है। कुछ प्रमुख पात्र हैं, तो कुछ गौण और कुछ अनुषांगिक कथाओं में नगण्य, फिर भी कथा विस्तार की द्दष्टि से अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। महाभारत व पंडवानी के प्रमुख पात्रों पर संक्षिप्त रूप से चर्चा की गई है।

श्रीकृष्ण

महाभारत का प्रत्येक पात्र चाहे वह पांडव पक्ष का हो या कौरव पक्ष का अपने आप में महत्वपूर्ण है। नायकत्व की द्दष्टि से भी उनमें प्रसंगानुसार सारे गुण मौजूद हैं। महाभारत हो या पंडवानी सारे पात्रों में श्री कृष्ण की अलग ही छवि है। श्री कृष्ण महाभारत के सूत्रधार हैं और पंडवानी के भी।वे साधारण मानव न होकर पूर्णतम पुरूषोत्तम भगवान नारायण के ही अवतार हैं। उनकी श्रेष्ठता महाभारत के राजसूय यज्ञ प्रसंग में भीष्म पितामह के इस कथन से सिद्ध होती है "मैं तो भू - मण्डल पर श्री कृष्ण को ही प्रथम पूजा के योग्य समझता हूँ।"

कृष्ण एव ही लोकानामुत्पत्तिरपि चाप्ययः।
कृष्णस्य हिकृते विश्वमिदं भूतं चराचरम् ॥
एष प्रकृतिख्यम्ता कर्ता चैव सनातन।
परश्च सर्व भूतेभ्यस्तस्मात, पूज्यतामो हरि : ॥"[77]

श्री कृष्ण के बालचरित्रों का चूंकि महाभारत के कथानक से प्रत्यक्षतः संबंध नहीं है। अतः श्रीकृष्ण की बाल लीला का वर्णन नहीं मिलता। किन्तु महाभारत के परिशिष्ट भाग हरिवंश पुराण में बाल लीलाओं का वर्णन है। महाभारत में श्री कृष्ण के बाल चरित्रों का वर्णन अन्य पात्रों के द्वारा यत्र -तत्र उल्लेखित है। यथा शिशुपाल द्वारा श्रीकृष्ण के हाथों पूतना, बकासुर केशी, वृषासुर और कंस के मारे जाने, शकट केगिराय जाने तथा गोवर्धन के उठाये जाने का निंदा के रूप में वर्णन मिलता है।

श्री कृष्ण तो पंडवानी के सूत्रधार हैं ही पंडवानी गायकों के आराध्य देव भी हैं। पंडवानी गायक पंडवानी के प्रारंभ में श्री कृष्ण की पूजा और प्रार्थना करता है -

बोलो वृंदावन बिहारी लाल की जय ....
श्याम सुखदायी मोर हलधर के भाई ग
भजन बिना बेड़ा पार नइ होय भाई ग
भजन बिना बेड़ा पार नइ होवय न।"

श्रीकृष्ण दीन दयालु हैं। वे अपने भक्तों की रक्षा स्वंय करते हैं। पांडव तो श्रीकृष्ण के अत्यंत सन्निकट और प्रिय थे। दुष्ट दुशासन द्वारा अपमानित द्रोपती के पुकारे जाने पर उन्होने अलौकिक रूप से द्रोपती की लाज रखी -

"दुख हरो द्वारिका नाथ शरण मैं तेरी
बिन काज आज महराज लाज गई मेरी।" [79]

केवल आचार्य द्रोण, भीष्म पितामह, महात्मा विदुर, संजय और तपोधन ऋषि ही उस रूप को देख पाए। क्योंकि भगवान ने उन्हें दिव्यदृष्टि प्रदान की थी। अपने उस दिव्य विग्रह को समेट भगवान श्री कृष्ण सभाभवन से उठकर महात्मा विदुर के घर चले गए -

"दुर्योधन के मेवा त्यागे
साग विदुर घर खायो जी॥ "[80]

महाभारत के युद्ध में उन्होंने अर्जुन का रथ हाँककर, सारथी बनकर पांडवों की सहायता की। श्री कृष्ण सत्य के संरक्षक हैं।आत्मग्लानि से पूरित युद्ध न करने की प्रतिज्ञा ठान लेने वाले अर्जुन को प्रेरित कर जीवन की निस्सारता व कर्तव्य परायणता का बोध कराया। मोह -माया से ग्रस्त पार्थ को जीवन सत्य का संदेश दिया जो गीता उपदेश के नाम से जाना जाता है। "तू मेरा ही चिंतन कर, मुझ से ही प्रेम कर, मेरा ही भजन-पूजन कर तथा और सबका भरोसा छोड़कर मेरी शरण में आ जा। " उनका उपरोक्त कथन भगवद् गीता का अंतिम उपदेश है।

अर्जुन के बाणों से मर्माहत इच्छानुसार शरीर छोड़ने के लिए सूर्य के उत्तरायण होने की बाट देख रहे, शर-शय्या पर पड़े भीष्म पितामह से धर्मोपदेश का आग्रह करते हुए श्री कृष्ण ने भीष्म की प्रशंसा कर कहा - "तुम्हारे शरीर छोड़कर इस लोक से जाने

के साथ ही सारा ज्ञान भी यहाँ से विदा हो जायेगा।" उनकी यह उक्ति ज्ञान के समादर की पोषिका है। अत: वे संहारक के साथ-साथ शांति के अग्रदूत हैं।

महाभारत युद्ध के पश्चात् श्री कृष्ण का सती गांधारी के क्रोध का शिकार होना पड़ा। युद्धोपरांत युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाले योद्धाओं को तिलांजली देने राजा धृतराष्ट्र, पांडव तथा गांधारी, कुन्ती, द्रोपदी व अन्य समस्त कुरूवंश की स्त्रियाँ कुरूक्षेत्र के मैदान में गए तब गांधारी ने श्री कृष्ण को श्राप दिया कि - "श्री कृष्ण तुम चाहते तो इस नरसंहार को रोक सकते थे , लेकिन तुमने ऐसा नही किया। अत:जिस प्रकार कौरवों का नाश हुआ। उसी प्रकार तुम अपने स्वजनों के नाश का कारण बनोगे और तुम स्वत: अनाथ की भांति मारे जाओगे। यही हुआ भी, श्री कृष्ण चाहते तो उस श्राप को नकार सकते थे। उनका अभीष्ट पूर्ण हो चुका था। इसलिए वे यादवों के संहार का कारण बने और स्वयं भी व्याघ के हाथों मारे गए।" (महाभारत के कुछ आदर्श पात्र, पृष्ठ 18)

महाभारत हो या पंडवानी श्री कृष्ण उनके सूत्रधार है, सृष्टा व संहारक होकर भी सत्य का ही पक्ष लिया, शांति के अग्रदूत बने, सामर्थ्यवान होकर भी गांधारी के श्राप को साधारण मानव की भाँति स्वीकार कर असाधारण होने का परिचय दिया।

भीष्म पितामह

भीष्म पितामह पंडवानी व महाभारत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र हैं। कुरूवंशी महाराज शान्तनु के पुत्र भीष्म गंगादेवी से उत्पन्न हुए थे। बाल्यकाल में इनका नाम देवव्रत था।

मोर ओही समे के बेरा मोर बोलन लागे भाई।

हाँ देवी हाँ एक बच्चा के मोला बहुत जरूरत हे। गंगा देवता के लोक चले गे। राजा शान्तनु ये लइका ल मांगत हे - लइका के नांव हे 'देवव्रत।'[81]

वसुनाम देवताओं में द्यो नामक नवम वसु ही महर्षि वशिष्ठ के श्राप से भीष्म रूप में अवतरित हुए थे। वेदों व अस्त्र -शस्त्रों में ये कुमारावस्था में ही पारंगत हो गए थे। अस्त्रों के अभ्यास के समय इन्होंने अपने बाणों के प्रभाव से गंगा की धारा को ही रोक दिया था। ये भीष्म प्रतिज्ञ और दृढ़ संकल्पी थे। अपनी भीष्म प्रतिज्ञा के कारण ही भीष्म कहलाए। पितृ भक्त भीष्म ने अपने पिता की इच्छा पूर्ति के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया।

जिस दिन राजर्षि शांतनु की दृष्टि कैवर्तराज की कन्या सत्यवती पर पड़ी थी। वे उस पर आसक्त हो गए। उसके सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा, किन्तु सत्यवती के पिता ने उनके सम्मुख यह शर्त रखी कि -सत्यवती के गर्भ से जो पुत्र होगा वह ही राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा। राजा शान्तनु ने यह शर्त स्वीकार नहीं की, किन्तु वे सत्यवती को भुला भी न सके और चिंतित रहने लगे। देवव्रत को जब अपने पिता की चिंता का कारण मालूम हुआ तो उन्होंने केवर्तराज से अपने पिता के लिए सत्यवती की याचना की और उनकी शर्तें मान ली। उसी दिन देवव्रत ने आजीवन ब्रम्हचर्य पालन का व्रत लिया और भीष्म कहलाये। ऐसे पितृभक्त और दृढ़संकल्पी थे भीष्म।

सम्पूर्ण महाभारत में भीष्म पितामह का उदात्त चरित्र मिलता है। जिस राज के लिए उनकी उपस्थिति में उनकी ही पीढ़ी में भयंकर नरसंहार हुआ,उसी राज्य को उन्होंने अपने पिता श्री की मामूली सी इच्छा के लिए परित्याग कर दिया। काशीराज की तीन कन्याओं का अपने भाई विचित्र वीर्य के लिए हरण कर अम्बा को ठुकरा दिया।

" तीनों कन्या हस्तिनापुर लावय भईया जी
लाके मड़वा म खड़ा करे भाई। "[82]

वही अंबा आगे चलकर शिखंडी के रूप में अवतरित हो भीष्म की मृत्यु का कारण बनी - "सुने अंबा का बियाकुल होवे भाई चिता जलाके मैं नदी म मरत हवं। दुसरईया जनम राजा द्रुपद घर होही मोर शिखंडी अवतार। मोर चेहरा देख के तोर बान शिथिल हो जही।" [83]

पर भीष्म ने सत्य का परित्याग नही किया। उनकी सत्यप्रियता व दृढ़संकल्प का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि उन्होने राज्य -सुख, दांपत्य -सुख से अपने आपको आजीवन अलग रखा। वे केवल संरक्षक मात्र थे अपने वंश के। सत्यवती के पिता से की हुई प्रतिज्ञा को दुहराते हुए उन्होने कहा था -" मैं त्रिलोकी का राज्य, ब्रम्हा का पद और इन दोनों से अधिक मोक्ष का भी परित्याग कर सकता हूँ। पर सत्य का परित्याग नहीं कर सकता। पांचो भूत अपने -अपने गुणों का परित्याग कर दें। चन्द्रमा अपनी शीतलता छोड़ दे और स्वयं धर्मराज भले ही अपना धर्म छोड़ दे, परंतु मैं अपनी सत्यप्रियता छोड़ने का विचार नही कर सकता। "

अम्बा प्रसंग पर ही उन्होंने सत्यप्रियता का पालन करते हुए अपने गुरू जम्दाग्नि

पुत्र परशुराम से युद्ध कर सत्यप्रियता व वीरता की पराकाष्ठा को पार कर गए। महाभारत के युद्ध में कौरव दल के सेना नायक रहे। यह जानकर भी कि - धर्म और न्याय पांडवों के पक्ष में है फिर भी कौरवों का साथ नहीं छोड़ा। महाभारत के अट्ठारह दिनों के युद्ध में दस दिनों तक उन्होंने अकेले सेना नायकत्व का कार्य किया। इससे बड़ी उदारता और क्या हो सकती है कि अर्जुन को अपनी मृत्यु का उपाय बताया। युद्ध क्षेत्र में अपनी युद्ध कला का ऐसा अद्‌भुत पराक्रम दिखाया कि अर्जुन की रक्षा के लिए स्वयं भगवान श्री कृष्ण को एक बार चक्र व दूसरी बार चाबुक लेकर भीष्म के लिए दौड़ना पड़ा।

शर- शय्या पर बाणों से बिंधे भीष्म ने भौतिक सुखों को तनिक भी नहीं चाहा। बाण बिंधे लटकते शरीर के लिए लोगों ने उत्तमोत्तम तकिए लाकर उनके सामने रखा, उन्हें पसंद नहीं किया। उन्होंने अर्जुन से विरोचित तकिए की मांग की। अर्जुन ने बाण मारकर उनका अभिप्राय पूरा किया। प्यास लगने पर भीष्म ने पानी मांगा। लोगों नें स्वर्ण कलश में शीतल जल लाया, लेकिन उसे भी भीष्म ने अस्वीकार कर दिया और अर्जुन की ओर देखकर कहा - "बेटा मुझे जल पिलाओ।" तब अर्जुन ने अपने बाण द्वारा धरती से गंगा प्रकट कर उनकी प्यास बुझायी।

भीष्म पितामह पितृभक्त, सत्यप्रिय, दृढ़प्रतिज्ञ और महावीर ही नहीं थे अपितु शास्त्रों के ज्ञाता, धर्म एवं ईश्वर तत्व के ज्ञानी और भगवद्‌भक्त भी थे। भगवान श्री कृष्ण की प्रेरणा एवं शक्ति से उन्होंने शर-शय्या पर पड़े-पड़े राजधर्म, वर्णाश्रम, आपध्दधर्म, मोक्षधर्म, श्राद्ध धर्म, दान धर्म, स्त्री धर्म आदि अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर उपदेश दिया।

युधिष्ठिर

युधिष्ठिर पांडवों में सबसे बड़े हैं। वे साक्षात् धर्म के अंश और उच्च्च कोटि के महापुरूष हैं। अपने पिता पांडु की मृत्यु के पश्चात उन्होंने अपने ज्येष्ठ पिता धृतराष्ट्र के संरक्षण में अपने भाईयों का प्रतिनिधित्व किया। दुर्योधन अपने कुटिल स्वभाव के कारण पांडवों से ईर्ष्या करता था। अतः धृतराष्ट्र ने दुर्योधन के षड्‌यंत्र के तहत उनकी माता के साथ पांडवों को वारणावत भेज दिया। लाक्षा भवन में उन्हें जलाने का षड्‌यंत्र रचा गया, किन्तु विदुर की सहायता से पांडव बच निकले। द्रोपदी स्वयंबर पश्चात् पांडवों का रहस्य खुलने तथा पांडवों की हस्तिनापुर वापसी के पश्चात् धृतराष्ट्र की सलाह से खांडवप्रस्थ में रहना स्वीकार किया। इस प्रकार युधिष्ठिर ने अपने ज्येष्ठ पिता धृतराष्ट्र की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं किया। चाहे वह द्युत क्रीड़ा के लिए आमंत्रण ही क्यों न

हो। युधिष्ठिर द्युत क्रीड़ा का दुष्परिणाम जानते थे। जुआँ में हारने के बाद वनवास की शर्त पर पुनः जुआ खेलना स्वीकार कर लिया। यद्यपि वे कौरवों की नीयत से भलीभाँति परिचित थे, पर धृतराष्ट्र की आज्ञा न टाल सके।

धर्मराज काला लगावत हवे भईया
रूपिया -पईसा , सोना-चाँदी लगावत हवे भाई।
रथे ल गा घोड़ा ल लगावन लागे भाई
फेंकन लगे गा ये दे पासा ल भाई।" [84]

युधिष्ठिर ने अपने भाईयों व द्रौपदी के साथ बारह वर्ष का वनवास व एक वर्ष का अज्ञात वास व्यतीत किया, कभी भी धर्म का परित्याग नहीं किया। धर्म के निर्वाह के लिए चुपचाप बिना किसी विरोध के सब कुछ सह लिया। जुआँ में हारने के बाद सभासदों के बीच पांडव पत्नी द्रौपदी के अपमान को युधिष्ठिर धर्म की रक्षा के लिए सह गया। क्यों! कोई सहज मानव अपनी पत्नी का घोर अपमान सह सकता है ? शकुनि ने उन्हें जुआ में छल-कपट पूर्वक जीता। यह जानते थे पर वे सत्य व धर्म की रक्षा के लिए अडिग थे। उनके हृदय में सबके लिए सदा समता थी। वास्तव में उनका कोई शत्रु नहीं था, वे अजात शत्रु थे। पांडव जब द्वैतवन में थे, तब दुर्योधन घोष यात्रा के बहाने वहाँ सेना के साथ पहुँचा। दुर्योधन को गंधर्वों ने घेर लिया। भीषण युद्ध हुआ। ऐसी विषम परिस्थिति में भी युधिष्ठिर ने अपने भाईयों को भेजकर उन्हें बंधन मुक्त कराया। क्या ? शत्रु के लिए ऐसी उदारता आम आदमी के लिए संभव है ? इसी प्रकार सिंधु नरेश जयद्रथ द्वारा द्रौपदी के हरण कर लेने पर भी महाराज युधिष्ठिर ने उसे दयापूर्वक छोड़कर अपनी क्षमाशीलता और दयालुता का परिचय दिया। यक्ष के प्रश्नों का समुचित उत्तर देकर अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। वे सदाचारी और विनयी थे। महाभारत युद्ध में युद्धारम्भ के पूर्व शत्रु सेना के बीच जाकर भीष्म पितामह, गुरू द्रोण, कृपाचार्य आदि के चरणों में प्रणाम कर आशीर्वाद लिया। वे सत्यवादी भी थे। उन्होंने लोभ या भय वश कभी असत्य भाषण नहीं किया। यह उनका सत्य भाषण का ही परिणाम था कि उनका रथ पृथ्वी से चार अंगुल उपर चलता था। द्रोणाचार्य के सामने 'अश्वत्थामा मारा गया' इस असत्य भाषण के कारण उनका रथ पृथ्वी से सटकर चलने लगा। उन्हें क्षण भर के लिए कल्पित नरक का दृश्य भी देखना पड़ा।

युधिष्ठिर परम संतोषी थे। वे युद्ध नहीं चाहते थे। उन्होंने इसे टालने का भरसक

प्रयास किया उन्होंने श्री कृष्ण के माध्यम से दुर्योधन तक यह कहला भेजा कि वे (दुर्योधन) हमें पाँच गाँव भी देना मंजूर कर लें तो हम युद्ध न करेंगे। युद्धोपरांत युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ, तब गांधारी और धृतराष्ट्र इन्हीं के पास रहने लगे। लेकिन युधिष्ठिर ने उनके साथ ऐसा कोई व्यवहार नहीं किया, जिससे उनकी पुत्र पीड़ा जगे बल्कि उन्हें पितृवत आदर और सम्मान दिया।

यादवी संहार के पश्चात् श्रीकृष्ण के परम धाम गमन की बात सुनकर युधिष्ठिर ने वन जाने का निश्चय किया। अर्जुन पौत्र परीक्षित को राजगद्दी दे, कृपाचार्य व धृतराष्ट्र पुत्र यु युत्सु को उनकी देखभाल का कार्यभार सौंपकर चारों भाईयों व द्रौपदी को साथ ले वन मार्ग की ओर चल पड़े। देश-देशान्तरों को घूमते हुए हिमालय पारकर मेरू पर्वत की ओर बढ़े। पथ में ही उनके चारों भाई व द्रौपदी गिरते-गलते गए पर युधिष्ठिर बढ़ते गए। अंततः अपने स्वामी भक्त कुत्ते के साथ सशरीर स्वर्ग पहुंचे।

अर्जुन

नायकत्व की दृष्टि से अर्जुन महाभारत के नायक हैं। वे कुशल क्षत्रिय योद्धा और पराक्रमी हैं। महाभारत में उनकी वीरता और पराक्रम की अनेक कथाएं जुड़ी हैं। पांडवों में भले ही युधिष्ठिर बड़े हैं किन्तु पराक्रम की दृष्टि से अर्जुन सबसे श्रेष्ठ हैं। चाहे वह गुरू द्रोणाचार्य द्वारा आयोजित पक्षी के नेत्र बेधन की परीक्षा हो या द्रोपदी स्वयंबर या अन्य प्रसंग। सब में अर्जुन ही सर्वश्रेष्ठ हैं। जबकि नायकत्व की दृष्टि से पंडवानी में भीम प्रमुखता से दृष्टिगोचर होते हैं। संभव है यह पंडवानी की लोकरंगी दृष्टि से प्रभावित हो। महाभारत हो या पंडवानी, नायक चाहे अर्जुन हो या भीम किन्तु अर्जुन की उपस्थिति और उसकी श्रेष्ठता से किंचित् भी असहमति व्यक्त नहीं की जा सकती।

अर्जुन श्रीकृष्ण के परम भक्त, सखा और उनके अनुगामी थे। वे महाभारत युद्ध में निमित्त मात्र थे। सारा खेल तो श्रीकृष्ण का था।यह बात श्रीकृष्ण द्वारा गीतोपदेश व उनके विश्वरूप दर्शन से स्पष्ट होती है। अर्जुन श्रीकृष्ण के अत्यंत प्रिय थे। यही कारण थे कि बलराम के न चाहते हुए भी श्रीकृष्ण ने अपनी बहन सुभद्रा का विवाह अर्जुन से किया - "सखी मन चिल्लावत हे - बचाव-बचाव न जाने कोन साधु ह सहोदरा ल धर के भगावत हे। ये बात ल सुनके -

ततरोस हल ले बलराम बोले भईया
ये दे भईया लेगे-लेगे काहे भाई
ये दे बेटी सहोदरा ल लेगे भाई

कहे सरी यदुवंशी सेना ल सजाव। अनेक प्रकार के बाण बरसावे। फेर बलराम अर्जुन के पार नई पावे। बलराम के आंख लाल होगे।" [85]

श्रीकृष्ण महाभारत के युद्ध में अर्जुन के सारथी बने। यह अर्जुन के श्रीकृष्ण प्रेम का सबसे बड़ा प्रमाण है कि महाभारत युद्ध में उन्होंने श्रीकृष्ण की नारायणी सेना के बजाय श्रीकृष्ण को ही चुना। इन सारी श्रेष्ठताओं व श्रीकृष्ण कृपा के बाद भी अर्जुन भयाक्रांत रहते थे। भय का कारण था कर्ण। कर्ण और अर्जुन में एक-दूसरे के प्रति शुरू से ही ईर्ष्या थी दोनों एक-दूसरे के प्राणों के प्यासे थे। भीष्म की मृत्यु के बाद श्रीकृष्ण को अर्जुन के लिए सर्वाधिक भय कर्ण से ही था। क्योंकि अर्जुन का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी कर्ण ही था। ऐसे अवसरों पर श्रीकृष्ण ने अपनी चाल के द्वारा कर्ण को कमजोर कर अर्जुन को भयमुक्त किया।

अर्जुन ने धर्मच्युत होकर कोई कार्य नहीं किया। विषम परिस्थितियों में भी धर्म का परित्याग नहीं किया। ब्राम्हण की गौओं की रक्षा कर उन्होने नियम भंग के कारण बारह वर्ष तक ब्रम्हचर्य का पालन कर वनवास भोगना स्वीकार किया। परन्तु, नियमोल्लंघन नहीं किया। इंद्रलोक में उर्वशी को नेत्र बंद कर मातृवत् प्रणाम किया। जिससे शापित होकर एक वर्ष तक वृहन्नला का जीवन जिया।

अर्जुन श्रेष्ठ धनुर्धर थे। द्रोणाचार्य का यह कथन कि - "अर्जुन तुम्हारे समान धनुर्धर संसार में नहीं होगा।" इस कथन की सार्थकता अर्जुन ने पांचाल नरेश द्रुपद को परास्त कर गुरू द्रोणाचार्य के सम्मुख उपस्थित होकर सिद्ध की और गुरू दक्षिणा चुकाया। वनवास के समय अर्जुन ने भील रूप शंकर से युद्ध कर अपने पराक्रम का परिचय दिया। अज्ञात वास के समय विराटनगर में भी वृहन्नला के रूप में राजा विराट के साठ हजार गौओं की रक्षा कर उत्तर कुमार के प्राणों की रक्षा कर उनके मान-सम्मान की रक्षा की।

"जाके रथ में बइठन लागे भईया
रथे अर्जुन खेदन लागे भाई।" [86]

वीरता के साथ यह स्वामीभक्ति का भी परिचायक है।

कृतज्ञ राजा विराट ने अपनी पुत्री उत्तरा के विवाह का प्रस्ताव अर्जुन के सम्मुख रखा, किन्तु अर्जुन ने उसे ठुकरा दिया, क्योंकि शिष्या पुत्रीवत होती है। उसे अपनी पुत्रवधु के रूप में स्वीकार किया। यही है वीरता के साथ-साथ धर्म का पालन महाभारत युद्ध में तो अर्जुन का ही वर्चस्व था। जिसके सारथी श्रीकृष्ण हो, उसकी

वीरता अद्भूत होगी ही । भीष्म पितामह, गुरू द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा जैसे महान योद्धाओं से लोहा लेना अर्जुन जैसे वीर का ही कार्य हो सकता है । पुत्र शोक से विचलित अर्जुन ने जयद्रथ के वध का संकल्प लिया और श्रीकृष्ण की कृपा से सूर्यास्त होते-होते जयद्रथ का शीष अपने तीक्ष्ण बाण से काट लिया ।

अर्जुन इंद्रियजयी थे । अश्वत्थामा द्वारा पांडव पुत्रों की हत्या के प्रसंग में भीम और अर्जुन को आते देखकर अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया । अर्जुन ने भी प्रत्युत्तर में ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया । दोनों ब्रह्मास्त्रों के टकराने से हजारों उल्काएं गिरने लगीं । अनिष्ट न हो इसलिए देवर्षि नारद व महर्षि व्यास की इस समझाइस पर अर्जुन ने अपना ब्रह्मास्त्र तो वापम कर लिया लेकिन अश्वत्थामा असंयमी होने के कारण अपना ब्रह्मास्त्र नहीं लौटा सका जो उत्तरा के गर्भ में गिरा । इस प्रसंग में भी अर्जुन का इंद्रियजयी पराक्रम परिलक्षित होता है ।

कहने का आशय यह है कि अर्जुन का चरित्र पंडवानी में पराक्रम से परिपूर्ण है। अर्जुन लोकानुभूति के दृष्टि से भले ही पंडवानी के नायक न हों, लेकिन वीरता में भीम से किसी मायने में कम नहीं । महाभारत के वह नायक तो हैं ही ।

भीम

महाभारत का पात्र भीम जितना महान योद्धा है, जितना बड़ा पराक्रमी है , वीर है उससे कहीं अधिक योद्धा और पराक्रमी पंडवानी का पात्र भीम है । भीम तो पंडवानी का नायक है । इस बात का उल्लेख पूर्व में ही किया जा चुका है । पंडवानी भीम के अचरज भरे कारनामों, उसकी अद्भूत वीरता और पराक्रमों से पूर्ण है । संभव है यह पंडवानी की अपनी आंचलिकता व परिवेशगत वैशिष्ट्य हो, किन्तु यह पात्र महाभारत में भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । अर्जुन जैसे महावीर के पश्चात् पांडवों के पक्ष में भीम की ही प्रमुखता है । पंडवानी में भीम न होकर भीमसेन के नाम से पुकारा जाता है जो उसके विशालकाय शरीर और अदम्य बल का परिचायक है ।

भीम बाल्यकाल से ही शक्तिशाली और अद्भूत सूझबूझ वाला पात्र है । पांडवों से दुर्योधन की कभी नहीं बनी । खासकर भीम से । इसलिए दुर्योधन उसे अपने रास्ते से साफ करना चाहता है । जलक्रीड़ा के प्रसंग में खेल-खेल में भीम कौरवों को पके फल की भाँति हिला कर गिरा देते हैं -

"खेलत भीम और सौ भाई, भीम कह लौ जीति न जाई
एक वृक्ष पर हैं सब भाई, चढ़े जाई तब भीम हलाई।
धाय वृक्ष तब भीम हलायो, गिरै सबै तो थाह न पायो।
पेड़ हलाय दीन्ह तो हांका, परे भूमि जिमि सब फल पाका।" [87]

X X X X

इसी प्रकार एक चक्र नगरी में निवास करते समय बकासूर राक्षस का भीम द्वारा मारा जाना, भीम को महाभारत के अन्य पात्रों की अपेक्षा विशिष्ट श्रेणी में दर्शाता है, जिसने माता कुन्ती के कहने पर गरीब ब्राम्हण परिवार की रक्षा की। हिडिम्बा प्रसंग में भी भीम की ओजस्विता और अपार शक्ति का परिचय मिलता है।

आद्योपांत महाभारत में भीम अपूर्ण बलशाली के रूप में चित्रित हुआ है , किन्तु पंडवानी में यह रंग और भी निखरा है। उसकी बौद्धिक सूझबूझ और उसकी चमत्कारिक शक्ति उसे पंडवानी का नायक प्रतिस्थापित व प्रमाणित करती है -

"अगा भीमसेन बली दऊंड़े भईया
तब दोनों के माते लड़ाई भईया
पांडव , भीम अऊ हिडिम्ब गदायुद्ध बर तईय्यार होगे
दोनों मारा के मारी होवन लागे भईया।" [88]

X X X X

अहिरमती प्रसंग हो या राजसूय यज्ञ की सफलता के लिए सुफलभगत को लाने का कार्य हो या द्रौपदी को दुर्योधन द्वारा अपमानित करने, दुष्ट दुशासन द्वारा उसके चिरहरण का प्रसंग। इन सबमें भीम की अलग ही छवि सामने आती है। द्रौपदी के चीरहरण के समय जब अन्य पांडव सिर झुकाये बैठे थे, तब भीम इस अपमान से तिलमिला उठते हैं , आंखे लाल हो जाती हैं। उसी वक्त दुशासन की भुजा उखाड़ने की सौगंध खाते हैं।

विराट नगर में अज्ञातवास का समय व्यतीत करते भीम ने छद्म रूप में द्रौपदी के अपमान के समय जब अन्य पांडव कुछ कहने में असमर्थ थे, तब भी भीम ने ही द्रौपती (सरेन्ध्री) की लाज की रक्षा की। उन्होंने अपनी बौद्धिक चतुरायी से द्रौपदी का स्वांग रच अपराजेय कीचक और उसके सौ भाईयों को मार डाला।

"जर जुड़ न ताप, कीचक मरगे आपे आप

x x x x

रानी के बहिनी राजा के सारा

किसने मारा ? मैंने मारा, मैंने मारा।" [89]

x x x x

इसी प्रकार जयद्रथ द्वारा द्रौपदी का हरण कर लिये जाने पर दयालु युधिष्ठिर ने तो उसे क्षमा कर दिया, लेकिन जयद्रथ को छोड़ने के पूर्व भीम ने उसका मुंडन कर शेष चोटी में बेल व गले में घोंघे आदि लटका कर उसे कुरूप कर छोड़ा। भीम के चरित्र में ऐसी मनोरंजकता पंडवानी में ही मिलती है। पंडवानी के अंतर्गत "नकुल बिहाव" प्रसंग में भी भीम के मनोरंजक चरित्र के दर्शन होते हैं। धावन (दूत) को देखकर एक छोटे बालक का रूप धारण कर लेते हैं।

करिया करलुठवा रेमटा अनघटहा हे रामा,

दइतला होवय ददा हमरो कस भाई।

बोड़री ले लार चुचवावत हवय हे रामा,

आँखी में लोंदा -लोंदा चिपरा राहे भाई॥" [90]

पंडवानी का पात्र भीम वीर महाबली के साथ -साथ एक प्रकार से विदूषक के रूप में दिखाई पड़ता है जबकि महाभारत के भीम में विदूषकीय चरित्र का अभाव ही दिखता है।

महाभारत का युद्ध तो भीम के रण कौशल्य से पूरित है। अश्वत्थामा हाथी के वध से लेकर दूर्योधन के साथ गदा युद्ध तक भीम का पराक्रम हमें दिखाई पड़ता है। किन्तु पंडवानी का भीम निश्चित रूप से महाभारतीय पात्र भीम से कई मायनों में भिन्न है। भले ही यह भिन्नता कथानक की असमानता के कारण हो या पंडवाननी की आंचलिकता के कारण।

कुंती

कुंती का जीवन पीड़ा और त्याग का जीवन है बाल्यकाल में ही पितृ स्नेह से वंचित कुंती राजा कुंती भोज की गोद पुत्री थी। वसुदेव की बहन, श्रीकृष्ण की बुआ और पांडव की माता कुंती ने बाल्यकाल में पश्चाताप का जीवन जीया। कुंती की सेवा से संतुष्ट हो दुर्वासा ने जो माल मंत्र उसे दिया था, बाल स्वभाव वश उसके परीक्षण मात्र

से ही कुँवारी कुंती ने कर्ण को जनम देकर गंगा में बहा दिया -

"धीरे -धीरे जाप करन लागे भाई
ये माला के जाप करन लागे भाई

भईया माता कुंती ओ अठोत्री माला ले करके जेला माल मंत्र कहिथे सूर्यनारायण के आराधना करथे।

ये सूर्य देवता ह परगट होवन लागे भाई
सूर्य देवता परगट हो के कथे
मांगव ओ मांगव काहन लागे भाई।" [91]

X X X X

जिसके कारण वह सिर न उठा सकी। तदन्तर पांडु की व्याहता बनकर वीर पांडवों की माता होकर भी संत्रास और मानसिक अन्तर द्वन्द्व में जीती रही। यह संत्रास कौरव पक्ष से था और मानसिक अन्तरद्वन्द्व कर्ण के कारण।

पति की मृत्यु के बाद तो कुंती का जीवन और भी कष्टप्रद रहा, किन्तु उसने धैर्य कभी न त्यागा। वह बड़ी कोमल हृदया और दयालु थी। तभी तो एक चक्रानगरी में बकासुर वध के लिए अपने पुत्र भीम को भेजकर गरीब ब्राम्हण परिवार की रक्षा की। "आज ये ब्राम्हनीन घर पारी हे बेटा ओखर एके झन बेटा हे त ब्राम्हण अऊ ब्राम्हनीन रोवथे। त मैं वचन हारे हवं -

X X X X
तोला दुहूं रे वचन हारेंव लाला
दानो के भोजन आज तेहां जाबे बेटा

भीम ब्राम्हनीन ल वचन हार के आए हवं बेटा, के तोर बेटा के बदला में मोर बेटा ल दुहूं।" [92]

पुत्रों के साथ वनवासी सा जीवन व्यतीत किया पर अपना धर्म नही त्यागा। द्रोपदी स्वयंवर के पश्चात अंजान में कहे अपने वचन कि - "बेटा पाँचो भाई इसे आपस में बॉट लो" पर अडिग रही। और द्रोपदी तब पाँचो पांडवों की पत्नी हुई।

पांडवों के वनवास के समय भी कुंती ने श्री कृष्ण के द्वारा अपने पुत्रों को क्षात्र - धर्म पर अडिग रहने के लिए प्रेरित किया। युद्धोपरांत पांडवों की विजय के पश्चात् चाहती तो कुन्ती राज माता बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती थी, किन्तु

नहीं। उसने ऐसा नहीं किया। अपने जेठ- जेठानी की सेवा का भार अपने ऊपर ले लिया। सांसारिक सुख भोग को त्याग कर, त्याग और तपस्या का जीवन बिताया। अंत में अपने जेठ-जेठानी के साथ वन चलीं गयीं और इन्हीं के साथ दावाग्नि में जलकर योगियों की भांति शरीर छोड़ दिया।

पंडवानी में कुंती का नाम कोतमा और कुंती दोनों ही है। किन्तु दोनों पात्रों मे साम्य है।

"ठाढ़ राणी देखेंव जैतापुर में भाई
पाँच झन बेटा माता कोतमा के भाई।" [93]

द्रोपदी

द्रोपदी महाभारत की नायिका है। यदि यह कहा जाय कि महाभारत का युद्ध द्रोपदी के ही कारण हुआ है तो अतियोक्ति न होगी, क्योंकि महाभारत युद्ध के तीन मूल कारणों जर,जोरू और जमीन में यह भी एक कारण है। राजसूय यज्ञ के समय मय दानव द्वारा निर्मित सभा भवन में दुर्योधन के पानी में गिरने पर द्रोपदी की इस व्यंग्योक्ति के द्वारा कि "अंधवा के बेटा अंधवा रही" अपमानित होने पर दुर्योधन ने इस अपमान की बदला लेने की प्रतिज्ञा की। जिसके दुष्परिणाम के रूप में द्रोपदी का चीरहरण हुआ। इसी घटना ने महाभारत के लिए आग में घी का काम किया।

द्रोपदी को पंडवानी में दुरपती कहा जाता है। द्रोपदी का एक अन्य नाम पांचाली महाभारत और पंडवानी में समान रूप से आता है। द्रोपदी पांचाल देश की पुत्री थी। अत: उसका नाम पांचाली पड़ा। छत्तीसगढ़ में आज भी समान्य व्यवहार में बहुओं को उनके वास्तविक नाम के स्थान पर उनके पितृ स्थान के नाम के साथ हिन प्रत्यय जोड़कर संबोधित किया जाता है। यथा यदि बहू रायपुर से आई है तो रायपुरहिन,दुर्ग से आयी है तो दुर्गहिन, नांदगांव से नंदगहिन, खैरागढ़ से खैरागढ़हिन, गंडई से गंड़इहिन आदि। द्रोपदी के पांच पति थे। फिर भी उसके सतीत्व पर कोई आक्षेप भले ही न हो किन्तु यहां लोक व्यवहार में द्रोपदी का पांचाली नाम उलाहना, ताना और मनोविनोद के लिए व्यंग्योक्ति के रूप में किया जाता है। ननंद- भौजई का मजाकिया संबंध होता है। छत्तीसगढ़ में आज भी ननंद-भौजई एक दूसरे को पांचाली कहकर चिढ़ाती हैं। महिलाएं लड़ाई-झगड़े में भी परस्पर पंचालिन शब्द का प्रयोग करती हैं। क्योंकि पांचाली के पांच पति थे।अत: अपरोक्ष रूप से वे एक दूसरे को पांच पतियों वाली दुर्व्यसनी,वेश्या

कहकर लज्जित करती हैं।

जिस प्रकार कुन्ती वीर प्रसूता होकर भी सुखी और चिंतामुक्त नहीं रही ठीक उसीप्रकार द्रोपदी वीरों की भार्या होकर भी सुखी और निर्भय नहीं रही। कैशोर्यावस्था में ही उसे पांच पतियों का वरदान मिला। "ओ समय क्रोध हो के कामधेनु श्राप देथे जा, अरे मैं तो जानवर के रूप में पांच ठन सांड़ ल ले के घूमत हवं द्वापर के अंतिम में तोर पांच पति होही अऊ पति ल लेके -

जंगल-जंगल में जहँ घूमबे बाई
ये दे कइसे श्रापे देवन लागे भईया॥"[94]

स्वयंबर सभा में भी द्रोपदी के लिए युद्ध हुआ।मय दानव द्वारा निर्मित सभाभवन में दुर्योधन को जिस ढंग से उसने अंधे का पुत्र कहकर उपहास का पात्र बनाया उस कारण भी द्युत क्रीड़ा में पांडवों की पराजय के पश्चात् द्रोपदी को दुर्योधन और दुशासन के द्वारा अपमानित होना पड़ा। श्री कृष्ण द्वारा चीर बढ़कर द्रोपदी की लाज रखी गई।

राज प्रासाद हो या वनवास का समय द्रोपदी ने अपने पति - परायणता का परित्याग नहीं किया। पांडवों के सुख-दुख में बराबर की सहचारी रही। विराट नगर में अज्ञातवास के समय सैरन्ध्री के रूप में दासी का कार्य किया, तब भी क्षत्राणी धर्म का, स्वाभिमान और पतिव्रत्य धर्म का पग-पग पर पालन किया। उसने राज -रानी का सुख, वैभव नहीं भोगा। दुर्योधन, दुशासन,जयद्रथ,कीचक के द्वारा अपमानित होती रही। महाभारत युद्ध के अंतिम चरण में उसे और अधिक पीड़ा हुई। जब अश्थात्मा द्वारा उसके पुत्रों की हत्या कर दी गई। महाभारत युद्ध में कौरवों का जो नाश हुआ, उसका मूल द्रोपदी का ही अपमान था, नारी के सतीत्व का अपमान।

गांधारी

गांधारी गांधार नरेश सुबल की पुत्री और शकुनि की बहन थी। विवाह के समय जब इन्हें मालूम हुआ कि इनके पति धृतराष्ट्र नेत्रहीन हैं। तभी से गांधारी ने अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली थी। गांधारी बड़ी निर्भिक,न्याय प्रिय थी। सदा सत्य,धर्म और नीति का पक्ष लिया,अन्याय का कभी समर्थन नहीं किया। दुर्योधन व दुशासन ने सभा भवन में द्रोपदी का जो घोर अपमान किया उसके वस्त्र उतारने का दुष्प्रयास किया, उसका उन्हें बड़ा संताप हुआ। राजा धृतराष्ट्र ने जब दुबारा पांडवों को द्युत क्रीड़ा के लिए आमंत्रण भेजा, तब गांधारी ने अपने पति का विरोध करते हुए कहा -"स्वामी! दुर्योधन

जन्म लेते समय गीदड़ के समान रोने-चिल्लाने लगा था। इसलिए उसी समय बिदुर ने इस पुत्र के परित्याग का सुझाव दिया था। इसके दुष्कृत्यों को देखकर लगता है कि यह कुरू वंश का नाश करके ही छोड़ेगा। इस ढीठ मूर्ख की हाँ में हाँ न मिलाइये।''

महाभारत युद्ध के पूर्व पांडवों के संधि प्रस्ताव के समय भी गांधारी ने दुर्योधन के कृत्यों के लिए अपने पति को दोषी कहा - ''आपने इस मूर्ख दुरात्मा, कुसंगी, दुराचारी और लोभी पुत्र को बिना सोचे समझे राज-गद्दी दे दी। उसी का यह फल आप भोग रहें हैं।'' गांधारी श्री कृष्ण की महिमा और श्री कृष्ण के पराक्रम को जानती थी। इसलिए उसने संधि स्वीकार करने की सलाह दी। दुर्योधन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। आखिर वही हुआ जो होना था। महाभारत युद्ध में कौरव वंश का नाश हुआ। गांधारी ने कुरूक्षेत्र में जब हृदय विदारक दृश्य देखा तो पुत्र शोक से पीड़ित हो क्रोधित होकर श्री कृष्ण को श्राप दिया। ''कृष्ण यद्यपि पांडव और कौरव अपनी फूट के कारण नष्ट हुए हैं। किन्तु तुमने जान बूझकर कौरवों के संहार की उपेक्षा की। चाहते तो तुम इन्हें अपने प्रभाव से दबा सकते थे, समझा सकते थे। पर ऐसा नहीं किया। इसलिए मैंने पति परायणता, पति सेवा से जो तप संचय किया है, उसी के बल पर मैं तुम्हें यह श्राप देती हूँ कि तुम भी अपने यादव वंश के नाश का कारण बनोगे और खुद अनाथ की तरह मारे जाओगे।'' (महाभारत के कुछ आदर्श पात्र, पृष्ठ 83)

युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के पश्चात् वहां कुछ समय तक रह कर गांधारी अपने पति के साथ वन को चली गई और तपस्वी जीवन बिताकर पति के साथ दावाग्नि में जलकर कुबेर लोक गईं।

विदुर

विदुर विचित्र वीर्य की दासी के गर्भ से पैदा हुए थे - ''दासी मार छन्नक - छन्नक-छन्नक हांसत कूदत नाचत गीस। कहिस जा तोर बेटा होही तेन भगवान के भक्त होही। अऊ एखर नाव होही भक्त विदुर।''[95]

ये बड़े धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, विद्वान और सदाचारी और धृतराष्ट्र के मंत्री थे। अपनी सद्प्रवृत्तियों के कारण महात्मा नाम से जाने जाते हैं। दुर्योधन के जन्म के समय अमंगल सूचक उत्पातों को सुनकर इन्होने धृतराष्ट्र को दुर्योधन का परित्याग करने की सलाह दी थी।'' आपका यह पुत्र कुलनाशक होगा। इसलिए इसका परित्याग करना ही श्रेयस्कर है। इसके जीवित रहने पर आपको दुख उठाना पड़ेगा। शास्त्रों में कथन है कि कुल के

लिए मनुष्य का, ग्राम के लिए कु ल का, देश के लिए ग्राम का और आत्मा के लिए सारी पृथ्वी का परित्याग कर देना चाहिए।'' परन्तु धृतराष्ट्र ने विदुर की बात नहीं मानी। ऐसे नितिज्ञ थे विदुर।

विदुर बड़े निर्भिक और साम्यवादी विचारों के थे। दुर्योधन के अत्याचार से पीड़ित पितृहीन पांडव इनकी सहानुभूति के पात्र बने। क्योंकि विदुर स्वयं पितृहीन और धर्मात्मा थे। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पांडव की सहायता करते रहे, सलाह देते रहे। विदुर जानते थे कि पांडव पर कितनी ही विपत्तियाँ क्यों न आवे। अंततः विजय उनकी ही होगी। ''यतो धर्मस्ततो जयः।'' पांडवों के वारणावत प्रस्थान के समय विदुर ने उन्हें आने वाली विपत्ति की सूचना देकर उसका निदान भी बताया तथा पांडवों के निकलने के लिए सैनिकों से कहकर सुरंग खुदवा दी थी।

शकुनि की सलाह पर दुर्योधन ने पांडवों को द्युत क्रीड़ा के लिए बुलवाने का प्रस्ताव अपने पिता के सामने रखा तब भी विदुर ने शकुनिं के छलकपट व पाप पूर्ण प्रस्ताव का विरोध किया। द्रोपदी के अपमान के लिए दुशासन को भरी सभा में भीमसेन व द्रोपदी से क्षमा मांगने के लिए कहा। विदुर श्री कृष्ण के प्रिय थे। जब श्री कृष्ण पांडवों के शांति दूत बनकर कौरवों के पास संधि प्रस्ताव लेकर गये तब दुर्योधन के आथित्य को ठुकराकर वे विदुर के अतिथि बने -

''दुर्योधन के मेवा त्यागे
साग विदुर घर खायो जी।'' [96]

कुरूक्षेत्र के मैदान पर कौरवों के विनाश से जब धृतराष्ट्र शोक संतप्त थे, तब उस समय विदुर ने मृत्यु की अनिवार्यता का निरूपण करते हुए यह कहा कि - ''युद्धों में मारे जाने वालों की गति बड़ी उत्तम होती है। अतः उनके लिए शोक नहीं करना चाहिए।'' विदुर ने संसार की अनित्यता, निःसारता व परिवर्तन शीलता को प्रतिपादित किया। युधिष्ठिर के राज्यभिषेक के बाद जब धृतराष्ट्र पांडवों के पास रहते थे, तब भी विदुर उन्हें धर्म चर्चा सुनाया करते थे।

विदुर धृतराष्ट्र और गांधारी के साथ वन को चले गये। निर्जन वन में एकांत वास करने लगे। जब युधिष्ठिर अपने परिवार व सेना के साथ अपने ज्येष्ठ माता-पिता के दर्शन के लिए वन गए। तब विदुर को देखकर उनके विषय में पूछा। तब विदुर दूर दिखाई दिये। विदुर सिर पर जटा, मुख पर पत्थर दबाये दिगम्बर वेश में थे। युधिष्ठिर ने देखा कि

उनका अस्थि पिंजर मात्र रह गया है। युधिष्ठिर ने उनकी पूजा अर्चना की। विदुर समाधिस्थ होकर निर्निमेष युधिष्ठिर की ओर देखा और अपने योग बल से अपने अंगो को युधिष्ठिर के अंगों में, इन्द्रियों को इन्द्रियों तथा प्राणों को प्राणों में मिलाकर उनके शरीर में प्रवेश कर गए।

दुर्योधन

धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन कौरवों में सबसे बड़ा था। जो महाभारत में कौरवों के माथे का कलंक साबित हुआ। दुर्योधन जन्म लेते ही गीदड़ की तरह बोलने लगा था। अनेक अपशकुन हुए। दुर्योधन बचपन से जिद्दी, दुष्ट और अहंकारी था। पांडवों से इसकी कभी नहीं बनी। यह पांडवों की शक्ति और श्री सम्पन्नता से सदैव ईर्ष्या करता था। भीम तो इसकी आँखो के लिए किरकिरी था। उसे मारने के अनेक प्रयास किए, लेकिन सफलता नही मिली। भोजन में जहर देकर गंगा में बहा दिया -" दुर्योधन कथे अरे ये ला पकड़ के वाह मारव तहाँ एखर मस्ती घुसर जाही। तहाँ सबो लइका मन पकड़ लीन भीमसेन ल मारन लगे भईया। "[97] शकुनि की सलाह पर दुर्योधन ने पांडवों को मारने के लिए लाखा महल का दुष्चक्र रचा।

"का बतावं ममा पांडव मारे के उपाय बता दे ग पांडव मारवं ममा।
वरूण नगर में महल बनाव ममा, लाखा के महल बनावत कहे भाई।"[98]

विदुर की सहायता से पांडव जलते हुए लाखा महल से बच निकले। कौरवों ने समझा कि पांडव जल कर मर गए। दुर्योधन ने अंत तक पांडवों को कष्ट पहुँचाया उन्हें छला। द्रोपदी स्वयंवर में भी पांडवों से युद्ध किया, लेकिन दुर्योधन को पराजित होना पड़ा। पांडवों को द्युत क्रीड़ा के लिए आमंत्रित कर शकुनि ने छल - कपट से पांडवों का सर्वस्व जीत लिया। द्रोपदी को बीच सभा में अपमानित किया। दुशासन ने द्रोपदी का चीर हरण किया। यह सब अन्यायी, अत्याचारी दुर्योधन का ही दुष्चक्र था -

"ये दे रोवथे न
रानी रोवे दाई
मोरे तीरे दुशासन चीरे ग ये दे ग भाई जी"[99]

फलस्वरूप पांडवों को वनवासा भोगना पड़ा, लेकिन उन्हें बिना युद्ध के पांच गाँव भी देना स्वीकार नहीं किया।

दुर्योधन की हठधर्मिता के कारण अट्ठारह दिनों तक घोर महाभारत युद्ध हुआ, जिसमें दुर्योधन ने षड्‌यंत्रपूर्वक अर्जुन पुत्र अभिमन्यु का क्रूर वध किया। दरअसल दुर्योधन की क्रूरता की सीमा नहीं थी। वह अन्यायी और अधर्मी था। उसे धर्म सम्मत बातें भी बुरी लगती थी, वह षड्‌यंत्रकारी था। उसने कभी किसी का भला नहीं चाहा, इसलिए उसका भी भला नहीं हुआ। उसकी हठधर्मिता ही कौरव वंश के नाश का कारण बनी। अंत में स्वयं भी भीम के द्वारा गदायुद्ध में मारा गया।

महाभारत और पंडवानी दोनों में दुर्योधन खलनायक है। दोनों में उसके चरित्र में अंतर नहीं है। वह हद दर्जे का अन्यायी, अत्याचारी, हठधर्मी और षड्‌यंत्रकारी है।

कर्ण

कर्ण कुँवारी कुंती के गर्भ से पैदा हुए थे। लोक-लाज के भय से कुंती ने उसे गंगा में बहा दिया था - "कुंती लइका ल धर के खड़ा होगे। लइका ल धर के कुंती रोय लगिस - बेटा अरे मैं जनम देंव बेटा फेर पालन करे के सामर्थ मोर करा नइहे। तोला गांव म लेगहंव त मोर सब इज्जत धूल म मिल जाही। अइसे विचार के कुंती ओ समय रोय लगिस।

x x x x

अरे गंगा में लइका ल छोड़न लागे भाई
रागी ओ लइका ल सुंदर गंगा में छोड़ दिस।"[100]

x x x x

अधिरथ और राधा ने उसे पाल-पोस कर बड़ा किया, इसलिए वे राधेय कहलाए। वह दुर्योधन के मित्र थे। दुर्योधन ने उन्हें अंग देश का नरेश नियुक्त किया और कर्ण ने भी जीवन पर्यन्त इस मित्रता को निभायी। पांडवों में सभी भाई बड़े पराक्रमी और रणयोद्धा थे, लेकिन अर्जुन जैसा महावीर भी कर्ण की वीरता और बहादुरी के सम्मुख तेज हीन हो जाते थे। द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् दुर्योधन ने उन्हें कौरव सेना का सेनापति नियुक्त किया। युद्ध क्षेत्र में पांडव सेना का संहार किया। श्रीकृष्ण की प्रेरणा से माता कुंती ने कर्ण को कर्ण की माता होने का प्रमाण देकर उसे पांडव पक्ष में आ जाने का आग्रह किया, किन्तु कर्ण नहीं माने। अर्जुन की रक्षा की दृष्टि से माता कुंती ने कर्ण से उसका पाशुपत अस्त्र मांग लिया। चूंकि कर्ण वचनबद्ध हो चुके थे। अतः माता कुंती को पाशुपत अस्त्र दे दिया।

"दाने तोला मांगत हंव करन
मांग ले दान तोला काहत हंव दाई।

X X X X

परसुराम देहे पंचमुखी
वही ये दे बाने तैं हर दे दे करन
ले माँ ले परसुराम के दिए पंचमुखी बान
ले माँ ले .... ।"[101]

अंततः कर्ण अर्जुन के द्वारा युद्ध क्षेत्र में मारे गए।

वेदव्यास

भगवान व्यास महर्षि पराशर के पुत्र थे और सत्यवती के गर्भ से पैदा हुए थे। "परासर ऋषि उठा के मारे मंतर-गुंगुर बरसगे पुरइन के पत्ता में डोंगा रखे हे।

मंछिदरीन सेवा करिस जब पार में आइसे दस कदम रेंगिस गरू-गरू लगिस। नदी के किनारे में व्यास के जनम हो जाय। मंछिदरीन ल कथे माता जी, पिताजी चले गे ता मैं भी चले जात हंव। जब जरूरत लगे माता त मोला पुकार लेबे।"[102]

वेद व्यास महाभारत के रचयिता हैं जो स्वयं महाभारत में एक पात्र के रूप में उपस्थित होते हैं। वेद व्यास त्रिकाल दर्शी और इच्छा गतिक हैं। विचित्रवीर्य की मृत्यु के पश्चात् माता सत्यवती को वंश रक्षा की चिंता हुई तब उन्होंने पुत्र वधुओं से संतानोत्पत्ति के लिए भीष्म से कहा। चूंकि भीष्म ब्रम्हचर्य पालन हेतु दृढ़ प्रतिज्ञ व संकल्पित थे। अतः वे नहीं माने। तब माता सत्यवती ने वेदव्यास का स्मरण किया वेद व्यास ने नियोग विधि से अंबिका से धृतराष्ट्र अंबालिका से पाण्डु और दासी से विदुर को उत्पन्न किया।

वेदव्यास ने एकाचक्रा नगरी में उपस्थित होकर पाण्डवों को द्रोपदी के पूर्व जन्म का वृतांत बताकार द्रोपदी स्वयंबर में जाने के लिए प्रेरित किया।

"भगवान व्यास जी कहे बेटा कहना ल मान जावव
एक चक्रनगर म जावव बेटा
व्यास नारायण बोलन लागे भईया
भगवान व्यास के बात मान के पांडव एकचक्र नगर में पहुँचगे।"[103]

वे युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भी उपस्थित हुए। पांडवों के बारह वर्ष के वनवास के समय दुर्योधन ने अपने मामा शकुनि, कर्ण तथा दुशासन की सलाह से पांडवों पर आक्रमण करने का विचार किया। तब भी वेदव्यास ने उपस्थित होकर

धृतराष्ट्र को दुर्योधन के इस दुष्कृत्य को रोकने कहा और उसके भावी परिणाम से अवगत भी कराया।

वेदव्यास ने संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की जिससे संजय ने युद्ध की सारी बातों का विवरण धृतराष्ट्र को दिया। जब गांधारी और धृतराष्ट्र वन में रहते थे और युधिष्ठिर अपने परिवार समेत मिलने गए तब भी व्यास जी वहां उपस्थित हुए। धृतराष्ट्र और गांधारी को पुत्र शोक से संतप्त देखकर व्यास जी ने उन्हें वर मांगने कहा। तब धृतराष्ट्र ने महाभारत युद्ध में अपने पुत्रों व संबंधियों की जो गति हुई उसे व्यास जी एक बार दिखाने का आग्रह किया। व्यास जी ने गंगा में प्रवेश कर कौरव और पांडव पक्ष के योद्धाओं को जो युद्ध में मारे गये थे उन्हें पुकारा। वे सब उपस्थित हुए। व्यास जी ने धृतराष्ट्र को दिव्य दृष्टि प्रदान की। जिससे वे इच्छित दृश्य देख सके। उपस्थित अन्य लोगों ने भी अपने सगे संबंधियों को देखा।

महाभारत में अन्य पात्रों जैसे द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ, नकुल, सहदेव, अभिमन्यु, दुशासन, शकुनि शल्य, राजा विराट, उत्तरकुमार, राजा द्रुपद आदि ये सभी पात्र पंडवानी में समाहित हैं। महाभारत की कुछ अनुषांगिक कथाओं व पंडवानी की कापालिक शैली की दन्त कथाओं के पात्रों में ही विभिन्नता है। जैसे रंगहा तेली, सुपल भगत, मेड़वा पात्र आदि। चूंकि महाभारत व पंडवानी में कथावस्तु की दृष्टि से कुछ असमानताएं परीलक्षित होती है। अत: कुछ पात्रों में भिन्नता सहज और स्वभाविक है। वर्तमान में जो पंडवानी गायन की परम्परा है और जो कथाएं गायी जाती हैं, वे मूलत: महाभारत से ली गई हैं। वर्तमान पंडवानी एक प्रकार से महाभारत का लोकानुवाद है। जब कोई शिष्ट काव्य कला लोक का स्पर्श पाती है, तब वह कुछ हद तक लोक के रंग में रंग जाती है। यही बात पंडवानी में दृष्टिगोचर होती है। किंचित प्रसंगों को छोड़कर प्रसंग महाभारत से भी संपृक्त है। इसलिए महाभारत और पंडवानी के पात्रों में अंशत: भिन्नता को छोड़कर समानता है। पात्रों में जो विभिन्नता है वह पंडवानी के लोक वैशिष्ट्य के कारण है। कुन्ती का कोतमा होना, द्रोपदी का दुरपती होना या भीम का भीमसन हो जाना यह नाम का लोकान्तरण ही है। कथानक के साथ-साथ पात्रों में, उनके चरित्रों में विभिन्नता व असमानता का कारण लोक की आवश्यकता, उसकी आदिम ऊर्जा की गंध और लोक संस्कृति के सम्पर्क की प्रबलता है।

सन्दर्भ -

1. महाभारत आदि पर्व भूमिका : डॉ. पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर : पृष्ठ-15
2. पंडवानी गायिका तीजन बाई से भेंटवार्ता :
पवन कुमार सिंह : दै. सबेरा संकेत: दि. 29.09.91
3. महाभारत भाषा : पंढित प्रयागदत्त शर्मा विचित्र : पृष्ठ 40
4. महाभारत आदि पर्व : डॉ. पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर : पृष्ठ-15
5. निजी संग्रह से
6. महाभारत आदि पर्व : गीता प्रेस गोरखपुर श्लोक - 1 पृष्ठ 295
7. महाभारत : सबल सिंह चौहान - पृष्ठ 3
8. निजी संग्रह से
9. महाभारत : सबल सिंह चौहान - पृष्ठ 3
10. निजी संग्रह से
11. निजी संग्रह से
12. महाभारत : सबल सिंह चौहान : पृष्ठ 7
13. .... वही........."......."........... पृष्ठ 7
14. महाभारत : सबल सिंह चौहान - पृष्ठ 7
15. .... वही ...."........"........... पृष्ठ 9
16. महाभारत : आदि पर्व : डॉ. पं. श्री पाद दा.सा. श्लोक 27 पृष्ठ 562
17. निजी संग्रह से
18. महाभारत : सबल सिंह चौहान : पृष्ठ 14
19. .... वही ...."........"..........पृष्ठ 15
20. सापेक्ष : लोक संस्कृति अंक : पृष्ठ - 7
21. महाभारत : आदि पर्व : डॉ. पं. श्री पाद दा.सा. श्लोक 7 पृष्ठ 575
22. निजी संग्रह से
23. महाभारत : सबल सिंह चौहान : पृष्ठ 16
24. .... वही ...."........"........... पृष्ठ 16
25. .... वही ...."........"........... पृष्ठ 17
26. निजी संग्रह से
27. महाभारत : सबल सिंह चौहान : पृष्ठ 19
28. महाभारत : आदि पर्व : डॉ. पं. श्री पाद दा.सा. श्लोक 21 पृष्ठ 650
29. निजी संग्रह से
30. महाभारत आदिपर्व : सबल सिंह चौहान , पृष्ठ 24

31. निजी संग्रह से
32. महाभारत : आदिपर्व : सबल सिंह चौहान , पृष्ठ 25
33. .... वही ...."........".......... पृष्ठ 32
34. निजी संग्रह से
35. महाभारत : सबल सिंह चौहान , पृष्ठ 37-38
36. सापेक्ष : लोक संस्कृति अंक : पृष्ठ -7
37. महाभारत : आदिपर्व गीता प्रेस गोरखपुर श्लोक 16 पृष्ठ - 551
38. महाभारत : आदिपर्व : सबल सिंह चौहान , पृष्ठ 54
39. .... वही ...."........"........... पृष्ठ 55
40. सूचक : श्री झाडूराम देवांगन : पंडवानी गायक
41. निजी संग्रह से
42. आदिवासी लोक साहित्य का अध्ययन : श्री जगदीश त्रिगुणायत : पृष्ठ - 11
43. महाभारत : आदिपर्व गीता प्रेस गोरखपुर श्लोक 29 पृष्ठ - 608
44. महाभारत : सभा पर्व : श्री सबल सिंह चौहान पृष्ठ 69
45. निजी संग्रह से
46. .... वही ....
47. .... वही ....
48. .... वही ....
49. महाभारत : श्री सबल सिंह चौहान : पृष्ठ 77
50. महाभारत : श्री सबल सिंह चौहान : पृष्ठ 78
51. लोक विश्वास : श्री नर्मदा प्रसाद गुप्त : चौमासा अंक 23 : पृष्ठ 87-88
52. निजी संग्रह से
53. महाभारत सभापर्व : गीता प्रेस गोरखपुर श्लोक 30 पृष्ठ - 933
54. निजी संग्रह से
55. महाभारत : श्री सबल सिंह चौहान : पृष्ठ 112
56. .... वही ...."........"........... पृष्ठ 124
57. महाभारत वनपर्व :गीता प्रेस गोरखपुर पृष्ठ - 1708
58. महाभारत : श्री सबल सिंह चौहान : पृष्ठ 174
59. निजी संग्रह से
60. महाभारत : विराट पर्व श्री सबल सिंह चौहान : पृष्ठ - 178
61. .... वही ...."........"......... पृष्ठ 183
62. निजी संग्रह से

63. महाभारत : विराट पर्व श्री सबल सिंह चौहान : पृष्ठ - 202
64. सूचक : श्री अघनूराम निषाद : पंडवानी गायक
65. महाभारत भीष्मपर्व : गीता प्रेस गोरखपुर श्लोक : 47 , पृष्ठ 2600
66. महाभारत : श्री सबल सिंह चौहान दोहा : 5 , पृष्ठ -434
67. निजी संग्रह से
68. महाभारत : श्री सबल सिंह चौहान दोहा : 3 , पृष्ठ -449
69. .... वही ...."......"........ दोहा : 5, पृष्ठ 461
70. .... वही ...."......"........ दोहा : 21, पृष्ठ 485
71. निजी संग्रह से
72. महाभारत : श्री सबल सिंह चौहान : पृष्ठ -503
73. निजी संग्रह से
74. महाभारत : चतुर्थ खण्ड गीता प्रेस गोरखपुर, श्लोक : 21, पृष्ठ 4363
75. महाभारत (गुटका) : सबल सिंह चौहान, पृष्ठ 529
76. .... वही ...."......"........ पृष्ठ 532
77. महाभारत : गीता प्रेस गोरखपुर, श्लोक : 23-24, पृष्ठ 780
78. निजी संग्रह से
79. .... वही ....
80. .... वही ....
81. .... वही ....
82. .... वही ....
83. .... वही ....
84. .... वही ....
85. .... वही ....
86. .... वही ....
87. महाभारत : सबल सिंह चौहान , पृष्ठ : 24
88. निजी संग्रह से
89. .... वही ....
90. .... वही ....
91. .... वही ....
92. .... वही ....
93. .... वही ....

94. .... वही ....

95. .... वही ....

96. .... वही ....

97. .... वही ....

98. .... वही ....

99. निजी संग्रह से

100. .... वही ....

101. .... वही ....

102. .... वही ....

103. .... वही ....

अध्याय - 3

- पंडवानी कथा में आंचलिक संस्कृति का प्रभाव
- लोकमान्यताएं और विश्वास
- मानव संबंधों की अवधारणा
- कृषि संस्कृति के तत्व



पंडवानी गायिका प्रतिमा बारले

पंडवानी कथा में आंचलिक संस्कृति का प्रभाव

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य में संस्कृति समाविष्ट रहती है। चाहे वह शिष्ट साहित्य हो या लोक साहित्य। लोक साहित्य में समाविष्ट संस्कृति लोक संस्कृति कहलाती है। जिसमें उस अंचल विशेष की लोक-गंध और आंचलिकता हिलोरें लेती हैं। आंचलिक संस्कृति का प्रभाव और उसकी आदिम ऊर्जा उसे लोक साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

"संस्कृति मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता है। युग -युग से समाज को विकास की प्रेरणा देती हुई संस्कृति विचार, कर्म और आचरण का यथार्थ है। यही कारण है कि सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी अपनी संस्कृति को समझता है। उसी के अनुरूप वह आचरण करता है। इस तरह संस्कृति तो किसी समाज के उन संस्कारों के रूप में प्राप्त होते हैं। काल और परिस्थिति के अनुरूप समाज का आंतरिक व बाहय कलेवर बदलता है।" [1]

संस्कृति की प्रवाहमान और परिवर्तित होती धारा समाज के विराट स्वरूप का दर्शन कराती है, जिसमें उस समाज के आचार -विचार, सुख -दुख, हर्ष -विषाद, जय -पराजय सब कुछ शामिल होते हैं। जिसकी अनुभूति उसके साहित्य से की जाती है। इस संबंध में शिष्ट साहित्य भले ही निर्धन रहा हो किन्तु लोक साहित्य सदैव धनवान रहा है।

"आधुनिक काल में अपेक्षाकृत विकसित साहित्य की धारा का परम्परागत स्रोत लोक साहित्य में है। अधिकांशत: अलिखित और मौखिक यह साहित्य 'लोक संस्कृति' का दर्पण है। इसमें परम्परागत आचार -विचार, लोक जीवन का सुख - दुख, अतीत एवं वर्तमान सुरक्षित रहता है।" [2] इसमें समयानुकुल परिवर्तन भी होता रहता है। "लोक संस्कृति जड़ और स्थिर नहीं होती। परिवर्तन का प्रभाव उसमें निरंतर दर्ज होता है। बल्कि यह प्रकिया दो आयामी है। परिवर्तन उसी में से जन्म लेता है और खुद उसमें घटित होता है।" [3]

पंडवानी छत्तीसगढ़ के लोक जीवन की अभिव्यक्ति है। लोक की इस अभिव्यक्ति में यहाँ की लोक संस्कृति समाहित है। जिसमें छत्तीसगढ़ के लोकमानस की सामाजिक, परिवारिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्रिया कलापों का सुन्दर समन्वय संस्थापित है। पंडवानी अंचल विशेष की कृति है। फलस्वरूप

पंडवानी में छत्तीसगढ़ी लोक जीवन मुखरित है। "युग का संदर्भ साहित्य में स्पन्दित होता है। इसी कारण साहित्य को समाज का दर्पण माना गया है। यह शिष्ट और लोक साहित्य दोनों के लिए उपयुक्त है, लेकिन यह शिष्ट साहित्य में प्रमाणित और वृहद - विस्तृत होता है, जबकि लोक साहित्य में अल्प प्रमाणित, विछिन्न - विखंडित होता है। आंचलिकता अंचल में बद्ध होकर आंचलिक वैशिष्ट्र्य बंधनों से ही शोभा पाती है। 'अंचल' का शाब्दिक अर्थ यद्यपि परिधान का एक कोना है। तथापि इसका लक्ष्यार्थ ग्राम, क्षेत्र या प्रांत विशेष है।" [4]

लोक साहित्य में आंचलिकता सहज, सरल स्वाभाविक और अकृत्रिम होती है। जबकि शिष्ट साहित्य में कृत्रिम और आरोपित। आरोपित आंचलिकता लोक संस्कृति और उसके आंचलिक प्रभावों को प्रतिबिम्बित नहीं करती। "लोक संस्कृति जन -जन के श्रम से सिंचित होकर प्रकृति की गोद में पलती - पनपती रही है। मानव का मानव के प्रति सहज़ प्रेम ही लोक संस्कृति का साध्य रहा है। श्रम की पूजा के साथ ही पारस्परिक प्रेम से भरी विश्वबंधुत्व की भावना हमारे लोक जीवन की मूल आधार रही है। जन -जीवन के बीच कलाओं में लोक संस्कृति आज भी स्पंदित है।" [5]

महाभारत साहित्य का शिष्ट रूप है। महाभारत प्राचीन महाकाव्य है। जिसमें तत्कालिन सामाजिक, सांस्कृतिक , आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था का युगानुरूप चित्रण है। उस युग की रीति - नीति, आचार - विचार और रहन - सहन का सम्यक चित्रण महाभारत में मिलता है। पंडवानी लोक महाकाव्य है। और संस्कृति की नि: सृत धारा, जिसमें छत्तीसगढ़ की अपराजेय लोक भावना और उसकी आंचलिक संस्कृति का प्रभाव सन्निहित है।

"मानव सभ्यता एवं संस्कृति की सबसे मूल्यवान धरोहर लोक संस्कृति ही है। इसकी प्रमाणिकता, मानव जाति का इतिहास,पुरातत्व,समाज-विज्ञान,धार्मिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान भंडार आदि सभी के संदर्भ में अक्षुण्य है,क्यों कि इसमें अनुवांशिकता, मौखिक एवं सामूहिक परम्परानुसार प्रागैतिहासिक तथ्यों तक को आज भी सुरक्षित रूप में पाते हैं। प्राकृतिक महाविपल्वों एवं मानवकृत युद्धादि संहारों के उपरांत भी यह शाब्दिक पारम्परिक जानकारी, हमें किसी न किसी रूप में आज भी सुलभ है।" [6]

छत्तीसगढ़ लोक साहित्य का आगाध भंडार है। यहाँ का लोक साहित्य आज भी मौखिक परम्परा द्वारा जन-जन के कंठ में सुरक्षित है। पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से हस्तांरित होता लोक साहित्य आंचलिक संस्कृति का दर्पण है। लोक की अनुभूति है,

अभिव्यक्ति है और लोक की ही रचना है।

रचनाकार की कृति में उसके अनुभवों के साथ-साथ रचनाकार के क्षेत्र का प्रभाव अवश्य पड़ता है। कृति लोक जीवन की हो या शिष्ट समाज की। कृति चाहे कविता हो,कहानी हो, नाटक हो या उपन्यास यही अंचल विशेष का प्रभाव उसकी आंचलिकता कहलाती है, जो जाने-अनजाने कृति में समाविष्ट हो जाती है। कभी-कभी यह आंचलिकता अंचल विशेष की होकर भी अनायास सार्वदेशिकता का रूप ले लेती है। "अंचल के अंतर्गत वहां के सम्पूर्ण भू-भाग रहन-सहन, पर्यावरण,सामाजिक वातावरण का चित्रण तो आता ही है। वहां का भाषाई एवं सांस्कृतिक परिवेश भी होता है। अंचल की समझ के लिए केवल जड़ , प्रकृति और भू-भाग का चित्रण पर्याप्त नहीं है। वरन लोक जीवन के सुख-दुख हर्ष-विषाद, उत्कर्षापकर्ष और लोक मन की मजबूत पकड़ भी अनिवार्य है। भौगोलिक विशिष्टताओं के साथ सामाजिक नैतिक दशाओं का गंतव्य भी आंचलिकता का अभिष्ट है।" [7] हालांकि पंडवानी की मूल कथा महाभारत पर आधारित है तथापि वह महाभारत से भिन्न है। पंडवानी का कृतिकार पंडवानी गायक है। यह अलिखित महाकाव्य उसे मौखिक रूप से कंठस्थ है। वह उसका सर्जक है, गायक है, लेखक नहीं। पंडवानी गायक अपने परिवेश में जो देखता है, सुनता है और अनुभव करता है, जिन आचारों-विचारों को लोकजीवन में व्यवहृत करता है, उन्हें वह कथाओं के साथ जोड़ता है। या अनायास ये घटनाएं कथा के साथ जुड़ जाती हैं और आंचलिकता स्वयं अकृत्रिम रूप से मुखर हो उठती है।

"पंडवानी में जहाँ सार्वभौमिक, सार्वदेशिक तथ्य हैं, वहाँ प्राय: महाभारत का प्रभाव है। इसके विपरीत जहाँ अंचल की संस्कृति सन्निहित है वहाँ आंचलिकता मुखरित है। महाभारत कालीन समाज और घटनाएँ धर्म की उच्च्च पीठिका पर अवस्थित है, जबकि पंडवानी आंचलिक मनुज की मानसिकता के अनुरूप लोकधर्म की सहज स्वीकृति है। लोक को महाभारत का जितना धर्म -तत्व अंगीकार है, उसे ही अपनी मन-बुद्धि में छानकर संजोता है। साथ ही युगानुरूप प्रवाहित कर्मानुसार धर्म-तत्व को समन्वित करता हुआ उसे आंचलिक कलेवर प्रदान करता है। स्पष्ट है पंडवानी गायकों ने ही यहाँ के लोक को महाभारत से परिचित कराया। कथा एवं घटना प्रसंगों के साथ ही वातावरण में परिवर्तन व आंचलिकता का दबाव पंडवानी की ऐसी विशिष्टता है जो उसे महाभारत से पृथक करती है। पृथक्करण की यह प्रस्तुति सूक्ष्म है, स्थूल नहीं।" [8]

लोक साहित्य में व्यक्ति की नहीं समष्टि की अभिव्यक्ति होती है। महाभारत की ही तरह पंडवानी में लोकगाथाओं का वृहद भंडार है। जिसमें सभी लोकगाथाएं

छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति से पूर्णतः संपृक्त हैं। लोक साहित्य की उपरोक्त अपराजेय भावना से पंडवानी पृथक नहीं है। "संस्कृति मनुष्य को संस्कार देती है -या कहें जनसमुदाय के संस्कारों की ही संज्ञा संस्कृति है। इसमें लोक में प्रचलित रीति-रिवाज, विश्वास, विधि-विधान, कला-विज्ञान याने जीवन से सम्बद्ध सभी व्यवहार आ जाते हैं। यों भी कह सकते हैं कि कर्म (हर तरह का) और चिंतन (हर अनुशासन का) के क्षेत्र में अपने सामूहिक प्रतिभा के बल पर 'लोक' जो श्रेष्ठतम उपलब्ध कराता है वही उसकी संस्कृति है।"[9] पंडवानी छत्तीसगढ़ की प्रचलित और सर्वाधिक लब्ध प्रतिष्ठित कथा गायन विधा है। छत्तीसगढ़ की आंचलिक संस्कृति का सुखद स्रोत। पंडवानी की कथाओं और गीतों में अंचल के लोकाचारों, लोक-संस्कारों, लोक मान्यताओं और लोक विश्वासों की स्पष्ट झलक मिलती है। छत्तीसगढ़ के लोक जीवन की आंचलिक संस्कृति की अभिरक्षा हुई है।

संस्कार

भारतीय संस्कृति में संस्कारों का आधिक्य है। इन संस्कारों को जीवन का उन्नायक तत्व माना गया है। ये संस्कार गर्भाधान से लेकर मृत्यु तक अनुष्ठित होते हैं। "संस्कृत साहित्य में संस्कार शब्द का प्रयोग शिक्षा, संस्कृति ,प्रशिक्षण सौजन्यपूर्णता, व्याकरण संबंधी शुद्धि, संस्करण, परिष्करण, शोभा, आभूषण, प्रभावस्वरूप, स्वभाव, क्रिया, छाप, स्मरणशक्ति, स्मरण शक्ति पर पड़ने वाला प्रभाव, शुद्धि क्रिया, धार्मिक विधि विधान, अभिषेक, विचार, भावना, धारणा, कार्य का परिणाम, क्रिया की विशेषता आदि अर्थो में हुआ है।"[10] धार्मिक और सामाजिक जीवन में संस्कारों का विशेष महत्व है। जीवन की शुद्धता और पवित्रता के लिए यह आवश्यक है।

"संस्कार में यद्यपि कुछ अनुष्ठान तथा कर्मकाण्ड सम्मिलित होते हैं परंतु इसका अर्थ इन्हें सम्पन्न करने मात्र से नहीं है। संस्कार वास्तव में व्यक्ति की आत्म शुद्धि एवं उसे सामाजिक दायित्वों से भली -भांति परिचित कराने से संबंधित है। इस दृष्टि से संस्कार एक धार्मिक - सामाजिक प्रत्यय है जो व्यक्ति को अपने सांस्कृतिक जीवन का बोध कराते हैं। संस्कारों के माध्यम से ही समाज की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप व्यक्ति का समाजीकरण किया जाता है।"[11] आशय यह कि व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास, परिष्कार, शुद्धि एवं सम्पूर्णता के लिए संस्कार आवश्यक है। संस्कार सामाजिक, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक उद्देशों की प्राप्ति के लिए जीवन का प्रथम सूत्र है।

"मानव की प्रायः प्रत्येक संस्कृति में व्यक्ति की जीवन यात्रा के विभिन्न संक्रमण

कालों का विशेष महत्व होता है। जन्म,विवाह एवं मरण इस प्रकार की तीन मुख्य स्थितियां है। जिसके आस-पास मानव समूह विश्वासों, रीति - रिवाजों और व्यवहारों का एक जटिल ताना -बाना बुन लेता है कि उनके वास्तविक स्वरूप को समझे बिना उस संस्कृति का पूर्ण चित्रण प्राप्त नहीं किया जा सकता। इनके अतिरिक्त नामकरण, वय: संधि, रजोदर्शन की स्थितियां भी महत्वपूर्ण होती हैं और अनेक संस्कृतियों की समाज व्यवस्था में उन्हें पार करने से व्यक्ति की सामाजिक स्थिति एवं उनके अधिकारों और कर्तव्यों में मूलभूत परिवर्तन हो जाते हैं। समाज संगठन का यह पक्ष मानव के उत्तरोत्तर परिवर्तित होने वाले उत्तरदायित्वों एवं कार्यो की दिशा निश्चित करता है।"[12]

प्राचीन काल से मनुष्य जीवन के लिए 16 संस्कारों का विधान है। "सम्प्रति सर्वाधिक लोकप्रिय संस्कार सोलह हैं। यद्यपि विभिन्न ग्रंथों में उनकी संख्या भिन्न - भिन्न है। आधुनिकतम पद्धतियों में यह संख्या स्वीकृति कर ली गई है।"[13]

छत्तीसगढ़ में इन सोलह संस्कारों का प्रचलन तो नहीं है, फिर भी कुछ संस्कार लौकिक रूप में संपन्न किये जाते हैं। महाभारत में समस्त संस्कारों को शास्त्रोक्त विधि से सम्पन्न करने का उल्लेख मिलता है। पंडवानी में प्रमुखत: जन्म संस्कार (छट्ठी), विद्यारंभ, विवाह और मृत्यु संस्कार का वर्णन मिलता है। कथा गायक अपने गायन में इन संस्कारों का समावेश कर कथा को आंचलिक वैशिष्ट्य प्रदान करता है। ये संस्कार पंडवानी के प्रसंग से अनायास जुड़े प्रतीत होते हैं।

जन्म-संस्कार

पंडवानी में जन्म संस्कार के अनेक प्रसंग हैं, जिनमें पंडवानी गायक जन्म-संस्कार का उल्लेख करता है। प्रसंग मत्स्योदरी (मछंदरी) की जन्म कथा का है। मछंदरी मछली के पेट से प्राप्त हुई थी। इसी प्रकार कुँवारी कुंती के द्वारा कर्ण को गंगा में बहा दिये जाने पर केंवट अधिरथ को कर्ण मिला। अधिरथ की कोई संतान नहीं थी, अत: अधिरथ की पत्नि ने गर्भ होने का स्वांग रचा। मछली बेचते समय वह अपने पेट में 'परई '(मिट्टी के बर्तन का ढक्कन) व पुराने कपड़ों को लपेटकर गर्भवती होने का नाटक करती है -

"अगा अधिरथ मुंदरहा ले नदिया जावय भईया
मछरी-कोतरी धर लावय ग मोर भाई।
नंदिया म ग लइका बोहावत राहय भाई
लइका ल धर धर लावय ग मोर भाई।"

अधिरथ मुंदरहा ले मछरी मारे ल गे राहय, नंदिया के धार म लइका बोहावत

देखिस त कलेचुप ओला उठा के घर लानिस। अधिरथ के एकोझन लइका बच्चा नई राहय। केंवटिन कथे - "अइसन में हमर बड़ फजीता होही तेखर ले मैं कुछ उदीम लगांव "कहिके केंवटिन अपन पेट म परई अऊ जुनहा करिया ल बांधलिस। केंवटिन दूरस अम्मल म हे तइसे पोटपोट दिखय अऊ गांव भर गोहार पारत गिंजरय - "मछरी ले लो ओ मछरी ....।" जऊने देखे तऊने काहय - अई देख तो भगवान के लीला घलो अपरम्पार हे दाई। केंवटिन ल बुढ़त काल में देखे तऊने काहय - अई देख तो भगवान के लीला घलो अरम्पार हे दाई। केंवटीन ल बहुत काल में भगवान चिन्हे हे। बने होगे बिचारी के एको झन बाल-बच्चा नई हे।

अधिरथ घर बेटा अंवतरिस। छट्टी म बाजा बाजे,उछा - मंगल मनावे । नाउ सांवर बनावे। यह पंडवानी गायक का लोकमन है जो कथा को अपने परिवेश से जोड़ता है। महाभारत कालीन समाज में जन्मोत्सव मनाने का ढंग चाहे जैसा भी हो, किन्तु पंडवानी गायक छत्तीसगढ़ में प्रचलित जन्मोत्सव छट्ठी (जो संतान के जन्म लेने के बाद पांचवे दिन मनाया जाता है।) में उछाह - मंगल व नाई द्वारा बाल तथा दाढ़ी बनाने की बात कहकर आंचलिक संस्कृति को पुष्ट करता है।

विवाह संस्कार

विवाह संस्कार किसी न किसी रूप में विश्व के सभी समाज में पाया जाता है। हिन्दुओं में विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया है। जन्म संस्कार के पश्चात सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार है विवाह संस्कार। "विवाह व्यक्ति को समाज में एक विशेष स्थिति प्रदान करता है और सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक बनाता है। विवाह न केवल जैविकीय आवश्यकताओं की पूर्ति का ही माध्यम है, बल्कि धार्मिक कार्यो के सम्पादन एवं समाज की निरंतरता को बनाये रखने की दृष्टि से भी आवश्यक है।"[14]

जीवन क्षेत्र में स्त्री-पुरूषों दोनों को ही इसकी समान आवश्यकता होती है। विवाह संस्कारों में लोकमान्यताओं,लोक विश्वासों तथा लोक भावनाओं के दर्शन होते हैं। यह ज्ञात है कि महाभारत काल में स्वयंबर की प्रथा थी। चित्रांगद और विचित्र वीर्य के लिए भीष्म काशी नरेश की तीनों कन्याओं अंबिका,अम्बालिका तथा अम्बा को स्वयंबर से हरण कर ले आए थे। द्रोपदी का विवाह पांडवों के साथ स्वयंबर में हुआ था। इन कथाओं को कथा गायक यथा-स्थिति वर्णन करते हैं किन्तु धृतराष्ट्र - गांधारी विवाह,कर्ण विवाह, अर्जुन सुभद्रा विवाह, अभिमन्यु उत्तरा विवाह आदि की कथाओं को छत्तीसगढ़ में प्रचलित लोक परम्पराओं और रीति-रिवाजों के माध्यम से अपनी

कथा में संपादित करते हैं। छत्तीसगढ़ में विवाह संस्कार बाम्हन बिहाव (वैदिक रीति से) व चढ़ -बिहाव (लौकिक रीति से) संपन्न होता है। विधवा व परित्यक्ता स्त्री को चूड़ी पहनाकर भी विवाह किया जाता है। इन विवाह परम्पराओं में देश, काल और परम्पराएं होती हैं। छत्तीसगढ़ में प्रचलित परम्पराओं के अनुसार कथा गायक वैवाहिक प्रथाओं (नेंग) चुलमाटी, तेल चढ़ाना (हरिद्रालेपन) देवतेला, चीकट मायन, बारात परघौनी, नहडोरी, पाणिग्रहण, बेटी बिदा इन सबका वर्णन करता है और प्रयुक्त होने वाले गीतों को गाता है। (इसका समग्र उल्लेख अध्याय 6 में किया गया है।)

"राजा द्रुपद खुसी के मारे चांदी के रथ ल तैयार करिस। रथ तैयार करके पांचो भाई पांडव, कृष्ण भगवान समेत सबो झन ल बइठार के द्रुपद नगर में लइस। सबके भव्य स्वागत होईस। भईया मड़वा गड़े हे। सुन्दर प्रेम के साथ गांव भर ल तोरन -पताका म सजाय हे। हरियर मड़वा गड़े हे। हरियर मड़वा में सुन्दर आमा के पत्ता, डूमर के पत्ता, सुन्दर मंगरोहन हवय, सुन्दर बांस के खम्भा-

अरे सुन्दर ग मड़वा ग मड़वा गड़े ग हवय भाई।"[15]

x x x

अइसे भइया प्रेम के साथ द्रोपदी अऊ पांचो भाई पंडवा के बिहाव होइस। धर्मटीका के रूप में सोना-चांदी हाथी -घोड़ा सब टिकिस। टीके के बाद सुन्दर बरतिया बिदा करथे। राजा द्रुपद अऊ रानी सुदेष्णा के मन व्याकुल हो जथे। काबर बेटी बिदा ये येहा। कहिथे बेटी मैं आज तक तोला कोरा म खेलायेवं - तैं पहुना होगे आज ले हमर बर बेटी पहुना होगे।"[16]

मृत्यु संस्कार (अंत्योष्ठि)

व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसके संबंधी परलोक में उसके सुख एवं कल्याण के लिए मृत्यु संस्कार करते हैं। सोलह संस्कारों में से यह अंतिम संस्कार है। इस अंतिम संस्कार में मृत व्यक्ति की अर्थी सजाई जाती है। उसे स्नान करा कर नये वस्त्रों से ढंक शमशान-घाट ले जाया जाता है। लोग रास्ते भर "राम नाम सत है,सबके यही गत हे" का उच्चारण करते हैं। मृतक को चिता में जलाया जाता है। दाह संस्कार के बाद तीन दिनों में तीज नाहवन, दसवें दिन दशगात्र और तेरहवें दिन तेरहवी विधि-विधान से संपन्न होती है। मृतक की अस्थि को एकत्रित कर गंगा में विसर्जित की जाती है, दान-दक्षिणा दिया जाता है। मृतात्मा की शांति के लिए मृतक भोज कराया जाता है। ये सारी परम्पराएं छत्तीसगढ़ में प्रचलित हैं। परम्पराओं से भला पंडवानी गायक अछूता कैसे रह सकता है ? कथा गायक कथा गायन में यथा स्थान इन परम्पराओं को पोषित करते

चलता है - छत्तीसगढ़ में मृतक की अंत्योष्ठि दो प्रकार से की जाती है। (1) जलाकर जिसे यहां "दाग" (दाह) कहते हैं। (2) दफनाकर जिसे "माटी" कहा जाता है। पंडवानी में दोनो तरह की अंत्योष्ठि का उल्लेख है। दुर्योधन अपने पुत्र लखनी को चिता के अभाव में मिट्टी में दफनाता है - "बेटा लखनी तोला कोन मेर जलाववं रे मोर लाला ।मंगर -मछरी मन काया ल नोंच-नोंच के खा जही। ये काया चल दी ही

तोला चिता म जलातेंव रे मोर लखनी
रागी पिता अगा जघा-जघा आगी ल खोजत हवे ग
आगी नई मिलिस पिता
अग्नि देव अवसर न पाये मृतिका दे करि जाए।
गदा घाव धरती पे मारे, भयो गड़ा लोथहिं डारे।

गदा ले पृथ्वी में प्रहार करिस, घाव बनगे। बेटा के लास ल उही गढ्डा में पाट करके खूंद-खूंद करके माटी देव़थे।"

चंदन चिता रचन लागे भाई
धरमराज दाग देवन लागे भाई।
x x x
धर्मराज अस ले जावन लागे भाई।
गंगा म विसर्जन करन लागे भाई।

युधिष्ठिर ने युद्ध में वीर गति प्राप्त योद्धाओं की अंत्येष्ठि कर उनकी अस्थियों को गंगा में विसर्जित कर उन्हें श्रद्धांजली दी।

छत्तीसगढ़ के ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत के लोग अस्थि-विसर्जन के लिए गंगा जी जाते हैं। अपने पितरों का तर्पण करते हैं। यह आंचलिकता से परे सार्वदेशिकता है जिसकी अभिरक्षा पंडवानी में भी सन्निहित है।

लोकाचार

लोकाचार लोक जीवन में व्यवहृत वे आचार हैं, जिनमें उस अंचल की लौक्रिक नीति-रीति का वर्तमान और अतीत प्रतिबिम्बित होता है। लोकाचार को लोक से पृथक नहीं किया जा सकता। लोकाचार विशिष्ट अवधि में, विशिष्ट परिस्थिति में प्रचलन में आते हैं। लोकोपयोगी होने पर लोकग्राह्य होकर लोक का मार्ग दर्शन करते हैं। किन्तु अनुपयोगी होने पर अस्वीकृत हो नष्ट हो जाते हैं। "आचार किसी भी संस्कृति के यथार्थ चित्र होते हैं। यदि किसी जनपद की संस्कृति का सही इतिहास खोजना है तो वह उस जन के आचार में मिलेगा। जिस युग में जो आचार आचारित होते

हैं, वे उस युग की संस्कृति रचते हैं। परिस्थितियों के अनुरूप और समाज के लिए उपयोगी होने पर कुछ आचार आदर्श हो जाते हैं और लोक मूल्य बनकर शास्त्रों में टंक जाते हैं। शास्त्रों और पुस्तकों में लिखे आचार दौड़ते घोड़े की तरह हैं जिससे दौड़ का आभास होता है जबकि वे निष्प्राण हैं। वस्तुत: आचार वही है जो लोक में प्रचलित है उसी को लोकाचार कहते हैं।"[17]

यह कतई जरूरी नहीं कि सर्वत्र लोकाचार समान हो। सबके लिए हित कर हो। यदि कोई लोकाचार किसी लोक या समाज द्वारा स्वीकृत है तो वह दूसरे समाज द्वारा अमान्य भी हो सकता है। लोकाचार समाज द्वारा स्वीकृत होने पर बड़ी लंबी अवधि तक व्यवहृत होते हैं। "लोकाचार लोक जीवन के वर्तमान हैं, किन्तु उनके इतिहास में अतीत की झांकी मिलती है और उपयोगिता में भविष्य का संकेत। असल में लोकाचार लोक संस्कारों, लोक रीतियों, लोक प्रथाओं और लोकवर्जनाओं के समुच्चय है। इसलिए वे दीर्घ जीवी होते हैं। उनका लोप इतना तेजी से नहीं होता, जितनी तेजी से वेषभूषा और भोजन पेय का। बहुत से लोकाचार आज भी रूढ़ियों के रूप में कई जगह कुंडली मारे बैठे हैं और कई जगह उनमें परिवर्तन आया है, लेकिन इस परिवर्तन को शताब्दियाँ लग गयीं।" [18]

ऐसे लोकाचार आज छत्तीसगढ़ में प्रचलित होकर रूढ़ हो चुके हैं, जो लोक द्वारा स्वीकार्य हैं और जिनमें छत्तीसगढ़ी लोक जीवन की स्पष्ट छवि है। उनका उल्लेख पंडवानी में मिलता है। छत्तीसगढ़ में विवाह के समय मण्डपाच्छादन के लिए आम व डूमर (गूलर) वृक्षों की डालें व पत्तियाँ ही उपयोग में लाई जाती है। "मंगरोहन" व "पिढ़वा" (विवाह का प्रतीक स्तंभ व पाटा) इन्हीं लकड़ियों से बनाई जाती है। ऐसा क्यों ? इसका कोई शास्त्रोक्त प्रमाण नहीं मिलता किन्तु यह लोकाचार के रूप में आज भी जीवित है। कहा जाता है कि - "गंधारी जब सगियान बिहाव के लइक होइस त ओखर मंगनी-जोरनी होइस। मंगनी होय के बाद दुल्हा मरगे। अइसने च होय जेखर संग ओखर मंगनी होय दुल्हा मर जाय। गंधारी के बाप हलाकान होगे। त ओहा जोतिस करा बिचरवइस। जोतिस किहिस के गंधारी के पहिली बिहाव तैं आमा डारा अऊ डूमर संग कर। तब तोर दमांद नई मरे। ओहा वोइसने करिस। तेखर बाद गंधारी के बिहाव होइस। दुल्हा नई मरिस।" [19]

इसी प्रकार छत्तीसगढ़ में गोड़, कंड़रा आदि जातियों में ममेरे भाई बहनों के वैवाहिक संबंध को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। यह लोकाचार भी महाभारत से प्रभावित जान पड़ता है। कुन्ती श्री कृष्णा की बुआ थी और श्री कृष्ण की बहन सुभद्रा

कुन्ती पुत्र अर्जुन को ब्याही गई थी। यह पंडवानी का लोकप्रिय प्रसंग है।

आशय यह है कि "सभी तरह के आचार समन्वित होकर एक अंचल के लोकाचार बनते हैं, और उनमें एक अवधि तक स्थिरता बनी रहती है। जो अधिक शाश्वत प्रकृति के होते हैं, वे परंपरा के अंग बनकर परम्परित रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संचरित होते हैं।" [20]

पंडवानी के विवाह संबंधी प्रसंगों में छत्तीसगढ़ के वैवाहिक नेंगों (नियमों) में भी लोकाचार की बानगी मिलती है। पंडवानी की कापालिक शैली दंत कथा रंगहा तेली प्रसंग में रंगहा तेली (एक जाति) की महिलाओं द्वारा दायें हाथ में चूड़ी के स्थान पर रांगा पहनना, संतानोत्पत्ति प्रसंग में छट्ठी का उल्लेख पंडवानी में लोकाचार की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हैं। ये लोकाचार आज भी छत्तीसगढ़ी लोक जीवन में रूढ़ होकर आरूढ़ हैं।

तीज - त्यौहार व व्रत

हमारा देश विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और धर्मों का देश है। यहां हर धर्म के अलग-अलग तीज-त्यौहार हैं। छत्तीसगढ़ अंचल में भी अनेक राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक त्यौहार सोल्लास मनाये जाते हैं। इन पर्वों में हरेली, राखी, पोरा, तीजा, दशहरा, दीपावली और होली प्रमुख हैं। इन त्यौहारों को हम लोक पर्व भी कह सकते हैं। इन तीज-त्यौहारों में छत्तीसगढ़ अंचल की लोक संस्कृति सतत् प्रवाहमान है। "हमारे विविध त्यौहारों, उल्लास -उत्सवों तथा संस्कारों पर गृह - आंगन चौक दीवार तथा शारीरिक अंग-प्रत्यंग को आँकने-चाँकने की सुरम्य परंपरा रही है। यह परंपरा कई विश्वासों, आस्थाओं, अनुष्ठानों तथा संस्कारों से पोषित और पल्लवित है।" [21]

पंडवानी गायक प्रसंगानुसार इन तीज त्यौहारों का वर्णन अपनी कथा गायकी में करता है, जो उसके सांस्कृतिक प्रेम का कारण हो सकता है, किन्तु उसकी यह भावना पंडवानी की आंचलिकता को और प्रखर बनाती है। तीजा छत्तीसगढ़ की स्त्रियों का प्रमुख त्यौहार है। ब्याहता स्त्री अपने पति की चिरायु की मंगलकामना के लिए व्रत रखती है। छत्तीसगढ़ में पिता या भाई अपनी बेटी व बहन को उसकी ससुराल से सादर लिवा लाते हैं। पिता व भाई के द्वारा तीजा व्रत के उपलक्ष्य में उन्हें साड़ी उपहार में दी जाती है। जिसे पहनकर वह शंकर भगवान व "तुलसी चौरा" [22] की पूजा करती हैं। तीजा के इस सम्मोहन और मार्मिक चित्रण से पंडवानी अछूती नहीं है। द्रोपदी तीजा के समय अपनी ससुराल में अपने भाई के आगमन की प्रतिक्षा इन शब्दों के साथ करती है-

पोरा के रोटी धर के भईया मोर आवत हो ही
लोटा म पानी धरे बहिनी बाट देखत हो ही।[23]

तीजा पर्व में द्रोपदी अपने मायके सरग रोहनी जाना चाहती है। अर्जुन उसे सरग रोहनी पहुंचाने से इन्कार करते हैं। लेकिन माता कुन्ती के कहने पर अर्जुन द्रोपदी को सरग रोहनी पहुँचाने के लिए तैयार हो जाते हैं -

मने-मन गुने माता दुरपती, दिल म कर बिचार रे भाई
जब मुख बोले माता दुरपती, सुन लेबे जोड़ी पंडवा हमारे।
बारा बरस तेरी पुत्री भये सरग रोहनी ले मोला जीत के लाने हो
किया दाई मरे किया ददा मरे, सरग रोहनी ल कभू नई देखे हो।
सावन-भादो के महिना आवे रे भाई तिजा-पोरा में मोला जान देबे
ओतका ल सुने राजा अर्जुन ह ऐती के पिरथी एती लहुट जही।
फेर कभू नई जावौं सरग रोहनी बाई।

X X X X

ओतका ल सुने रानी सुहदरा, दीदी तीजा के कारन रटन धरे
जब तो वे बोले माता कोन्ति मां हा
तीजा के बात ल झनि ले दुरपति।

X X X X

अरे-अरे बेटा अर्जुन तैं हमारे।
जा-जा बेटा सरग-रोहनी ले जाबे
तीजा-पोरा मना के लेई आबे
ओतका ल सुने अर्जुन राजा
जल्दी तो भइगे तियार रे भाई।[24]

त्यौहारों में दीपावली का विशिष्ट स्थान है। यह सम्पूर्ण भारत में धूम-धाम और अपूर्व उत्साह के साथ मनाई जाती है। किन्तु छत्तीसगढ़ में इसकी आंचलिक छटा भिन्न ही है। सुरहुत्ती देवारी के नाम से मनाए जाने वाले इस पर्व का पंडवानी में संकेत मिलता है। रानी सुदेष्णा को उसका भाई कीचक सैरन्ध्री को देवारी अर्थात् दीपावली तक अपने पास भेजने के लिए कहता है। लोक गायक की बानगी देखिए - जब सारी दुनिया त्यौहार मनाती है, दीप जलाती है, तब सती सैरन्ध्री के मन में अंधकार है -

देवारी दिन तक काहत हावौं दीदी मोर
दासी ल तोर मोर करा भेज बहिनी ओ।

तोर पति-बेटा ल मैं नई छोड़ंव बाई ओ

x x x x

रद्दा देवारी के देखन लागे भाई

काबर कोनो ल दोस देबोन संगी।

दुनिया देवारी मनावत लागे भाई।

सती के मन म अंधियार हवे भाई

सुदेसना सती ल काहन लागे भाई

भोजन पहुंचादे कीचक ल तैं बाई। [25]

लोक जीवन में व्रत-उपवास का बड़ा महत्व है। सुख-समृद्धि व संतान प्राप्ति की आकांक्षा से लोग व्रत रखते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से स्वस्थ शरीर के लिए व्रत को अब सर्वथा उपयुक्त माना गया है, किन्तु लोक जीवन में इसका धार्मिक महत्व अधिक है, छत्तीसगढ़ धार्मिक आस्था का केन्द्र है। तीजा, पोरा, गणेश चतुर्थी, कृष्ण जन्माष्टमी, सावन-सोमवारी, एकादशी, संतोषी, बसंत-पंचमी आदि के व्रत यहाँ बड़े महत्व के हैं। एकादशी व्रत तो निर्जला रखा जाता है। इस व्रत के व्रती पानी भी ग्रहण नहीं करते। पंडवानी में एकादशी व्रत का उदाहरण प्रसंग बकासुर-वध में दृष्टव्य है -

"पुरूष बली नई होत हे, अरे समय हो त बलवान

काहू समय के दिन बड़े, काहू समय के रात।

कुंती आज मोर बेटा दसमी के दिन ए दानो मारे ल जात हे। सुंदर बिचारी हाथ में हूम ल धरे एक ठन नारियल के फल मढ़ाय अग्नि देवता सुन्दर हूम ल छोड़के एकादसी दाई ल बदना बदत हे कथे - एकादसी दाई मोर बेटा दानो मारे बर जात हे मोर बेटा के तैं सहारा कर लेबे। मैं तोर व्रत रहूं। एकादसी ल बदना बद दीस।"

व्रत व तीज-त्यौहार की दृष्टि से भी पंडवानी में आंचलिकता का अनुपम उदाहरण समाविष्ट है।

लोकाभूषण -

सौंदर्य प्रसाधनों में आभूषणों का महत्वपूर्ण स्थान है। आभूषण पहनने की ललक पुरूषों में कम और स्त्रियों में अधिक होती है। जिस प्रकार अलंकार के बिना काव्य सूना है उसी प्रकार आभूषण के बिना नारी। आभूषण हमारी लोक संस्कृति से अलग नहीं है। आभूषणों के द्वारा संस्कृति की पहचान की जा सकती है।

"आभूषण लोक संस्कृति के लोकमान्य अंग हैं। सौन्दर्य की बाहरी चमक-दमक से लेकर शील की भीतरी गुणवत्ता तक और व्यक्ति की वैयक्तिक रूचि से लेकर

समाज की सांस्कृतिक चेतना तक आभूषणों का प्रभाव व्याप्त रहा है। आभूषणों के उपयोग का प्रभाव तन और मन दोनों पर पड़ता है। उसके धारण करने से शरीर का सौन्दर्य ही प्रकाशित नहीं होता, वरन स्वास्थ्य भी सुरक्षित रहता है। सौंदर्य बोध में उचित समय पर उचित आभूषण पहनने का ज्ञान सम्मिलित है। शरीर विधान के आधार पर ही आभूषणों का चयन किया गया है। पायल और कड़े धारण करने से एड़ी, टखनों और पीठ के नीचले भाग में दर्द नहीं होता। ज्योतिषविदों ने बुरे प्रभाव को निस्तेज करने के लिए निश्चित धातुओं और रत्नों का चयन और आभूषणों में उनका प्रयोग महत्वपूर्ण खोज है।" [26]

महाभारत कालीन समाज में किस प्रकार के आभूषणों का प्रचलन रहा होगा कहा नहीं जा सकता। लेकिन पंडवानी के नारी पात्रों के आभूषण किस प्रकार के हो सकते हैं यह पंडवानी में स्पष्ट है। पंडवानी गायक नारी पात्रों को ठेठ छत्तीसगढ़ी स्त्री के रूप में प्रस्तुत कर उनके आभूषणों का उल्लेख करता है। छत्तीसगढ़ी स्त्रियां आभूषणों में अत्यधिक रूचि रखती हैं। आभूषण श्री सम्पन्नता के साथ-साथ सौन्दर्य का सूचक है। उसके लोकाभूषणों में -

पाँवों में - तोड़ा, पैजन, पंवकड़ा, पैरी, सांटी, चुरा, लच्छा।
हाथों में - ककनी,बनुरिया, ऐंठी, हरैया, पटा - चूड़ी
कमर में - करधन
बाँह में - बहुँटा, नांग मोरी
गले में - सुतिया,सुता, रूपिया, मोहर, गुरिया
नाक में - नकबेसर, फूली, लौंग
कान में - करनफूल, खिनवा, ढार, खूँटी
माथे में - बिन्दी
हाथ की अंगुलियों में - मुंदरी,छल्ला, रूपिया
पाँव की अंगुलियों में - बिछिया, चुटकी प्रमुख हैं।

छत्तीसगढ़ी लोक गीतों में भी छत्तीसगढ़ी स्त्रियों के परम्परागत लोकाभूषणों का वर्णन है। नारी की सुकोमल भावनाओं का प्रतीक सुवा गीत में यह दृष्टव्य है -

दे तो दाई तोर पैरी ल कहां जाबे ?
सुवा नाचे बर।
दे तो दाई तोर बहुँटा ल कहां जाबे ?
सुवा नाचे बर।

दे तो दाई तोर सुतिया ल, कहां जाबे ?
सुवा नाचे बर ।
दे तो दाई तोर टिकली ल, कहाँ जाबे ?
सुवा नाचे बर।
दे तो तोर दाई खिनवा ल, कहाँ जाबे ?
सुवा नाचे बर।
दे तो दाई तोर ककनी ल, कहाँ जाबे ?
सुवा नाचे बर।
दे तो दाई तोर लुगरा ल, कहाँ जाबे ?
सुवा नाचे बर।

द्रोपदी स्वयंबर में उसके विवाह के अवसर पर पंडवानी गायक द्रोपदी को इन्हीं लोकाभूषणों से सुसज्जित करता है - "अरे भईया माथा के टिकली हे। नाक म फूली हे। कान म सुन्दर खिनवा हे। महारानी द्रोपदी सुन्दर नागमोरी पहिरे, बहुँटा पहिरे, ऐंठी पहिरे, चुरी पहिरे, पैर म सुन्दर पैरी पहिरे -

सुन्दर द्रोपदी ल लावन लागे भाई
सुन्दर सुबासिन मन पर्रा बोहे मुड़ म सुन्दर करसी धरे।" [27]

लोकाभूषणों का इतना सजीव चित्रण अन्यत्र शायद दुर्लभ हो। ये लोकाभूषण छत्तीसगढ़ी लोक जीवन में इतने रच-बस गए हैं कि छत्तीसगढ़ी नारी और इन लोकाभूषणों का एक दूसरे के बिना पृथक पहचान संभव नहीं हैं। कीचक प्रसंग में भीम द्वारा स्वांग रचने पर भी लोकाभूषण का सम्यक् वर्णन आया है -

थाली म पकवान मोर .....

ममा थाली में पकवान ले करके जब भीमसेन चले नारी के भेष बनाके।

"कनिहा म करधन पहिरे, पांव म पैंजन पहिरे।"

x x x x

"पांव के पैजन बईहा ह बजावे न।"

भीमसेन -अहिरमती विवाह प्रसंग में भी अहिरमती के लोकाभूषण द्दष्टव्य हैं -

"कर मंज किए सुखवक्ष किए
पहिरे पट रेशम के चुनरी।
गर हाल - हेवाल सोनन के
पहिरे सुतिया दोहरी -तिहरी ॥

बांहन में बहुँटा सोहत हे
सोहत है जी ककनी गजरी।
तोड़न तोड़ा गोड़ म पहिरे
पहिरे बिछिया दसो अंगरी॥"

गोदना

आभूषणों के साथ-साथ सौन्दर्य वृद्धि का अन्य साधन है गोदना। गोदना की प्रथा अत्यंत प्राचीन है। "गुदने की कला का उद्गम पोलिनेशिया माना जाता है। विश्व के अनेक देशों में प्रमुख रूप से आदिवासियों में गुदने का प्रचलन देखने को मिलता है। गुदना शब्द का अर्थ गोदने (चुभने) से भी लिया जाता है। आदिवासियों में गोदने (चुभने) का कार्य शरीर पर नुकीली चुभने वाली सुई अथवा (इसी प्रकार की चीज) द्वारा काजल जैसे पदार्थ को चमड़ी में प्रवेश करा कर किया जाता है।"[28]

"छत्तीसगढ़ की जनजातियों के साथ ही अन्य पिछड़ी जातियों में अंग गोदने का प्रचलन है। अंग लेखन (गुदना) की प्रथा अत्यंत पुरातन है। जब अंग गोदा जाता है तो प्रमुख उद्देश्य सौन्दर्य वृद्धि ही होता है। कुछ आदिम कबीलों में यह प्रथा नितान्त भिन्न स्तर पर आनुष्ठानिक महत्व रखती है। किसी समय बिना गुदा अंग स्त्रियों के लिए लज्जा का विषय था।"[29] गोदना शरीर के विभिन्न अंगों में गुदाया जाता है रामनामी सम्प्रदाय के स्त्री-पुरूष सिर से लेकर पैरों तक राम-नाम गुदवाते हैं। कई आदिम जातियां चेहरे और उरोजों पर गोदना गुदवाती हैं। "किसी समय स्त्री का बिना गुदना के रहना लज्जा और अप्रतिष्ठा का विषय रहा है, बिना गुदने वाली स्त्री जीवन भर मानसिक पीड़ा उठाने के बजाय एक बार कष्टप्रद गुदनों की गुदवाई सहन करने में बहुत बड़ा सकुन और धार्मिक कृत्य समझने लगी थी।"[30]

छत्तीसगढ़ी लोक गीतों में गोदना का उल्लेख मिलता है। यहां घुमन्तु जाति देवार की स्त्रियां गोदना गोदने का कार्य करती हैं। गोदना गोदते समय जिसका अंग गोदा जा रहा है उसे पीड़ा का अहसास न हो, अत: मन बहलाव के लिए गीत गाया जाता है -

तोला का गोदना ल गोदवं ओ मोर दुलौरिन बेटी
तोला का गोदना ल गोदवं।

छत्तीसगढ़ में यह मान्यता है कि जिन स्त्रियों के अंग नहीं गुदे होते मरने के बाद उनके अंगों को यमराज सब्बल से गोदते हैं। इस लोक विश्वास के पीछे चाहे जो भी कारण हो। महाभारत काल में गोदने की प्रथा थी या नहीं यह और बात है, लेकिन

पंडवानी की नायिका दुरपति छत्तीसगढ़ी लोक रंग में रंगी है। वह पंडवानी गायक के शब्दों में छत्तीसगढ़ की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। वह द्रुपद नरेश की बेटी होकर भी एक आम छत्तीसगढ़ियां किसान की बेटी नजर आतीहै, तब भला वह गोदना गुदे कैसे रह सकती है। कथा गायक की बानगी दृष्टव्य है -

"गोरे हाथों में मेंहदी रचाके, नैनों में कजरा आंज के।
पिया मिलन को चली डगरिया छोटे से घुंघट निकाल के।

महासती के सुन्दर होंठ में सुन्दर होंठ पालिस। आँखी में सुन्दर काजर अँजाय। गोरी - गोरी हाथ में सुन्दर गोदना गोदाय अतेक सुन्दर झकझीक-झकझीक दिखथे। अरे भईया माथा में टिकली हे।"[31]

उपरोक्त तथ्य इस बात को और भी प्रमाणित करते हैं कि पंडवानी आंचलिक संस्कृति का दर्पण है। जिसमें आंचलिक परिवेश और लोक परम्पराओं का सम्मोहक स्वरूप प्रतिबिंबित है।

क्रीड़ा

बाल्यकाल में खेलों की अधिक महत्ता होती है। बाल्य जीवन खेल प्रिय होता है। बचपन खेलने और आनंद के लिए ही है। खेंलों से शरीर स्वस्थ रहता है। शरीर स्वस्थ तो मस्तिष्क स्वस्थ। कौरव और पांडव राजकुमार थे,उनके लिए खेलों के साधन की कमी नहीं थी। नागर सभ्यता और ग्राम्य सभ्यता में खेलों में बड़ा अंतर होता है। चूंकि पंडवानी के पात्र ग्राम्य सभ्यता के पोषक हैं। अत: उनका खेल भी ग्रामीण है। महाभारत में कुछ स्थानों पर खेलों में कन्दुक का वर्णन आता है बाकी धनुष बाण, तलवार चालन, गदा चालन,कुस्ती, व्यायाम आदि युद्ध कला के विषय है। इन्हें खेलों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। पंडवानी गायक अपने बालपात्रों को इन कलाओं का अभ्यासी तो बताता है, साथ ही सहज और सरल खेलों में छत्तीसगढ़ के खेल यथा - डंडा - पचरंगा, भौंरा-बांटी, फुगड़ी,घरघुदिंया आदि से सम्पृक्त करता है। यह पंडवानी की आंचलिक गुणवत्ता को और भी महिमा मंडित करता है -

बाल्यकाल में कौरव - पांडव साथ खेलते - खाते व शिक्षा प्राप्त करते हैं। दुर्योधन, भीम को मारना चाहता है, क्योंकि भीम खेलों में कौरवों को परास्त कर देता है -

"भीम बड़े कुबल हवे भाई।

दुर्योधन कथे भीम कभू दाम नई दीस। एखर से कइसे दाम देना चाही। दुशासन - अगा तेहां उपाय बता देबे का भाई

बता दुशासन कऊन से खेल खेलबो। तेमे भीम से दांव लेन । दुशासन कथे - एक खेल हे -

डंडा पचरंगा खेलिग लेबो भईया मोर
भईया दुर्योधन
भीमसेन दांव ग देई ग देहि भाई " [32]

सौ भाई कौरव भीम के साथ डंडा -पचरंगा खेलते हैं। डंडा पचरंगा छत्तीसगढ़ का ग्रामीण खेल है, जिसमें दांव लेने वाले डंडा फेंक देते हैं और झाड़ में चढ़ जाते हैं। दांव देने वाला डंडा लाकर पेड़ के नीचे गोल घेरा में रख देता है। दांव देने वाला यदि पेड़ के ऊपर के किसी लड़के को छू लेता है, तब वह दांव देता है। महाभारत में भी इस प्रकार के खेल का वर्णन मिलता है, लेकिन खेल का नाम नहीं बताया गया है -

"खेलत भीम और सौ भाई, भीम कहे तौ जीति न जाई।
एक वृक्ष पर हैं सब भाई, चढ़े जाई तब भीम हराई।
धाय वृक्ष तब भीम हलायो, गिरै सबै तौ थाह न पायो।
पेड़ हलाय तो दीन हांका, परे भूमि जिमी सब फल पाका।" [33]

कर्ण अपने बाल्यकाल में अपने से बड़े लड़कों को भी पराजित कर देता था। कर्ण को अधिरथ केंवट ने पाला इसलिए उसके हमजोली बच्चे उसे केंवट का बेटा केंवटा कहते थे। कर्ण राजा के बेटे को भी हरा देता। इस प्रसंग में भौंरा -बांटी का उल्लेख हुआ है -

"केंवटा के बेटा करन के बल देख भाई
मछरी-कोतरी खा-खा मोटावत हवे जी।
गिल्ली डंडा, खुडवा भौंरा -बांटी म सगी
सबो के सबो गांव भर ल हरावत हवे जी
चलो रे चलो सब मिलके लोहाटी बांटी बनाव
तब देखबो कइसे हराही ? राजा के बेटा काहे जी।" [34]

लड़के और लड़कियों के खेल अलग-अलग होते हैं। कबड्डी, भौरा-बांटी,गिल्ली डंडा, डंड पचरंगा जहां लड़कों के खेल हैं,वहीं घरघुदिंया, फुगड़ी आदि लड़कियों के खेल हैं। बाल सुलभ चंचलता के कारण उपरोक्त खेलों को लड़के-लड़कियां दोनों ही खेलते हैं। खेल में लड़का - लड़की का भेद नहीं रह जाता। पंडवानी में घरघुदिंया का उल्लेख मिलता है। द्रोपदी के पांच पति क्यों हुए ? इस संबंध में पंडवानी में यह दंतकथा प्रचलित है कि - द्रोपदी एक दिन घरघुदिंया (घरौंदा) खेल रही

थी। उसी समय एक गाय के पीछे पांच साँड़ आए। उनके खुरों से घरघुदिंया बिखर गया। वह नाराज गाय पर हंसने लगी , गाय का उपहास किया और कहा - लोग तुम्हें गौ माता कह कर तुम्हारी पूजा करते हैं और तुम पांच सांड़ लेकर घूम रही हो। इस पर गाय ने द्रोपदी को तभी उसके पांच पति होने का श्राप दिसा। इस प्रसंग में घरघुदिंया का उल्लेख यहां हमें ग्रामीण खेल की ओर इंगित करता है। जिसे बच्चे धूल इकट्ठा कर बनाते हैं।

पंडवानी में उल्लिखित खेल डंडा-पचरंगा, खुडुवा, गिल्ली-डंडा, भौंरा-बांटी, घरघुदिंया इत्यादि पूर्णतया आंचलिक, ग्रामीण खेल हैं और ये पंडवानी की आंचलिकता को द्विगुणित करते हैं।

भोजन

भोज्य सामग्री का वर्णन भी आंचलिक संस्कृति की आवधारणा को प्रमाणिक बनाता है। यह सत्य है कि खान-पान और रहन-सहन एक दूसरे के पूरक हैं। जीवन-यापन की आवश्यकताएं स्वाभाविक रूप ये समान होते हुए भी खान-पान और वेश-भूषा आदि के रूपों में भिन्नता मिल ही जाती है। प्राकृतिक पर्यावरण का खान-पान पर अवश्य ही प्रभाव पड़ता है । छत्तीसगढ़ में सामान्य वर्ग का सामान्यतया भोज्य -पदार्थ भात -बासी, साग - भाजी आदि हैं। बासी यहाँ की विशेष पहचान है। यहाँ यह हाना भी प्रचलित है कि "मथुरा के खोवा छत्तीसगढ़ के बासी।" छत्तीसगढ़ में किसान और श्रमिक वर्ग की अधिकता है। इसलिए समय व साधन की मितव्ययता की दृष्टि से लोग यहाँ रात के बचे भात को पानी में डुबा देते हैं , जिसे सुबह खाते हैं। सब्जी मिल गई तो ठीक, नहीं तो नूनबासी या चटनी बासी का स्वाद ही निराला होता है। विशेष अवसरों पर, तीज त्यौहारों में बरा-सोहारी, खीर -तस्मइ, अइरसा-पपची, ठेठरी-खुरमी, करी -लाडू आदि पकवानों का प्रयोग किया जाता है। पंडवानी में महाभारत की तरह भोज्य सामग्री का विशेष वर्णन नहीं मिलता। फिर भी पंडवानी गायक यदा-कदा इन भोज्य पदार्थों का वर्णन करता है - अधिरथ गंगा में बहते हुए संदूक को (जिसमें कर्ण को रखकर कुन्ती ने बहा दिया था।) घर ले लाया। इस प्रसंग में "बासी" का उल्लेख दृष्टव्य है - "डोकरा ह चुपचाप तरीका के साथ मोला बासी दे दे तहाँ अपन खोलके देखत रहिबे। भईया एक बटकी बासी डोकरा बर निकालिस डोकरा प्रेम के साथ में बासी खाय लागिस।" [35]

दुर्योधन द्वारा भीम को गरल देने के प्रसंग में कुछ पंडवानी गायक भात तथा कुछ पंडवानी गायक तस्मइ (खीर) का उल्लेख करते हैं जबकि महाभारत में केवल

गरल देना बताया गया है -

"यक दिन प्रीति बहुत तब कीन्हा, छलकरि गरल भीम को दीन्हा।
खाते गरल चेत न रहई, हर्षिगात दुर्योधन कहई।
तब गंगा में दीन बहाई, बूड़े भीम पतालहीं जाई।"[36]

श्रीकृष्ण दुर्योधन घर भोजन न करके विदुर भोजन करते हैं। पंडवानी में यह इस तरह प्रदर्शित हुआ है -

"दुर्योधन के मेवा त्यागे
साग विदुर घर खायो जी।"[37]

दुर्योधन सामंती प्रवृत्ति का द्योतक है। वह कृष्ण को प्रभावित करने के लिए भोजन हेतु आमंत्रित करता है। चूंकि दुर्योधन ने इसके पूर्व सभा में श्री कृष्ण को अपमानित करने का प्रयास किया था। अतः श्री कृष्ण उसका आमंत्रण ठुकरा कर विदुर के घर भोजन करना स्वीकार करते हैं। विदुर सर्वहारा व सत्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। वह सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है। उसके यहां केवल साग (भाजी जो गरीबी का परिचायक है।) स्वीकार कर लेते हैं। श्री कृष्ण जन-नायक हैं और उनके लिए सर्वथा यही उपयुक्त भी था।

पांडवों द्वारा द्रोपदी स्वयंबर से द्रोपदी को लाने पर कुन्ती द्वारा उसे आपस में बांट लेने के लिए कही गई उक्ति में भी छत्तीसगढ़ की प्रमुख फसल का उल्लेख मिलता है - "कहिथे माँ हम जोरदार भिक्षा लाय हन माँ। भीतरी-भीतरी खुसरे कुन्ती कहिदीस अरे कोदई लानव के चांऊर लावव भिक्षा ल बेटा पांचो भाई पांडव बांट लव।"[38] वनवास के समय पांडव और द्रोपदी करूहा कांदा खाकर जीवन यापन करते हैं। आज भी वन्यांचलों में वनवासी कंद-मूल, फल- फूल खाकर जीवन चलाते हैं। छत्तीसगढ़ [illegible] करूहा कांदा" विभिन्न नामों से मिलता है। जिसे पंडवानी गायक भोज्य पदार्थ के रूप में वर्णन कर अपने आंचलिक प्रेम का परिचय देता है। पंडवानी में भोज्य सामग्री की दृष्टि से काफी हद तक हमारी आंचलिकता परिपुष्ट हुई है।

वेशभूषा

खान-पान के साथ-साथ वेशभूषा के द्वारा भी आंचलिक संस्कृति प्रदर्शित होती है। महाभारत में राजाओं की कथाएं हैं। जन सामान्य का चित्रण लगभग नहीं के बराबर हुआ है। स्वाभाविक है राज परिवार की वेशभूषा राजसी ही होगी। कीमती वस्त्रों के साथ-साथ हीरे-मोती आदि उनके श्रृंगार के साधन होंगे। पंडवानी की कथा इससे परे नहीं है। फिर भी पंडवानी में सामान्य जन की वेशभूषा का वर्णन मिलता है।

जुआँ में हार जाने के बाद पांडव रत्न जड़ित वस्त्राभूषण उतार कर वल्कल धारण कर वन गमन करते हैं। ऐसा उल्लेख महाभारत में मिलता है। तत्कालीन समाज में वल्कल धारण करना दीनता का परिचायक था। किन्तु पंडवानी में उनकी वेशभूषा सामान्य छत्तीसगढ़िया की तरह धोती-पंछा ही है। छत्तीसगढ़ में विवाह के समय दुल्हा पीले रंग की, हल्दी में रंगाई गई धोती पहनते हैं जिसका उल्लेख पंडवानी में मिलता है - पांचो भाई पांडव सुन्दर पीला-पीला धोती पहिरे। सुन्दर मऊर बंधाय। [39]

छत्तीसगढ़ में स्त्रियाँ कोस्टऊहाँ लुगरा पहनती हैं। कोस्टऊहाँ लुगरा (साड़ी) स्थानीय कोस्टा (बुनकर) जाति द्वारा बुनी जाती है। वेशभूषा की दृष्टि से भी पंडवानी में प्रचलित आम पहनावे का पर्याप्त संकेत मिलता है।

रहन-सहन

किसी व्यक्ति द्वारा उपयोग में लाई गई वस्तुओं से उसके रहन-सहन और रीति-रिवाजों का पता चलता है। ये वस्तुएं उसकी आर्थिक स्थिति और श्री सम्पन्नता को भी प्रकट करती हैं। पंडवानी छत्तीसगढ़ में गाई जाने वाली लोक गाथा है। इसके सारे पात्र महाभारत के होकर भी स्थानीय हैं। अत: यह स्वभाविक ही है कि इन पात्रों द्वारा व्यहत वस्तुएं स्थानीय होंगी। कुछ वस्तुओं के प्रसंग और नाम प्रस्तुत हैं -

भैंसा- गाड़ा -

छत्तीसगढ़ में कृषि कार्य के लिए अधिकांशत: कृषक भैंसागाड़ा का प्रयोग करते हैं। बैलगाड़ी की अपेक्षा इसमें अधिक सामान लादा जाता है। पंडवानी में भैंसागाड़ा का प्रयोग भीम द्वारा बकासुर वध में उल्लिखित है -

"भीम दानो मारे बर चलदिस -
धीरे ग धीरे गाड़ा रेंगन लगय भाई
दानो मारे बर भीम चलन लगय भाई
बड़ा गा आनंद मनावन लागे भाई
चारा खोजे बर ग दानो गए हवय भाई
गाड़ा ग रेंगत-रेंगत चले भाई।

भीम धूरा ल टेका दिस, भईंसा ल ढील के खेदे अऊ भीम नानक लइका रूप ले के बइठगे।" [40]

अन्न के रूप में कोदई व चांवल का उल्लेख मिलता है। छत्तीसगढ़ में धान की खेती अधिक होती है। अत: यहाँ के लोगों का मुख्य भोजन चाँवल है। गरीब तबके

के लोग कोदई का उपयोग करते हैं। कोदई कोदो से बनती है। कोदई खाना दीनता का प्रतीक है।

"अरे कोदई लावव के चाऊँर लावव भिक्षा ल बेटा पांचो भाई पांडव बाँट लव।"

चिमनी, खटिया व मचली

रात्रि में प्रकाश के लिए मिट्टी तेल से जलाया जाने वाला दीपक (ढिबरी) चिमनी कहलाता है। छत्तीसगढ़ में प्रत्येक घर में इसका उपयोग किया जाता है। पंडवानी गायक कितनी सुघड़ता के साथ इसका प्रयोग करता है। कीचक वध प्रसंग में भीमसेन द्रोपदी का रूप बनाकर नाट्यशाला में प्रवेश करता है। कीचक उसे प्रेमालाप और आलिंगन करना चाहता है। भीम प्रवेश करते ही -

"सालिन्द्री के भेष बनाय राहय भीमसेन ममा। जाके भीमसेन चिमनी बरत राहय तेन ल बुझा दिस। खटिया म बइठे कीचक तऊन सालिन्द्री, ये सालिन्द्री कहिके सालिन्द्री बने भीमसेन ल देख के कीचक मतवाला बने राहय ममा।"[41] "गंधारी जा करके मचली म बइठे हे।" यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि क्या महाभारत काल में राजमहलों में प्रकाश व्यवस्था के लिए चिमनी ही उपलब्ध रहा होगा ? नहीं, यह तो केवल पंडवानी की विशेषता है, जिसमें चिमनी का प्रयोग पंडवानी गायक आंचलिकता को प्रतिस्थापित करना है।

अतिथि सत्कार का प्रतीक : पिढ़वा

छत्तीसगढ़ में अतिथि सत्कार में पिढ़वा (पाटा) का आसन दिया जाता है। दैनिक व्यवहार में भी जब कोई व्यक्ति घर में मेल-मुलाकात के लिए आता है तो उसे बैठने के लिए पिढ़वा दिया जाता है। पिढ़वा सम्मान का सूचक है। यथा- "मुंह देख बीड़ा मनखे देख पीढ़ा" या "घर आए बैरी ल घलो पिढ़वा देथे।" उपरोक्त छत्तीसगढ़ी हाना (लोकोक्तियों) से भी प्रकट होता है। पंडवानी में दृष्टव्य है -

"रानी बोलन लागे भाई
अब तो पिढ़वा बिछौना बिछावत हे
भाई ल बइठारत हवे रानी
जाना-जाना तैं सरेन्द्री ओ
भैया ल तैं दे दे पानी
मोर अइसे सुदेसना रानी कइसे बोलन लागे भाई।"[42]

यह अतिथि सत्कार की भावना है। छत्तीसगढ़ में अतिथि के आगमन पर सर्वप्रथम उसे

लोटा भर पानी दिया जाता है और बैठने के लिए पिढ़वा। ये दे अर्जुन सही भोला लागत हवे भाई -

अर्जुन ह आवत हे ओ मोर भाई

रूखमणि बहुत प्रसन्न होगे। पानी धर के लोटा म निकलिस अऊ कथे अर्जुन -

तेहां गोड़े ल धोई ग लेबे भईया
तेहां गोड़े ल धोई ग लेबे भाई। [43]

महाभारत में सिंहासनों का उल्लेख मिलता है। क्या राजघरानों में आसन के लिए पिढ़वा सुलभ होगा ? कदापि नहीं। सिंहासन मिल सकता है, पिढ़वा नहीं। यह पंडवानी गायक की छत्तीसगढ़ी रिवाज के अनुसार अतिथि-सत्कार की भावना की अभिव्यक्ति है।

सहिनाव सखी व मितान प्रथा

छत्तीसगढ़ में मितान (मित्रता बदने की प्रथा है) मित्रता की प्रगाढ़ता के लिए लोग समूह की साक्षी लेकर मित्र बनते हैं। इस मित्रता को महाप्रसाद, गजामूंग, गंगा बारू, भोजली, जंवारा, तुलसी जल, गंगा जल आदि से संबोधित करते हैं। उपरोक्त वस्तुएं पवित्र मानी जाती हैं। अत: मितान बदने के लिए उपरोक्त वस्तुओं में से जिन वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है उस मित्रता को उसी नाम से संबोधित किया जाता है। जैसे कि गंगा जल पिलाकर मितान बदने पर गंगा जल। मितान एक-दूसरे का नाम नहीं पुकारते। परस्पर माता-पिता को फुल ददा या फुल दाई कहकर संबोधित किया जाता है। इसी प्रकार सहिनांव बदने की प्रथा है। एक समान नाम होने पर सहिनांव कह कर पुकारा जाता है। उससे संबंध प्रगाढ़ होते हैं। पंडवानी में "सहिनांव सखी व मितान प्रथा" का उल्लेख है - "भीलनीन कुंती नांव सुनके कथे हत रे बैरी दूनो झन सहिनांव होगे न।" पुत्र-पुत्रियों की संख्या समान होने पर "सखी" बदने की परम्परा है।भीललीन व कुंती के पांच-पांच पुत्र थे। "सखी होगे न सीता-राम सखी सीताराम।" इसी प्रकार दुर्योधन कर्ण को मितान कहकर संबोधित करता है - "अऊ मितान करन ल देख के परम हर्ष तब राजा भयऊ।"

तुमड़ी

पकी लौकी (तुमा) को सुखाकर तथा उसका गूदा निकालकर उसे पात्र का रूप दिया जाता है। छत्तीसगढ़ में किसान और श्रमिक इसका प्रयोग पानी रखने के लिए करते हैं। इस पात्र में पानी भर कर खेत-खलिहान, जंगल-पहाड़ काम करने के लिए

जाते हैं। प्यास लगने पर वे अपनी प्यास इसी से बुझाते हैं। तुमड़ी में रखा पानी गर्मी के दिनों में ठंडा रहता है। यदि तुमड़ी को किसान और श्रमिक वर्ग का वाटर कूलर कहें तो अत्युक्ति न होगी। ऐसी ही तुमड़ी का प्रयोग पंडवानी कथा में मिलता है।

पांडव अपनी माता कुंती के साथ लाक्षागृह से निकल कर वन की ओर प्रस्थान करते हैं। पांडव और माता कुंती प्यास से व्याकुल हो जाते हैं तब भीमसेन तुमड़ी लेकर पानी के लिए जाते हैं -

"भीम जावन लागे भाई
पानी भर तुमड़ी घर जावन लागे न।"

बटलोही

छत्तीसगढ़ में भोजन पकाने के लिए पीतल से बने एक विशेष प्रकार के बर्तन का प्रयोग किया जाता है। अन्यत्र इसका नाम चाहे जो भी हो, छत्तीसगढ़ में इसे बटलोही कहा जाता है। भगवान भास्कर ने धर्मराज को यह बटलोही दी थी और कहा था कि - "जब तक द्रौपदी भोजन न कर लेगी यह बटलोही मनोवांछित भोजन देगी।" भोजनोपरांत प्रतिदिन यह इसी प्रकार भोजन देती रहेगी। महाभारत में इसे "चरी" बताया गया है जबकि पंडवानी में "बटलोही"।

पंचहर

विवाह में पिता द्वारा अपनी बेटी को उपहार देने की परम्परा अति प्राचीन है। आजकल जिसे "दहेज" कहा जाता है। छत्तीसगढ़ में माता-पिता द्वारा टिकावन (दहेज) के रूप में पंचहर अवश्य दिया जाता है। पंचहर में पाँच बर्तन होते हैं। जिनमें कांस की थाली, लोटा, बटकी, हऊँला और कोपरा प्रमुख हैं। पंडवानी में पंचहर का सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है -

भांवर में लइन सुन्दर टिकावन परे लगिस। पांचो पांडव लाइन वार बइठिन अउ द्रोपती बइठिस वामांगी

"कोन तोर टीके नोनी अंचहर-पंचहर
कोन तोर टीके धेनु गाय
ये नोनी सीता ल बिहावे राजा राम।
दाई तोर टीके नोनी अँचहर-पँचहर
ददा तोर टीके धेनु गाय।" [44]

घुरुवा

घर व गौशाले के कचड़े घूरे में डाले जाते हैं। बाद में ये कचड़े खाद के रूप में

खेतों में काम आते हैं। पंडवानी में घुरूवा का प्रयोग परिवेश को रूपायित करता है। जरासंध जन्म प्रसंग में यह प्रमाण द्रष्टव्य है -

राजा एकदम हतास होगे अऊ कथे का करबो।
अगा घुरूवा में लेगि के फेंकि ग देवव भईया।

राजा विहद्रथ राहे भईया तेन लइका ल घुरूवा में फेंकवा दिस।[45] इसी प्रकार की और भी अन्यान्य वस्तुएँ जिनका प्रयोग छत्तीसगढ़ के लोगों के दैनिक जीवन में होता है। उन वस्तुओं की उपयोगिता की सूचनाएँ पंडवानी में प्राप्त होती है। जिससे पंडवानी में स्थानीय ग्रामीण परिवेश की झांकी के दर्शन होते हैं और यह पंडवानी की आंचलिक संस्कृति को प्रकट करती है।

लोक मान्यताएं व लोक विश्वास -

लोक जीवन में लोक-मान्यताओं, लोक-विश्वासों और रीति-रिवाजों का क्रमागत इतिहास है। इनका उत्तोरत्तर विकास सभ्यता और संस्कृति के रूप में उद्भाषित होता है। लोक विश्वास के लिए लोक की मान्यता आवश्यक है। लोक विश्वास लोक और विश्वास दो शब्दों से बना है जिसका अर्थ है लोक मान्य विश्वास। वे विश्वास जो लोक द्वारा स्वीकृत और लोक में प्रचलित होते हैं। "वैसे विश्वास किसी प्रस्थापना या मान्यता की व्यक्ति परक स्वीकृति है, लेकिन जब उसे लोक स्वीकृति प्राप्त हो जाती है तब वह लोक का होकर लोक विश्वास बन जाता है। प्रश्न उठता है कि लोक की स्वीकृति कब और कैसे मिलती है ? वस्तुत: विश्वास (व्यक्ति परक या वैयक्तिक) और लोक विश्वास में अंतर क्रिया होती रहती हैं। कोई भी व्यक्ति परक विश्वास समाजीकरण की प्रक्रिया से गुजर कर ही सामूहिक या सामाजिक होता है। अत: लोक विश्वास सामूहिक अनुभव का परिणाम है।"[46]

श्री नर्मदा प्रसाद गुप्त इस मंतव्य को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि - प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलिलियो (1564-1642) के पहले बाईबिल जैसे पवित्र ग्रंथ से प्रमाणित विश्वास था कि पृथ्वी अपने स्थान पर अडिग है और सूर्य उसके चारों ओर घूमता है। गैलिलियो ने इसके विपरीत यह स्थापित किया कि सौर मंडल का आधार केन्द्र सूर्य है और इसका उगना और अस्त होना पृथ्वी के घूमने के कारण प्रतीत होता है। दरअसल यह उसका वैयक्तिक विश्वास था और इसकी वजह से उसे धर्म विरोधी कहा गया तथा उस पर धर्म के विरूद्ध प्रचार करने का आरोप गढ़ा गया। वैज्ञानिक अनुभवों के प्रमाण की परख ने लोक को विश्वास की परिधि में लाकर खड़ा कर दिया और धीरे-धीरे विश्व लोक ने अपनी स्वीकृति की मोहर लगा दी।

आज भी ग्रामीण अंचलों में जहाँ शिक्षा का समुचित प्रचार-प्रसार नहीं है उनका यह विश्वास सुरक्षित है कि - सूर्य घूमता है पृथ्वी नहीं। जहाँ लोग वैज्ञानिक प्रमाणों से भिज्ञ हैं उनका विश्वास बदल चुका है अब वे मानने लगे हैं कि पृथ्वी घूमती है। कहने का तात्पर्य यह कि लोक विश्वास गतिशील तत्व है। उसके रूप में परिवर्तन होता रहता है उसका स्थान अन्य लोक विश्वास ले लेता है।

"लोक विश्वास की जड़ लोक मान्यता है और लोक मान्यता आधार हीन कभी नहीं होती। या तो उसका आधार वेद-पुराण या लोक मान्य ग्रंथों में लिखा कोई प्रमाण या साक्ष्य होता है या फिर लोक के बीच से आया कोई लोक मान्य तर्क या प्रमाण। बहरहाल बिना कोई ठोस आधार के लोक विश्वास का उद्‌भव नहीं होता।" [47] इस संदर्भ में महाभारत की कथा का ही उदाहरण सटिक होगा। "गंगा तट पर महर्षि भरद्वाज का आश्रम था। एक अप्सरा घृत्वी को नहाते देख उसका मन विह्वल हो गया और वीर्य स्खलन हो गया जिसे महर्षि ने द्रोण (यज्ञपात्र) में रख दिया। जिससे पुत्र हुआ और उसका नाम द्रोणाचारी पड़ा।" [48]

"रानी गांधारी गर्भवती थी, किन्तु बालक का जन्म नहीं हो पाया था। कुंती से डाहवश अपना पेट पत्थर से कूट डाला। जिससे ओछे दिनों का माँस पिंड गर्भ से बाहर गिर गया। गांधारी उसे देखी बड़ी दुखी हुई और उसने व्यास जी का स्मरण किया। तभी व्यास जी आए उन्होंने सारा हाल जानकर उस पिण्ड के सौ टुकड़े कर सौ घी के घड़ों में रखवा दिए। समय पा घड़ों से सौ पुत्र हुए। वही दुर्योधन, दुशासन आदि कौरव कहलाए।" [49]

उपरोक्त दोनों कथाएं समान रूप से पंडवानी में भी आती हैं। यकायक इन कथाओं पर विश्वास नहीं होता। हालांकि दोने या घड़े में मानव शिशु की उत्पत्ति का प्रमाण महाभारत में है। फिर भी यह पौराणिक साक्ष्य मानवीय शंकाओं को निर्मूल नहीं कर पाया, फलस्वरूप इन मान्यताओं को नकारा गया, लेकिन वैज्ञानिक प्रगति ने इन शंकाओं को अब निर्मूल कर दिया। वैज्ञानिकों ने परखनली में मानव की उत्पत्ति कर पुरातन विश्वास को प्रतिस्थापित कर दिया।

"लोक विश्वास की कसौटी लोक है। लोक स्वीकृति या लोक मान्यता न मिलने पर लोक विश्वास गौण होकर लुप्त हो जाता है। अतएव उसका एक छोर लोक मान्यता है जिसके बिना उसका अस्तित्व नहीं बनता। दूसरी तरफ लोक विश्वास जब अपनी व्यवहारिक स्थिति से उठकर सैद्धांतिक बनता है, तब लोक मूल्य के रूप में परिणित हो जाता है। लोक विश्वास की पूरी यात्रा को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है -

प्रमाण + अनुभव >प्रस्थापना (व्यक्ति द्वारा) >विश्वास (व्यक्ति की स्वीकृति) >लोक मान्यता >लोक विश्वास "[50]

"लोक जीवन में लोक विश्वास की यह यात्रा निरन्तर जारी रहती है। ये लोक विश्वास सर्वव्यापी हैं तथा इनमें व्यक्तिगत धार्मिक-सामाजिक सभी परम्परागत तत्व मिलते हैं। लोक विश्वास का जन के जीवन में गहरा प्रभाव होता है। लोक विश्वास लोक संस्कृति के विधायक तत्व हैं। एक अंचल के लोक विश्वासों की सामूहिक इकाई उस अंचल की लोक दृष्टि का तटस्थ चित्र प्रस्तुत करती है, साथ ही उसके लोक दर्शी या लोक मूल्यों की रेखाओं को भी अभीष्ट रूप में रखती है। इस प्रकार लोक विश्वास समाज और संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग है।" [51]

पंडवानी में छत्तीसगढ़ के लोक विश्वास यथावत संरक्षित हैं। ये लोक विश्वास व्यक्ति का विश्वास होकर भी समूह की स्वीकृति पाकर लोक जीवन में प्रचलित हैं।

जादू-टोना

शिक्षित समाज जादू-टोने को भले ही न माने, उसके अस्तित्व को न स्वीकारे परन्तु लोग इसे न माने ऐसा नहीं है। आखिर जादू है क्या ? "मानव संसार की समस्त घटनाओं या सृष्टि के रहस्यों को नहीं समझ पाता है। अपने जीवन के रोज के अनुभवों से वह यह सीखता है कि अनेक ऐसी घटनाएं है जिन पर उसका कोई वश नहीं है। स्वभावत: उसमें यह धारण पनपती है कि कोई एक ऐसी भी शक्ति है जो कि दिखाई नहीं देती, परन्तु वह किसी भी मनुष्य से अधिक शक्तिशाली है। यह शक्ति अलौकिक शक्ति है, इसे डरा-धमका कर या ऐसे अन्य किसी उपाय से अपने वश में नहीं किया जा सकता है। इस शक्ति को अपने पक्ष में लाने का एकमात्र उपाय इसके सम्मुख सिर झुका कर पूजा, प्रार्थना या आराधना करना है। इस अलौकिक शक्ति से संबंधित विश्वासों और क्रियाओं को ही धर्म कहते हैं।"

"इसके विपरीत कुछ ऐसी शक्तियाँ भी है जो कि मनुष्य की अपनी शक्ति से अधिक शक्तिशाली है परन्तु इन पर कुछ निश्चित तरीकों से अधिकार किया जा सकता है। इसलिए मानव इस शक्ति के सामने झुकने के बजाय इस पर अपना अधिकार स्थापित करके उससे अपने उद्देश्यों की पूर्ति करवाता है। इसी को जादू कहते हैं।" [52]
डॉ. श्यामाचरण दुबे के अनुसार - "जादू उस शक्ति विशेष का नाम है, जिससे अतिमानवीय जगत पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सके और इसकी क्रियाओं को अपनी इच्छानुसार भले या बुरे, शुभ-अशुभ उपयोग में लाया जा सके।" [53]

आज की स्थिति में जादू-टोना को विज्ञान भले ही न माने, लेकिन ग्राम्य-

संस्कृति व वन-संस्कृति में पलने-बढ़ने वाले लोग इस पर विश्वास करते हैं। छत्तीसगढ़ का जनजीवन इससे अछूता नहीं है। तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत, टोनही, रक्सा आदि की धारणाएं आज भी यहाँ पाई जाती है। बौद्धिक वर्ग भले ही इसे मान्यता न दे,किन्तु ये लोक विश्वास आज भी यहाँ जीवित हैं। "भारतीय जन-जीवन में बहुत से लोक विश्वास ऐसे हैं जिनकी वास्तविकता का समर्थन हमारी विवेकशील बुद्धि भले ही न करती हो, किन्तु उनसे संबंधित आस्थाओं की जड़ें इतनी गहरी रहती हैं कि तद्विषयक लोक विश्वास, परम्परागत रूप में चलते जाते हैं। तंत्र-मंत्र, जादू-टोना से संबंधित लोक विश्वास की प्रायः यही स्थिति सुदुर अतीत से लेकर आज तक चली आ रही है।"[54]

जहाँ लोक विश्वास अभी भी जीवित है, वहाँ पंडवानी की कथा इससे पृथक कैसे रह सकती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है -

पारासर नामक देवता मछंदरी कन्या से गंगा पार कराने के लिए कहते हैं। मछंदरी अपनी नाव में बिठाकर पारासर को गंगा पार ले जाती है। बीच धार में नाव पहुँचने पर पारासर कन्या के रूप - सौन्दर्य पर मोहित हो उससे रतिक्रीड़ा की याचना करते हैं। इस पर कन्या कहती है कि - "अभी दिन है और वह स्वयं नादान है।" तब पारासर अभिमंत्रित काले-पीले चांवल व गुंगुल से अंधेरा कर देते हैं - "सामने से पारासर ऋषि आवाज लगाय हे, कन्या जहाँ देखे हे नजर लगाके कहे - ये कन्या मैं तोला देखेंव मोला प्रेम लागत हे। मैं नाहके बर नाहकत हंव ये जघा डोंगा ल रोक के मोर सेवा कर लेते। कहे मुनि मोर नादान अवस्था हे। सूर्यनारायण उदयकार हे। उठा के मारे मंतर गुंगुर बरसगे।पुरइन के पत्ता म डोंगा अरझगे। मछंदरिन सेवा करिस।"[55]

अभिमंत्रित काले-पीले चांवल व गुंगुल से दिन में रात जैसा वातावरण और नादान मछंदरी का नवयौवना बन जाना जादू का ही प्रभाव है। हिडिम्ब, घटोत्कच व मय दानव द्वारा पंडवानी के विभिन्न प्रसंगों में जादुई करिश्में की कथाएं जुड़ी हुई हैं। अभिमंत्रित काला-पीला चावल, जादू-टोने के लिए प्रयोग किया जाता है। आज भी छत्तीसगढ़ में तंत्र-मंत्र, जादू-टोना जो जानते हैं उन्हें बैगा कहा जाता है। ये भूत-प्रेत बाधा, बीमारी या देवी दुष्प्रकोप को इसी काले-पीले चाँवल से शांत करते हैं। एक प्रसंग नकुल-सहदेव के विवाह का देखिए -

"अगा धोबनीन गढ़ के सँवरी डोकरी भईया
करिया-पिंवरा चाऊंर मंतर मारे ग भईया
ये दे भीम ल भेड़वा बनावे ग मोर भाई।"[56]

धोबनीन गढ़ की संवरी बुढ़िया अपने मंत्र से काला-पीला चांवल मारकर भीम को भेड़ बना देती है। एक अन्य उदाहरण में भीम अपने जादुई प्रभाव से छोटे बालक का रूप ग्रहण कर लेता है -

"रूख कर ओटगन लेवत हवय रामा
नानकुन टूरा रे होवन लागे भाई।" [57]

छत्तीसगढ़ के ग्रामीण क्षेत्रों, आदिवासी क्षेत्रों में भूत-प्रेत और जादू टोने के विश्वास अधिक प्रचलित हैं। पंडवानी गायक इनसे अलग नहीं है। वह भी इस लोक विश्वास को जीवित रखता है। अस्तु पंडवानी प्रसंगों में जादुई कथाएं मिलती हैं।

मनसा पाप का प्रायश्चित

सामाजिक मान्यताओं और धार्मिक मान्यताओं के विरूद्ध आचरण को पाप की संज्ञा दी गई है। पापों के प्रायश्चित के लिए सामाजिक और धार्मिक विधि-विधान बनाए गए हैं। प्रायश्चित के बाद ही व्यक्ति अपराध-बोध से मुक्त होकर सार्वजनिक जीवन जीता है। इस लोक विश्वास की रक्षा पंडवानी में किस प्रकार हुई है ? यह निम्न उदाहरण में द्दष्टव्य है - प्रसंग विचित्र वीर्य का है - पतिवियोग और पुत्र शोक के कारण माता सत्यवती रोती रहती है। भीष्म एकान्त में उन्हें धार्मिक उपदेश दे सांत्वना देते हैं। भीष्म व माता सत्यवती की एकान्तिक चर्चा से विचित्र वीर्य के मन में सत्यवती व भीष्म के संबंधों को लेकर पाप समा जाता है। जब सत्य का पता चलता है तो विचित्रवीर्य "मनसा पाप" के अपराध-बोध से ग्रसित हो जाते हैं। वह प्रायश्चित का उपाय भीष्म से पूछते हैं, तब भीष्म मुक्ति का मार्ग बताते हुए कहते हैं -

"कोनो आदमी ल मनसा दसा लग हत्या लगगे त कइसे ओखर पाप धोवाथे ? ब्रम्हचारी कहे भाई जाके कासी में मर जावे ओ आदमी चिता बना के। जाके ससुरार में बारा साल ले रहे या जाके गंड़रिया घर भेड़ी चरावे या पीपर खोह में मर जावे।" [58] विचित्र वीर्य पीपल खोह में घुसकर आग लगाकर अपने मनसा पाप (शक) का प्रायश्चित कर स्वर्गवासी हो जाते हैं। हालांकि यह लोक विश्वास लगभग मृतप्राय: है फिर भी लोग मनसा पाप की स्थिति में प्रायश्चित के लिए इन उपायों की चर्चा करते हैं। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि महाभारत में "मनसा ताप" से मुक्ति का मार्ग काशी में शरीर को अग्नि में जलाना बताया गया है।

ममेरे- फुफेरे में वैवाहिक संबंध

छत्तीसगढ़ में उच्च्व जातियों को छोड़कर कुछ पिछड़ी जातियों व आदिवासियों

में मामा फुआ के लड़के-लड़की को विवाह-सूत्र में बांधने की प्रथा है। इस प्रथा को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। इस प्रथा का प्रचलन कब प्रारंभ हुआ ? निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह लोक विश्वास प्रचलित है कि उसका प्रचलन महाभारत काल में आरंभ हुआ।

कौरवों ने भीम को जहर देकर मंजूषा में बंदकर गंगा में प्रवाहित कर दिया, मंजूषा बहता हुआ पाताल लोक पहुँचा। पाताल लोक में वासुकी नागराज की कन्या सतजोगन को वह मंजूषा मिला। मंजूषा खोलने पर भीम की लाश मिली। उसे अपने पिता से अमृत मांगकर भीम को पिलाया। भीम के जीवित होने पर वासुकी नागराज ने दोनों को विवाह सूत्र में बांध दिया।

"इस कथा में वैवाहिक संबंधों में परधान आदिम जाति तथा मराठों के छत्तीसगढ़ में शासन स्थापित होने के बाद उनका रिवाज शामिल हो गया। यह रिवाज ममेरे- फुफेरे में वैवाहिक संबंध स्थापित करने का है। नागराज भीम को भाँजा कहता है और अपनी बेटी सतजोगन का उससे ब्याह करता है।" [59]

अर्जुन व सुभद्रा का विवाह भी ममेरे-फुफेरे का वैवाहिक संबंध ही है। ममेरे-फुफेरे का वैवाहिक संबंध छत्तीसगढ़ में कंड़रा, गोंड़ आदि जातियों में आज भी प्रचलित है। लोक विश्वास किंचित परिवर्तित होकर भी लोक जीवन में अभिसिंचित है।

चटिया-मटिया

छत्तीसगढ़ में "चटिया-मटिया" का लोक-विश्वास बहुप्रचलित है। कहा जाता है कि जिस घर में "चटिया-मटिया" (अदृश्य प्रेतयोनी) होती है, वह दूसरे घर की भोज्य-सामग्री लाकर उस घर के बर्तन में डाल देती है जहाँ उसका वास होता है। पंडवानी में इसका उल्लेख आता है - "दुर्वासा ऋषि अपने दस हजार शिष्यों के साथ वनवासी धर्मराज के यहाँ जाकर भोजन करना चाहते हैं। चूंकि द्रोपदी भोजन कर चुकी थी। अतः चरी (बटलोही) से उस दिन भोजन नहीं मिल सकता था। द्रोपदी ने कुटिया में जाकर श्रीकृष्ण का स्मरण किया। भक्तवत्सल श्री कृष्ण द्वारिका छोड़ द्रोपदी के सम्मुख उपस्थित हुए और खाने के लिए कुछ मांगा। द्रोपदी ने कहा - "भगवान मैं भोजन कर चुकी हूं बटलोही तो खाली है।" श्रीकृष्ण ने बटलोही मंगाकर देखा उसमें भाजी का एक टुकड़ा था। श्रीकृष्ण उसे ही खा गए।इससे तीनों लोक तृप्त हो गए, दुर्वासा और उसके शिष्य भी। इस प्रसंग में पंडवानी में "चटिया-मटिया" की बात पंडवानी गायकों द्वारा जोड़ दी जाती है। बटलोही में चटिया-मटिया थी इसलिए उस

बर्तन में भोजन सामाग्री की कमी नहीं पड़ती थी। छत्तीसगढ़ में इसी प्रकार और भी अन्य लोक विश्वास प्रचलित है। यथा - जिस घर में संवरा-भंवरा (उल्टे हाथ-पांव का मसान, भूत) होता है उसके घर में धन की कमी नहीं होती। संवरा-भंवरा दूसरों की संपत्ति को लाकर वहाँ रखता है जिस घर में वह निवास करता है तथा उस धन की रखवाली करता है।"

खटमल व जोंक की उत्पत्ति

ढेकना (खटमल) खाट में रहता है, जो आदमी का लहू चूसता है और जोंक पानी में जो आदमी और पशुओं का लहू चूसता है। इनकी उत्पत्ति के संबंध में यह लोक विश्वास प्रचलित है कि खटमल और जोंक कीचक के खून से पैदा हुए। "भीमसेन कीचक के वध करिस ओला भुंइया म पटकिस त ओखर लहू के फव्वारा फेंकन लगिस। सैरन्ध्री अपन लुगरा म ओला झोंक लिस काबर के कीचक के लहू ह भुंईया म गिर तीस त हजारों कीचक पैदा हो जतिस। उही कीचक के लहू ह एक बूंद खटिया म गिरगे, तेखर ढेंकना (खटमल) पैदा होइस अऊ जब सैरन्ध्री अपन लुगरा ल पानी म धोइस त जोंक पैदा होइस। पंडवानी का यह कथा-प्रसंग महाभारत में नहीं मिलता। यह केवल पंडवानी की निजता और उसमें संरक्षित लोक विश्वास है।

विवाह में फेरे के समय दुल्हा द्वारा दुल्हन के पाँवों का खूँदना

छत्तीसगढ़ में विवाह में फेरे के समय दुल्हा द्वारा दूल्हन के पांवों को खूंदा जाता है। दूल्हा के मजाकिया संबंधी जीजा, नाना या दादा फेरे के पूर्व दूल्हा को यह सीखा देते हैं कि दुल्हन के पांवों को जूते से खूंदना। दूल्हा ऐसा ही करता है। इस संबंध मं यह लोक विश्वास प्रचलित है कि महाभारत काल में धृतराष्ट्र और गांधारी के विवाह में फेरे के समय ऐसा हुआ था। चूंकि धृतराष्ट्र अंधा थे अत: फेरे के समय उसके पाँव गांधारी के पाँव से टकराते थे और तभी गांधारी ने जाना कि उसका पति अंधा है। गांधारी के पाँव से धृतराष्ट्र के पाँव टकराने का कारण उसका अंधापन है। छत्तीसगढ़ में इस प्रचलन के पीछे दूल्हा के मजाकिया संबंधियों द्वारा दूल्हे का उपहास करने का ध्येय जान पड़ता है। इस कथा से संबंध जोड़ना शायद दूल्हे को मजाक में अंधा कहना हो। कारण चाहे जो भी हो, लेकिन यह लोक विश्वास छत्तीसगढ़ी लोक जीवन में जीवित है।

रंगहा तेली की स्त्रियों द्वारा एक हाथ में रांगे का धारण

छत्तीसगढ़ में "रंगहा-तेली" एक विशेष जाति होती है इस जाति की स्त्रियाँ एक हाथ में चूड़ी और एक हाथ में रांगा धारण करती है। ऐसा क्यों ? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जाता है कि यह प्रचलन महाभारत की कथा से प्रभावित है। इस संबंध में

पंडवानी में यह प्रसंग आता है कि लाक्षागृह जब जला तब वहीं पर रहने वाला एक तेली अपने घानी से तेल निकाल रहा था। आग की लपटों को देखकर पांडवों के साथ तेली भय के मारे घानी व बैल को छोड़ प्राण बचाकर भाग गया। सुबह गांव में लोगो ने यह माना कि पांडवों के साथ तेली भी मर गया। उसका क्रिया कर्म होने लगा। दसगात्र के दिन घाट पर उसकी स्त्री की चूड़ियाँ उतारी जा रही थी, तभी तेली वापस आ गया। तब तक उसकी स्त्री के दाएं हाथ की चूड़ियाँ तोड़ी जा चुकी थी। इस विषम परिस्थिति में उस दिन उसके हाथ में रांगा का पटा पहनाया गया। तब दाएं हाथ में रांगा धारण करने की प्रथा प्रचलित हुई।"

महाभारत काल में रांगा (एल्युमिनियम) धातु रहा होगा, निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता, किन्तु वर्तमान में छत्तीसगढ़ में सर्व सुलभ है। इसके आभूषण पहने जाते हैं। अत: यह पंडवानी की विशेषता है कि पंडवानी गायक इसे अपनी कथा में पिरोता है। रंगहा तेली की स्त्री आज भी इस लोक विश्वास के अनुरूप अपने दाहिने हाथ में चूड़ी के स्थान पर "रांगा" धारण करती है।

कृष्णार्जुनी तालाब

महाभारत और पंडवानी की कथाओं ने छत्तीसगढ़ में अनेक लोक विश्वासों को जीवित रखा है। लोक विश्वास का एक और पक्ष द्रष्टव्य है - "मोरध्वज की कथा को रतनपुर (बिलासपुर)से जोड़ा जाता है। रतनपुर में "कृष्णार्जुनी" तालाब है। कहा जाता है कि कृष्ण और अर्जुन ने इस अंचल की यात्रा की थी। उन्हीं की स्मृति में यह तालाब खुदवाया गया था। आज भी पूष - पुन्नी के दिन यहां मेला भरता है। हजारों की संख्या में लोग इस पवित्र तालाब में स्नान करते हैं।" [60]

भीमसन पांव

हमारे देश के अनेक स्थानों में महाभारत काल का संबंध विभिन्न रूपों में लोक विश्वासों के कारण संरक्षित है। पंचमढ़ी (मध्यप्रदेश) में पांडव गुफा है। चूंकि गुफाओं की संख्या पांच है। इसलिए इन्हें पांडवा गुफा कहा जाता है। ऐसी लोक मान्यता है कि वनवास के समय पांडव यहाँ रूके थे। भोपाल जिले में भी भीम बैठका नामक प्रसिद्ध स्थान है। देश के अन्य अंचलों की तरह छत्तीसगढ़ भी अपने आपको कौरव - पांडवों के इतिहास से जोड़ता है। इतिहास प्रमाणित होता है और लोक विश्वास पर आधारित भी। इसी प्रकार एक अन्य लोक विश्वास यह भी है कि छत्तीसगढ़ के राजनांदगाँव जिले में स्थित गण्डई से 8 किमी. दूर पश्चिम में "बावहन पाट" पहाड़ है। उस पहाड़ में एक विशालकाय पाँव की आकृति है। स्थानीय लोग इसे "भीमसन

पाँव" कहते हैं। इस क्षेत्र में यह लोक विश्वास प्रचलित है कि वनवास के समय पांडवों ने इस क्षेत्र की यात्रा की थी। वह विशालकाय पाँव की आकृति भीम के एक पाँव की है। उसके दूसरे पाँव की आकृति डोंगरगढ़ की पहाड़ी में है।

शांति पर्व का गायन वर्जित

पंडवानी व महाभारत की कथाओं में जहाँ लोक विश्वास जीवित है।वहीं पंडवानी गायकों के मन में भी यह अंध विश्वास लोक विश्वास के रूप में पैठ गया है कि शांति पर्व का गायन करने से गायक की मृत्यु हो जाती है।कहा नहीं जा सकता कि इसमें कितनी सच्चाई है ? "संदर्भित शाखा (वेदमती शाखा) के गायकों का यह विश्वास है कि शांति परब की कथा कहने से गायक शांत (मृत) हो जाता है। इस अंध विश्वास के कारण शांति पर्व का गायन वर्जित है।" [61]

"अंततः एक बात बिल्कुल सही है कि लोक विश्वास मन की वस्तु है। जिस युग में जैसा लोक मन होगा, वैसे ही लोक विश्वास प्रधान होंगे। एक युग के लोक विश्वासों से उस युग के लोक मन की पहचान संभव है पर शर्त यह है कि उस युग के लोक विश्वास निश्चित होना चाहिए।" [62]

पंडवानी कथा गायन में अनेकों लोक विश्वास संचित हैं। कुछेक विश्वासों के प्रामाणिक आधार हैं और कुछेक प्रामाणिक आधार से वंचित। प्रमाणिक आधार से वंचित लोक विश्वास अंध विश्वास की श्रेणी में आ गए हैं। चूंकि ये लोक विश्वास मन से बंधे हुए हैं।अस्तु लोक जीवन के लिए उपयोगी हैं और इनके परिपालन से मानसिक संतोष मिलता है। पंडवानी में जहाँ लोक विश्वासों की अभिरक्षा हुई है ,वहीं इन लोक विश्वासों से पंडवानी की आंचलिकता पुष्पित और पल्लवित भी।

मानव सम्बंधों की अवधारणा

महाभारत की कथा मूलतः राजाओं की कथा है, जिसमें कौरवों-पाण्डवों व अन्य राजाओं की कीर्ति, वैभव, वीरता का उल्लेख मिलता है। मुख्य कथा कौरवों और पाण्डवों की है व अन्य कथाएं गौण और आनुषांगिक हैं। महाभारत का युगनिर्धारण निश्चित रूप से नहीं किया जा सकता। विभिन्न विद्वानों का मत है कि यह काल अनुमानतः लगभग 2000 ईसा पूर्व का हो सकता है। युग सन्दर्भ की दृष्टि से महाभारत की कथाओं में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्थाओं, परम्पराओं, रीति-रिवाजों, राजनैतिक व्यवस्थाओं आदि का उल्लेख मिलता है।

पंडवानी महाभारत की लोकानुकृति है। वेदमती शैली के गायक महाभारत का अध्ययन कर कथा गायन करते हैं। वे महाभारत के युग संदर्भों, तत्कालीन परम्पराओं

और सभ्यताओं का उल्लेख करते हैं। किन्तु कापालिक शैली के गायक जिनके कथागायन का आधार लोक विश्वास और लोक मान्यता है ,वे महाभारत काल के युगसंदर्भों से पूर्णत: अनभिज्ञ होते हैं। कुछे ऐसे भी पंडवानी गायक हैं जो वेदमती व कापालिक की मिश्रित शैली में गायन करते हें। वे यथा योग्य उन युग संदर्भों को खिचड़ी रूप में प्रस्तुत करते हैं। ''प्रबंध काव्यों में किसी परिवर्तन को दर्ज करने की गुंजाइश अधिक होती है - पंडवानी की एक घटना से ही यह बात स्पष्ट हो सकती है। यह ऐसी घटना है, जो महाभारत के पृष्ठों में अंकित नहीं है। पांडवों की राजरानी द्रोपदी की खूबसूरती पर गढ़-तुरकी का तुर्क राजा मोहित हो जाता है और उसको हरण करने की कोशिश करता है, किन्तु पाण्डवों की वीरता और युद्ध कौशल के आगे पराजित हो जाता है। यदि हम इस घटना पर विचार करें तो इतिहास गत सच्चाई के रूबरू खड़े हो जाते हैं। देश पर तुर्कों का शासन एक ऐतिहासिक सत्य है, किन्तु पांडव के काल में तुर्कों की उपस्थिति असंभव है। अत: निश्चयात्मक रूप से यह कहा जा सकता है कि तुर्कों की राज-व्यवस्था ने भी पंडवानी को (प्रकारान्तर में लोक समाज को) प्रभावित किया था।'' [63]

पंडवानी में तत्कालिन समाज के पुष्ट और प्रामाणिक युग संदर्भो का उल्लेख नहीं मिलता फिर भी इसका विछिन्न स्वरूप हमारे सामने आता है। पंडवानी में जहां महाभारत की मूल कथाएं सम्मिलित हैं वहीं अंचल में प्रचलित दंतकथाएं भी। इन कथाओं में मानवीय संबंधों की अवधारणा स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। महाभारत काल में वर्णव्यवस्था कायम थी। इसी आधार पर समाज का संचालन होता था।

''विभिन्न संस्तरों और वर्गों में विभाजित समाज में एक ही ऐतिहासिक काल के लोगों का विश्व का अवबोध और समझ अलग-अलग होते हैं। यह अवबोध और समझ बहुत हद तक उनके दार्शनिक, राजनीतिक, विधिक नैतिक, धार्मिक सौन्दर्य बोधात्मक दृष्टिकोणों पर निर्भर होते हैं और इनके अनुसार ही वास्तविकता के साथ लोगों के संबंधों को समझा और आँका जा सकता है।'' [64] पंडवानी में वर्णित मानवीय संबंधों को निम्न बिंदुओं पर परखा जा सकता है।

राजा-प्रजा संबंध

महाभारत में यह वर्णित है कि राजाओं का प्रजा के प्रति व्यवहार अच्छा था। वे अपनी प्रजा से पुत्र - तुल्य व्यवहार करते थे। कुछेक राजाओं को छोड़कर धर्मराज,द्रुपद,विराट, मगध नरेश, काशी नरेश आदि सभी प्रजा पालक थे। जरासंध जैसे कुछ प्रजा को उत्पीड़ित भी करते थे। प्रजा उस समय धन-धान्य से परिपूर्ण, सुखी सम्पन्न और संतुष्ट थी। उन पर किसी प्रकार का अत्याचार हो, ऐसा उल्लेख नहीं

मिलता। महा राजा युधिष्ठिर तो प्रजापालक थे। प्रजा का समुचित पालन तो उनका धर्म था। उनका कोई शत्रु नहीं था फलस्वरूप उन्हें अजातशत्रु की संज्ञा दी गई।

पंडवानी में भी पंडवानी गायक यह दर्शाता है कि राजा - प्रजा का संबंध सुमधुर था। प्रजा राजा को चाहती थी, उसका सम्मान करती थी और राजा भी अपनी प्रजा का प्रतिपालन करते थे। राजा दयालु थे। विशेष अवसरों पर राजा ब्राम्हणों, अपनी प्रजा को दान देते, उनकी सुरक्षा का प्रबंध और उनका पालन पोषण करते। यही राजा का धर्म भी है।जहां प्रजा में असुरक्षा, भय, आतंक और अत्याचार हो वहां प्रजा को सुखी नहीं कहा जा सकता। प्रजा का समुचित पालन राजा का प्रथमत: कर्तव्य है। पंडवानी का उदाहरण प्रस्तुत है। जिसमें धर्मराज नए राज्य इन्द्रप्रस्थ की स्थापना के बाद वहां की प्रजा का किस प्रकार प्रतिपालन करते हैं - दान के लिए "राजा धर्मराज सोने के खजाना, तामा खजाना रासन-पानी सबके खजाना राजा ल सौंप दीस रागी।" [65]

प्रजा का सुख-दुख राजा का सुख - दुख है। विपत्तियों में राजा प्रजा की सहायता करता है। राजा के क्या कर्तव्य हैं ? इसका एक उदाहरण निम्न प्रसंग में दृष्टव्य है - जब द्रोपदी का ब्याह हो चुका तो एक दिन नारद आए और उन्होने देखा कि द्रोपदी एक और पांडव पांच। कहीं इस कारण पांचों भाईयों में कलह न हो जाय, यह सोचकर उन्होंने द्रोपदी को बारी-बारी साथ रखने कहा। एक भाई के साथ द्रोपदी हो तो दूसरा भाई वहां न जाय। यदि इस व्यवस्था का उल्लंघन किसी के द्वारा होता है तो वह बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन कर वन में वास करेगा।नारद की सुलह सबने स्वीकार कर ली। एक दिन चोर ब्राह्मण की गाय की चोरी कर ले जाने लगे। ब्राह्मण सहायता के लिए पुकारा। अर्जुन ने ब्राह्मण की पुकार सुनी, किन्तु उसका गांडीव उस कक्ष में था जहां उस समय द्रोपदी और धर्मराज विश्राम कर रहे थे। इस स्थिति में अर्जुन सोचते हैं कि यदि मैं धनुष बाण के लिए जाता हूँ, तो बारह वर्ष का वनवास भोगना पड़ेगा।यदि वे ऐसा नहीं करते हैं। तो वे अपने कर्तव्य से च्युत होते हैं। प्रजा की पुकार और गाय की रक्षा जरूरी है। यह सोच वे धनुष बाण लाकर गाय की रक्षा करते हैं। नियमानुसार उन्हें बारह वर्ष का वनवास भोगना पड़ा। राजा के प्रति प्रजा के लगाव का दूसरा पक्ष -पांडवों के वनवास का दुखद समाचार हस्तिनापुर की प्रजा को मिला, तो वह भी दुख से व्यथित होकर घरों से के वनवास निकल पड़ी और पांडवों के पास पहुंच हाथ जोड़कर कहने लगी - "आप लोग कहां चले जा रहे हैं ? हम लोग भी आपके साथ चलेगें।" सारी प्रजा साथ जाने के लिए जिद पर अड़ गई। तब धर्मराज युधिष्ठिर ने उन्हें समझा-बुझाकर किसी प्रकार वापस भेजा। पंडवानी में वर्णित ये हैं राजा के कर्तव्य और उनकी उदात्त भावनाएं जो स्वयं कष्ट सहकर प्रजा की रक्षा करते हैं।

पिता-पुत्र संबंध

सामाजिक जीवन की सबसे छोटी, किन्तु महत्वपूर्ण इकाई है परिवार। "मानव समाज का इतिहास परिवार का ही इतिहास है। क्योंकि मानव-जीवन के प्रारंभ से परिवार उसके साथ है। किसी-न-किसी रूप में यह सांस्कृतिक विकास के सभी स्तरों पर पाया जाता है। परिवार ही समाज की प्रारंभिक इकाई है। मनुष्य का जन्म, विकास और संस्कृतिकरण परिवार से ही प्रारंभ होता है और परिवार के प्रसार से ही समस्त राष्ट्र का निर्माण होता है। इस अर्थ में हम सब लोग उस प्रथम परिवार के ही सदस्य हैं जो सबसे पहले पृथ्वी पर बसा होगा। इसलिए सम्पूर्ण मानव जाति को एक ही परिवार का क्रमिक विकसित रूप समझा जा सकता है।"[66] भारतीय जन - जीवन में परिवार का जो रूप प्राप्त होता है ,वह पितृसत्तात्मक परिवार है। परिवार में पिता अथवा पुरूष ही प्रधान होता है। पंडवानी में उल्लेखित परिवार का स्वरूप पितृ सत्तात्मक या पुरूष प्रधान्य ही है। पंडवानी में पिता -पुत्र के मधुर एवं स्नेह सिक्त संबंधों का विभिन्न प्रसंगों में सुन्दर उदाहरण मिलता है।

शांतनु सत्यवती के रूप यौवन पर मोहित हो जाते हैं। उससे विवाह करना चाहते हैं किन्तु सत्यवती के पिता द्वारा शर्त रखे जाने पर अपनी पहली पत्नि गंगा से उत्पन्न पुत्र देवव्रत के भविष्य की चिंता में मन मार कर रह जाते हैं। देवव्रत को जब पिता की चिंता का कारण ज्ञात होता है तो वे पितृहित में आजीवन विवाह न करने की भीषण प्रतिज्ञा करते हैं -

"रामे रामे रामे रामे रमायन भाई
भीष्म पितामह ग ये चले हवय भाई।

दासा राम केंवट के घर में भीषम पितामह चले। बोले महाराज मैं सत्यवती के लिए आएवं। राजा शांतनु के लिए मंगनी -जंचनी करे बर चले आए हवं। दासाराम कहे अरे संतानु के बड़े वाले बेटा अस। मोर बेटी के कोख ले लइका होय तेने राजा बने। अइसे होय त बिहाव करहूँ -

हाँस कर भीषम हव काहन लागे भईया।"[67]

इस प्रसंग में पिता-पुत्र के परस्पर हित की भावनाएं स्पष्ट है।पांडवों के बाल्यकाल में उनके पिता पांडु का स्वर्गवास हो गया था। वे भीष्म पितामह की छत्र छाया में पले, बढ़े और पितामह को ही पिता की तरह सम्मान दिया। पांडवों ने धृतराष्ट्र को भी पिता तुल्य समझा, किन्तु धृतराष्ट्र पुत्र मोह के कारण पांडवों को पिता का स्नेह नहीं दे सके। धृतराष्ट्र आँख से तो अंधे थे ही वे अपने पुत्र दुर्योधन के हठ और उसके मोह

में मानसिक रूप से भी अंधे हो गए थे। वे दुर्योधन की जिद के आगे झुक जाते फलस्वरूप महाभारत का युद्ध हुआ।

"दीपावली के तिहार घलो नजदीक आवत हे। ओखर साथे-साथ जुआं के खेल घलो हो जही। अइसे कहिके जब बोलय। बलवादे कहिके राजा धृतराष्ट्र ल दुर्योधन बोलय तो बिदुर जाके बोलय कोन ह ग ?दुर्योधन के पिता जी बोले जा बिंदुर तैं भाई पांडव ल लाय बर। ये ला सुन के बिदुर बोले - देख राजा ये जुआँ के खेल होही तेन काहथे इही जुआँ के खेल ह सौ भाई कौरव के नास के जड़ बनही। त ये जुआँ के खेल ल मना कर दे। फेर दुर्योधन माने तब तो कहे तैं नई बलावस पिता जी त मैं पाँच भाई पांडव ल बुलावत हवं। जिद्द कर दीस भईया त बिदुर ह रथ निकाले अऊ रथ निकाल के पांडव मन ल बलाय गर चलत हवय।" [68]

पंडवानी में यह भी पिता-पुत्र संबंधों का एक उदाहरण है । व्यक्ति व्यामोह में फँसकर उचित-अनुचित कार्यों का भेद नहीं कर पाता, जिसका परिणाम अनर्थकारी होता है। पंडवानी में पिता -पुत्र संबंधों का एक मार्मिक प्रसंग इस प्रकार है - अर्जुन की अनुपस्थिति में गुरूद्रोण चक्रव्यूह का निर्माण करते हैं। पांडवों के मन में चिंता व्याप्त हो जाती है। इस परिस्थिति में अभिमन्यु अपने पुत्र धर्म का निर्वाह करता है। चक्रव्यूह के अंतिम सातवें द्वार पर कौरवों द्वारा छलपूर्वक उसका वध कर दिया जाता है। अर्जुन की वापसी पर अभिमन्यु के वध का समाचार पाकर वे शोक - संतप्त हो जाते हैं। अर्जुन प्रण करते हैं कि कल युद्ध में संध्या तक जयद्रथ के प्राण नहीं लिए तो अग्नि में जल मर जाऊँ गा - "मैं प्रन करत हवं द्वारिका नाथ सूर्य उदय के बाद अउ दिन डूबे के पहिली जयद्रथ ल नई मारिहवं त मैं चिता ल रचके मर जहूँ। भगवान कथे अर्जुन धोखा खागे -

शंकर वर सोऊही दीन्हा
पांचव पांडव विजय चह कीन्हा। [69]

पंडवानी के इन उद्धरणों में पिता-पुत्र के परस्पर संबंधों के विविध आयाम देखने को मिलते हैं।

माता-पुत्र संबंध

माता और पुत्र का संबंध पवित्रतम मानवीय संबंधों में एक है। पुरूष प्रधान समाज में नारी को माता के रूप में पूज्यनीय स्थान प्राप्त है। हर नारी के हृदय में मां बनने की अभिलाषा होती है। अपनी संतान के लिए मां अपने प्राण भी दे देती है। ऐसी ही पवित्र भावनाएं पुत्र की भी होती हैं। पुत्र अपनी माता को देवी तुल्य मान उसका आदेश शिरोधार्य कर मां की इच्छा की पूर्ति करता है। पंडवानी में मातृ सेवा, मातृभक्ति

और पुत्र प्रेम के अनेक उदाहरण मिलते हैं। महर्षि व्यास अपनी माता सत्यवती का आदेश मानकर वंश वृद्धि के लिए अम्बिका, अंबालिका तथा दासी से धृतराष्ट्र, पाण्डु व विदुर को उत्पन्न कर मातृभक्ति का परिचय देते हैं। वहीं भीम माता कुन्ती के लिए स्वर्ग से अपने बाहुबल से ऐरावत हाथी को उतार लाते हैं और उसमें माता कुन्ती को बैठाकर नगर में शोभायात्रा निकालते हैं। कौरव मिट्टी का हाथी बनाकर गांधारी को उसमें बैठाकर यात्रा निकालते हैं जो वर्षा के कारण नष्ट हो जाता है।

भीम की तरह अर्जुन भी मातृभक्ति का परिचय देकर माता कुन्ती के द्वारा शिवपूजा के लिए कुबेर उद्यान से स्वर्ण के सुगंधित पुष्प बाणों की सहायता से उतार लेते हैं। भीम माता की आज्ञा मान एक चक्रानगरी में बकासुर राक्षस के लिए भोजन पहुंचाने जाते हैं। पाण्डव पुत्र भी माता की आज्ञा मान द्रौपदी को पांचों भाई पत्नी के रूप में स्वीकार करते हैं। पुत्र प्रेम के कारण कुन्ती कर्ण को अपने भाई पाण्डवों के पक्ष में आने का आग्रह करती है। पुत्र प्रेम के ही कारण गांधारी अपने पुत्र दुर्योधन के शरीर को वज्र बनाने के लिए उसे निर्वस्त्र अपने सम्मुख आने को कहती है। पंडवानी में जहाँ पुत्रों द्वारा मातृभक्ति दिखायी गई है ,वहीं माताओं ने भी अपने पुत्र प्रेम को प्रदर्शित किया है ,जो सहज और स्वभाविक है।

पति-पत्नी संबंध

पति-पत्नी को जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिए कहा गया है। परस्पर सद्भावना और सामंजस्य के अभाव में जीवन निर्वाह संभव नहीं है। संघर्षों में कटुता आ जाती है , जीवन कलह-ग्रस्त हो जाता है। अत: परस्पर सौहार्द्र, सद्भावना, स्वाभिमान की रक्षा और साहचर्य, सुख-दुख की सहभागिता पति-पत्नी की संबंधों के मधुरता के लिए आवश्यक है। छत्तीसगढ़ के दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी कंधे से कंधा मिलाकर चलते हैं। सुख-दुख साथ सहते हैं। पंडवानी में पति-पत्नी में परस्पर समपर्ण की भावनाओं को निम्न उद्धरण में देखा जा सकता है। विवाहोपरान्त गांधारी को जब यह ज्ञात होता है कि उसका पति धृतराष्ट्र अंधा है तो वह भी पति का अनुशरण कर अपनी आंखों पर पट्टी बांध लेती है और जीवन भर आंखों के रहते हुए भी अंधी बनकर पति की सेवा करती है। पति भक्ति और पति सेवा की ऐसी मिशाल अन्यत्र दुर्लभ है।

जुए में सर्वस्व राजपाठ हार जाने के बाद पाण्डव वन जाने लगे तो द्रौपदी भी साथ हो ली। द्रौपदी ने वन में जाकर पाण्डवों का साथ निभाया। राजसुख को त्यागकर वन में रही। बारह वर्ष का वनवास व एक वर्ष का अज्ञातवास पतियों के साथ व्यतीत किया। अज्ञातवास के समय कीचक ने सैरन्ध्री (द्रौपदी) की अस्मत लुटने का प्रयास किया। कीचक से अपमानित द्रौपदी ने दुखी होकर भीम को अपनी व्यथा बतायी। भीम

ने उसे सांत्वना दी और कीचक का वध किया।

"तो भीमसेन कहने लगे नारी द्रौपदी इतने कुकर्मी राजा तुम्हें समझ के दासी रखे हैं क्या ? याद रखो नीच दुराचारी कीचक की कुत्ते की मौत नहीं किया तो मैं पवन का बेटा नहीं। ममा राजा कीचक पर बड़ महान क्रोध होगे ममा।कहने लगे राजा कीचक को अभी पता नहीं -

पर नारी पर सुंदरी मति लगाओ अंग।
रावन के दस शीश कटे, पर नारी के संग।।"[70]

कीचक को मारकर भीम ने विपत्ति में द्रौपदी के सतीत्व की रक्षा की। जयद्रथ प्रसंग में भी पांडवों ने पत्नी की रक्षा की। पंडवानी में जहाँ पति धर्म का पालन हुआ है, वहीं पत्नियों ने भी अपने पतिव्रत धर्म का पालन किया है।

गुरू-शिष्य संबंध -

पंडवानी में कृपाचार्य को गुरूकुल का वंश परम्परागत गुरू बताया गया है। जिन अन्य गुरूओं का वर्णन पंडवानी कथा में आया है ,उनमें परशुराम और द्रोणाचार्य प्रमुख हैं। परशुराम तो द्रोणाचार्य के भी गुरू हैं। कौरवों और पांडवों को द्रोणाचार्य ने युद्ध कला में प्रशिक्षित और पारंगत किया। द्रोणाचार्य की अर्जुन पर विशेष कृपा थी। उनका यह मानना था कि अर्जुन जैसा सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर कोई अन्य नहीं हो सकता। किन्तु एकलव्य की धनुर्विद्या ने इस तथ्य को झुठला दिया। एकलव्य ने द्रोणाचार्य को गुरू बनाना चाहा था लेकिन द्रोणाचार्य ने एकलव्य को शूद्र कहकर धनुर्विद्या सिखाने से इंकार कर दिया। एकलव्य ने गुरू द्रोण की मूर्ति बनाकर उसके सम्मुख धनुर्विद्या का अभ्यास किया और वह महारत हासिल की कि कौरव-पांडव और स्वयं द्रोणाचार्य भी हतप्रभ रह गये। एकलव्य अर्जुन से श्रेष्ठ धनुर्धर न बनें इस आशंका से द्रोणाचार्य ने एकलव्य से दाहिने हाथ का अगूंठा गुरू दक्षिणा में मांग लिया। एकलव्य ने सहर्ष अपने दाहिने हाथ का अगूंठा गुरू के चरणों में अर्पित कर दिया। इस प्रसंग में जहाँ एकलव्य की गुरू भक्ति का उदाहरण मिलता है वहीं गुरू द्रोणाचार्य का पक्षपात दिखायी पड़ता है। फिर भी पंडवानी की कथाओं में गुरू-शिष्य की स्वस्थ परम्परा का निर्वाह हुआ है।

मालिक-सेवक संबंध

महाभारत की कथाओं में राजघरानों का चित्रण है। राजघरानों में दास-दासियां होंगे ही इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता, किन्तु महाभारत में इसका विशेष उल्लेख नहीं मिलता। विराट पर्व में पाण्डवों ने राजा विराट के यहाँ दास्य रूप में

ही अपना अज्ञातवास बिताया। महाभारत की तरह ही पंडवानी में भी इसका विस्तृत विवरण आता है।

युधिष्ठिर ने कंक (ब्राम्हण), भीम ने बल्ला रसोईया, अर्जुन ने वृहन्नला (नर्तक) सहदेव ने ग्वाला, नकुल ने अश्वपाल और द्रौपदी ने सैरन्ध्री के रूप में रानी सुदेष्णा की सेविका का कार्य किया। इसी बीच पांडवों ने दास बनकर अपने मालिक की यथोचित सेवा की। राजा ने भी इनसे सेवक नहीं अपितु मित्रवत् व्यवहार किया। पाण्डवों ने विपत्ति में राजा विराट और उनकी प्रजा की रक्षा की। अज्ञातवास की समाप्ति के बाद मालिक-सेवक का यह संबंध आत्मीयता और पारिवारिक सम्बन्धों में परिणित हो गया। राजा विराट ने अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के साथ कर दिया।

मामा-भांजा संबंध

मानवीय संबंधों के व्यापार में पंडवानी में मामा-भांजा संबंधों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। छत्तीसगढ़ में मामा की क्रूरता और कुटिलता पर मामाओं को कंस व शकुनि की संज्ञा दी जाती है। यह उनके आचरणों पर निर्भर करता है। शकुनि मामा की कुटिलता और छलकपट के कारण पाण्डवों को अनेकों विपत्तियां झेलनी पड़ी और अन्त में कौरवों का नाश हुआ। शकुनि ने स्वार्थ में सदैव दुर्योधन को गलत कार्यों के लिए उकसाया। दुर्योधन ने अपना भला-बुरा सोचे बिना शकुनि की बातें मानी। दुर्योधन अविवेकी, अभिमानी और आतंकी राजा के रूप में चित्रित हुए हैं। पंडवानी में अन्य मामा की कथा आती है, वे हैं शल्य। शल्य पाण्डवों के सगे मामा थे। वे माद्री के भाई थे, लेकिन महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर से लड़े। युद्ध में अपनी ओर से लड़ने का प्रस्ताव शल्य को कौरवों की ओर से पहले मिला। अत: वे पाण्डवों के विरूद्ध लड़ने को विवश हुए। जहाँ शकुनि ने छलकपट का सहारा लिया वहीं शल्य ने कौरवों को दिये वचन का परिपालन किया।

मानवीय संबंधों के आधार पर पंडवानी की कथा महाभारत से पृथक नहीं है। छत्तीसगढ़ में मानवीय संबंधों का जो आधार प्रेम, कर्त्तव्य, त्याग और सहयोग की भावना है। उसका पंडवानी की कथाओं में पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। इसीलिए पंडवानी छत्तीसगढ़ की लोकाभिव्यक्ति और मानवीय संबंधों का दस्तावेज है।

कृषि-संस्कृति के तत्व

भारत गाँवों का देश है और गाँवों की अर्थव्यवस्था का आधार कृषि है। अत: कृषि हमारे देश में आर्थिक ढांचे की आधारशिला है। कृषि कार्य में लगे कृषक-परिवार

कृषि संस्कृति के स्रोत हैं। कृषि-संस्कृति लोक जीवन का अभिन्न अंग है।यह लोक संस्कृति से किसी भी माने में अलग नहीं है। लोक जीवन में रसे-बसे लोकगीत, लोककथाएं कृषि संस्कृति के दर्पण हैं।

आघू नंगरिहा बईला हे टिकला
मेड़ पार ले उतरहूँ हो जही चिखला।

कृषि विषयक ग्राम गीतों की बहुलता हमारे लोक जीवन व लोक साहित्य में है। ये ग्राम गीत हमारी सभ्यता और संस्कृति के संवाहक हैं - "ग्राम गीत इस सभ्यता के वेद (श्रुति) हैं। वेद भी तो अपने आरंभिक युग में श्रुति कहलाते थे। वेद भी आर्यों की महान जाति के गीत ही थे और ग्राम गीतों की भाँति ही सुन-सुन कर याद किये जाते थे। सौभाग्यवश वेद ने बाद में श्रुति से उतरकर लिपि का रूप धारण कर लिया, पर हमारे ग्राम गीत अब भी श्रुति ही है।" [71] छत्तीसगढ़ी लोकगीतों, लोक कथाओं और लोक गाथाओं में कृषि जीवन का वृहद् चित्रण हुआ है तब पंडवानी भला इस प्रभाव से पृथक कैसे रह सकता है।

कृषि संस्कृति का पहला तत्व कृषि कार्य, खेती-बाड़ी है और कृषि संस्कृति का आधार और स्रोत भी। छत्तीसगढ़ का मूल कार्य कृषि है। छत्तीसगढ़ का किसान विपन्न अवस्था में भी मिट्‌टी की तरह मिट्‌टी में मिलकर कार्य करता है। वह अन्न उपजाता है , लोगों को अन्न उपलब्ध कराता है। यहाँ किसान को इस धरती का भगवान कहा जाता है -

धन-धन रे मोर किसान
धन-धन रे मोर किसान।
मैं तो तोला जानेंव भईया
तैं हर भुंईया के भगवान।

पंडवानी गायक कृषक या मजदूर वर्ग का ही होता है। दोनों ही स्थिति में पंडवानी गायक का मुख्य कार्य कृषि है और पंडवानी गायन गौण कार्य। कृषि कार्य के पश्चात् अवकाश के क्षणों में वह पंडवानी गायन करता है। चूंकि पंडवानी गायक स्वयं कृषक है। अत: वह कृषि-संस्कृति का सर्जक है और उन्नायक भी। तब वह अपनी संस्कृति को कैसे विस्मृत कर सकता है ? उसकी सभ्यता उसकी संस्कृति से पंडवानी अप्रभावित नहीं है। महाभारत युद्ध के लिए मैदान की तैयारी के संबंध में जो कथा पंडवानी में आती है वह कृषि संस्कृति का पुष्ट प्रमाण है। "जिरजोधन अपन संग म सेनापति मन ल धरके युद्ध के मैदान खोजे बर गईस। एक जधा भाँठा म किसान अउ

ओखर बेटा नांगर जोतत रिहिन। ततके बेर किसान के बेटा ल भांठा डोमी (सर्प की एक जहरीली प्रजाति) चाब दीस। मुँह डाहर ले गाजा फेंकन लगिस देंह करियागे, परान छुटगे। किसान रोइस न गइस, बेटा के लास ल तिरियाके फेर नांगर जोतन लगिस।[72]

कृषि कार्य के समय किसान को कार्यों की व्यवस्तता के कारण खाने-पीने की फुरसत नहीं रहती। कृषि कार्य में समय का बड़ा महत्व है। यदि कार्य समय पर नहीं हुआ तो अपेक्षित उत्पादन नहीं मिलता।भारतीय कृषक के जीवन में चौमास वर्षाऋतु का सर्वाधिक महत्व है, क्योंकि यहाँ की कृषि वर्षा पर आधारित है। कृषि कार्य की शुरूआत आषाढ़ महीने में होती है। यदि आषाढ़ में कृषि कार्य की तैयारी पूरी नहीं हुई तो खाने के लाले पड़ेंगे। छत्तीसगढ़ में तो यह उक्ति ही प्रचलित है - "डार के चुके बेंदरा अऊ असाड़ के चुके किसान।" अर्थात् दोनों एकसमान। यदि डाल पकड़ने से बंदर चूक गया तो नीचे गिरने पर उसकी मृत्यु या हानि सुनिश्चित है। उसी प्रकार यदि आषाढ़ महीने में किसान कृषि कार्य से चूक गया तो उसे हानि होगी ही। शायद इसलिए उपरोक्त प्रसंग में किसान अपने बेटे की मृत्यु पर भी काम बंद नहीं करता, क्योंकि यह वह हल चलाना बंद कर दिया और समय चूक गया तो उसका परिवार भूखों मर जायेगा।

कृषक जीवन में खेती-बांड़ी के लिए पारंपरिक रूप से पशुओं का प्रयोग किया जाता है। वैज्ञानिक उन्नति व उन्नत तरीकों के बावजूद भी कृषि में पशुओं की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। गाँव में कृषक के पास सीमित जमीन होती है, सीमित साधन होते हें। अतः इस कार्य के लिए बैल, भैंसा ही उसका साथी है। 'गौंटिया' या 'मालगुजार' किसान नहीं होते। अपने हाथ से हल नहीं चलाते वे केवल किसान होने का दंभ करते हैं। ये सामंतवादी और शोषक होते हैं। इनके पास कृषि के लिए उन्नत तरीके होते हैं।"आजादी के बाद भारत में एक नए प्रकार की ग्रामीण बुर्जुआजी अस्तित्व में आ चुकी है।कृषि में भी इजारेदारी की प्रकृति पनपने लगी है। कृषि एक लाभदायक उद्योग के रूप में बदलती जा रही है।यहाँ तक की कृषि भी नव उपनिवेशवाद के दायरे में आती जा रही है। कुछ स्थानों पर कृषि सामंतवाद टूट अवश्य रहा है। कृषि से संबद्ध श्रमिक वर्गों की सोच भी बदल रही है किन्तु इस बदलाव के बाद भी जनवादी धारा राष्ट्रव्यापी असर पैदा नहीं कर पा रही है। इतना तो जरूर है कि ऐतिहासिक बदलाव की प्रक्रिया में वर्गीय द्वन्द्व भर गए हैं, नक्शा बदल गया है।"[73]

पंडवानी गायक सामान्य कृषक का प्रतिनिधि होता है।सामंतवादी प्रवृत्तियों के शोषण का यदा-कदा वह स्वयं शिकार बनता है। कृषि कार्य के लिए बैलों-भैंसों की

आवश्यकता होती है। इसकी पूर्ति के लिए किसान गो पालन करता है। गाय भारतीय कृषि जगत की मूलाधार है। गाय से प्राप्त बैल व गोबर कृषि के लिए सर्वथा उपयोगी हैं। महाभारत के अनेक प्रसंगों में गौ-पालन का उल्लेख मिलता है। पंडवानी में भी गौ-पालन का वर्णन है। अष्टबसुओं द्वारा वशिष्ठ मुनि की गाय की चोरी, चोरों द्वारा ब्राम्हण की गाय की चोरी व अर्जुन द्वारा उनकी रक्षा के प्रसंगों में भी गोपालन का संकेत मिलता है।राजा विराट के यहाँ हजारों गायें थी। अज्ञातवास के समय राजा विराट के यहाँ सहदेव गोपालक के रूप में कार्य करते हैं। कौरवों ने उनकी गायों को हरने का प्रयास किया -

"बड़े-बड़े बीर गौ हरन करे बर
कौरव नायक
कौरव नायक जब चलन लागय
विराट नगर जब पहुँचन लागय।

राजा दुर्योधन गौ हरन करे बर विराट नगर पहुँचिस। राजा विराट के नगर में जतेक बलवान राहें गैया चराय बर गे रिहिन।ऊंखर बीच में राजा युधिष्ठिर के छोटे भाई सहदेव राहय। कौरव दल जाके सब गौ मन ल घेरना शुरू कर दीस। भैया कौरव के दल जाके राजा बिराट के जतेक भी गऊ राहय तेन गऊ ल घेरे लगिस।" [74]

गोपालन कृषि संस्कृति का सूचक है। पंडवानी के सूत्रधार भगवान श्री कृष्ण स्वयं गोपालक यदुवंशी हैं। कृषि कार्य के लिए हल चलाने व गाड़ी चलाने में बैलों व भैंसों को जोता जाता है। पंडवानी में भैंसा गाड़ी का उल्लेख हमें कृषि-संस्कृति के और भी नजदीक ले जाता है -

"भीम दानों मारे बर चल दीस
धीरे-धीरे ग गाड़ा रेंगन लागय भाई
दानो मारे बर भीम येदे जावय भाई
बेटा भीम लाला येदे जावय भाई
बड़ ग आनंद मनावन लागे भाई
चारा खोजे बर दानो गए हवय भाई
गाड़ा ग रेंगत-रेंगत चले भाई।
भीम धूरा ल टेंका दीस भँईसा ल ढील के खेदे।" [75]

इसी प्रकार पंडवानी में तुमड़ी का उल्लेख कृषि संस्कृति को प्रदर्शित करता है कृषक व मजदूर जब कृषि कार्य के लिए जाते हैं तो तुमड़ी में पानी ले जाते हैं। तुमड़ी का पानी शीतल रहता है। जिससे वे अपनी प्यास बुझाते हैं। महाभारत में पांडव व उनकी

माता कुंती लाक्षागृह से निकल कर वन चले जाते हैं। प्यास लगने पर भीम तुमड़ी लेकर पानी की तलाश में जाता है -

भीम जावन लागे भईया

पानी बर तुमड़ी धर जावन लागे न।

कृषि कार्य के लिए घुरवा (घूरे) का बड़ा महत्व है। गाँवों में कृषक कचरों का संग्रहण घुरूवा में करते हैं। जिसे खाद के रूप में खेतों में डाला जाता है। पारंपरिक खाद के रूप में इसका प्रयोग खेती के लिए उत्तम माना जाता है। पारंपरिक खाद के स्रोत घुरवा से पंडवानी में कृषि संस्कृति को बल मिलता है - "राजा एकदम हतास होगे अऊ कथे का करव -

अगा घुरवा में लेगि के फेंकिग देवो भईया

राजा विहद्रथ राहे भईया तेन लइका ल घुरवा में फेंकवा दीस।"[76]

कृषि संस्कृति का दूसरा तत्व सीधी-सादी जिंदगी है। कृषि संस्कार में कृषक का जीवन सीधा-सादा होता है। किसी प्रकार का छल-कपट या दिखावा उससे कोसों दूर होता है। वह बाहर से चट्टान जैसा कठोर ,किन्तु अंदर से उतना ही कोमल होता है। उसके जीवन में किसी प्रकार का आवरण नहीं होता। पंडवानी में यदि कौरव पक्ष के पात्रों को छोड़ दिया जाय तो पांडवों का जीवन हमें नितांत सादगीपूर्ण परिलक्षित होता है। पांडवों का जीवन कृषक जीवन व वनवासी जीवन से पूरी तरह मेल खाता है। सुविधा प्राप्त होकर भी सुविधाहीन जंगल-जंगल भटकना भले ही उनकी नियति रही हो, किन्तु यह उनकी सादगी और सौहार्द्र का अद्भुत नमूना है। निर्लिप्त, नि:हंकार उनका यह जीवन कृषि संस्कृति का पोषक और परिचायक है। महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद ही धर्मराज सिंहासन पर आरूढ़ हुए। पांडवों का सम्पूर्ण जीवन किसान की तरह अभावों और विपत्तियों में बीता। दर-दर की ठोकरें खाई, जंगलों में रहकर अपने दिन काटे, दास्य-जीवन व्यतीत किया। "भीम जंगल-झाड़ी, नदी-नाला, पहाड़-पर्वत में पानी खोजत राहे। हिडिम्बक वन के राक्षस हिडिम्ब के नाक म महमहाय - कइसे मोला मनखइन मनखइन लगथे कोनो आए हे का ?

पहिली नजर लमाके देखन लागे पिता

पाँच मूर्ति दिखत हवय ग मोर भाई

अहा.... पाँच ठी मूर्ति दिखत हे पेड़ के छँईहा म सूते।"[77]

कृषि संस्कृति की तीसरी विशेषता पारिवारिकता उसकी सामुदायिकता है। कृषक परिवार छोटा नहीं अपितु बड़ा ही होता है।कृषि कार्य के लिए ज्यादा लोगों की

आवश्यकता पड़ती है। इनकी अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता इनकी सामुदायिकता पर निर्भर होती है। "छत्तीसगढ़ की अर्थ व्यवस्था, कृषि पर आधारित है। कृषि के लिए अधिक लोगों की आवश्कता होती है। अतः यहाँ संयुक्त परिवार ही पाये जाते हैं। संयुक्त परिवार के कारण कृषि भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों मे बँटने से बच जाती है, साथ ही कृषि कार्य के लिए यथेष्ट व्यक्ति भी उपलब्ध हो जाते हैं। इन बड़े परिवारों में दादा-दादी, माता-पिता, सभी भाई, उनकी पत्नियां, बच्चे अविवाहित बहनें आदि होती है।"[78] महाभारत हो या पंडवानी दोनों में ही संयुक्त परिवार के दर्शन होते हैं। कौरव सौ भाई थे किन्तु वे अलग-अलग थे। ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। पाँच भाई पांडव एक साथ थे। उनका परिवार संयुक्त था। भीष्म पितामह कौरवों के साथ थे। दादा-दादी, पति-पत्नि, बेटे, नाती-पोते सब एक साथ। पंडवानी में उल्लेखित परिवार व सामुदायिकता लोक जीवन की विशेषता है। सामुदायिकता में सहयोग व सहकार की भावना प्रबल होती है। यह उक्ति भी प्रचलित है।

जहाँ सुमति तहँ सम्पत्ति नाना।
जहाँ कुमति तहँ विपत्ति विधाना॥

सामुदायिकता व पारिवारिकता की दृष्टि से पंडवानी व महाभारत दोनों ही कृषि संस्कृति का बोध कराते हैं।

कृषि संस्कृति में लोगों का जीवन ,उनका स्वभाव सादगी पूर्ण पाया जाता है। सहजता और सरलता उनकी विशेषता है।पंडवानी में गांधारी और कुंती दोनो ही राजरानी है,राजमाता हैं किन्तु उनका पारस्परिक व्यवहार, उनकी बोलचाल सामान्य औरतों की भांति ही है। सामान्य औरतों की भांति शिव पूजा के लिए जाती हैं। यह लोक की विशेषता है कि उसके पात्र विशिष्ट होकर भी लोक जीवन के रंग में रंगे होते हैं। जायसी कृत पद्मावत में रानी नागवती रत्नसेन के सिंघल द्वीप चले जाने पर विरह के क्षणों में रानी नहीं बल्कि सामान्य औरत की भाँति तड़पती है।

"पीऊ बियोग अस बाऊर जीऊ। पपिहा नित बोले पीऊ-पीऊ।
अधिक काम दाधै सो रामा। हरि लेई सुवा गयऊ पिऊ नामा।
बिरह बात तस लाग न डोली। रकत पसीज भीजि गई चोली।
सूखा हिया हार भा भारी। हरि-हरि पान तजहिं सब नारी।
खन एक आव पेट मह साँसा। खनहिं जाई जिऊ होई निरासा।
पवन डोलावहिं सींचहिं चोला। पहर एक समुझहिं मुख बोला।

प्रान पयान होत को राखा ? को सुनाव प्रीतम के भाखा।" [79]

पंडवानी के पात्र भी सहज रूप से हमें लोक जीवन के पात्र लगते हैं।

कथा गायक मूल संस्कृति के विकास की गति में कृषि-संस्कृति का प्रमुख है। उसका जीवन कृषि संस्कारों से आप्लावित है। पंडवानी का कोई भी कथा गायक शहरी नहीं अपितु ग्रामीण मानसिकता से पूरित है। गाँव की स्वाभाविकता, उदारता, सरलता, निर्लिप्तता और संस्कृति प्रेम उसका आभूषण है। यूँ तो करमा, ददरिया, सुवा शहरी कवि भी लिखते हैं किन्तु पंडवानी किसी का लिखा हुआ नहीं लोक की निधि है, ठेठ छत्तीसगढ़ी में एक आम किसान की सोच। इसमें शहरी मानसिकता के लिए कोई स्थान नहीं है। वह उत्पादक और इतिहास का सर्जक भी है - "यदि उत्पादक वर्गों के जीवन को आधार बनाकर अध्ययन किया जावे तो ज्ञात होगा कि भारत में कृषिजीविता के स्वछन्द उन्मेष में ही यहाँ का इतिहास करवटें लेता रहा है और संस्कृति केंचुलि बदलती रही है। इतिहास के सकारात्मक तत्व रूपों की खोज के वास्ते इस कृषि जीविता के समयानुकुल उन्मेश की अगणित धाराओं की सही-सही समझ हासिल कर लेनी होगी, तब कहीं जाकर यह सिद्ध किया जा सकेगा कि भारत का लोक साहित्य कृषि वर्गों के सामाजिक उत्पाद का ही सांस्कृतिक रूप रहा है। हिन्दी भाषा के जातीय द्वन्द्वों में , हिन्दी की रचना में शब्द और अर्थ के साथ ही वस्तु और भाव के समस्त सन्दर्भ श्रोतों में यह कृषिजीविता ही बद्धमूल रही है। यहाँ के इतिहास में कृषि और लोक की प्रतिबद्धता हमेशा ही निर्णायक रही है। श्रम की प्रकृति ही रचनात्मक और संगठनात्मक होती है, श्रम के मूल्य लोकवादी होते हैं। इसीलिए सामंतवादी-महाजनी व्यवस्था के विरूद्ध कृषि की लोक-संस्कृति का चरित्र हमेशा ही जनवादी रहा है। इस लोक संस्कृति में सृजनशील जीवन के सार्वजनिक उत्कर्ष को देखा जा सकता है।" [80]

इस दृष्टि से पंडवानी लोक जीवन का अविरल प्रवाह है। श्रमजीवी उत्पादक वर्ग किसान की अभिव्यक्ति है। अतः पंडवानी कृषि-संस्कृति की पोषिका और उन्नायिका है।

संदर्भ -

1. दो शब्द मेरे भी : सापेक्ष : लोक संस्कृति अंक : पृष्ठ - 7
2. लोक साहित्य : डॉ. श्रीमती विनोद तिवारी (बुंदेलखंडी एवं बघेल खंडी लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन) : सापेक्ष : लोक संस्कृति अंक पृष्ठ 18
3. लोक संस्कृति और परिवर्तन का आसंग : डॉ. कमला प्रसाद पांडेय : चौमासा अंक - 35 पृष्ठ 5

4. छत्तीसगढ़ी लोक कथाओं का अनुशीलन : डॉ. मृणालिका झा : पृष्ठ 436
5. दो शब्द मेरे भी : सापेक्ष : लोक संस्कृति अंक पृष्ठ - 8
6. राजस्थानी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन : डॉ. बलराम शर्मा : प्रस्तावना
7. छत्तीसगढ़ी लोक कथाओं का अनुशीलन : डॉ. मृणालिका झा पृष्ठ 440
8. महाभारत और छत्तीसगढ़ी लोकगाथा पंडवानी का तुलनात्मक अध्ययन : डॉ. बलदाऊ प्रसाद निर्मलकर : पृष्ठ 401
9. लोक संस्कृति और साहित्य : सोमदत्त : सापेक्ष : लोक संस्कृति अंक : पृष्ठ 62
10. हिन्दू संस्कार : डॉ. राजबली पाण्डेय : पृष्ठ 18
11. भारतीय सामाजिक संस्थाएं - डी.डी. शर्मा पृष्ठ : 101
12. मानव और संस्कृति : श्यामाचरण दुबे : पृष्ठ : 25
13. हिन्दू संस्कार : डॉ. राजबली पाण्डेय : पृष्ठ 26
14. भारतीय सामाजिक संस्थाएं - डी.डी. शर्मा पृष्ठ : 188
15. निजी संग्रह से
16. - वही -
17. लोकाचार : डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त : चौमासा अंक :25 पृष्ठ :10
18. .... वही ....4..........4......... पृष्ठ : 10
19. सूचक : श्री प्रहलाद निषाद : पंडवानी गायक
20. लोकाचार : डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त : चौमासा अंक :25 पृष्ठ :26
21. लोकांकनों में अभिव्यक्ति सौन्दर्यानुभूति : लेख महेन्द्र भानावत
22. वह चबूतरा जिसमें तुलसी का पौधा लगाया जाता है।
23. निजी संग्रह से
24. छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन :दयाशंकर शुक्ल : पृष्ठ 265-266
25. पंडवानी : नंदकिशोर तिवारी : चौमासा अंक 4, पृष्ठ : 39
26. बुन्देलखण्ड के लोकाभूषण : नर्मदा प्रसाद गुप्त : चौमासा अंक : 27/28 पृष्ठ : 3
27. निजी संग्रह से
28. शरीर के अलंकरण गुदना : डॉ. उमेश मिश्रा चौमासा अंक 29 पृष्ठ:55
29. गुदना : नृतत्व एवं इतिहास के संदर्भ में : श्याम परमार : चौमासा अंक 25 पृष्ठ : 27
30. गोदना : बसंत निरगुणे चौमासा अंक - 25 पृष्ठ : 41
31. निजी संग्रह से

32. - वही -
33. महाभारत: सबल सिंह चौहान : पृष्ठ : 24
34. सूचक : श्री फिरंगी राम यादव : पंडवानी गायक
35. निजी संग्रह से
36. महाभारत: सबल सिंह चौहान : पृष्ठ : 24
37. निजी संग्रह से
38. ....वही.........
39. ....वही.........
40. ....वही.........
41. ....वही.........
42. ....वही.........
43. ....वही.........
44. ....वही.........
45. ....वही.........
46. लोक विश्वास : नर्मदा प्रसाद गुप्त : चौमासा अंक : 23 : पृष्ठ : 87
47. .... वही ....
48. महाभारत : पंडित प्रयाग दत्त विचित्र : पृष्ठ 63-64
49. .... वही ....''......... पृष्ठ : 58
50. लोक विश्वास : नर्मदा प्रसाद गुप्त : चौमासा अंक : 23 : पृष्ठ : 88
51. .... वही ....''.......''........ पृष्ठ : 89
52. सामाजिक मानव शास्त्र की रूपरेखा : रवीन्द्रनाथ मुखर्जी : पृष्ठ : 314
53. मानव और संस्कृति : डॉ. श्यामाचरण दुबे : पृष्ठ : 138
54. राजस्थानी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन : डॉ. मदनलाल शर्मा पृष्ठ : 129
55. निजी संग्रह से
56. ....वही..........
57. ....वही..........
58. ....वही ....
59. पंडवानी : नंदकिशोर तिवारी : चौमासा अंक - 4 : पृष्ठ : 36
60. .... वही ....''.......''........ पृष्ठ : 34-35
61. .... वही ....''.......''........ पृष्ठ : 35

62. लोक विश्वास : नर्मदा प्रसाद गुप्त : चौमासा अंक :23 : पृष्ठ 101
63. श्री जीवन यदु का पत्र
64. मानव और संस्कृति : युलियान ब्रोमलेय : रोमान पोदोल्नी : पृष्ठ : 143
65. निजी संग्रह से
66. सामाजिक मानव शास्त्र की रूपरेखा : रवीन्द्र नाथ मुखर्जी : पृष्ठ 221
67. निजी संग्रह से
68. ....वही.........
69. ....वही.........
70. निजी संग्रह से
71. छत्तीसगढ़ी गीतों का परिचय : श्यामाचरण दुबे : भूमिका से उद्घृत
72. निजी संग्रह से
73. उत्पादक वर्गों का जीवन और लोक संस्कृति : राजेश्वर सक्सेना सापेक्ष : लोक संस्कृति अंक : पृष्ठ 37
74. निजी संग्रह से
75. ....वही..........
76. ....वही ....
77. ....वही ....
78. छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का लोक तात्विक व मनोवैज्ञानिक अनुशीलन : डॉ. हनुमंत नायडू : पृष्ठ 128
79. संक्षिप्त पद्मावत : जायसी : संकलन कर्ता व संपादक : श्यामसुन्दर दास और सत्यजीवन वर्मा , पृष्ठ : 132
80. उत्पादक वर्गों का जीवन और लोक संस्कृति : राजेश्वर सक्सेना : सापेक्ष : लोक संस्कृति अंक : पृष्ठ : 55

अध्याय - 4

- ❑ पंडवानी कथा गायन का लोक महाकाव्यत्व
- ❑ साहित्यिक मान दण्डों के आधार पर परीक्षण
- ❑ लोक साहित्य के छंद, भाषा सौंदर्य



पंडवानी गायिका श्रीमती उषा बारले

पंडवानी कथा गायन का लोक महाकाव्यत्व

साहित्य एक प्रकार की अभिव्यक्ति है। साहित्य का अर्थ है जिसमें सबका हित हो। अर्थ, विचारों और भावों का परम्परागत सहभाव । साहित्य की यह भावना अनवरत प्रवाहमान है।

''जब से मनुष्य ने चकमक से आग पैदा की और संयत ऊंगलियों ने वर्णपरक ध्वनियां निर्मित की। तब से वह जिज्ञासा के भाव से जानने की अधीरता से और अंधेरे से प्रकाश की ओर बढ़ने की प्रेरणा से उद्विग्न रहा है। प्रणय कामना ने उसके साहित्य का सर्जन किया, ज्ञान पिपासा ने उसे अपने जगत का बोध कराया और प्राणियों से सहानुभूति ने उसे दोलायमान जीवन का सुख दिया जो हंसता है, नाचता-गाता है, हास-परिहास मुहैया करता है। जीवन समग्र है, कम से कम उनकी संभावनाएं समग्र है और सचमुच वे अभागे हैं ,जो इस समग्रता की समृद्धि तथा गौरव का अनुभव नहीं करते।'' [1]

साहित्य का पर्यायवाची शब्द है वाङ्मय और वाङ्मय का अभिप्राय है वाणीयुक्त। साहित्य के दो भेद बताए हैं -

01. काव्य
02. शास्त्र

''इह हि वाङ्मयुम यथा शास्त्रं काव्यं च''

विभिन्न विद्वानों ने काव्य को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है -

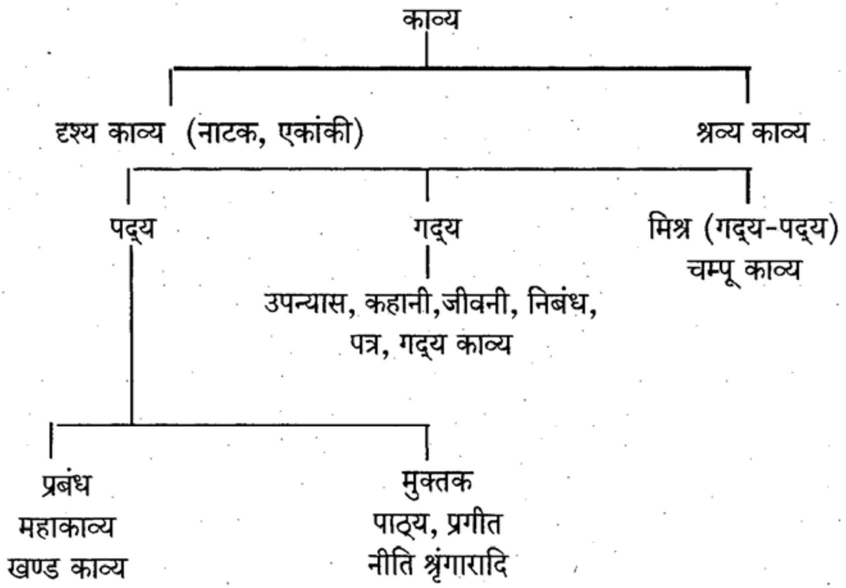
भारतीय आचार्य भामह ने शब्द और अर्थ समवाय को काव्य कहा है ''शब्दार्थो सहितौ काव्यम''. [2] पंडितराज जगन्नाथ ने काव्य का प्रतिपादन करते हुए ''रस गंगाधर'' में लिखा है , ''रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्द काव्यम्'' [3] अर्थात् रमणीय जो अर्थ, उसका प्रतिपादक जो शब्द, वह शब्द काव्य है । मम्मट का काव्य लक्षण इस प्रकार है - ''तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि'' [4] अर्थात् शब्द और अर्थ दोनों काव्य है। काव्य रसात्मक होता है और शास्त्र ज्ञान प्रधान। ''काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्'' [5] विश्वनाथ ने रस को काव्य की आत्मा कहा है - रस युक्त काव्य को वे काव्य मानते हैं - ''वाक्यम् रसात्मकं काव्यं'' [6]

संस्कृत व्याकरण में काव्य शब्द कवि-कर्म के रूप में व्याख्यायित है। आचार्य

अभिनव गुप्त ने ध्वन्यालोक -लोचन में कवि के कर्म को ही काव्य की संज्ञा प्रदान की है - ''कवनीयं काव्यम्।'' विद्याधर की एकावली टीका में इसकी व्याख्या इस तरह है ''कवयनीर्ति कविः तस्य कर्मम् काव्यमम्''[7] रसमीमांसा में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सत्य की अवहेलना न करते हुए रागात्मक तत्व की उपादेयता को स्वीकारते हैं। उनके अनुसार -''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती है, उसे कविता कहते हैं।''[8]

काव्य लोक व्यवहार में अनुभवों, भावों और विचारों की अभिव्यक्ति की त्रिवेणी है। मनोवेगों का स्वच्छ और निर्मल प्रवाह जो सबका हितसंवर्धक और जीव-जगत के लिए कल्याण कारक है।

काव्य के भेद



भारतीय समीक्षा पद्धति में श्रव्य काव्य के दो भेद किए गए हैं - प्रबंध और मुक्तक। इन दोनों के स्थूल भेद निम्नानुसार है -

(1) प्रबंध काव्य में पूर्व पद का तारतम्य होता है जबकि मुक्तक काव्य में इस तारतम्य का अभाव होता है।

(2) प्रबंध में छन्द एक-दूसरे से कथानक को श्रृंखला में बांधे रखते हैं, उनका क्रम उल्टा-पल्टा नहीं जा सकता। वे एक-दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। मुक्तक

छंद पारस्परिक बंधन से मुक्त होते हैं। वे स्वत: पूर्ण होते हैं। वे क्रम से रखे जा सकते हैं किन्तु एक छंद दूसरे की अपेक्षा नहीं रखता।[9]

(3) प्रबंध काव्य विषय प्रधान होता है जिसमें कविता विषयपरक होती है और उसमें कवि की आंतरिक भावनाओं की अपेक्षा वाह्य तत्वों की प्रमुखता होती है जबकि मुक्तक काव्य व्यक्ति प्रधान होता है, जिसमें कविता मुख्यत: कवि की निजी भावनाओं, इसकी आशाओं, आकांक्षाओं आदि की अभिव्यक्ति होती है।[10]

प्रबंध काव्य के दो भेद हैं - महाकाव्य और खण्डकाव्य। महाकाव्य का क्षेत्र विस्तृत और विशाल होता है। विस्तृत केनवास पर जीवन की अनेक रूपता का चित्रण होता है। इसमें कथा तथा पात्रों की संकल्पना भी बहुआयामी होती है। खण्डकाव्य में जीवन के किसी पक्ष या खण्ड विशेष का चित्रण होता है। महाकाव्य की अपेक्षा खण्डकाव्य का क्षेत्र प्रभाव सीमित होता है। जीवन की किसी एक घटना का विवरण इसमें प्रस्तुत किया जाता है। महाकाव्य की विशालता और खण्डकाव्य की लघुता दोनों को पृथक करती है।

महाकाव्य की विशेषताएं -

आचार्य दण्डी ने महाकाव्य की परिभाषा दी है उनके अनुसार महाकाव्य का स्वरूप यह है -

''सर्गबंधो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्ष्णम्।
आशीनर्मस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥
इतिहास कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुवर्ग फलोपेतं चतुरोदात्त नायकम्॥
नगरार्ण व शैलर्त्तुचन्द्रा कोंदय वर्णनैः।
उद्यान सलील क्रीड़ा मधुपानरतोत्सवैः॥
विप्रलम्भै र्विवाहैश्च कुमारोदय वर्णनैः।
मंत्रदूत, प्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि॥
अलंकृतम संक्षिप्तं रसभाव निरन्तरम्।
सगैरनति विस्तीर्णैः श्रव्यवृतैः सुसंधिभिः॥
सर्वत्र भिन्न वृतान्तै रूपेतं लोकरंजकम्।
काव्यं कल्पान्तर स्थापि जायेत सदलंकृति॥''[11]

(1) कथा सूत्रों का संयोजन सर्गों में होता है।

(2) महाकाव्य का नायक देवता या उत्तम वंशीय, वीर और धीरोदात्त गुणों से संपन्न पुरूष होता है। इसमें एक या एकाधिक वंशों के राजाओं का वर्णन आता है।

(3) श्रृंगार, वीर या शांत रसों में से कोई एक रस अंगी रस के रूप में रहता है। शेष रसों का समन्वय सहयोगी रसों केरूप में होता है।

(4) इसका वृतान्त इतिहास प्रसिद्ध या सज्जनाश्रित होता है।

(5) इसमें मंगलाचरण और वस्तु निर्देश होता है।आशीर्वादात्मक एवं नमस्कारात्मक भी संभव है।

(6) कहीं-कहीं दुष्टों की निंदा और सज्जनों का गुण कीर्तन होता है।

(7) महाकाव्य अनेक सर्गों में निबद्ध होता है, एक सर्ग में एक ही छंद रहता है और अंत में वह बदल भी सकता है। प्रवाह के लिए छंद की एकता वांछनीय है। सर्ग के अंत में अगले सर्ग की सूचना होती है। इसके लिए कम से कम आठ सर्ग होना आवश्यक माना गया है।

(8) इसमें प्रातः, मध्यान्ह, संध्या, रात्रि, सूर्य, चन्द्रमा, प्रदोष, समुद्र, संग्राम, यात्रा, अभ्युदय आदि का वर्णन होता है। इसके अतिरिक्त संभोग, विप्रलंभ, स्वर्ग, नरक, पुर, यज्ञ, मंत्रणा, पुत्रोदय आदि का समावेश रहता है। इसमें लोक स्वभाव का अतिक्रमण नहीं होता।

(9) काव्य प्रयोजन के अनुसार इसमें काव्य का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष में से एक या चारों हो सकते हैं। काव्य-प्रभेद के अन्तर्गत प्राचीन आचार्यों ने श्रव्य काव्य के अन्तर्गत चम्पू

काव्य का उल्लेख किया है -

"गद्य पद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यविधोयते" [12]

गद्य पद्यात्मक काव्य बंध - वह काव्य प्रकार जो गद्‌य-पद्‌य मय हुआ करता है, चम्पू कहा जाता है। चम्पू का प्रधान लक्षण गद्‌य-पद्‌य का मिश्रण है।

महाभारत में महाकाव्य की सारी विशेषताएं प्रतिफलित हैं। पंडवानी महाभारत का लोक और मौखिक रूप से प्रचलित लोकगाथा है। महाभारत शिष्ट काव्य है जिसके रचनाकार स्वयं वेद व्यास है। पंडवानी लोक महाकाव्य है जिसका कोई मूलतः रचनाकार नहीं है।

पंडवानी का लोक महाकाव्यत्व

पंडवानी महाभारत का छत्तीसगढ़ी लोक रूपान्तरण है, जो लोक विश्वासों, लोक मान्यताओं और दन्तकथाओं के रूप में गायी जाती है। यह लोक द्वारा स्वीकृत और मान्य कथाओं का संग्रह है। अत: इसके मूल रूप में परिवर्तन स्वाभाविक है। इन परिवर्तनों का कारण लोक है। पंडवानी के लोक महाकाव्यत्व का परीक्षण निम्न बिन्दुओं पर द्रष्टव्य है।

(1) सर्ग

महाभारत को पंचम वेद की संज्ञा दी गई है। आर्य संस्कृति और सनातन धर्म का अद्वितीय ग्रंथ अट्ठारह सर्गों (पर्वों) में विभक्त है - आदि पर्व, सभा पर्व, वन पर्व, विराट पर्व, उद्योग पर्व, भीष्म पर्व, द्रोण पर्व, कर्ण पर्व, शल्य पर्व, सौप्तिक पर्व, स्त्रीपर्व, शांति पर्व, अनुशासन पर्व, अश्वमेघ पर्व, आश्रम वासनिक पर्व, मौसल पर्व, महाप्रस्थानिक पर्व और स्वर्गारोहण पर्व। इन अट्ठारह पर्वों में अनेक उप पर्व भी हैं जिनके अंतर्गत महाभारत की कथाएं समाहित हैं।

पंडवानी लोकगाथा है। पंडवानी गायक लोकरूचि के अनुरूप इन कथाओं का गायन करता है। पंडवानी का गायन एक दिन, सप्ताह भर व महीने भर का भी होता है। श्रोताओं को जिन कथाओं में ज्यादा रस और आनंद मिलता है।उन्हीं कथाओं को कथा गायक श्रोताओं के अनुरोध पर प्रस्तुत करता है। तब स्वाभाविक रूप से कथा क्रम में अवरोध आता है। सामान्य रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि पंडवानी विभिन्न सर्गों में विभक्त नहीं है, पर ऐसा नहीं है। पंडवानी में भी महाभारत की तरह क्रमबद्धता है। कथाओं की क्रमबद्धता एकदिनी आयोजन में नहीं अपितु बहुदिनी आयोजनों में परीलक्षित होती है। कथा गायक कथा को एकसूत्र की तरह विस्तार देते हुए आगे बढ़ता है।कथा क्रम में तारताम्यता होने के कारण पंडवानी अधिक रोचक और सजीव लगती है।

वेदमती पंडवानी के अंतर्गत आदि परब, सभा परब, उद्‌यम परब, भीसम परब, द्रोन परब, करन परब, सैल परब, तिलक परब, असमेघ परब, सर्गरोहन परब, मूसल परब आदि छत्तीसगढ़ रूपों में समाहित है।[13] जो पंडवानी गायक श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत का अध्ययन कर पंडवानी गायन करते हैं। वे शांति पर्व को छोड़कर समस्त पर्वों का गायन करते हैं। अत: निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि पंडवानी में क्रमबद्धता है और कथाएं विभिन्न सर्गो में समायोजित हैं।

(2) कवि

महाभारत के कवि रचनाकार कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास हैं। संस्कृत में लिखित महाभारत में लगभग एक लाख श्लोक हैं। अतः यह शिष्ट महाकाव्य है। इसके रचनाकार का नाम ज्ञात है किन्तु पंडवानी के साथ ऐसा नहीं है। यह अलिखित महाकाव्य है और इसका कोई अकेला सर्जक नहीं हैं। जितने भी पंडवानी गायक हैं उनके गाने का ढंग अलग -अलग है। वाचिक परम्परा द्वारा संरक्षित पीढ़ी - दर -पीढ़ी गायी जाने वाली यह लोक गाथा कवि-कृति के विषय पर महाभारत से सर्वथा भिन्न है। जिसकी बुद्धी में कथा का विस्तार जहां तक पहुंचा उसे अपनी योग्यता के अनुसार प्रस्तुत किया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पंडवानी व्यक्ति विशेष की कृति नहीं बल्कि यह समूह की, लोक की कृति है। एक ही कथा भिन्न-भिन्न गायकों द्वारा भिन्न-भिन्न ढंग से कही जाती है, फिर भी मूल कथा में परिवर्तन नहीं आता।

(3) नायक

प्रबंध काव्य की दृष्टि से महाकाव्य का नायक देवता या उत्तम वंशीय वीर,पराक्रमी धीरोदात्त और धर्मरक्षक होता है। महाभारत के केन्द्र बिन्दु भगवान श्री कृष्ण हैं। वे भगवान हैं। पांडवों के प्रेरणा स्त्रोत, पूजनीय, रक्षक और सखा भी। महाभारत के नायक अर्जुन है। उच्च कुल प्रसूत धीर-वीर पराक्रमी। संपूर्ण महाभारत में उनकी वीरता और पराक्रम का वर्णन है। महाभारत युद्ध प्रारंभ होने से पूर्व जब कौरव-पांडव एक दूसरे की सेना का अध्ययन कर रहे थे तब दुर्योधन भीष्म पितामह से पूछते हैं कि कौन सा महारथी कितने समय में दोनो पक्षों की सेना को नष्ट कर सकता है ? भीष्म पितामह ने उत्तर दिया कि - पुत्र दुर्योधन मैं स्वयं संग्राम को चौबीस घंटे में, गुरू द्रोण तीन दिन में, अर्जुन पांच दिन में और कर्ण सात दिन में समाप्त कर सकता है। भीष्म पितामह व गुरू द्रोणाचार्य के पश्चात सर्वाधिक बलशाली वीर योद्धा अर्जुन ही हैं।

पंडवानी के पात्र महाभारत से भिन्न हैं (कुछ लोकानुरूप नामों को छोड़कर) किन्तु नायकत्व की सृष्टि से यह महाभारत से भिन्न है। जहां महाभारत का नायक अर्जुन है वहीं भीम पंडवानी का नायक है। भीम अर्जुन के बड़े भाई हैं। पंडवानी में कृष्ण और अर्जुन की भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता, लेकिन पंडवानी में इनका शौर्य और प्रभाव भीम के पराक्रम और चतुरता के सम्मुख क्षीण लगते हैं। भीम का आंचलिक नामकरण 3भीमसन4 है। भीमसन शब्द विशालकाय, बलशाली और पराक्रमी पुरूष का बोधक है।

भीमसन बाल्यकाल से ही पराक्रमी है -

"भीम बढ़ कुबल हवय ग भाई
भीम बढ़ कुबल हवय ग भाई।
दुर्योधन कथे भीम कभू दाम नई दय। एखर से कइसे दाम लेना चाही।" [14]

पंडवानी भीम की शौर्य -गाथा और पराक्रम से सराबोर है। भीम की वीरता के प्रति लोगो में आकर्षण और आस्था भी। 'रहस' के आयोजनों में पांडवों की मूर्तियां प्रतिस्थापित की जाती है। वहां भीम की मूर्ति दर्शनयी होती है और दर्शकों की भीड़ ज्यादा भीम की मूर्ति के पास ही होती है। पंडवानी में भीम का अपूर्व शौर्य वर्णित है, चाहे वह बकासुर वध हो, नकुल-सहदेव का विवाह, अभिमन्यु का विवाह, कीचक वध का प्रसंग हो या महाभारत का युद्ध क्षेत्र या दुर्योधन वध का प्रसंग। कीचक वध -

'बेटा कुन्ती ग ये दिन
कइसे मजा के बोलय ग
यही समय के बेटा में मोर भाई
राजा कीचक के यहा गति तब भीमसेन करे ममा
जमीन में पछाड़ के राजा कीचक के -
जब हाथ गोड़े ल ममा एके ठन में
मोर बईहा रे ये दिन
जब मुष्टिका प्रहार करे वहां रुधिर की धार बहे।
हाथ गोड़ ल चुरू-मुरू ओखर पेट में भरीस
ममा -
मोर कुट्ट-मुट्ट
मोर कइसे मजा के मोर बोलन लागे भाई
राजा कीचक ल मार के जब अइसे मुष्टिका
प्रहार करे तो उनके मुंह से रूधिर की धार बहन लगे ममा।'[15]

भीमसन - दुशासन युद्ध

'बादर ह गरज थे तइसे भीम ह गरजे
गरजहिं भीम काल समाना
काल के समान भीम गरजय तो क्षत्री मन कौरव
दल के -
सुन आवय भीम कर भाई

औतेक बेर गरजिस भीम जहां

तजि साहस तब गिर परई।'[16]

नायकत्व की दृष्टि से देखें तो पंडवानी नायक भीम में वे सारे गुण विद्मान हैं, जो महाकाव्य के नायक के लिए आवश्यक हैं। धीरता,वीरता और वंशीय उत्तमता भीम का महाकाव्योक्ति गुण है, जो पंडवानी में प्रचुर मात्रा में परिलक्षित है।

(4) रस

श्रृंगार, वीर या शांत रसों में से किसी एक रस का प्रयोग अंगी रस के रूप में होना महाकाव्य की अनिवार्य विशेषता है। वेद व्यास रचित महाभारत में यूं तो सभी रसों का समावेश है, किन्तु उसका अंगी रस वीर रस है। आद्योपरांत महाभारत वीर रस से परिपूर्ण है। महाभारत के अधिकांश भागों में युद्ध का सजीव चित्रण है। अत: यह स्वाभाविक ही है कि महाभारत में वीर रस की अधिकता होगी।

भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, धर्मराज, कर्ण, भीम, अर्जुन,नकुल,सहदेव, दुर्योधन,अश्वत्थामा, शल्य,जयद्रथ,विराट नरेश आदि वीर और पराक्रमी योद्धा हैं। इन सबकी उपस्थिति, युद्ध कौशल में अस्त्र-शस्त्र और बाहुबल के प्रदर्शन से वीर रस की उत्पत्ति सहज और स्वाभाविक है।

अगा भीमसन बली दऊड़े भईया

तब दोनो के माते लड़ाई भईया।

दोनो मारी के मारा होवन लागे भईया

तोर जातरी आय हे का रे दानी।

पटकी के पटका मुटकी के मुटका जब लड़ई चले

तोला बिना मारे ग नई छोड़वं ग

अब दोनो के माते लड़ाई ग मोरे भाई।

हिडम्ब ल भीम पटके भीम ल हिडम्बा पटके।'[17]

x x x

सातवां दरवाजा में कौरव मन के बान बरसय। अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बरसावन लगे। कहीं अग्नि बाण चले। अग्नि बाण के चलत सातवां दरवाजा अइसे दिखय जइसे संसार में भूकम्प होने वाला है, लेकिन हिम्मत नई हारे अभिमन्यु, अभिमन्यु लड़त कइसे हे -

अर्जुन सुत अधिक्रोध के छांड़े तीक्ष्ण बान।
या विधि सेना वध कियो, जिमि लंका हनुमान।'[18]

X X X

दोउ दल बाजन बाजे, गरजे सिंह समान।
क्षत्रीगण रण हांक दै, साधे सारंग बान॥

X X X

शकुनि और सहदेव रण, भिरे प्रचारि-प्रचारि।
नृपति युधिष्ठिर शल्य सो, कियो भयंकर मारि॥

X X X

दोऊ दल रण रचे, जलद बुन्द सम बान।
महाभयानक युद्ध कह, सबल सिंह चौहान॥' [19]

महाभारत की तरह पंडवानी का अंगी रस वीर रस है। अन्य रस सहयोगी रसों के रूप में समाहित हैं। इस दृष्टि से लोकगाथाएं महाकाव्यों से भिन्न नहीं है। पंडवानी का सम्पूर्ण कथानक वीर रस से ओत-प्रोत है। भीम की वीरता और पराक्रम का वर्णन पंडवानी की विशेषता है। अजुर्नादि वीरों की वीरता और शौर्य भी इसमें समाहित है। पंडवानी गायक आक्रामक और वीरोचित मुद्रा में पंडवानी पात्रों के संवादों को स्वतः अभिव्यक्त करते हैं। उनकी गायन-शैली में भी वीर रस का परिपाक होता है। अतः पंडवानी का प्रमुख रस वीर रस है।

(5) ऐतिहासिकता

महाभारत की कथा इतिहास प्रसिद्ध है। इसकी ऐतिहासिकता असंदिग्ध है। अनेक ऐतिहासिक कथाएं महाभारत की ऐतिहासिकता में समायोजित हैं। महाभारत के रचयिता वेदव्यास का मंतव्य द्रष्टव्य है - 'महाभारत धर्मग्रंथ है, राजनीतिक दर्शन है, निष्काम कर्मयोग दर्शन है, भक्ति शास्त्र है, अध्यात्म शास्त्र है, आर्य जाति का इतिहास और सर्वार्थ साधक तथा सर्व शास्त्र संग्रह है और इन्हीं गुणों के कारण, महाभारत एक महाकाव्य है।' [20]

ऐतिहासिकता के साथ-साथ महाभारत की कथा सज्जनाश्रित है। इस कथा में भगवान श्री कृष्ण का चरित्र, गुण-गौरव का वर्णन है। पंडवानी महाभारत की मूल कथा पर आश्रित है जहां पंडवानी की ऐतिहासिकता प्रमाणित होती है। पंडवानी की वे कथाएं जो किवदन्तियों, जनश्रुतियों और लोक विश्वासों पर आधारित हैं। ऐतिहासिक नहीं कही जा सकती, क्यों कि इन कथाओं का उद्गम और आधार छत्तीसगढ़ में प्रचलित

लोक विश्वासऔर मान्यताएं हैं। एक ही कथा विभिन्न गायकों द्वारा अलग-अलग ढंग से व्याख्यायित की जाती है। इतिहास प्रमाणिक होता है। पंडवानी अलिखित है। अतः इसकी ऐतिहासिकता पूर्णतः सर्वमान्य और प्रमाणित नहीं हो सकती।

पंडवानी सज्जनाश्रित गाथा है। पंडवानी की कथाओं में भगवान श्री कृष्ण का गुणानुवाद है।

(6) मंगलाचरण

महाकाव्य के प्रारंभ में मंगलाचरण का विधान निर्देशित है।

'वर्णानामर्थ संधानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ॥
भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम्॥'[21]

x x x

'अशुभनि निराचष्टे तनोति शुभ संतितम्।
स्मृत मात्रेण यत पुंसां ब्रहा तन मंगले बिन्दुः॥
शुक्लाम्बर धरं विष्णु शशिवर्ण चतुर्भुज।
प्रसन्नवदनम् ध्यायेत सर्व विघ्नो प्रशान्तये॥'[22]

x x x

गजमुख सुखकर दुखहरण, तेही कहौं सिरनाय।
कीजै यश लीजै विनय, दीजै ग्रंथ बनाय॥
जगदीश्वर को धन्य जिन, उपजायो संसार।
क्षिति जल पावक पवन, करि इनको विस्तार॥

x x x

प्रथमहि आदि पुरूष को ध्यावौ,
जा प्रसाद शिक्षा सब पावौ।
परम पुरूष अखंडित रूपा,
है सर्वातम रूप अनूपा॥[23]

छत्तीसगढ़ी लोक मंचीय कार्यक्रमों में कार्यक्रम का प्रारंभ मंगलाचरण, ईश विनय से ही प्रारंभ होता है। पंडवानी गायक कथा गायन के पूर्व मंगलाचरण के रूप में विभिन्न देवी-देवताओं की वंदना करता है। वह कथा के निर्विघ्न संपन्न होने के लिए प्रार्थना करता है -

सदा भावानी दाहिने, सन्मुख गौरी गनेश।
पांच देव रक्षा करे, ब्रम्हा विष्णु महेश॥

x x x

"बोलो बिन्दाबन बिहारी लाल की जय
मोर सना न नना न नना नना मोहन
धरे वीणा बजावत हरि गुन गाये नारद
अब आकर लाज राख ग मोर भईया।"[24]

x x x

"ये रामे रामे रामे ये ये रामा हो
हरि भजन प्रिय लागत हे रामा जय हरि
ब्रम्हा के बेटी बीना बजावत चले आ रामा जय हरि
मोर हिरदे में ओ तैं हो भवन बना लेबे रामा जय हरि
बोलो बिन्दाबन बिहारी लाल की जय।"[25]

"लोक गाथाओं में सुमिरन व मंगलाचरण का प्राधान्य रहता है। गायक सर्वप्रथम लोकगाथा के प्रारंभ में देवी-देवताओं की आराधना करता है। इसीलिए देवी-देवता, पीर-पैगम्बर, राजा आदि की वंदना का लोकगाथा में प्रथम स्थान है। वह पृथ्वी, ग्राम देवता, दुर्गा माता, गुरू, ब्राम्हण, पांचो पाण्डव, हनुमान तथा गंगा जी का स्मरण (सुमिरन) करके गाथा का आरंभ करता है।"[26]

(7) दुष्ट निंदा व सज्जन प्रशंसा

सामान्य व्यवहारिक जीवन में दुष्टों की निंदा व सज्जनों की प्रशंसा की जाती है। प्रबंध काव्य में इसकी अनिवार्यता का उल्लेख है। महाभारत में भगवान श्रीकृष्ण, पांचो पांडवों, भीष्म, विदुर आदि की प्रशंसा की गई है वहीं दुर्योधन, दुशासन, शकुनि, कीचक, जयद्रथ आदि की निंदा की गई है। प्रशंसा या निंदा का आधार उनका कर्म है। महाकाव्य की यह विशेषता पंडवानी में पूर्णतया परिलक्षित होती है।

दुष्ट निंदा

"अरे पकड़ साड़ी ल अऊ पकड़कर के बिना वस्त्र के लाके मोर जंघा में बइठा दे। ये बात ल सुने भीम बोले - कहे पापी तोला सरम नई आय। तोला लाज नई लागय सदा तैं हमर लिए कपट मरे। तैं जेन जंघा ल ठोंकत हस द्रोपती ल बिना वस्त्र के मोर जंघा में बइठा काहत हस अगर एक ही गदा म जंघा न तोड़ंव त मैं कुंती नंदन भीम कहाना छोड़दँव।"[27]

सज्जन प्रशंसा

रथ में बइठके अर्जुन मन ही मन बांके बिहारी ला कहे भगवान द्वारिकानाथ -

"यसोदा के करिया कान्हा ताय ओ दीदी
ओ हा दही चोरहा ये
ओ हा दही चोरहा ये ओ हा दही चोरहा ये
जमुना तीर-तीर धेनु ल चराथे ओहा...
धेनु चराके ओहा बंशी ल बजाथे ओहा .....
बंशी बजाके राधा रानी ल बलाथे ओहा......
राधा ल बलाके ओहा रास रचाथे ओहा ...... ।"[28]

x x x

"हरि तुम भक्तन के हितकारी रखिये लाज हमारी।
अरे हिरनाकश्यप प्रहलाद भगत को कष्ट दिये भारी,
नरसिंग रूप बनाय प्रभुजी भक्त लिए उबारी।
भक्तन के हितकारी हरि तुम भक्तन के हितकारी ॥
जब गजराज को ग्रह ने ग्रसा तुम्हारे नाम पुकारी जी,
गज के फंद छुड़ावन खातिर आये गरूड़ सवारी जी।
भक्तन के हितकारी .... ।"[29]

(8) सर्ग सूचना एवं छन्द प्रबंध

प्रबंध काव्य की विशेषताओं में यह दर्शाया गया है कि एक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग होता है और अंत में वह बदल भी सकता है। सर्ग के अंत में अग्रिम सर्ग की सूचना होती है। महाकाव्य की यह विशेषता पंडवानी में नहीं पायी जाती। चूंकि पंडवानी अलिखित महाकाव्य है। अतः लोकछन्द को छोड़ शास्त्रीय परम्परानुसार एकाधिक छन्द नहीं मिलते। हां इतना अवश्य है कि गायन के कथांत में अगली कथा (यह सर्ग भी हो सकता है) की सूचना दी जाती है। पंडवानी कथा गायक कथा के अंत में विसर्जन के पूर्व अगले दिन की कथा की प्रारंभिक सूचना श्रोताओं को देता है। ताकि उनकी जिज्ञासा कथा के प्रति बनी रहे।

(9) प्रकृति वर्णन

महाकाव्य की विशेषताओं में प्रकृति वर्णन प्रमुखता से आता है। सूर्य,चन्द्रमा,सूर्योदय,सूर्यास्त,मध्यान्ह,नदी-पहाड़,वन-ऋतु,संग्राम,आखेट, तीर्थ यात्रा,

मंत्रणा आदि का समावेश आवश्यक बताया गया है। महाभारत में प्रकृति वर्णन के साथ-साथ अनेकों तीर्थों, नदियों, पहाड़ों, युद्धों, मंत्रणाओं आदि का वर्णन बहुतायत रूप से मिलता है, जो महाभारत के महाकाव्यीय विशेषताओं को प्रकट करता है। पंडवानी महाभारत की कथा होकर भी वह लोक की गाथा है। उपरोक्त विशेषताओं का वर्णन महाभारत में जितने वृहद रूप में मिलता है,उतना वृहद पंडवानी में नहीं। इस महाकाव्यीय गुण को पंडवानी में निम्न बिंदुओं पर परखा जा सकता है।

01. **प्रात:काल-**

"ये तरह रात्रि बीते के बाद में सूर्य नारायण के उदेकाल होते दोनो दल में सेना के तैयारी।" [30]

"हे भगवान बड़ा मुश्किल में चार पहर रात ह बीती से मालिक। जावत हवं गंगा स्नान के आहूँ।" [31]

02. **सायंकाल -**

संझा युद्ध हो गे भाई
अपन-अपन सिविर लहुटन लागे भाई।

पंडवानी में प्रकृति का विस्तृत वर्णन नहीं मिलता कथा गायक बिहनिया, मंझनिया, संझा रात कहकर कथा को आगे बढ़ाते हैं।

"धर्मराज के घर में एकक करके भीमसेन भगवान के सहित भोजन किए अउ भोजन करने के बाद रात को अपने-अपने विश्राम पूरा किए। होत बिहनिया फेर दूनों दल तैयार होगे।" [32]

नदी पहाड़, समुद्र, शिकार, तीर्थयात्रा का वर्णन कम ही मिलता है। नदियों के नामोल्लेख में केवल गंगा नदी का नाम आता है।

03. **नदी**

"अठोत्री माला ल भईया सात वर्ष के कुन्ती अउ अपन विश्वास ल जमाय खातिर ओखर परीक्षा ले खातिर गंगाजी में -

अरे कमर भर पानी म खड़ा ग होवय भाई" [33]

x x x

"अरे गंगा म लइका ल छोड़न लागे भाई
रागी ओ लइका ल सुन्दर गंगा म छोड़दिस अउ
गंगा में छोड़िस के भईया गंगा मईया लाहरा
मारत अउ लइका खुल-खुल हांसत।" [34]

X X X

"रोज देवव्रत आवे-जावे। एक दिन गंगा कहे
का बताववं दाई। ये लइका आते जात रहि त नई बनय।"[35]

X X X

"नीचे में गंगा बोहवत हवय ये भाई रे
देवी सोहदरा असनांदे करे।"[36]

X X X

"बड़े-बड़े मुर्दा मन -
ओही गंगा में कइसे बोहावत हे राम जय हरि
ओ गंगा में भइया बड़े-बड़े मुर्दा बोहवत हे।"[37]

04. पहाड़

पंडवानी गायक पहाड़ों (पर्वतों)का नाम न लेकर केवल पहाड़ कहकर इंगित करते हैं। कुछ नाम जो पहाड़ों के पंडवानी में मिलते हैं वे निम्न है - कैलाश, हिमालय, ढेलुवा व रेवा पहाड़ आदि -

"रेवा पहाड़ के उपरे-उपर चलत हवय
नीचे में गंगा बोहावत हवे रे भाई।"[38]

पंडवानी में रेवा पहाड़ का उल्लेख बार-बार आया है। पंडवानी गायक का रेवा पहाड़ कहने का आशय शायद 'सिहावा' पहाड़ से हो। सिहावा छत्तीसगढ़ का सर्वाधिक प्रसिद्ध पहाड़ है जहाँ श्रृंगी ऋषि का आश्रम है और छत्तीसगढ़ की जीवन रेखा महानदी का उद्‌गम स्थान है। ग्रामीणों की बोली में सिहावा का रेवा उच्चारण सहज लगता है। बार-बार रेवा का उल्लेख इसकी स्थानीयता भी हो सकती है। उपलब्ध पर्वत का भी उल्लेख आया है। अर्जुन ह उपलब्ध पर्वत से 'प्रस्थान करिसे।'

05 वन

पंडवानी गायकों ने पहाड़ की तरह ही वनों के नामोल्लेख में केवल वन या जंगल कहकर कथा को विस्तार दिया है। वे वन जिनका नाम पंडवानी में आया है प्रमुख रूप से इस प्रकार है काम्यक (कामी) वन , खांडव वन, हिडम्बक वन आदि।
पांडवों के जीवन का बहुत सा समय वनों में बीता।

"गरजथे भीम्मा जंगल में भाई।"

पांडव लाक्षा भवन से निकलने के बाद

"जंगल-जंगल घूमन लगे कका
बड़े-बड़े नदी नाला अउ पहाड़ -पर्वत पार करके पांडव
हिडम्बक वन में पहुँचगे।" [39]

06 आखेट

पंडवानी में विभिन्न प्रसंगों में आखेट का वर्णन हुआ है। राजा शान्तनु गंगा किनारे शिकार खेलने गए जहाँ उन्होंने एक सुन्दरी को बिहरते हुए देखा - "राजा शान्तनु मिरगा के लिए आय राहय।" [40] "अर्जुन और कृष्ण शिकार के लिए खांडव वन गए थे। राजा पांडु "मिरगा" मारे के लिए राजा चलदिस जंगल। ऋषि ऋषिइन मन योग माया करत राहय। पांडु राजा मिरगा समझ के लगा दिस निसाना।" [41]

07 सूर्योपासना

महाभारत की तरह ही पंडवानी में अनेक प्रसंगों में सूर्यापासना का वर्णन है। कुंवारी कुन्ती ऋषि दुर्वासा द्वारा प्रदत्त माल मंत्र के परीक्षण के समय सूर्य की उपासना करती है - "भईया माता कुंती ओ अठोत्री माला ल लेके जेला माल तंत्र कहिथे सूर्य नारायण के अराधना करथे -

ये सूर्य देवता ग परगट होवन लागे भाई
सूर्य देवता परगट होगे अऊ सूर्य देवता परगट होके कथे -
मांगव ओ मांगव वर काहन लागे भाई।" [42]

धौम्य ऋषि के कथनानुसार धर्मराज युधिष्ठिर ने सूर्य की उपासना कर उनसे अक्षय पात्र चरी (बटलोही) प्राप्त की। इसी बटलोही से पांडव वनवास काल में भोजन प्राप्त करते थे। दुर्योधन के कहने पर दुर्वासा मुनि जब पांडव के पास आते हैं, तब वे पांडव से अपने दस हजार शिष्यों के लिए भोजन की व्यवस्था के लिए कहते हैं। तत्पश्चात् वे स्नान के लिए चले जाते हैं जहां वे सूर्योपासना करते हैं। पंडवानी में अनेकों स्थानों पर सूर्योपासना का उल्लेख मिलता है।

08 संग्राम

पंडवानी तो एक प्रकार से युद्धों का ही महाकाव्य है। पंडवानी में युद्धों का वर्णन महाभारत की तरह अनेकों प्रसंगों में मिलता है। बात-बात पर युद्ध यह क्षत्रियों का

स्वभाव है। क्षत्रियों का धर्म ही युद्ध करना है। पंडवानी के पात्र क्षत्रिय हैं उनका जन्म ही युद्ध के लिए हुआ है।चाहे वह साम्राज्य विस्तार के लिए हो या प्रजा हित के लिए। महाभारत का युद्ध वर्णन व्यापक है -

"अच्छा अब कौरव अऊ पाण्डव के युद्ध तैयारी होगे। हमला नेवता देहे त हमर मन के जाना जरूरी है। सब सेना तैयार करे लगिस -

रथ वाले रथ में चढ़न लागे भाई
घोड़ा वाले घोड़ा में चढ़न लागे भाई
हाथी वाले हाथी में चढ़न लागे भाई
पैदल बीर ग चलन लागे मोर भाई
अपने दल ग सजावत हवे भाई
अपने सेना ग सजावत हवे भाई।" [43]

x x . x

वरूण बान तब कर लीन्हा,
पढ़ के मंत्र तुरन्त तब दीन्हा।

महाबीर करन अपने दल ल भयभीत जान के वरूण
बान निकाल के चलइस तब -
"पानी के बरसा होवन लगे भईया
पानी के बरसा होवन लगे न। " [44]
"दुशासन सुत गदा प्रहारे
अभिमन्यु सिर ऊपर डारे।

दुशासन के बेटा दुखीत कुमार अवसर पाके गदा
लेके दौड़ते-दौड़ते पहुँचे हे। गदा प्रहार किए अभिमन्यु
के मस्तक में। गदा के प्रहार पड़ते अभिमन्यु

अपने ग प्राण ल छोड़न लागे भाई
वीर अभिमन्यु प्रान छोड़न लगे भाई।" [45]

पंडवानी के अधिकांश प्रसंग युद्ध वर्णन से ओत-प्रोत है।

09 मंत्रणा

कृष्ण पांडवों के रक्षक और सहयोगी हैं, वे पांडवों को उचित परामर्श देते हैं। विपत्ति की स्थिति में वे उनका सहयोग और मार्गदर्शन करते हैं अनेक प्रसंग पंडवानी में मिलते हैं - दुर्योधन पांडवों को मारने के लिए अपने मामा शकुनि से मंत्रणा करता है -

"का बतावे ममा पंडव मारे के उपाय ग
रामे रामे रामे रामे रामे रामे रामे रामे
ममा जब तक मैं पांचों भाई पांडव ल जान से नई
मार डरहूँ तब तक मोर ये आत्मा ल शांति नई मिले।
कोई उपाय बता देगा पांडव मारव ममा

x x x

कालीदास नौकर बोलत हे सुन ले महाराज
तोला मैहर ग पांडव मारे के उपाय बतावथौं।"[46]

कीचक की मृत्यु के पश्चात् दुर्योधन और भीष्म पांडव का पता लगाने के लिए मंत्रणा करते हैं क्योंकि कीचक जैसे वीर को भीम ही मार सकते हें। वे पांडवों का पता लगाने के लिए दुर्योधन को राजा विराट की गायें हरण करने की सलाह देते हैं - "भीष्म कहे - दुर्योधन कीचक के मारने वाला द्वापर युग में एक झन बीर पैदा ले हवय अउ ओखर पता लगाना हे त तैं विराट नगर में जा करके गऊ हरन कर।"[47]

महाभारत युद्ध मैदान में भीष्म द्वारा पांडव सेना का संहार देख पांडव श्री कृष्ण की मंत्रणा पर भीष्म से ही उनकी मृत्यु का उपाय पूछते हैं। पंडवानी में मंत्रणा के अनेकानेक प्रसंग सुनने को मिलते हैं।

10. काव्य प्रयोजन

काव्य का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष में से किसी एक की प्राप्ति बताया गया है। इस दृष्टि से पंडवानी लोक महाकाव्य का गायन प्रयोजन धर्म, अर्थ एवं मोक्ष की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यदि धर्म की दृष्टि से देखें तो पंडवानी गायन की परम्परा धार्मिकता से ओत-प्रोत है। महाभारत धर्म ग्रंथ है। जिसमें हिन्दू-धर्म के आचार-विचार और परम्पराएं तथा ईश्वर-भक्ति समाहित हैं। इसका गायन व श्रवण का लक्ष्य धर्म पालन है।

"कइसे मोला भुलाये हरि
कइसे मोला भुलाये हरि
जनम-जनम के मैं संगवारी
कइसे मोला भुलाये हरि
सबरी के बोइर सुदामा वे तांदुर
रूचि-रूचि भोग लगाये हरि
दुर्योधन के मेवा ल त्यागे

सागे बिदुर घर खाये हरि।''[48]

पंडवानी गायन का उद्देश्य आज कल अर्थ प्राप्ति भी है। वर्तमान समय में पंडवानी गायक और उसकी मंडली पंडवानी गायन के लिए एक निश्चित राशि पंडवानी आयोजकों से लेती है। इससे उन्हें आर्थिक लाभ होता है। आर्थिक लाभ के साथ-साथ पंडवानी गायन यश-प्राप्ति का भी साधन है। पंडवानी पुरोधा श्री झाडूराम देवांगन, श्री पूनाराम निषाद, पद्मश्री तीजन बाई, कुमारी ऋतु वर्मा इस बात के उदाहरण हैं। पंडवानी गायन व श्रवण से तो मोक्ष मिलता ही है। ऐसा महाभारत में उल्लेख है और लोगों की मान्यता भी है। मोक्ष प्राप्ति की दृष्टि से भी महाभारत की तरह पंडवानी का काव्य-प्रयोजन सिद्ध होता है। भगवद् भक्ति का यह अनन्यतम साधन तो है ही। और भगवद्भक्ति से मोक्ष स्वमेव प्राप्त होता है -

''जब -जब बिपत पड़ी भगतन को
तब-तब रूप बनायो।
असुरन मार सुरन को थापे
दीन बंधु नाम कहायो॥
हे गोपाल, कन्हैया नंदलाल अब तैं मोर रक्षा कर -
दीन दयाल दया करके
मुझको तू शरन में ले लेना।
लाखों की विपदा टाले हैं
मेरा भी बिगड़ी बना देना।
करूणा के सागर कहते तुमको,
अपना दास बना लेना।'' [49]

पंडवानी में तीर्थ यात्रा, यज्ञ, पुत्रोदय, स्वर्ग-नरक, ऋतु वर्णन की तरह पंडवानी में महाकाव्य की विशेषताओं का वृहद उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी वे सारी विशेषताएं जो किसी कृति को महाकाव्य की श्रेणी में रखने के लिए आवश्यक हैं पंडवानी में मिलती हैं।

''पंडवानी महाभारत की मूल कथा पर तो आधारित है ही, यत्किंचित जनश्रुतियों, प्रचलित लोक सुक्तियों व नानाविध अस्पर्शित चरित्रों का भी समन्वित, समिश्रित स्वरूप है। महाभारत के समानांतर संचालित लोक की यह गाथा युग के प्रवाह को समावेशित करती तथा दुर्बल पक्षों को अस्वीकारती और उपेक्षित चित्रों को संवारती क्रमशः अग्रसित रही है। इस तरह पंडवानी में युगों का स्पंदन और छत्तीसगढ़ी समाज पर

उसमें सामाजिक प्रभाव की कथा उपलब्ध होती है।पंडवानी की गाथा प्रमुख चरित्रों और प्रसंगों के आधार पर एक सप्ताह तक भी चलती रहती है और वृहद-विस्तृत होकर महीनों भी आयोजित होती है। इसके गाथाकार इसे आजीविका के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्वीकार कर चुके हैं। इस तरह यह प्रबंध काव्यात्मकता के समानांतर लोक गाथा की विशिष्टता से आक्रांत है। यद्यपि इसमें असंबंध भाव, शिथिल छंद और तुक का अभाव मिलता है, तथापि सहजात, स्वाभाविकता और संगीतात्मकता से युक्त यह गाथा प्रबंध काव्यत्व के गुणों से मंडित है।" [50] महाकाव्य की सारी विशेषताएं महाभारत की अपेक्षा किंचित कम ही सही पंडवानी में मिलती है। यह लोक द्वारा स्वीकृत, मान्य और अलिखित लोकगाथा है। अत: पंडवानी अपनी सहजता व विशिष्टता के परिप्रेक्ष्य में लोक महाकाव्य है।

साहित्यिक मानदण्डों का परीक्षण

पंडवानी का भावपक्ष

मनुष्य अपने व्यवहारिक जीवन में विभिन्न क्रियाकलापों को संयोजित करता है। इन क्रिया-कलापों के संयोजन का मुख्य उद्देश्य होता है आनंद और यही आनंद रस कहलाता है। हृदयगत भावों को गीत, संगीत और चित्र द्वारा अभिव्यक्ति दी जाती है। वाणी द्वारा अभिव्यक्त भाव-सौंदर्य ही रस कहलाता है। काव्य में रस की अनुभूति को ब्रम्हानुभूति की संज्ञा दी गई है।

रस को काव्य की आत्मा कहा गया है। भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र में विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी भावों के संयोग से रस उत्पत्ति का उल्लेख किया है।

"विभावानुभाव व्याभिचारि संयोगाद्रस निष्पतिः।" [51]

"काव्य प्रकाश के रचयिता आचार्य मम्मट ने भी विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी द्वारा अभिव्यक्त स्थायी भावों को रस माना है। विभावा अनुभावास्तत कश्यन्ते व्याभिचारिणः व्यक्त रस तै र्विभावा अस्थायी भावो रसः स्मृतः।" [52] साहित्य दर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने भी रस का विश्लेषण करते हुए लिखा है -

"विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति इत्यादिः स्थायीभाव सचते साम॥" [53]

उन्होंने रस को अखंड स्वप्रकाश्य, चिन्मय वेद्यान्तर, स्पर्शशून्य और ब्रम्हानंद सहोदर कहा है। अत: काव्य में रस आत्मा की तरह रहती है। यही उसका एकमात्र साध्य भी है।

काव्य में नौ स्थायी भावों के आधार पर नौ रसों का निर्धारण हुआ है -

"श्रृंगार: करूणा: शान्तोशैद्रो विरोऽद्भुत स्तथा।

हास्यों, भयानकश्चैव वीभत्सश्चेति ते नव॥"[54] अर्थात् श्रृंगार, करूण, शांत, रौद्र, वीर, अद्भुत, हास्य, भयानक और वीभत्स ये नौ रस है। कुछ आचार्यों ने वात्सल्य को दसवां और भक्ति को ग्यारवां रस माना है। लोक गाथाएं भी लोक मन की अभिव्यक्ति है जिसमें राग-विराग मयी भावनाएं मुखरित होती है। ये भावनाएं रसों से आप्लावित होती है। पंडवानी में रस की वेगवती तरंगे अक्षुण्ण हैं। पंडवानी की रस विवेचना कुछ उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत है -

01 श्रृंगार रस

श्रंगार रस को रस राज कहा जाता है। श्रृंगार का स्थायी भाव - रति, आलंबन-नायक/नायिका, उद्दीपन-अनुराग से देखना, कटाक्ष, संचारी भाव-चपलता, उत्कंठा अग्नि पुराण में अन्य सभी रसों का प्रादुर्भाव श्रृंगार से ही माना गया है -

"व्याभिचारयादि सामान्याच्श्रृंगार इति गीयते

तद्मेदा कामनित रे हास्याआ अन्यने कशः॥"[55]

भोज ने भी श्रृंगार को ही एक पूर्ण रस माना है। अन्य रस इसकी सम्पूर्णता की मध्यवर्ती स्थितियां है -

"श्रृंगार वीर करूणाद्भुत रौद्र हास्य विभित्स

वत्सल भयानक शान्तनाम्नाः

आम्ना सिषुर्दशासन्सुधियों वयं तु

श्रृंगारमेव रसनाई रसनाम नामः।"[56]

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में श्रृंगार शब्द की व्युत्पत्ति श्रृंगार से ही मानी जिसका अभिप्राय है कामार्विभाव और उसी कामोद्भेद से सम्भूत रस श्रृंगार है। उत्तम प्रकृति के प्रयोजन इसके आलम्बन हुआ करते हैं -

"श्रृंग हि ममथोद्भेदस्तदागमन हेतुकः।

उत्तम प्रकृति प्राथो रसः श्रृंगार इयते॥"[57]

श्रृंगार रस के दो भेद हैं -

(1) संभोग या संयोग श्रृंगार

(2) वियोग या विप्रलम्ब श्रृंगार

(1) संयोग श्रृंगार

नायक-नायिका का मिलन संयोग श्रृंगार का विषय है। पंडवानी में अनेक प्रसंगों में संयोग श्रृंगार का वर्णन मिलता है। राजा शान्तनु शिकार खेलने गंगा जी के

किनारे आये। वहां पर एक परम सुन्दरी स्त्री भ्रमण कर रही थी। वह दिव्य आभूषणों से अलंकृत थी। उसकी मुख कांति कमल सदृश्य शोभायमान थी। उस नवयौवना को देखकर महातेजश्वी राजा शांतनु उसके रूप यौवन पर मोहित हो गए। वह रूपवती भी राजा पर आसक्त हो गयी। राजा ने कहा - हे सुन्दरी मैं तुम्हें वरण करना चाहता हूं। वह देवांगना बोली - "यह वचन दो कि मैं जो भी कार्य करूंगी उस पर रोकेगें नहीं अन्यथा मैं छोड़कर चली जाऊंगी।" राजा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और देवांगना को रथ में बैठाकर अपने महल ले आए -

"राजा शांतनु बड़े खुशी-खुशी ले
ओ ही समय में का बतावन राजा
सती नारी जेला देखे हे।" [58]

उपरोक्त उदाहरण में राजा शांतनु और देवांगना का वर्णन है। सुभद्रा हरण प्रसंग में संयोग श्रृंगार का सुदंर उदाहरण दृष्टव्य है -

"जब देखत राहय सहोदरा त अर्जुन ह धीर लगाके अपन पैर फिसला के सहोदरा नहावत राहय तेन पानी डाहर ल फेर देखय। जब तइयारी होके कका ऐती देवी सहोदरा के देखती अऊ अर्जुन के झांकती -

दूनों के नंजर फिर मिले हवय भईया
दोनों के दोनों मिलखी नई तो मारे भईया
सखी-सहेली मन फिकर में पड़गे भाई
बड़े के काम ल बड़े जानय काहय भईया
ऐ तो साधू ल देख हांसे जी भाई।" [59]

सुभद्रा और अर्जुन एक दूसरे को एक टक देखते हैं। एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य है - लाक्षागृह से निकल कर पांचों पांडव व माता कुन्ती वन की ओर चले गए। उस वन में हिडिम्ब नामक राक्षस रहता था। मनुष्य गंध आई तो हिडिम्ब ने अपनी बहन हिडिम्बनी को भेजा। धर्मराज, अर्जुन,नकुल, सहदेव और कुन्ती सो रहे थे। केवल भीम जाग रहे थे। हिडिम्बनी ने भीम को देखा तो वह उसके सुगठित शरीर और बल पौरूष पर मुग्ध हो गई।

'हिडिम्बनी भीम के बात ल सुन के बड़ खुश होगे अउ भीम के रूप ल देख के मोहित होगे। हाथ जोड़ के बोले -

चरणों के दासी मोला बनाले हो ये राजा
कइसे हिडिम्बनी बोलत हे।

नर-नारी के नता दूनो जोड़े कका। भीम अउ हिडिम्बनी दोनों प्रेम के बात कर

ले अउ जंगल ले हरदी लान के दोनों के अंग म छीटंगे जय माला ल एक दूसरे के गला म डार के

"साते भांवर ये पेड़ ल भीम घूमे ग
दाई सुते हे भाई सुते हे न
कोनो नई जानय जी
अग सुन्दर भांवर घूमे ओ घूम ओ, ये दे भाई जी" [60]

(2) वियोग श्रृंगार

संयोग श्रृंगार में जहां नायक/नायिका के मिलन का वर्णन रहता है, वहीं वियोग श्रृंगार में उनका बिरहाकुल होना निर्दिष्ट है। इसके अन्तर्गत विरह मन की व्यथा अभिव्यंजित होती है। राजा शांतनु मत्स्योदरी सत्यवती पर मोहित हो जाते हैं। उनके पिता केवट से वे सत्यवती का हाथ अपने लिए मांगते हैं। केवट यह शर्त रखता है कि सत्यवती से उत्पन्न संतान ही आपके राज्य का उत्तराधिकारी होगा, तब शांतनु अपने पुत्र युवराज देवव्रत के कारण उदास घर लौट आते हैं और सत्यवती की याद में बीमार रहने लगते हैं -

"सत्यवती के सुरता म राजा सुर रे भईया
ओखर रंग रूप आंखी में झुले गा
दिनो दिन काया पिंयरावय भईया
सोवत - जागत सुरता सतावय गा मोर भाई"

अर्जुन की याद में सुभद्रा की मनोदशा का चित्रण रस का परिपाक करता है -

"सहोदरा

ये ती ओती ढूँढत हवे भाई गो
अर्जुन के पता नई लगे भाई

सहोदरा

लोटा त जल धरे भाई
खोजत ढूंढत आवे भाई
नई दिखे महाराज।" [61]

(2) हास्य रस

हास्य रस का स्थायी भाव हास है। इसका आविर्भाव आकार-विकृति, वागू,

विकृति, वेष-विकृति, चेष्टा-विकृति एवं अन्यान्य प्रकार की विकृतियों के वर्णन अथवा अभिनय से होता है।

विकृता वाग्वेष चेष्टा दे : कुहुकादभवेत।.
हास्यो हाअस्थायिभाव ....।[62]

दुर्वासा मुनि द्वारा कुंती की सेवा से सन्तुष्ट होकर दिए गए आठोत्री माला के प्रसंग में हास्य रस का परिपाक द्दष्टव्य -

कुंती कहे मोर पांच बेटा
मगन ग कुंती होये हवय भाई
हाँस ग कुंती ह जवाब देवय भाई

ये कठवा के माला ये ओ। नान-नान कठवा के माला में ओतेक-ओतेक रोंठ-रोंठ लइका कइसे घुसरे होही बैरी।
निकलत नई बनिस त मोला धरा के जावत हे।[63]

नकुल बिहाव में हास्य रस का उदाहरण द्दष्टव्य है -

करिया करलुठवा रेमटा अनघटहा हे रामा
दईतला होवय ददा हमरे कस भाई।
बोड़री ले लार चुचवावत हवय हे रामा
आँखी म लोंदा-लोंदा चिपरा भरे भाई॥[64]

कीचक जब भीमसेन के नारी ल पकड़ीस तब भीमसेन के हाथ-गोंड़ रेच्चड़हा लगिस। कीचक कथे नारी मन के हाथ-पैर तो मुलायम होथे। ये सैलेन्द्री ये ते सैलेन्द्रा ये रे।''[65]

जयद्रथ द्वारा द्रौपदी का अपहरण कर लिए जाने पर जयद्रथ की दुर्दशा भीम द्वारा की जाती है। उस प्रसंग में भी हास्य रस का उद्रेक होता है। भीम जयद्रथ का मुंडन कर उनकी चोटियों में बेल व गले में घोंघे लटका देता है। पंडवानी के अनेक प्रसंगों में हास्य का वातावरण निर्मित होता है। खासकर भीम की उपस्थिति में भीम को अनेक स्थानों पर पंडवानी गायक विदुषक के रूप में ही प्रस्तुत करता है। भीम का विदुषकी चरित्र दर्शकों को गुदगुदाता है और खिलखिलाकर हँसने के लिए विवश करता है। उपरोक्त प्रसंगों में अस्वाभाविक वेश-भूषा और अस्वाभाविक वाक्-चेष्टा के कारण बरबस ही हँसी फूट पड़ती है। इन प्रसंगों में न तो कोई कृत्रिमता है और न ही कोई दिखावा। हास्य रस का सृजन निश्छल, नि:चेष्ट, सहज और स्वाभाविक है। हास्य का यह सुन्दर उदाहरण पंडवानी की नीजता है।

(3) करूण रस

शोक स्थायी भाव से अभिव्यंजित होने वाला रस करूण रस कहलाता है। यह कारूण्य प्रधान रस है। इष्टनाश एवं अनिष्ट प्राप्ति से इसका आर्विभाव संभव है।

"इष्ट नाशादनिष्टाप्ते करूणाख्यो रसो भवेगु।" [66]

महाकवि भवभूति के अनुसार समस्त रसों का मूल कारण करूण रस है -

"एको रस: करूण एक निमित्तमेदाद
भिन्न: पृथक पृथगिवाश्रयणे विवर्वान।" [67]

पंडवानी में करूण रस के अनेक मार्मिक उदाहरण मिलते हैं। इसमें जीवन की असह्य वेदना और संत्रास का मनोभाव चित्रित हुआ है। राजा पाण्डु की मृत्यु पश्चात् कुन्ती और माद्री पति की मृत्यु के कारण करूण विलाप करती है, जो हृदयद्रावक है। अर्जुन की अनुपस्थिति में गुरू द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की। चक्रव्यूह का रहस्य गुरू द्रोण, अर्जुन और प्रद्युम्न के छोड़ कोई नहीं जानता था। अर्जुन के न होने से पाण्डव सेना में निराशा व्याप्त थी। अभिमन्यु चक्रव्यूह का रहस्य छठवें द्वार तक जानता था, सातवें द्वार के भेदन का भार भीम ने लिया। चक्रव्यूह की लड़ाई में कौरवों ने अभिमन्यु को छलपूर्वक मारा। अभिमन्यु की मृत्यु का दुखद समाचार पाकर सहोदरा कुन्ती, उत्तरा और चारों भाई पाण्डव विलाप करते-करते मूर्छित हो गए। अर्जुन जब वापस आये तो वे विलाप कर रोने लगे -

तोला कहां पाहूँ रे मोर लाला
तोर सेती मैं मर जातेंव रे बेटा।
"हमका ओढ़ा दे चादरिया रे
चलती के बेरिया। हाय राम ऽ ऽ ऽ चलती के -
प्रान राम जब तन से निकले
उलटि गई दोऊ नयन पुतरिया
हमका ओढ़ा दे रे चादरिया रे ...
हाय राम ऽ ऽ ऽ अभिमन्यु ऽ ऽ।" [68]

पंडवानी का सर्वाधिक मार्मिक प्रसंग अभिमन्यु वध ही है। श्री सुखीराम निषाद नाचा कलाकर बताते हैं कि "सिरसा वाले महाराज अभिमन्यु वध अउ विलाप के कथा ल अतेक सुंदर ढंग से बताय के सुनइया मन कतको रो भरैं अउ मूर्छित हो जाय। महाराज ह अभिमन्यु वध कथा के पहिली दिन चेतादय के जेखर जवान बेटा मरें होही, ओ ददा-दाई मन काली के कथा सुने ल झन आहू।" [69] तो ऐसी भाव प्रवणता है पंडवानी व

पंडवानी गायक की।

"द्रौपदी चीर हरण" में भी द्रौपदी का कारूणिक रूदन करूण रस का परिपाक करता है।

"बिचारि द्रौपदी हे तऊन फफक के रोवथे, कलप-कलप के रोवे। धरती माँ ल पुकारे, कहे हे माँ यहाँ तो मोर कोई रक्षा करने वाला नई हे

तैं फट जाबे धरती
मैं हा ओमा समा जाहवं
मोर कलप-कलप के
माता रोवन लागे
मैं हा ओमा समा जाहवं
द्रौपदी पुकारे लगिस धरती माँ ल ॥" [70]

द्रौपदी अपने अपमान से इतनी व्यथित हुई कि वह धरती में समा जाना चाहती है।

दुर्योधन अपने पुत्र लक्ष्मण कुमार की मृत्यु पर विलाप करता है।

"अरे-अरे बेटा लखनी अस तैं काखर बेटा ये काहत रेहेवं -

बंस बूढ़गे दाई बेटा ये मोर मरगे ओ रामा जय हरि मुढ़ी धरके ओ दुर्योधन रोवथे ओ रामा जय हरि।मोर धरती मईया आज मोला समा लेते राम।जय हरि अरे बेटा रामे रामे रामे रामे रामे रामा जय हरि बेटा लखनी तोला कोन मेर जलाववं रे मोर लाला। मंगर -मछरी ये काया ल नोंच-नोंच खाही रे। ये काया चल दीही तोला चिता म जलातेवं रे मोर लखनी। रागी पिता - अगा जघा -जघा आगी ल खोजत हे ग। आगी नई मिलिस पिता -

अग्नि देव अवसर न पाये नहीं मृतिका दे, करि जाये।
गदा घाव धरनी पे मारे भयो गड़ा तब लोथहिं डारे।

गदा ले पृथ्वी में प्रहार करिस, घाव बनगे बेटा के लास ल उही में पाट करके अउ खूंद-खूंद करके माटी देवथे। मुर्दा ऊपर में मोर मठ ऊपर कइसे रोवय।

प्रतिशोध की भीषण ज्वाला से दग्ध अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न और द्रौपदी के सोते हुए पांच पुत्रों को पांडव समझकर उनका मस्तक काट डाला। अपने भाई और पुत्रों को मरा देखकर द्रौपदी छाती पीट-पीट कर रोती है। महाभारत के युद्ध में वीर गीत प्राप्त योद्धाओं की पत्नियां और बच्चे पति और पिता की मृत्यु के कारण कारूणिक विलाप करते हैं। धृतराष्ट्र और गांधारी अपने सौ पुत्रों के युद्ध में समाप्त हो जाने पर छाती पीट-

पीट कर रोते हैं। पंडवानी में इन सबका मर्मस्पर्शी और हृदय द्रावक वर्णन है। ये प्रसंग करूण रस का उद्रेक करते हैं।

(4) **रौद्र रस**

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। इच्छा के विरूद्ध किसी के कार्य के होने पर या किसी के द्वारा हानि पहुंचाने पर क्रोध की उत्पत्ति होती है। शुत्रओं के प्रति क्रोध का आर्विभाव होने पर मनुष्य अनेक प्रकार की आक्रामक चेष्टाएं करता है। क्रोध के स्वरूप का विवेचन करते हुए भाव प्रकाशकार ने उसके तीनों रूपों क्रोध, कोप एवं रोष का वर्णन किया है। विद्वेश क्रोध का गुण है, दूसरे का मर्दन करने वाले कर्म से रौद्र रस का उद्भव होता है।

स्थायी भाव क्रोध, आलम्बन-अपराधी व्यक्ति, उद्दीपन -अपराधी द्वारा किया गया कार्य। अनुभाव -कठोर वचन, जांघ पर ताल ठोंकना, जमीन पर हाथ पटकना डींगे मारना आदि। पंडवानी में वीर रस की तरह रौद्र रस के अनेक उदाहरण परिपुष्ट हैं।

द्रौपदी के केश पकड़कर दुष्ट दुशासन उसे घसीटते हुए बीच सभा में लाता है - द्रौपदी के वस्त्र उतारने का प्रयास दुशासन करता है। इस स्थिति में भीम क्रोध से उबल पड़ते है - ये ला देखे त भीम के नेत्र लाल होगे। बोले दुशासन ''तैं जेन भुजा में द्रौपदी के बाल पकड़ के लाने हस, तेन भुजा ल न उखाड़वं , त मैं पवन पुत्र कहाना छोड़ दवं।''[71] द्रौपदी के चीर हरण के बाद बनवास जाने के पूर्व पांचों पांडव कौरव नायक दुर्योधन के दुष्कर्म से क्रोधित होकर उनका नाश करने की प्रतिज्ञा करते हैं। धर्मराज द्वारा आयोजित राजसूय यज्ञ में भीष्म की सलाह पर भगवान श्री कृष्ण की अग्रपूजा की बात सुनकर चेदिराज शिशुपाल क्रोधित हो जाते हैं और भगवान श्री कृष्ण को अपमानित करते हैं -

'' शिशुपाल

बीच में ग कइसे उठन लागे भाई

शिशुपाल बीच म उठगे मंजीरहा। बीच म उठ करके रागी तुरन्त का कहिथे येखर जात हे न पात हे, न दाई के ठिकाना न ददा के ठिकाना। घर-घर के माखन अऊ दूध दही चोरईया तेखर पहिली पूजा होना चाही नहीं।''[72] अभिमन्यु की हत्या हो जाने पर अर्जुन क्रोधित होकर प्रण करते हैं - ''मोर प्रन हे जयद्रथ ल मारिहौं अगर दिन बूड़े के पहिली नई मारिहवं तो चिता प्रज्जवलित करके मर जाहूं। '' अन्याय अत्याचार व अनीति के विरूद्ध पंडवानी में विभिन्न स्थानों पर रौद्र रस का संचार हुआ है। यह भावना लोकमन की अभिव्यक्ति है।

(5) वीर रस

वीर रस का स्थायी भाव है उत्साह। इसमें वीरता, बलिदान और राष्ट्रीयता जैसे सदगुणों का संचार होता है। इस रस में ओज गुण की प्रधानता होती है। प्राचीन आचार्यो ने चार प्रकार के वीरों का उल्लेख किया है (अ) दानवीर, (ब) धर्मवीर, (स) युद्ध वीर (द) दयावीर।

"स च दान धर्म युद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात्।" [73]

पंडवानी तो वीर रसों की खान है। इसके प्रत्येक प्रसंग में वीर रस का ओज है। पंडवानी के लगभग प्रत्येक पुरूष पात्र वीर-सेनानी हैं, जो युद्ध के लिए हमेशा उद्यत रहते हैं। पंडवानी का नायक भीम जिसका कर्म ही युद्ध है मानो वह युद्ध के लिए जन्म लिया है। पंडवानी के अधिकांश प्रसंगों में युद्ध का भरपूर वर्णन मिलता है , जिसमें वीर रस का संचार हुआ है । यदि पंडवानी को वीर लोक महाकाव्य कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। पंडवानी में वीर रस के चारों प्रकारों का समन्वय मिलता है।

(अ) दानवीर - दान को मानव जीवन का पुण्य बताया गया है। वह दान जो वीरता के साथ दिया गया हो दान वीरता है। पंडवानी में चाहे भीष्म हो या कर्ण इन्होंने बड़ी उदारता के साथ दान दिया है। कर्ण तो महादानी कहलाते हैं। त्याग दान की पहिली सीढ़ी है। यश लिप्सा, मोह-माया और राजपाठ को त्यागने वाला ही त्यागी और दानी कहला सकता है।

भीष्म द्वारा युद्ध में पांडव सेना का विनाश देखकर धर्मराज हतोत्साहित होने लगे, उन्होंने श्री कृष्ण से उपाय पूछा। श्री कृष्ण की सलाह पर भीष्म की मृत्यु का रहस्य पूछने पांडव भीष्म के पास गए। भीष्म ने बड़ी उदारता के साथ अपनी मृत्यु का रहस्य बता दिया। भला ऐसा कौन वीर और त्यागी होगा जो युद्ध क्षेत्र में अपनी मृत्यु का रहस्य शत्रुपक्ष को बतायेगा -

"अगा तोर मिरतुका कइसे हो ही पितामह
तेखर उपाय बतादे ग मोर भईया।
भीष्म पितामह कहे अर्जुन
सिखण्डी ल आगू करके लड़ही भाई
तब मैं बान नई चलाववं ग मोर भाई।"

इसी प्रकार कर्ण ने माता कुन्ती को पंचमुखी बाण व इन्द्र को रक्षा कवच और कुंडल का सहर्ष दान कर दिया। ऐसी दयालुता अन्यत्र दुर्लभ है -

"ठीक है तैं मोर जान ल मांग ले कुन्ती दाई
ले माँ ले
परसुराम के दिए पंचमुखी बान ल
ले माँ ले।"[74]

x x x

"अगा मोर परन पूरा करव ग पूरा करव ग
ये दे जेखर बचन साधु सुनत हे साधु सुनत हे

महराज आप मन ल कवच कुंडल चाहिए। हव। लो महराज मोर तरफ से कवच कुंडल ल लो। ह: ह: तभी करन को करन दानी कहते हैं दुनिया में।"[75]

(ब) धर्मवीर- जो धर्म की रक्षा करता है वह धर्मवीर कहलाता है। पंडवानी में ऐसे प्रसंगों और पात्रों की कमी नहीं हैं, जिन्होंने धर्म का प्राणपन से न रक्षा की हो। युधिष्ठिर तो धर्म राज ही हैं। धर्म की रक्षा तो जैसे उनके प्राण हैं। बकासुर प्रसंग में भीम धर्म की रक्षा करता है। दूसरों के काम आना दूसरों की सहायता करना मानव का पहला धर्म है। ब्राम्हण परिवार के सदस्य की उस दिन पारी थी बकासुर के लिए भोजन पहुँचाने की। ब्राम्हण का एक ही पुत्र था। अत: माता कुन्ती उस ब्राम्हण पुत्र के स्थान पर भीम को भेजती है। भीम बाकसुर का वधकर ग्रामवासियों की रक्षा करता है। उन्हें सदैव के लिए भययुक्त करता है -

"बेटा के बदला मोर बेटा ल देहूँ
जाकर ओखर दु:खल दूर करो लाला

पांडव भारत में केवल ब्राम्हण अउ गऊ के कारन जनम लेहे -

ब्राम्हनीन घर भीम दउ ड़त हवे भाई
ब्राम्हनीन दाई ओ ऽ ऽ
झन रोबे दाई मैं हववं दाई
दाई
तोर बेटा के बदला में हा जाहूं मईया।"[76]

एक अन्य प्रसंग में ब्राम्हण की गायों को चोर चोरी कर ले जाते हैं। तब ब्राम्हण गायों की रक्षा के लिए गोहार (पुकार) पारता है। अर्जुन पुकार सुन दौड़ता है किन्तु वह असमंजस में पड़ जाता है, क्योंकि उस समय उसका धनुष बाण जिस स्थान पर था। वहां धर्मराज और द्रौपदी विश्राम कर रहे थे। चूंकि ऐसी व्यस्था थी कि द्रौपदी बारी-बारी से पांडवों के पास रहेगी और इस व्यवस्था का उल्लंघन करने

वाला बारह वर्ष का बनवास भोगेगा। इस प्रसंग में अर्जुन धर्म की रक्षा खातिर व्यवस्था का उल्लंघन कर बारह वर्ष का वनवासी जीवन स्वीकारते हैं -

"ओ समय ब्राम्हण राहय तेन
रोवत - रोवत ग आवन लागे भईया
अर्जुन के कइसे दुवारी म आवे भईया
x x x
ये धर्मराज के भाई कहायों अर्जुन हे मम नाम
माता कुंती के बेटा कहायेंव कर मम संग संग्राम
घनघोर लड़ाई होइस भईया। चोर मन भगा गे गाय अउ धन ल वापस लइस।"[77]

(स) युद्धवीर

युद्ध वीर में योद्धा की वीरता और पराक्रम की अभिव्यंजना होती है। नगाड़ों, रणभेरी आदि की तुमुल ध्वनि से ओज का संचार होता है और योद्धा युद्ध भूमि की ओर प्रस्थित होकर प्राणात्सर्ग के लिए तत्पर रहता है। पंडवानी में युद्ध वीर के अनेकानेक उदाहरण हैं -

"दुर्योधन सेना संग भारी
बीस सहस्त्र नृप छत्रधारी
बड़े-बड़े राजा महाराजा
अरे छटवाँ दरवाजा म खड़े हवय भाई।"[78]

"जब अर्जुन के बान करन के शरीर ल व्याकुल कर दीस तो करन निकाल के अस्सी बान मोर भगवान ल -

बीस-बीस बान तुरंग में मारा
दस-दस बान चलावहिं।
तीन बान मन मोहन उर मारहू
दोऊ बान अर्जुन तब लागहिं ॥"[79]

(ह) दयावीर

वीर पुरूष के लिए क्षमा और दया उसके आभूषण हैं। दया और क्षमा श्रेष्ठ मानवीय गुण हैं। दीन-दुखियों पर दया और छोटों को क्षमा वीर पुरूष को और भी गौरवन्वित करती है। पंडवानी में दयावीर के उदाहरण अनेकों स्थान पर मिलते हैं। निम्न उदाहरण दृष्टव्य है।

चित्रसेन दुर्योधन और उसकी सेना को बन्दी बना लेता है ।वह सहायता के लिए करूण क्रंदन करता है। धर्मराज दुर्योधन की करूणा से द्रवित हो अर्जुन को आदेश देते हैं कि तुम जाकर दुर्योधन और उसकी सेना को बंधन मुक्त करवाओ । अर्जुन चित्रसेन से कहते हैं कि दुर्योधन हमारा भाई है अत: उसे छोड़ दो । चित्रसेन पांडवों की शक्ति को भलीभाँति जानता था। अत: बिना किसी प्रतिरोध के उसने दुर्योधन को छोड़ दिया -

"दुर्योधन ग हमर भाई आवे भईया
धर्मराज के कहना हे येला छोड़ दे भाई । "

जिसने अहित किया, उसी के प्रति दया । यह दयावीर का अनुपम उदाहरण है । पंडवानी में संरक्षित ऐसी उदात्त भावना दयावीर का संचार करती है ।

06. भयानक रस

भय स्थायी भाव से अभिव्यंजित होने वाला रस भयानक रस है । इसमें किसी भयानक वस्तु का वर्णन, दर्शन का उल्लेख होता है, जिससे हृदय में भय और आतंक पैदा होते हैं। अत्यधिक भयंकरता से मूर्छा और प्राणांत भी हो जाता है । स्थायी भाव- भय, आलबंन- भयानक वस्तु, अनुभाव-कांपना, पसीना छूटना, संचारी भाव - दैन्य, संभ्रम, सम्मोह आदि । नकुल विवाह में निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है -

"कोस-कोस डंका भीमसन रेंगय भाई
गरजत आवय भीमसन भाई
ओती ले आवथे धावन जब भाई
देखि जब पावय भीमसन ल भाई
गोड़ के निहारय मुड़े ले भाई
जऊँहर मोर होगे नई बाँचव भाई
कोन दिन के तोर मैं लगत रेहेंव मूंगा
चोला नई बांचय डोंगरी में भाई ।। " [80]

भीमपुत्र घटोत्कच श्रीकृष्ण की उलाहना पर अपने मायावी प्रभाव का प्रयोग करता है । पहाड़ों को पत्थरों की तरह उठाकर कौरव सेना पर फेंकता है । कौरव सेना में भय और आतंक छा जाता है । सेना भय के मारे तीतर-बीतर होने लगती है -

"घटोत्कच मयावी रूप देखावय भईया
जर सुद्धा रूख ल उखाने मोर भाई ।
पथरा कस पहाड़ ल फेंकय रागी
कौरव सेना चांटी कस चपकावे जी ।। "

07 वीभत्स रस

वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है।

"जुगुप्सा स्थायि भावस्तु वीभत्स:।"[81]

घृणोत्पादक वस्तुओं को देखकर मन में जुगुत्सा का भाव उत्पन्न होता है, जो वीभत्स रस का उद्रेक करता है। वीभत्स के अन्तर्गत समस्त कुत्सित, गर्हित एवं निंदनीय पदार्थ एवं कार्यों की गणना होती है।

"गर्हणीयश्च निन्द्यश्च कुत्सनीयश्चयो भवेत
स: भाव: कथ्यते सद्भिवीत्स इति संज्ञया।"[82]

राजसूय-यज्ञ प्रसंग में सुपल भगत द्वारा कोढ़ी का रूप धारण करना वीभत्स का सटीक उदाहरण है -

"सुपल भगत ह का करथे संगी -
अगा कोढ़ी के रूप ये बनावन लागे भाई।"

सुपल भगत एकदम कोढ़ी के रूप ग जेला कहिथे कुष्ठ बीमारी। बड़े-बड़े फोड़ा ओखर शरीर में, खून अऊ पीब एकदम चुचवावथे, कीरा एकदम कील-बील करथे। भईया माछी भन-भन, भन-भन झूकथे -

"अगा अइसे ग रूप बनावय ग मोर भाई।"[83]

दुर्योधन युद्ध भूमि से अपने प्राण बचाकर भागता है। युद्ध मैदान में हजारों हाथी, घोड़े और योद्धाओं की क्षत-विक्षत लाशें भूमि पर पड़ी हुई थी। सियार, कुत्ते आदि लाशों को खींचकर ले जाते थे। दुर्योधन खून की नदी पार करता है -

"बड़े-बड़े मुर्दा मन
ओही गंगा में कइसे बोहावत हे रामा जय हरि
राजा दुर्योधन
ये खून के गंगा ल देखन लागे भाई
का करवं दाई शोणित गंगा नदी बहथे।
ये केंवट कोनो नई दिखत हे,
ये मुर्दा ऊपर में नाहक जतेंव का
बड़े-बड़े मुर्दा में राजा दुर्योधन चढ़ के चलिस पर कोई
पार नई कर सकिस।बीच धार में बालक मुर्दा।"[84]

पंडवानी के उपरोक्त कथा प्रसंगों से मन में वितृष्णा और घृणा के भाव पैदा होते हैं, जो वीभत्स का सचित्र उदाहरण है।

08. अद्‌भुत रस

विस्मय स्थायी भाव से निष्पन्न होने वाला रस अद्‌भुत रस कहलाता है। प्रत्येक रस में लोकोत्तर चमत्कार की मूल स्थिति होती है, जहां सामाजिक अपने चित्त का विस्तार पाता है। अलौकिक काव्यार्थ के परिशीलन से सहृदय सामाजिक के अन्त:करण में एक ऐसी ज्ञान धारा प्रवाहित होने लगती है, जिसमें हृदय की विशालता साकार हो उठती है। हृदय की विशालता चमत्कार अथवा विस्मय कहलाता है। आश्चर्य भाव इसमें प्रधान होता है। स्थायी भाव-विस्मय, आलंबन-अलौकिक या विचित्र वस्तु या व्यक्ति, उद्‌दीपन-अलौकिक वस्तु होने में सूचक तत्त्व, अनुभाव-प्रशंसा करना, रोमांचित होना, संचारी भाव-हर्ष, आवेग, त्रास आदि।

पंडवानी की कापालिक शैल की कथाएं पंडवानी पात्रों के अद्‌भुत कारनामों से भरी पड़ी है, महाभारत व पंडवानी दोनों में ही चमत्कारों का वर्णन है। पंडवानी के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

"ऐरावत हाथी ल भीम तीरत लावय भईया
सब देख अचम्भा मानय ग मोर भाई।

नकुल-विवाह प्रसंग में भीम धावन दूत को देख छोटे बालक का रूप बना लेता है -

रूख कर ओटगन लेवत हवय रामा।
नानकुन टूरा रे होवन लागे भाई।" 85

"अभिमन्यु विवाह" में भीम तेली घर तेंल के लिए बनी (मजदूरी) करने जाता है। भीम तेली से कहता है - मैं तुम्हारी घानी चलाने का काम करूंगा। मजदूरी के बदले मेरे कान में तेल भर देना। तेली खुश हो जाता है। कान में थोड़ा सा तेल आयेगा। तेल पराई का काम समाप्त होने पर तेली भीम के कान में तेल भरने लगा। यह क्या ? भीम का कान, कान है या कुआँ। तेली कई "भदऊवा" (तेल रखने का मिट्टी का बर्तन) तेल उसके कान में डाला, किन्तु भीम का कान भरा नहीं।अंत में तेली ने हार मान ली।

सरग -रोहनी जाते हुए दुर्योधन अर्जुन को सुरंग में ढकेल देता है। अर्जुन पाताल लोक पहुंच जाते हैं। श्रीकृष्ण और शेष पांडव अर्जुन का पता लगाते हुए कारी नागिन के पास पहुंचते हैं। कारी नागिन बबरू को बुलाकर आदेशित करती है -

"जा-जा जी बबरू सात समुंदर
गोबर अउ गोरस तें ले आनि बे भाई

ओतका सुने राजा बबरू हा
जल्दी तो भइगे तैयारी रे भाई
सात समुंदर सोला धार नाहकके
सबल तो धर के लानिस रे भाई। " [86]

इस प्रकार के अद्भुत कार्य और चमत्कार प्रतिभा सम्पन्न, विलक्षण पात्रों द्वारा ही संभव है। पंडवानी में विलक्षण पात्रों की कमी नहीं है। ये पात्र अपने विलक्षण, अद्भुत और चमत्कारिक घटनाओं के कारण, लोकरूचि के प्रिय पात्र हैं।

09. शांत रस

शम या निर्वेद शांत रस का स्थायी भाव है। इस रस का उद्रेक उत्तम प्रकृति के व्यक्तियों में होता है -

"शांत शमस्थायिभाव उत्तम प्रकृतिः मर्तः।" [87]

इसमें आत्मा शांति और प्रभु भक्ति की भावना प्रधान होती है। स्थायी भाव शम या निर्वेद , आलंबन परमात्मा की भक्ति,उददीपन - सत्संग, अनुभाव-सर्वत्र, साम्य-दर्शन, आनंदित होना, संचारी भाव हर्ष, स्मृति आदि।

मानव मन जीवन और जगत के संतापों से संत्रस्त हो जाता है , तब वह अलौकिक सत्ता की ओर आकृष्ट होता है। संसार की असारता, जीवन की क्षण भंगुरता और माया से निर्लिप्त होकर वह विराग के सोपानों पर चढ़ता हुआ उर्ध्वमुखी हो जाता है। मन की यह विरागमयी स्थिति शांत रस का उद्रेक करती है। ज्ञानार्जन और मनोरंजन के साथ-साथ आत्मशांति और भगवद्‌भक्ति पंडवानी गायन का लक्ष्य है। पंडवानी में भगवान श्री कृष्ण-भक्ति का गुणगान है। वे सर्वत्र व्याप्त और सर्वज्ञ हैं। पंडवानी में भक्ति की लहरें हिलोरें लेती है। आदि से अंत तक पंडवानी में प्रभु-स्मरण और उनकी स्तुति समाहित है। कथा का आरंभ ही प्रभु स्मरण से होता है -

"जै बोलो वृन्दावन विपिन बिहारी
गिरवर धारी मोहन मुरारी ये भाई।" [88]

x x x

"श्याम सुखदाई मोर हलधर के भाई ग
भजन बिना मुक्ति नई होय भाई ग
ये प्रेम पुंज कुंज बिहारी ग भजन बिना .....। " [89]

x x x

"सियाराम भजन कर प्राणी ग
तोर दू दिन के जिनगानी ग
सियाराम भजन कर ॥" [90]

x x x

"सियाराम कहिके बिता ले तोर उमरिया
तोर माया गठरिया कचलोही काया के तोर काहे ठिकाना
पढ़ले रामायन अऊ सुन ले गीता
प्रभु के भजन बिना तोर जिनगी हे अबिरथा।
हरि के भजन बिना तोर चोला हे अबिरथा।
मन में बसई के तार ले तोर जीव ला
तोर माया के गठरिया कचलोही काया के तोर काहे ठिकाना
सियाराम ....।" [91]

एक अन्य उदाहरण -

"दो दिन के जिनगानी रे संगी, संगी रे ऽ ऽ ऽ
चोला हर छूट जाही रे
पों से तोर मैना रे संगी।
ये चोला ल छोड़ जाही रे ॥
दाई-ददा तोर कुटुम कबीला
माटी भर ल देही रे
पास-परोस आके घर म
तोरे घर म बमाही रे ॥" [92]

पंडवानी का प्रत्येक प्रसंग आद्‌योपांत शांत रस से लबरेज है।

10. वात्सल्य रस

वात्सल्य रस का स्थायी भाव वात्सल्य है। वात्सल्य रस को पहले संतान विषयक रति से उत्पन्न एक भाव मात्र माना जाता था। आगे चलकर विद्वानों ने इसे रस के रूप में स्वीकार किया। पंडवानी के जन्म विषयक प्रसंगों में वात्सल्य रस का सजीव चित्रण हुआ है।

कर्ण जन्म प्रसंग का उदाहरण प्रस्तुत है, जिसमें अधिरथ के यहां बालक उत्पन्न होने पर माताएं सोहर गीत गाती है -

"जुग-जुग जिए तोर लाला मदन गोपाला
ओ बहिनी तोर घर बेटवा बिराजे उछल -मंगल गावन हो।
काखर भये श्रीरामे काखर भये लक्षमन हो
बहिनी काखर भरत भुवाले राजा के धर म सोहय ओ
बहिनी बाजथ आनंद बधाई। "[93]

पंडवानी लोक महाकाव्य है। महाभारत की तरह उसमें शिष्ट काव्य की सुघड़ता भले ही न हो लेकिन रस -विवेचना की दृष्टि से पंडवानी महाभारत से कम नहीं है।पंडवानी रस का सागर है जिसमें लोक मानस अवगाहन करता है। इसमें रस की अनंत धारा समाहित है।पंडवानी की अनगढ़ता ही इसकी सुघड़ता है। पंडवानी में रस का परिपाक व साधारणीकरण मूलत :अभिनय व संगीत के माध्यम से होता है।अभिनय के माध्यम से कथा का प्रक्षेपण, प्रसंगानुसार संगीत की सृष्टि, यही पंडवानी में रस की विशेषता है। पंक्ति में पंडवानी की रस वर्षा से श्रोता मन तृप्त होता है। यह रस का सागर है। विखंडन ही इसका प्रबंधन है। शिष्ट न होकर भी विशिष्ट (लोक) की अभिव्यक्ति है।

कलापक्ष

काव्य में भाव पक्ष और कला पक्ष की समान महत्ता प्रतिपादित की गई है। शब्द और अर्थ के समवाय को काव्य कहा गया है - "अर्थ काव्य का अंतरंग है और शब्द बहिरंग। सौंदर्य की प्रतीति बहिरंग और अंतरंग दोंनों के समन्वय से होता है और ये विविध अंक परस्पर पूरक हैं तथा इनके समग्रगत भाव से ही रस की निष्पत्ति होती है।"[94] कविता में शब्द और अर्थ की रमणीयता उत्पन्न करने का सर्वाधिक श्रेय अलंकारों को दिया जाता है। आचार्य भामह ने कहा है कि जैसे सुन्दर मुख वाली स्त्री आभूषणों के बिना शोभा नहीं पाती, वैसे ही सुन्दर कविता अलंकारों के बिना मनोहर नहीं लगती।

"न कांतमपि निर्भुषं विभाति वनिताननम्।"[95]

आचार्य दण्डी अनुसार काव्य शोभादायक धर्म अलंकार है।

"काव्याशोभाकरान् धर्मा निलंकारान प्रचक्षते।"[96]

जिस प्रकार उष्णता के अभाव में अग्नि का अस्तित्व असंभव है। उसी प्रकार अलंकार के अभाव में काव्य की कल्पना नहीं की जा सकती। अलंकारवादी आचार्यों के विरोध में अनेक आचार्यों ने काव्य में अलंकार की अप्रधानता निर्दिष्ट करते हुए अपने-अपने मतों का प्रतिपादन किया। रीतिवादी विचारक वामन ने काव्य में अलंकार

की अपेक्षा गुण का प्राधान्य माना है। रसवादी आचार्यों ने अलंकारों को रसाभिव्यक्ति के सहायक तत्व के रूप में स्वीकार किया है, किन्तु काव्य के अनिवार्य एवं स्थायी धर्म के रूप में महत्ता नहीं है। साहित्य दर्पण कार ने अलंकार को अस्थायी धर्म के रूप में स्वीकार किया है, जो अंगद (बाजूबंद) आदि अलंकारों की भाँति (काव्य के शरीर) मूल शब्द और अर्थ की शोभा बढ़ाया करते हैं। और (काव्य के आत्मभूत) इस भाव के अभिव्यंजन में सहायक हुआ करते हैं -

"शब्दार्थ योरस्थिरा ये धर्माः शोभामिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारस्तेऽऽदादिवत ॥" [97]

अलंकार के विषय में विभिन्न आचार्यों में मतान्तर है, लेकिन यह तय है कि कविता की सौंदर्य अभिवृद्धि में अलंकार सहायक है। महाभारत एक शिष्ट महाकाव्य है, जिसमें अलंकारों की संयोजना समाहित है किन्तु पंडवानी लोकगाथा है और लोक महाकाव्य है। लोक गायक भावों के प्रति सजग होता है, अलंकारों के प्रति नहीं। महाभारत छन्द बाहुल्य महाकाव्य है इसमें उपमा, रूपक, अनुप्रास, अतिशयोक्ति आदि अलंकार विद्‌यमान है। पंडवानी लोकगाथा चंपू काव्य है। इसमें कथा पद्‌य व गद्‌य दोनों में होती है। अतः पंडवानी में अलंकार योजना न के बराबर है । फिर भी जो है वह सायास न होकर अनायास है।

अलंकार के तीन भेद माने गए है :-

(1) शब्दालंकार (2) अर्थालंकार (3) उभयालंकार

(1) शब्दालंकार - जिस रचना में शब्दों के कारण चमत्कार होता है। वहां शब्दालंकार माना जाता है। अनुप्रास, यमक और वक्रोक्ति श्लेष मुख्य शब्दालंकार है-

01. अनुप्रास - जिस रचना में व्यंजनों की बार-बार आवृत्ति होती है और उस आवृत्ति के कारण चमत्कार उत्पन्न होता है वहां अनुप्रास अलंकार माना जाता है पंडवानी में अनुप्रास अलंकार की छटा पंडवानी की प्रारंभिक जयकार में ही समाहित है -

"बोलो बृन्दावन बिहारी लाल की जय।" [98]

इस जयघोष में "ब" की एकाधिक बार आवृत्ति हुई है। यूँ तो अनुप्रास के पांच भेद बताए गए हैं - 01. छेकानुप्रास 02. वृत्यानुप्रास 03. श्रुत्वानुप्रास 04. अंत्यानुप्रास 05. लाटानुप्रास। चूंकि पंडवानी समूह की रचना है और अलिखित है। अतः इसमें अलंकार - योजना नगण्य है। अनुप्रास के विभिन्न प्रकारों की चर्चा न

होता है।

01. उपमा - जहाँ पर किसी वस्तु की रूप-गुण संबंधी विशेषता को स्पष्ट करने के लिए किसी दूसरी परिचित वस्तु से उसकी समता प्रकट की जाती है। वहां उपमालंकार होता है।

"दुशासन साड़ी खींचय त द्रोपती ह
चक्का के बरोबर घूमे लगिस।" [104]

उपरोक्त उदहारण में दुशासन द्वारा साडी खींचने पर द्रोपती के घूमने की उपमा चक्का (पहिया) कुम्हार के चाक से की गई है। द्रोपती उपमेय और चक्का उपमान है। अन्य उदाहरण -

"जइसे चलत कुम्हार के चाके
ऐसे रथ तुम हांकहुँ बॉके।" [105]

x x x

"रथहिं चलावत सारथी भारी
बरसे सावन भादो के बारी।" [106]

x x x

"गरजहिं भीम काल समान।" [107]

02 रूपक -जहॉ उपमेय और उपमान मे भिन्नता दिखाई न पडे और दोनो एक रूप में ही दिखाई पड़े वहां रूपक अंलकार होता है -

"चारों दिशा बरसत बाना
सावन-भादो बूंद समान।" [108]

बाणों के चलने से सावन भादों में बरसने वाली बूंदों का आरोप है।अत: रूपक अंलकार है।

03. उत्प्रेक्षा -जब कल्पना द्वारा एक वस्तु को दूसरी वस्तु मान लिया जाय या उपमेय में उपमान की संभावना व्यक्त की जाये वहां उत्प्रेक्षा अंलकार होता है। उत्प्रेक्षा में जनु, जानों, मानो आदि वाचक शब्द के रूप में आते है -

द्रोपती -विवाह प्रसंग में द्रोपती सज -संवर कर विवाह मंडप मे आती है, तब उसके रूप - सौंदर्य का निम्न उदाहरण-

"ओसमय जब बेटी ल सुंदर संवार के निकालथे
त महारानी द्रोपती हौ तऊन कइसे दिखथे -
जानों -मानो जऊन पूर्णिमा के चन्द्रमा है।" [109]

कर आगे कुछ अलंकारों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

अनुप्रास के अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

"पटपिट-पटपिट घोड़ा भागत हवे भाई।" [99]

पंडवानी के टेक में भी अनुप्रास की छटा दिखाई पड़ती है -

"रामे रामे रामे रामे रामे रामे भाई।" [100]

x x x

"सना न ना न ना न ना न ना नना भाई।" [101]

02. यमक - जब एक शब्द का प्रयोग अनेक बार हो और भिन्न अर्थ प्रकट करे, तब यमक अलंकार होता है।

राजसूय-यज्ञ प्रसंग में दुर्योधन के गिरने पर द्रौपती यह उक्ति - अंधवा के बेटा अंधवा आय ओ। [102] यमक का सुन्दर उदाहरण है। उपरोक्त पंक्ति में अंधवा शब्द का दो बार प्रयोग हुआ है, जिसका आशय क्रमशः धृतराष्ट्र और दुर्योधन से है।

03. वक्रोक्ति - जहां दो अर्थों वाले शब्दों के प्रयोग से अथवा कंठ ध्वनि बदलकर श्रोता वक्ता के कथन को टेढ़ा-मेढ़ा कर उसका दूसरा अर्थ लगाता है, वहां वक्रोति अलंकार होता है।

"मैं अबला नारी सभा में जाके खड़ा हो हूँ
त तुंहर नाक कट जाही - मैं सभा भवन में जाके
खड़ा होय लायक नई हंव।" [103]

"पापी दुशासन मोर चुंदी ल छोड़
आजे रे बैरी मुड़ मीजे हंववरे।"

यहाँ पर मुड़ी मींजने का आशय स्त्री के मासिक धर्म (रजस्वला) से है। जिसे द्रौपती मर्यादित किन्तु वक्रोक्त ढंग से व्यक्त करती है।

युद्ध क्षेत्र में धर्मराज का यह कथन "अश्वस्थामा मारे गय" वक्रोक्ति का उदाहरण है। धर्मराज का आशय अश्वत्थामा नामक हाथी से था, उन्होंने अश्वत्थामा मारे गय जोर से कहा और हाथी शब्द को बहुत धीरे। द्रोणाचार्य ने अश्चत्थामा का अर्थ अपने बेटे से लगाया और प्राण त्यागने समाधिस्थ हो गए।

(2) अर्थालंकार

जहाँ काव्य में अर्थ के कारण चमत्कार उत्पन्न होता है, वहां अर्थालंकार

04. संदेह -किसी वस्तु को देखकर जहां साम्य के कारण उसमें किसी दूसरी वस्तु का संदेह हो जाता है , वहां संदेह अलंकार माना गया है। सामान्यत: इनके वाचक शब्द या अथवा धौं, किधौं , किंवा आदि -

"कलप -कलप के रोवथे, ये दे रोवथे जी
माता द्रोपती ह रोवथे रामा जय हरि
आंखी ले मोती झरथे रामा जय हरि
जऊने समय के बेरा मे ये दे रोवथे जी।" [110]

05. अतिशयोक्ति -जहाँ लोक का अतिक्रमण करने किसी वस्तु विषय का वर्णन किया जाता है। वहां अतिशयोक्ति अंलकार होता है -

"कोस -कोस डंका भीमसन रेंगय भाई
गरजत आवय भीमसन भाई।" [111]

पंडवानी में अतिशयोक्ति अंलकार के अनेकों उदाहरण हैं । पंडवानी कथा में चमत्कार पूर्ण कार्यों का उल्लेख मिलता है। पंडवानी गायक कथा को रोचकता प्रदान करने के लिए वह अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करता है। इन कथाओं में श्रोताओं की रूचि भी गहरी होती है। अतिशयोक्ति का एवं अन्य उदाहरण द्दष्टव्य है -

"बारा भाई तो भैया सबरिया अऊ अघरिया जी,
जमेच कोल मन वो गुनत तो हंवय ए भाई
आगी के कल ला छटकाई ये जी
बारा कोस के तावा ल तिपोवत हे भाई
अर्जुन के रथ हर चले नई सकय ये जी
परे करलई लोहिड़ी म ये भाई। " [112]

उपरोक्त उदाहरण में बारह कोस की पिरिधि के तवा का वर्णन मिलता है जो अतिशयोक्ति का अच्छा उदाहरण है।

06. विभावना - जहां कारण के बिना या कारण के विपरीत कार्य की उत्पत्ति का वर्णन किया जाय, वहां विभावना अलंकार होता है।

दुर्वासा अपने दस सहस्त्र शिष्यों के साथ जंगल में निवास कर रहे धर्मराज (पांडव) के पास जाते हैं और कहते हैं कि वे सब यहाँ भोजन करेंगे। चूंकि द्रोपदी अक्षय-पात्र से भोजन कर चुकी थी।अत: उस दिन भोजन मिलना संभव नहीं था। द्रोपदी ने कृष्ण का स्मरण किया। कृष्ण दौड़े आए और खाने को मांगा। अक्षय-पात्र में भाजी का एक टुकड़ा था , कृष्ण उसे ही खा गए। सारा संसार तृप्त हो गया। दुर्वासा

ऋषि और उसके शिष्य भी -

"भाजी ल खा कृष्ण डकारन लागे भईया
सरी दुनिया के पेट अघा गय भाई
दुर्वासा अऊ चेला मन डकारन लागय जी
अब कइसे कर बो कहिके सोचन लागय जी।"

कृष्ण भगवान के तृप्त होते ही जगत के सारे जीव-जन्तु तृप्त हो गये हैं। दुर्वासा और उसके दस हजार शिष्य भी। यहां पर कारण के विपरीत कार्य का होना निर्दिष्ट है। अत: विभावना अलंकार है।

07. अपन्हुति - जब उपमेय का निषेध करके उपमान का आरोप किया जाय अर्थात् जहां वास्तविक बातों को छिपाकर कोई अन्य सत्यासत्य कथन किया जाय। वहां अपन्हुति अलंकार होता है।

शकुनि द्वारा द्युत-क्रीड़ा में छल-कपट को देखकर महात्मा विदुर कहते हें कि यह पासे का खेल नहीं कौरवों के नाश का सूचक है -

"येला सुन के बिदुर बोले- देख राजा
ये जुआं के खेल हो ही तेन काहथे
इही जुआं के खेल ह
सौ भाई कौरव के नाश के जड़ बनही।" [113]

08. अत्युक्ति - जब रोचकता लाने के लिए शूरता, उदारता, विरह, प्रेम आदि का अद्‌भुत पूर्ण या अत्यन्त मिथ्यापूर्ण वर्णन किया जाय तो अत्युक्ति अलंकार होता है।

युद्ध क्षेत्र में योद्धाओं के सिंहनाद व घोड़े, हाथी, रथों की आवाजों से समस्त दिशाएं कांप उठी।धूल से सारा आकाश भर गया। सूर्य छिप गया और दिन में अंधकार हो गया। इस तरह के अनेकों अत्युक्ति पूर्ण उदाहरण पंडवानी में समाहित हैं -

"कहीं अग्नि बाण चले, अग्नि बाण के चलत
सांतवा दरवाजा अइसे दिखय
जइसे संसार में भूकंप होने वाला है।" [114]

x x x

"सावन सघन बूंद सम बरसे
सावन के महिना में पानी बरसा होथे
तइसे अर्जुन बाण बरसाय।" [115]

x x x

"वरूण बाण तब कर लिन्हा
पढ़के मंत्र तुरंत तब दीन्हा
पानी के बरसा होवन लगे भईया
पानी के बरसा होवन लगे न

करन निकालिस वरूण बान त पानी के बरसा होय लगिस।-कतेक पानी के बरसा होइस त सबल सिंह चौहान महाभारत में बताय हे -

रथ हाथी डूबन लगे वीर न पावे थाह।" [116]

09. स्मरण - जब किसी देखी या सुनी हुई वस्तु का स्मरण उसके समान या उससे संबंध रखने वाली वस्तु को देखने या सुनने से ही हो जाये तब स्मरण अलंकार होता है।

विराट नगर में कौरवों से युद्ध के समय अर्जुन की शंख ध्वनि, रथ की घरघराहट और गांडीव की टंकार से भीष्म, द्रोण आदि को विश्वास हो गया कि वह पांडुनंदन अर्जुन ही है -

"कौरव दल भीष्म ल पूछे महाराज
काखर रथे हर आवत हवे भाई
आवाज ल सुन के कौरव दल पूछे महाराज काखर
रथ आवथे
कौरव दल ग पूछन लगे मोर भाई
तो गंगा सुवन भीष्म बोले
वीरों ये महावीर अर्जुन के रथे ये।" [117]

10. भ्रांतिमान - जहां उपमेय और उपमान में सादृश्य के कारण भ्रम उत्पन्न हो जाय वहां भ्रांतिमान अलंकार होता है।

अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी कि सूर्यास्त के पूर्व जयद्रथ का वध करेंगे। यदि ऐसा नहीं कर सके तो वे अग्नि में जलकर अपना प्राण त्याग देंगे। युद्ध मैदान में अर्जुन की प्रतिज्ञा को पूर्ण होते न देख श्री कृष्ण ने अपने चक्र द्वारा सूर्य को ढंक लिया। सूर्यास्त सा आभास होने लगा। प्रतिज्ञानुसार अर्जुन अग्नि चिता पर चढ़ने लगे। जयद्रथ सामने था। इसी समय श्रीकृष्ण ने चक्र सुदर्शन वापस बुला लिया। तब अर्जुन ने सिंधुराज जयद्रथ को बाण से तत्काल मार डाला।

कृष्ण भगवान
"चक्र म सुरज ल तोपन लागे भाई
दिन बूड़गे त अइसे अंधियार होगे भाई।"

पंडवानी में यह बात ध्यान देने योग्य है कि पंडवानी अलिखित है और पंडवानी गायक इसे अपनी स्मरण शक्ति के आधार पर मौखिक रूप से गाता है। वह एक प्रसंग को जितनी बार गाता है, उतनी ही बार उसके शब्द व्यवहार में परिवर्तन होता है। भले ही मूल कथा न बदले किन्तु शब्दों में स्वाभाविक रूप से परिवर्तन होता है। अत: अलंकार योजना पंडवानी में शिथिल, नगण्य और अस्थिर दिखाई पड़ती है। गायक द्वारा व्यहृत शब्द-समूह में स्वाभाविक रूप से तोड़-मरोड़ या परिवर्तन होते रहता है, अत: निश्चित रूप से पंडवानी को अलंकारिक नहीं कहा जा सकता। पंडवानी गायक ने आज जो पंक्तियां दुहराई जिन शब्दों का उसने प्रयोग किया, यह आवश्यक नहीं कि कल उन्हीं पंक्तियों या शब्दों को दुहरावे। इसका आशय यह भी नहीं कि मूल कथा छिन्न-भिन्न होती है। मूल कथा के स्वरूप में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता किन्तु अलंकारिता अवश्य प्रभावित होती है। पंडवानी की अलंकार योजना बनती-बिगड़ती रहती है। महाकाव्य व्यक्ति विशेष की कृति होती है। अत: अलंकृत होती है। पंडवानी एक लोक गाथा है और समूह की सृजन-शीलता का परिणाम है व मौखिक परम्परा द्वारा संरक्षित है। जितने भी पंडवानी गायक हैं, उनके शब्द भंडार, उनकी कल्पना-शीलता और उनके प्रस्तुतीकरण की शैली भिन्न-भिन्न है। अत: पंडवानी में अलंकारों की दृष्टि से शिथिलता और नगण्यता स्वाभाविक है। पंडवानी में कुछेक स्थानों पर यदि अलंकार योजना या अलंकारिकता बिखरी दिखाई पड़ती है तो वह अनायास, अस्थिर, सहज और स्वाभाविक है।

लोक गाथाओं में पिंगल शास्त्र केनियम अत्यंत शिथिल हैं।यह अवश्य है कि यत्र-तत्र अलंकार बिखरे पड़े हैं, परंतु वे सहज ही आ गए हैं। राबर्ट ग्रेव्स का कथन है कि - "लोक गाथाएं कला की दृष्टि से बहुत विकसित नहीं होती हैं। अविकसित कला से उनका अभिप्राय है छन्द और अलंकार विधान इत्यादि का अभाव। लोक गाथा की भाव धारा काव्यात्मक बनाने के पहले ही कलात्मक रहती है, गाने के पहले ही उसमें संगीतात्मकता रहती है।" [118]

"लोक गाथा एक मौखिक साहित्य है। अत: उसकी काव्य सामग्री संतरण शील होती है। महाकाव्य लिखित साहित्य है। अत: उनका रूप स्थिर होता है। लोकगाथाएं आशुकवित्व, परिवर्तन और परिवर्तन की विशेषता लिए रहती है तथा महाकाव्य में लोकगाथाओं के संतरण शील काव्य सामग्री का उद्देश्य पूर्ण प्रयोग रहता है। लोकगाथाओं में अनलंकृत एवं सहज सौंदर्य होता है और महाकाव्य में अलंकृत पांडित्य प्रदर्शन होता है।" [119]

पंडवानी मौखिक परम्परा द्वारा प्रचलित लोकगाथा है। विभिन्न गायकों द्वारा मुखान्तरित होती रहती है, इसमें स्थिरता नहीं है। अत: परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रहती है। फलस्वरूप व्यक्ति विशेष का प्रभाव न पड़कर यह सामूहिक अभिव्यक्ति का स्वरूप धारण करती है।इसलिए शास्त्रीय साहित्यिक मानदंडों का अभाव है। शिष्ट और लोक का यही भेद है।"कविता में अलंकारों की प्रयासपूर्ण समुचित योजना उपलब्ध रहती है, परंतु लोकगीतों में उसका नितांत अभाव रहता है। लोकगीतकार गीत निर्माण के समय केवल भाव प्रेरणा से उद्वेलित होता है, भाषा, छन्द, अलंकार पर उसका किंचित भी ध्यान नहीं रहता है।" [120] वास्तव में लोक साहित्य के प्रत्येक अंग में साहित्य का अभाव रहता है। इसका सबसे बड़ा प्रमुख कारण है कि यह साहित्य ग्रामीण जनता में निवास करता है, साथ ही मौखिक परम्परा का अनुगामी है। ग्रामीण जनता साहित्य शब्द से परिचित नहीं रहती। वे काव्य, कला, रस, अलंकार एवं छंद से अनभिज्ञ है। अतएव लोक साहित्य में साहित्यिकता का अभाव एक प्रमुख विशेषता है। [121]

लोक साहित्य निरलंकारिक होता है। लोक साहित्य में भावों की प्रधानता होती है। यदि कला पक्ष की दृष्टि से किंचित अलंकारिक है तो वह निष्चेष्ट है। लोक साहित्य में यदि अलंकार की योजना दृष्टि गोचर होती है, तो वह बदल भी सकती है उसमें स्थायित्व नहीं होता। मौखिक रूप से व्यवहृत लोक साहित्य में शिष्ट साहित्य का गुण अत्प्रत्यासित होता है, पंडवानी इसका उदाहरण है। भाव पक्ष व कला पक्ष की दृष्टि से पंडवानी में शिथिलता है पर अनुपलब्धता नहीं। पंडवानी लोक महाकाव्योत्कर्ष की संभावनाओं से शोभित है।

लोक साहित्य के छंद -

साहित्य में अभिव्यक्ति के दो रूप मिलते हैं, गद्य और पद्य। गद्य वर्णमात्रा, गति और यति नियमों से मुक्त होतें हैं, जबकि पद्य के लिए ये अनिवार्य हैं। वर्णमात्रा, गति और यति की अनिवार्यता ही छन्द है। सम्पूर्ण सृष्टि का प्रत्येक अणु छन्दोबद्ध है। सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, रात-दिन, ऋतु सभी गति के आधीन हैं। गति की निरन्तरता ही छन्द है। काव्य क्षेत्र में छन्द योजना अत्यंत प्राचीन है। युग और प्रवृत्तियों के अनुसार इसमें परिवर्तन और परिवर्धन होता रहा है। छन्द का अर्थ है आल्हादन। अर्थात जो आह्लादित करे। [122]

काव्य में आल्हादमयी सम्मोहनी शक्ति का उद्‌भावक छन्द है। छन्दों के अभाव में काव्यरस माधुर्यहीन हो जाता है। आचार्य भरतमुनि के अनुसार संपूर्ण वाङ्मय

छन्दयुक्त है। ''छन्दों में काव्य का अमरत्व निहित रहता है कविता की मुख्य विशेषता है रमणीयता जिसकी रक्षा का सहायक तत्व छन्द है।'' 123 जिस प्रकार एक सरिता को सुनिश्चित एवं सुव्यवस्थित प्रवाह के लिए पुलिनों का बंधन आवश्यक है। उसी प्रकार कविता की कोमलता, सरसता एवं सजीवता की रक्षा के लिए छन्दों का नियंत्रण अनिवार्य है। किन्तु प्रगतिशील चिंतकों ने युग-युग की छंद बाधित कविता के उद्धार की चेष्टा करते कहा है - ''मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्य की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना है। [124]

कवि सुमित्रानंदन पंत ने भी ऐसा ही आह्वान किया -

''छन्द बंध ध्रुव तोड़- फोड़ कर पर्वतकारा।
अचल रूढ़ियों की कवि तेरी कविता धारा॥ ''

छन्द के दो भेद है (1)वार्णिक छन्द -जिसमें वर्णों का क्रम और स्थान आदि नियम नियंत्रित होते हैं और (2) मात्रिक छन्द जिसमें वर्ण -गणना की ओर ध्यान न देकर मात्राओं की संख़्या पर विचार किया जाता है। इनकी गणना ह्स्व या लघु स्वर (अ,इ,उ) और दीर्घ या गुरू स्वर (आ,ई,ऊ) के आधार पर की जाती है। एक प्रकार से यह उच्चारण की समय सीमा का निर्धारण है।

महाभारत छंद -विधान से परिपूर्ण है। इसमें ''अनुष्टुप'' छन्दों की व्यापकता है। संस्कृत साहित्य के अंतर्गत छंद -व्यंजना और छन्द में एक सामंजस्य पाया जाता है, किन्तु पंडवानी लोकगाथा में उपरोक्त छन्द शास्त्र का पालन नहीं होता। ''बैलेड'' काव्य में छन्द एक विशेष प्रकार की होती है, छोटी पंक्तियों के छन्द तथा ऐसे छंद जिसमें प्रचुर-प्रवाह होता है, इस प्रकार की रचना के लिए उपयुक्त होते हैं। लगभग चार चार पंक्तियों के समूह अर्थात ''स्टैंजा'' होते हैं जिनके सहारे कथानक अबाध गति से अग्रसर होता है। कई तोड़ होते हैं और प्रत्येक तोड़ के बाद कुछ पंक्तियां दुहराई जाती हैं। [125]

लोक साहित्य का स्वछन्द प्रवाह नियमों से बाधित नहीं होता, अपितु हृदय की यह भाव धारा मुक्त रूप से प्रवाह होती है।पंडवानी में छन्द विधान की परम्परा नहीं मिलती। पंडवानी के जितने भी गायक हैं प्राय : उनकी गायन शैली भी उतनी ही अलग -अलग है । एक ही पंडवानी गायक के गायन की गायन शैली में ही मात्राओं की अनिश्चितता बनी रहती है, तब तो अलग -अलग पंडवानी गायकों में यह अनिश्चितता सहज संभावित है। कुछ उदारहरण दृष्टव्य है -

ऽ। ऽ। ।ऽ।।।ऽ।।ऽ।।।ऽऽ

(1) आगे आगे ये मोहन ग पाछे अर्जुन चले राजा = 25

ऽ।।।। ।।।।ऽऽ।।।ऽऽ। ।ऽ। ऽऽ

मोर चटक -चटक भईया ये खडऊवा ल बजावे भाई रे 30

ऽ। ।।ऽ ऽऽ।। ।।।।ऽऽ।

नीचे मे गंगा बोहावत हवय ये भाई रे =24

। ऽ ऽ।।ऽ ।।ऽ। ।।

देवी सोहदरा असनांदे करे।[126] =16

पद्म श्री तीज़न बाई के गायन में उपरोक्त चारों चरणों में मात्राओं में असमानता है।

ऽ। ऽ। ।ऽ।। ।ऽऽ।। ।। ऽ। ऽ।

(2) मोर बीरे दुशासन दऊडावत हवै मोर भाई = 24

ऽ।।।। ।ऽ। ।।।।।ऽ। ऽऽ

मोर दऊडे के बाल पकडय ग मोर भाई = 23

ऽ।। ।।ऽ ।।।ऽ ऽ ऽ ऽ।।।ऽ

अंधरी -कनवी अॅव बेटी मोला भीख दे दव = 24

।।।ऽ।। ।ऽ ऽ।।।।।

पुत्र ल दान में दें तैं श्राप झन देबे।[127] =17

कुमारी ऋतु वर्मा प्रस्तुत उपरोक्तांश में भी मात्राओं की असमानता स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

ऽ।ऽ ऽऽ।।।।।।।

(3) अंधवा राजा हर देखे हवय = 16

।ऽ ऽ ऽ।।।।ऽऽ।। ऽ

खुसीयाली में न बड़े आनंद से ओ = 19

।।ऽ।।।ऽ। ऽ।।। ऽ।ऽऽ ऽ

तब सुंदर बेटा ल पाये ये दे पाये भाई जी = 24

।।।ऽ।। । ।।। ऽऽ ।।।।

तब कुरूपति के जनम ओही देश में न। [128] = 19

शांतिबाई चेलक द्वारा गाये उपरोक्त पंडवानी अंश में भी मात्राओं की असमानता है।

ऽ ऽ। । ।ऽ । ।। ।।। ऽऽ

(4) तो हाथे में चिता ल रच्च लेहव भाई = 19

। ऽ । । । । । । ऽ।।। ऽ।ऽ।

चिता म जल के मर जाहंव ग मोर भाई = 20

x x x

।।ऽऽ।। ।ऽ ।। ऽऽ

चन्द्रमा पुत्र बुद्ध कर नामा = 16

।ऽ ।।। ऽ। । ।। ऽ ऽ

सदा करवँ फाटक कर कामा।[129] = 16

श्री झाडूराम देवांगन द्वारा उपरोक्त पंडवानी के अंश प्रथम दो चरणों में मात्राओं की असमानता है जबकि नीचे के दो चरणों में समानता है। मात्राओं में समानता का कारण यह कि अंतिम दो पंक्तियाँ श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत से उद्धृत है।

।। । ।ऽ। । ऽ।। ।। ।ऽऽ ऽ।

(5) रथ में सवार ग होवन लगे भईया मोर = 22

ऽ ऽ। । ऽ। । ।।।। । ऽऽ

घोड़ा के लगाम ल धरन लगे भाई = 19

ऽ । । ऽ। । ।।। ।। ।ऽऽ ऽ।

चाबुक हाथ में धरन लगे भईया मोर = 21

ऽ । । ऽ। । ।।। ।। ऽऽ

चाबुक हाथ में धरन लगे भाई।[130] = 17

श्री पूनाराम निषाद द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त अंश के चारों चरणों में मात्राओं की संख्या असमान है।

। ऽ ।। ऽ ऽ। ऽ ।। ।ऽ ।। । ऽऽ

(6) अगा तब तो सारथी रख चलावय ग भाई = 24

। ऽ ऽ।ऽ।ऽ ।। । ऽ।। ऽऽ

अगा बीरे सारथी रथ चलावय भाई = 22

। ऽ ।।। ।ऽ।।। ।।। । । । ऽऽ

अगा पवन समान रथ चलय ग ये ग भाई।[131] = 22

श्री खम्हन लाल अस्तुरे के गायन में अंतिम दो चरणों में मात्राओं की समानता है। अत: कोई निश्चित मानक नहीं बनता।

उपरोक्त अंशों में मात्राओं की साम्यता नहीं दिखती। पंडवानी गायक कथांशों को कभी दो चरणों में, कभी चार चरणों में गाता है। कहीं-कहीं आधे चरण को गाने के पश्चात् कथा को गद्यात्मक शैली में प्रस्तुत करता है। मात्राओं के घट-बढ़ को वह अपने लय के द्वारा पूरी करता है। यह लोक गायक की अपनी विशेषता है।मात्राओं के घट-बढ़ के बाद भी कहीं कोई स्वर-बाधा नहीं होती। पंडवानी विभिन्न लोक धुनों में पिरो कर प्रस्तुत की जाती है। अतएव गायकी में मात्राओं की समानता संभव भी नहीं है।

"लोकगीतों में छन्दों के निश्चित विधान का अभाव है। कहीं-कहीं छन्दों का समावेश लक्षित भी होता है तो वहाँ नियमों की शिथिलता रहती है। लोक गीतों में कुछ ऐसे छन्दों का प्रयोग होता है जो वर्णिक एवं मात्रिक छन्दों के अन्तर्गत नहीं आते। केवल लय पर आश्रित होकर चलते हैं।" [132] डॉ. विनय कुमार पाठक ने पंडवानी में प्रयुक्त छंद को पंडवानी छन्द। [133] कहकर पंडवानी छन्द में शिष्ट काव्य रचना की आवश्यकता प्रतिपादित की है।

चूंकि छंद विशेष में मात्राओं, गति, यति का निश्चित विधान होता है। इसके विपरीत पंडवानी में प्रयुक्त चरणों में मात्राओं की अनिश्चितता है। अत: इसे पंडवानी छन्द कहना उपयुक्त नहीं लगता। श्री जीवन यदु ने पंडवानी में प्रयुक्त लोक छन्द को छन्द के स्थान पर "लोक लय" [134] की संज्ञा दी है। इस दृष्टि से भी हम इस पर विचार करें तो भी यह उचित नहीं जान पड़ता। यदि इसे लोक लय कहें तो लय की समानता नहीं दिखती , क्योंकि प्रत्येक पंडवानी गायक की अलग -अलग गायन शैली है। फलस्वरूप स्वर के आरोह और अवरोह में भिन्नता दिखाई पडती है। गायन शैली के अनुसार लय में खींचतान (घट-बढ़) होती रहती है। चूंकि लोक छन्द का कोई शास्त्रीय विधान नहीं है। पंडवानी में प्रयुक्त छन्द को उसकी अनिश्चित, असमानता और मात्राओं की विभिन्नता के कारण "लोक छन्द"ही कहना ज्यादा सार्थक होगा।

पंडवानी गायन में लोक छन्द के अतिरिक्त छंद विधान के अनुसार कहीं-कहीं विभिन्न छन्दों का सम्मिश्रण देखने को मिलता है। ये दोहा, चौपाई और सोरठा के रूप में पंडवानी गायन में सम्मिलित है। पंडवानी गायक इन दोहों को श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत से उद्घृत करते हैं। चूंकि यह लिखित महाकाव्य है और व्यक्ति विशेष की कृति है। अतएव इसमें छन्द-विधान के अनुसार छन्दों की रचना हुई है। अधिकतर इन छन्दों का प्रयोग वेदमती शैली के गायक ही करते हें। ये छन्द आयातीत हैं -

दोहा -

"रघुपति चरण मनाई के, व्यास देव धरि ध्यान।
आदिपर्व भाषा रचेऊ, सबल सिंह चौहान ॥" [135]

x x x

"ये कुन्ती के पुत्र कहाववं अर्जुन हे मम नाम।
धर्मराज के भ्रात कहावऊ करवँ में संग्राम ॥" [136]

चौपाई -

"काको पुत्र काको जगनाती
यह संसार सपन कर साथी।

x x x

चन्द्रमा पुत्र बुद्ध कर नामा,
सदा करवं फाटक कर कामा ॥" [137]

x x x

"नाना चरित्र विधि कर कीन्हा,
मार असुर सूर सुख दीन्हा।

x x x

बाम अंग भीम तब कीन्हा,
लगे बान टूटन मह कीन्हा।" [138]

सोरठा -

"आवहिं विपुल नरेश, जीते प्रथमहिं पांडु जे।
करहिं विनय उपदेश, देहि दंड मति दृग सुतहिं ॥"

पंडवानी में लोक छन्द का निर्वाह हुआ है, जिसमें मन का भाव है रचना की कृत्रिमता नहीं। पंडित रामनरेश त्रिपाठी का यह कथन कि -" ग्राम गीत और महाकाव्यों की कविता में अंतर है। ग्राम गीत हृदय का धन है, और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्राम गीत में रस है, महाकाव्य में अलंकार। रस स्वाभाविक है और अलंकार मानव निर्मित .... ग्राम गीत प्रकृति के उद्‌गार हैं, इनमें अलंकार नहीं केवल रस है, छन्द नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है।" [139] पंडवानी पर पूर्णत: प्रतिफलित होता है। पंडवानी में उपलब्ध छन्दों का कोई निश्चित मानक या स्वरूप नहीं है। अतएव पंडवानी के छन्दों को शास्त्रीय विधान से परे "लोक छन्द" की श्रेणी में ही रखना उचित

होगा।

प्रतीक योजना और बिम्ब विधान

कोई वस्तु बाहर से जैसी दिखती है, यह आवश्यक नहीं कि वह वैसी ही है। यदि है भी तो उसके गूढ़ को समझने के लिए उसके अंतर में जाना होगा। जिस प्रकार से फल के बाह्य रूप को ही देखकर उसके आस्वाद का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसके लिए उसके आंतरिक भाग की अनुभूति आवश्यक है। फल में जिस प्रकार बीज छुपा रहता है। उसी प्रकार विचार तत्व काव्य में छिपे होते हैं। काव्य को सरसरी निगाह से देखकर या पढ़कर उसकी गहराई में नहीं पहुँचा जा सकता। कविता उपर से जैसी दिखती है वास्तव में वह आंतरिक रूप से भिन्न होती है। कविता के विचारों को उनके भावों को ग्रहण करने के लिए उसकी अंत: स्थिति को समझना आवश्यक है। काव्य के बाह्य रूप को तोड़कर ही प्रतीक और बिम्बों के माध्यम से उसकी आंतरिक भावनाओं तक पहुँचा जा सकता है। प्रतीकों और बिम्बों को समझे बिना कविता कविता नहीं निरर्थक शबदों का समूह होगी।

"प्रतीक और बिम्ब एक तरह के संकेत होते हैं।"[140] शब्द संकेत का एक माध्यम है। साहित्य के संदर्भ में शब्द ही संकेत का कार्य करते हैं। क्योंकि मानव संस्कृति के सर्वाधिक महत्वपूर्ण याद्दच्छिक संकेत हैं "शब्द"। वस्तुएँ और घटनाएं तो सदा मनुष्य के वश में नहीं होती और उनसे स्वतंत्रतापूर्वक अपनी इच्छानुसार काम नहीं ले सकता, किन्तु शब्द अर्थात् वे संकेत जिनसे हम उन्हें नामोदिष्ट करते हैं हमारी इच्छा द्वारा शासित होते हैं। उनके अनुसार अर्थमय श्रृंखलाओं, वाक्यों में पिरोये जाते हैं।"[141] शब्द संकेत के बिना ऐसी वस्तु को जिसे हमने पहले कभी देखा नहीं या जिसके बारे में पूरी तरह अनभिज्ञ हैं, को जान नहीं सकते। इसके लिए संकेत ही पहचान का कार्य करते हैं। "वास्तविकता का बोध हम संकल्पनाओं, बिम्बों और प्रतीकों की भाषा में पा सकते हैं। संकल्पनाओं की भाषा विज्ञान का उपकरण है। बिम्बों की भाषा ललित साहित्य का प्रतीकों की भाषा मिथकों का। किन्तु बात तब तक सही है जब तक कि हमारा अभिप्राय केवल संकल्पनाओं केवल बिम्बों या प्रतीकों के रूप में चिंतन से है - ऐसा चिंतन तो वास्तविकता में होता नहीं। ललित साहित्य के सृजन में संकल्पनाओं और प्रतीकों की भाषा के बिना काम नहीं चल सकता, बिम्ब के बिना मिथक अकल्पनीय है, जहाँ तक प्रतीक का सवाल है, ललित साहित्य विशेषत: काव्य में उसका स्थान तो है ही, विज्ञान में भी वह विद्यमान होता है। बेशक, वह यहाँ दत्त ज्ञान क्षेत्र के लिए अपना विशिष्ट रूप पा लेता है - गणित के चिन्हों और रसायन के सूत्रों आदि का।"[142]

मुखौटों का प्रयोग विश्व के प्रायः सभी देशों में किया जाता है। यह भी एक प्रकार का यादृच्छिक संकेत है।अलग-अलग समुदायों में इनका प्रयोग भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए होता है। डराने-धमकाने से मनोरंजन तक के लिए। मुखौटा एक शब्द है, लेकिन उसके संकेत और उद्देश्य अनेक हैं।

शब्दों ये किसी जानी-पहचानी वस्तु के आकार-प्रकार की कल्पना उसका बिम्ब हमारे मनोमस्तिष्क पर उभरता है। श्री जीवन यदु ने अपने शोध प्रबंध में इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि - "शब्दों में निहित संकेत अपनी संस्कृति और अपनी परम्परा से प्राप्त होते हैं। एक संस्कृति और परम्परा के शब्द संकेत हमें दूसरी संस्कृति और परम्परा में नहीं मिल सकते। यदि हम "मूर्तिपूजा" की परम्परा पर विचार करते हैं, तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मूर्तियों से पहले बेडौल पाषाण खण्डों की पूजा होती थी। कलात्मक मूर्ति हो या बेडौल पाषाण खंड ये दोनों सूक्ष्म को स्थूल में बदलने का परिणाम है। वे दोनों ही अदृश्य शक्ति की ओर संकेत करते हैं और वे ईश्वर के प्रतीक बन जाते हैं। अब हम मूर्ति शब्द, जो कि दोनों की पहचान है को ही लें तो एक अर्थ ईश्वरीय सत्ता का प्रतीक निकलता है , तो दूसरा अर्थ निकलता है एक ही स्थान पर स्थिर रहने वाला। मूर्ति शब्द का प्रयोग देखते ही हमारी चेतना में दोनों ही अर्थ गूंजते हैं और संश्लिष्ट विचारों को पकड़ने की कोशिश करते हैं।" [143]

एक प्रतीक का सर्वत्र समान आशय हो यह कतई आवश्यक नहीं। प्रतीकों का अर्थ भिन्न-भिन्न विषयों, स्थानों व संदर्भों में भिन्न होता है। (+) गणित में जोड़ का प्रतीक है जो कि निश्चित संकेत देता है। जबकि साहित्य में एक ही प्रतीक भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रतिध्वनित होता है। प्रतीक अपने संदर्भ से जुड़कर ही अर्थवान हो सकता है, संदर्भ से परे वह निष्प्राण व निष्प्रभावी मालूम पड़ेगा। इसके लिए आवश्यक होगा कि हम प्रतीकों के प्रयोजनार्थ उस समाज के संस्कारों, आचार-विचारों को समझें, जिसके लिए वह प्रयोग किया गया है। "प्रतीक कभी इतिहास को तो कभी संस्कृति और जन मान्यताओं को स्पर्श करता है, वह कभी सामाजिक, आर्थिक स्थितियों को छूता हुआ गुजरता है।" [144]

साहित्य में प्रतीक और बिम्ब दोनों रहते हैं , किन्तु "कला के अंतर्य में बिम्ब ही प्रमुख होता है।" [145] मानवीय अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में बिम्ब सहायक होते हैं। बिम्ब मनःस्थितियों के सजीव चित्र होते हैं। बिम्ब बाह्य सज्जा का पर्याय नहीं होते, उनमें अनुभूति या भाव की कांति झलमलाती है।" [146] बिम्ब को और अधिक स्पष्ट करते हुए डॉ. नागेन्द्र कहते हैं कि - "काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा

निर्मित एक ऐसी मानस छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा होती है।"[147] बिम्ब काव्य में अलंकारों की तरह बाह्य -सज्जा के लिए प्रस्तुत नहीं होते अपितु वह मानस प्रतीति का समर्थ और सशक्त माध्यम है। "काव्य-बिम्ब वस्तुत: एक प्रकार की मानस प्रतीति है। प्रतीति काल में वह अधिक से अधिक कवि के रागात्मक अनुबंधों पर आधारित होने के कारण अपने साथ एक व्यापक संदर्भ लिए हुए रहता है। उस तल तक पहुंचने के लिए उस संदर्भ का ज्ञान आवश्यक है। बिम्ब बोध इंद्रीय आधार प्रमुख होता है।"[148] संदर्भ ज्ञान न होने पर बिम्ब अन्यार्थ प्रकट करता है। काव्य में बिम्ब तीन रूपों में प्राप्त होते हैं -

(अ) शब्द बिम्ब - जो प्रतीकात्मक और गहरे होते हैं जहां बिम्ब केवल शब्द से ही उभरता है। ये बिम्ब काफी गहरे और विस्तृत होते हैं जो "कृतियों में शब्द ही हमारी पकड़ में आते हैं लेकिन शब्द अपने में लेखक या कवि की संपूर्ण मानसिकता और परिवेश के साथ संबंधों और संघर्षों के स्वरूप को समेटे रहते हैं।"[149]

(ब) वाक्य बिम्ब - जिसमें अनेक शब्दों के माध्यम से पूरे वाक्य में परिवेश को उभारने की कोशिश होती है।

(स) छन्द बिम्ब - जो चित्रात्मक होते हैं किन्तु स्थूल रूप में सहजता के साथ प्रयुक्त होते हैं उन्हें छन्द बिम्ब कहते हैं।शिष्ट साहित्य की तरह लोक साहित्य में भी प्रतीक योजना और बिम्ब विधान मिलते हैं। पंडवानी लोकमानस की अनुभूति और उसकी प्रतीति है। पंडवानी में प्रतीक और बिम्ब प्रचुर मात्रा में है।

आदिमानव जीवन के प्रतीक और बिम्ब -

मानव विकास की यात्रा के साथ उसकी संस्कृति भी प्रभावित होती रही है । विकास की दौड़ में हम कितना भी आगे निकल जायें। लेकिन , अपने संस्कारों को इतनी जल्दी छोड़ नहीं सकते। कुछ अंशों में सही पर संस्कारों से हम सम्पृक्त रहेंगे उससे अलग नहीं हो सकते। उन संस्कारों की पहचान हम भले ही न कर सकें, किन्तु वे हमारे जीवन में अवश्य शामिल रहते हैं। आज हम जो सुसंस्कृत कहलाते हैं ,उसका आधार संस्कार ही है। संस्कृति का यह सलोना स्वरूप लोक संस्कृति में आज भी विद्‌यमान है। लोक जीवन में यह पूरी तरह जीवित दिखाई पड़ती है।

सुदूर वन प्रांतों में रहने वाली जन -जातियों में आज भी आदिम जीवन का स्वरूप पूरी तरह अक्षुण्य है। वे लोग जो गांव में रहकर गांव के ही हैं, इस संस्कार से कतई अलग नहीं है। वे आदिम जीवन और संस्कति के बहुत करीब नहीं तो बहुत दूर भी नहीं हैं। आदिम जीवन के अवशेष जहॉ जीवित हैं वहॉ ये अवशेष सुसभ्य जीवन के

भीतर दिल की तरह धड़क रहा है। वे गांव जो वनों के करीब हैं वे आदिम जीवन व सभ्यताओं से अप्रभावित नहीं रह सकते। दरअसल लोक संस्कृति ही आदिम संस्कृति को संरक्षित और सुव्यवथित रखी हुई है। पंडवानी हमारी लोक संस्कृति का अक्षय कोष है, जिसमें आदिम जीवन के रंग विभिन्न प्रतीकों और बिम्बों केमाध्यम से मिलते हैं।

जंगल आदिम जीवन का आधारभूत तत्व है। आदिम जीवन पूरी तरह प्रकृति पर निर्भर रहता है। आज भी अप्रत्यक्ष रूप से जंगल के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। आदिम जाति के लोग जंगल मे रहते और पूरी तरह से जंगल पर ही आश्रित होते हैं चाहे वह आवास हो या भोजन। पांडवों के जीवन का बहुत बड़ा भाग जंगल में ही बीता, वे पूरी तरह जंगल पर आश्रित थे। लाखाभवन की आग से बच निकलकर वे जंगल-जंगल भटकते रहे। दिन भर जंगल में भटकते और रात वृक्षों के साये में सोते -

"पहिली नजर लमा के देखन लागे भईया
पांचे ग मूर्ति दिखत हवे ग मोर भाई।
अह ऽऽ पाँच मूर्ति दिखत हे। पेड़ के छँईहा म में सूते।" [150]

पेड़ों की छाया में सोते, जंगल-जंगल भटकना दीनता और अभावग्रस्तता का प्रतीक है। पांडव राजा होकर भी दीन-हीन थे, अभावग्रस्त थे, क्योंकि दुर्योधन के छल और उसकी चालाकी ने उन्हें आदिम जीवन जीने के लिए बाध्य कर दिया था, जिसे वे जानकर भी नियति के सामने दीन बने थे। अभावग्रस्त वनवासियों की तरह तुमड़ी लेकर जंगल-जंगल पानी की तलाश में घूमते-फिरते हैं -

"भीम जावन लागे भाई
पानी बर तुमड़ी धर जावन लागे।"

भीम का पानी के लिए भटकना आदिम जीवन की निरीहता का प्रतीक है। "एक प्रतीकात्मक शब्द अनेक स्तरों पर अपना कार्य करता है और अनेक प्रकार के भाव और मानसिक चित्र उत्पन्न करता है। प्रयास करने पर भी प्रतीकों के सम्पूर्ण अर्थ को हम शब्दों में प्रकट नहीं कर सकते, वह तो अनुभव का विषय ही बन सकता है। प्रतीक में सूक्ष्म निर्देशन की जो शक्ति निहित है उसकी कोई सीमा नहीं।" [151]

पांडव वनवास के समय "करूहा कांदा" खाकर अपना समय व्यतीत करते हैं। "करूहा कांदा" एक प्रकार का जंगली कंद है, जिसे वनवासी लोग खाकर अपना जीवन-यापन करते हैं। द्रौपदी द्वारा दुर्वासा मुनि व उसके दस हजार शिष्यों को भोजन न दे पाने की स्थिति में द्रौपदी की असमर्थता पर श्री कृष्ण द्वारा अक्षय-पात्र से भाजी का

एक पत्ता खाना आदिम जीवन का प्रतीकात्मक चित्रण है। अक्षय-पात्र से तो मन-वांछित भोजन प्राप्त किया जा सकता था, किन्तु अक्षय-पात्र में भाजी के पत्ते का चिपका रहना इस बात का संकेत करता है कि पांडव खीर-पुड़ी, मालपुआ न खाकर भाजी ही खाते थे। "भाजी" उस निरीहता व दीनता का बिम्ब प्रस्तुत करती है , जो आदिवासियों के जीवन में होती है। यह बिम्ब हमारे सम्मुख आदिम जीवन की विवशता को रूपायित करता है।

कृषक जीवन के प्रतीक और बिम्ब

कृषि लोक जीवन का आधारभूत कार्य है। आदिम जीवन परिवर्तन की प्रक्रियाओं से गुजरता हुआ कृषक जीवन में तब्दील हुआ। आदिम जीवन में "हमारे सुदूर पूर्वज कंदमूल बटोरते और आखेट करते थे। हाथ में डंडा लिए वे वनों, मैदानों, अर्ध रेगिस्तानों और शायद रेगिस्तानों में भी घूमते फिरते थे। उन्हें सैकड़ों भक्ष्य फलों और सब्जियों, घास-पात और कंद-मूलों के गुण और लक्षण याद होते थे।" [152] आदिम जीवन पूरी तरह जंगल और प्रकृति पर आश्रित होता है। आदिम जीवन का "कृषि की ओर संक्रमण क्रमिक ही था। आरंभ में लोग स्वत: उगने वाली फसलों की रक्षा करते थे - अनाज जब पक रहा होता तो चिड़ियों को उड़ाते थे, वन्य जन्तुओं के झुंडो को खेतों में आने नहीं देते थे, कभी-कभी सोच-समझकर फसल का एक भाग काटे बिना रहने देते थे, ताकि अगले साल अनाज फिर से स्वत: उग आए। समय-समय पर सूखा भी पड़ता था, जब धरती पत्थर बन जाती थी और उस पर गिरने वाले बीजों को ग्रहण नहीं करती थी। यह देखते हुए अंतत: लोगों के मन में यह विचार आया कि जमीन की गुड़ाई करनी चाहिए। ... धीरे-धीरे कदम-दर कदम अनेक पीढ़ियों के जीवन काल के दौरान कृषि की उत्पत्ति हुई। सैकड़ों छोटी-बड़ी खोजें हुई और तब कहीं जाकर जंगली-फल व कंद-मूल बटोरने वाले की छड़ी फावड़ा बन गयी और स्वयं संग्रहकर्ता किसान बन गया।" [153] आदिम जीवन से क्रमिक विकास करता मानव कृषक जीवन में प्रवेश किया। तब से कृषक-समाज लोक जीवन का अभिन्न अंग है और यही लोक जीवन का प्रारंभ भी है।

पंडवानी में कृषक-जीवन के कई प्रसंग आते हैं। इन प्रसंगों में विभिन्न प्रतीकों व बिम्बों के माध्यम से कृषक-जीवन की झांकी दिखाई पड़ती है। भीम माता कुंती के कहने पर ब्राम्हण परिवार के रक्षार्थ बकासुर के लिए भैंसा गाड़ी में लाद कर भोजन ले जाता है -

"धीरे ग धीरे गाड़ा रेंगन लागय भाई
दानों मारे बर भीम चलन लगय भाई

बेटा भीम लाला येदे जावय भाई
बड़ गा आनंद मनावन लागे भाई
चारा खोजे बर दानो गए हवय भाई
गाड़ा ग रेंगत-रेंगत चले भाई
भीम धूरा ल टेका दिस भईसा ल ढील के खेदे।" [154]

भईसा गाड़ा कृषक जीवन का प्रतीक है। कृषक अपने कृषि कार्य में भैसा गाड़ा का प्रयोग करता है। हल चलाने में , फ़सलों को लाने -ले जाने में वह बहुतायत रूप से भैंसा को जोतता है। कृषि में भैंस शक्ति का प्रतीक है । भैंसा गाडी से कृषक जीवन का बिम्ब उभरता है । जिससे आम कृषक का चित्र हमारे मनोमस्तिष्क पर अंकित हो जाता है।

महाभारत युद्ध के लिए मैदान की तैयारी के संबंध में जो प्रसंग आता है, वह कृषक जीवन को प्रतिबिम्बित करता है। "जिरजोधन अपन संग म सेनापति मन ल धरके युद्ध के मैदान खोजे बर गीस। एक जघा भांठा म किसान अऊ ओखर बेटा नांगर जोतत रिहिस।ततके बेर किसान के बेटा ल भांठा डोमी चाब दिस। मुंह डाहर ले गाजा फ़ेंकन लगिस, देह करियागे, परान छुटगे। किसान रोइस , न गईस। बेटा के लास ल तिरिया के फ़ेर नांगर जोतन लगिस।" [155] नांगर (हल) का नाम आते ही हमारी आंखों के सामने कृषक का बिम्ब उभरता है। नांगर कृषक की कलम है। जिसके माध्यम से वह धरती पर अपने कर्मो की गीता लिखता है जो जन कल्याण का प्रतीक है । उपरोक्त उद्धरण में "भांठा शब्द" का उल्लेख आया है। "भांठा" का आशय बंजर धरती है। भांठा जमीन बडी सख़्त होती है। पानी उपर ही उपर बह जाता है। पानी सोंखने की क्षमता उसमें नहीं होती। इसलिए वह अनुत्पादक निरस और उजाड़ होती है। ऐसी जमीन बेकार पड़ी रहती है । धरती तो माँ होती है।उसका हृदय ममता से भरा होता है तभी तो वह फसल उगाती है, किन्तु भांठा जमीन निरसता और निर्दयता की प्रतीक है। जिसके हृदय में किसी के लिए मोह-ममता नहीं। शायद इसी निर्दयता के वशीभूत हो निर्दयी दुर्योधन ने युद्धं भूमि के लिए भांठा भूमि का चयन किया। युद्ध में भी कहाँ किसी को किसी के लिए ममता होती है। निर्दयी होकर ही युद्ध किया जा सकता है। मोहग्रस्त होकर तो अर्जुन ने अपना गांडीव ही फेंक दिया था।

पंडवानी में गौपालन का अनेक प्रसगों में उल्लेख मिलता है, गोपालन कृषक-जीवन का ही अंग है। अपने कृषि कार्यों के लिए बैल, गोबर आदि वह गायों से ही प्राप्त करता है। इस तरह पंडवानी में कृषक जीवन के अनेक बिम्ब और प्रतीक चित्रित हुए हैं।

श्रमिक जीवन के प्रतीक और बिम्ब -

श्रमिक का आशय उस मेहनतकश इंसान से है जो श्रम कर अपना व अपने परिवार का भरण-पोषण करता है। श्रम ही साध्य है और आराध्य भी। श्रमिक केवल श्रमिक नहीं है वह कला का जन्मदाता भी है। श्रम में संलग्न श्रमिक के ही कंठ से गीत फूटते हैं। श्रमिक की लयात्मक गति ही कला को जन्म देती है। श्रम ने कला को जन्म दिया और कला ने श्रम को अलंकृत किया। [156] पंडवानी श्रमिक और कृषक वर्ग की सामूहिक अभिव्यक्ति है। यह पहले भी उल्लेख किया जा चुका है कि पंडवानी गायक कृषक और श्रमिक ही होते हैं। अत: पंडवानी में श्रमिक जीवन के प्रतीक और बिम्ब सहज रूप से मिलते हैं।

"नौ लाख ग ओड़िया रे ओड़निन लाय
अगा गुफा खोदे बर ग कइसे बलावय न
अगा सुन्दर गुफा बनावन लागे न"

नौ लाख ओड़िया और नौ लाख ओड़निन बलाके विश्वकर्मा गुफा तैयार करके, भवन बनाके धृतराष्ट्र पास पहुँचगे। [157]

लाखा गृह के निर्माण के समय पांडव की सुरक्षा की दृष्टि से विदुर सुरंग का निर्माण करवाते हैं। इसके लिए वे विश्वकर्मा से गुप्त रूप से निवेदन कर सुरंग-निर्माण में सफल होते हैं। विश्वकर्मा तो अपनी माया और प्रभाव से सुरंग निर्माण कर सकते थे, लेकिन नहीं ? पंडवानी गायक तो स्वयं श्रमिक है, कृषक है उसकी मानसिकता देखिए, श्रम के प्रति उसकी निष्ठा देखिए वह इस कार्य हेतु विश्वकर्मा के माध्यम से ओड़िया और ओड़निन श्रमिकों का उल्लेख करता है। उड़ीसा प्रांत से काम की तलाश में आने वाले ये उड़िया श्रमिक आज भी छत्तीसगढ़ में (विशेषकर रायपुर के आसपास) स्थायी रूप से बस गए हैं। ये उड़िया श्रमिक दीन-हीन अवस्था में झोपड़पट्टों में निवास करते हैं। पुरूष रिक्शा चलाते हैं स्त्रियां कृषि-फार्मों में कार्य करती हैं। मिट्टी खोदकर श्रम की पूजा करते ये श्रमिक आज भी निरीह अवस्था में है, सुख-सुविधाओं के स्रोत से वंचित। श्रमिक उड़िया हों या छत्तीसगढ़िया या विश्व के किसी भी भाग का, श्रम और श्रमिक सार्वभौमिक हैं। श्रम ही उसका साध्य है। श्रमिक जीवन की इस सार्वभौमिकता से पंडवानी अलग नहीं है। छत्तीसगढ़ की अन्य लोकगाथा दसमत कैना में भी ओड़िया श्रमिकों का उल्लेख मिलता है।जिसमें दुर्ग के ब्राम्हण राजा महमदेव श्रमिक ओड़नीन दसमत कैना के रूप-सौन्दर्य पर मोहित हो उससे विवाह करना चाहते हैं -

"नौ लाख ओड़िया मन बंधान कोड़े लागे

ओड़नीन माटी ल डोहार ....।
बइठे ग राजा कदम के छईहाँ म ब्राम्हन
राजा हे बिन ढोला म मारे
कइना ल गोटी म करिके खियाल ग .... ।। [158]

लाक्षागृह प्रसंग में ही घनिहा तेली की कथा आती है, जो घानी से तेल निकालते समय लाक्षागृह में लगी आग की लपटों को देखकर भाग जाता है। लाखा महल जब धधकन लगिस त उही परोस म एक झन घनिहा तेली राहय। उही बेरा ओहा घानी पेरत राहय। गाँव हो या शहर, कृषि हो या उद्योग श्रमिक के बिना कार्य संभव नहीं। शोषण के शिकार ये श्रमिक भले ही स्वयं सुविधा से वंचित हैं, किन्तु इन्हीं के श्रम के भरोसे लोगों का जीवन सुख-सुविधाओं से सिंचित है।

अज्ञातवास प्रसंग में पांडवों ने राजा विराट के यहाँ अपना अज्ञातवास व्यतीत किया।नितांत उन्होंने श्रमिकों का जीवन जीया। श्रम की रोटी खाई। कृषि हो, उद्योग हो या कला सबमें श्रम की महत्ता है। युधिष्ठिर हो या अर्जुन भले ही ये राजा थे किन्तु श्रम से मुख नहीं मोड़ा। भीमसेन ने रसोईया का कार्य किया। नकुल सहदेव अश्वपाल और गौ चरवाहा बन गए। राजरानी द्रौपदी ने सुदेष्णा की दासी बनकर श्रमिक का जीवन बिताया।ये सारे प्रसंग श्रमिक जीवन को अभिव्यक्त करते हैं। कृषक वर्ग और श्रमिक वर्ग से जुड़ी हुई आस-पास की चीजें भाषा में घुलमिल कर प्रतीकों की, बिम्बों की रचना करती हैं। ये प्रतीक और बिम्ब लोक जीवन की परिधि से बाहर नहीं है। इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले संस्कारों या संवेदनों की छाप मस्तिष्क में बनी रहती है, बिम्ब इसी छाप या इन्द्रिय संस्कार का आयनन (रिकॉल) करते हैं। [159]

पंडवानी में विभिन्न प्रतीकों एवं बिम्बों के माध्यम से लोक जीवन चित्रित हुआ है।ये अनारोपित, अनायास और अकृत्रिम हैं। लोक जीवन का सौन्दर्य, लोक संस्कृति की सुरभि से परिपूर्ण है। पंडवानी की प्रतीक योजना और उसका बिम्ब विधान, जिसके अंतर में भावों की प्रबलता है।

भाषा -सौन्दर्य

लोकोक्तियाँ (कहावतें)

लोकोक्तियाँ अद्‌भुत ज्ञान की भंडार हैं। लोकोक्तियाँ विश्व के समस्त जनसमुदाय के ज्ञान और परीक्षण को उनकी भाषा व बोली में प्रकट करती हैं। "यह मानव प्रकृति और उसके व्यवहारिक ज्ञान की द्योतक है, जो उसे उत्तराधिकार में सदैव

से प्राप्त होती चली आ रही है। दैनिक समस्याएं सुलझाने के ये अद्भुत साधन हैं। लोकोक्तियों के माध्यम से किसी देश की जनता की विचारधारा, ज्ञान और संस्कृति का सुगमता से पता लगाया जा सकता है। बड़े-बड़े विचारकों और सामाजिकों ने लोकोक्तियों से ही ज्ञान प्राप्त किया है।" [160] लोकोक्तियों के संबंध में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है कि - "कहावतें हमारी जातीय बुद्धिमत्ता के समुचित सूत्र हैं। शताब्दियों के निरीक्षण और अनुभव के बाद जीवन के विविध व्यवहारों में, हम जिस संतुलित स्थिति तक पहुंचते हैं, लोकोक्ति उसका संक्षिप्त सत्यात्मक परिचय हमें देती है।" [161]

लोकोक्तियों में लोक का अनुभव सिद्ध ज्ञान छिपा रहता है। जन मानस के वाणी-विलास में लोकोक्ति का अत्यधिक प्रचलन परिलक्षित होता है, ये उन्हें कंठस्थ होती हैं और सामान्य बोलचाल में सहज रूप से प्रयुक्त होती हैं। लोकोक्ति एक प्रकार से मानवीय ज्ञान का सूत्र है। मानव अपने जीवन काल में जिन सत्य तथ्यों से साक्षात्कार करता है, उन्हें लोकोक्ति के माध्यम से संक्षिप्त रूप में सूत्रबद्ध करता है। लोकोक्तियाँ देखने में भले ही छोटी लगती हैं , किन्तु ये शिक्षा, सिद्धांत, आचार, नीति व नियमों का विस्तृत रूप में प्रतिपादन करती हैं।

भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओं व बोलियों में लोकोक्ति के भिन्न-भिन्न नाम हैं। यथा हिन्दी में लोकोक्ति, संस्कृत में सुभाषित, उर्दू में जुबल मिस्ल, राजस्थानी में आखाणो, गढ़वाली में पखाणा, गुजराती में कहेवत, बंगला में प्रवाद, प्रवचन, मराठी में आणा, न्याय तेलगू में समीटा और छत्तीसगढ़ी में हाना।

लोकोक्तियों की परम्परा अत्यंत प्राचीन है।उपनिषदों में इसका बाहुल्य है। त्रिपिटक व जातक कथाओं में इसका प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है। संस्कृत में लोकोक्ति को सूक्ति या सुभाषित कहा जाता है। सुंदर नीति से कहा गया कथन ही सुभाषित है। सुष्ठुभाषितं सुभाषितं। लोकोक्तियाँ हमारे प्राचीन समय की ज्ञान-परम्परा पर प्रकाश डालती हैं। प्राचीन तथ्यों को धारण करने के अतिरिक्त लोकोक्तियों में समयुगीन अनुभव एवं व्यवहार सिद्ध ज्ञान भी जुड़ता रहता है। ये यथार्थ जीवन के धरातल पर उत्पन्न तथ्यों से निर्मित होती हैं। इनमें कल्पना या अवास्तविकता अंश मात्र भी नहीं होती।

छत्तीसगढ़ी में लोकोक्ति या कहावत को हाना कहा जाता है। छत्तीसगढ़ी लोक जीवन में हाना का प्रयोग भाषा व भावों में चमत्कार के साथ कथन को ग्राह्य व प्रभावोत्पादक बनाता है। हम देखते हैं कि एक सुसंस्कारित व शिक्षित व्यक्ति की अपेक्षा एक ग्रामीण अपनी ठेठ छत्तीसगढ़ी में बोलकर जन समुदाय को प्रभावित कर

बाजी मार ले जाता है, और हम मुँह ताकते रह जाते हैं। हानों का प्रयोग वह इतनी कुशलता व सहजता से करता है कि उसके कथन का अमिट प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। लोकोक्तियों की सृजन प्रक्रिया का कारण घटना विशेष ही होती है। जो घड़ा भरा नहीं होता वह चलने पर छलकता है और उसके छलकने पर आवाज होती है, किन्तु जो घड़ा भरा होता है वह छलकता नहीं, उसमें से कोई आवाज नहीं होती वह शांत होता है, उसका जल स्थिर रहता है। सिर पर घड़ा लेकर आती-जाती स्त्रियों के संबंध में यह हमारा प्रतिदिन का अनुभव है, किन्तु यह केवल नेत्रानुभव है। सामान्य जीवन में हम इस तरह के दृश्य प्रतिदिन देखते है, किन्तु इस क्रिया की मानसिक प्रतिक्रिया सबके मन में नहीं होती। किसी दिन किसी विचारशील व्यक्ति ने यह दृश्य देखा और उसके मस्तिष्क में हुई मानसिक प्रतिक्रिया के फ़लस्वरूप उसने उस व्यक्ति का चरित्र सामने रख दिया, जो बोलता बहुत है। अपने आधे-अधूरे ज्ञान का बढ़ -चढ़कर प्रदर्शन करता है। दिखावा और दंभ करता है। ऐसी स्थिति में उपरोक्त नेत्रानुभव प्रतिक्रिया स्वरूप अनुभव में परिणित हो जाता है। और अनायास यह अनुभव 'अध जल गगरी छलकत जाय' उक्ति का रूप ले लेता। इसमें कोई सुसंस्कारिक चेष्टा नहीं, कोई कृत्रिमता नहीं। यह उक्ति केवल लोक की देन है। शास्त्र इस पर अपने अधिकार का केवल दंभ कर सकता है।

लोकोक्तियों (हानों) की उत्पत्ति घटना विशेष से जुड़ी होती है। ग्रामीण जीवन में लोग मही (मठा) खरीदते नहीं, बल्कि मही उन्हें पास -पड़ोस से निःशुल्क मिल जाता है। मही मांगने के लिए कोई गया, किन्तु संकोचवश वह कह नहीं पाता और ठेकवा (मही रखने का मिट्टी का पात्र) को छिपाने लगता है। इस स्थिति में किसी बुजुर्ग के मुख से यह उक्ति अनायास निकल पड़ी होगी। "मही मांगे ल जाय अउ ठेकवा लुकाय "और इस प्रत्यक्ष अनुभव के बाद यह घटना लोकोक्ति के रूप में प्रचलित हो गई। स्त्रियां श्रृंगार प्रिय होती है। सुन्दर से भी सुन्दर दिखने की उनकी ललक होती है। सुन्दर बनने की चाह में आंखों में काजल आंजती है। संभव है कोई युवती आँखों में काजल आँजती रही हो, काजल आँजने की क्रिया में असावधानी वश शलाका से आँखों में चोट पहुंच गई हो और वह अंधी हो गई हो। सुन्दर बनने की चाह में हानि ही हुई। बस यही घटना उक्ति बन गई "आंजत-आंजत कानी "।

इन उक्तियों के परिदृश्य में चिरकालीन निरीक्षण तथा अनुभव सिद्ध ज्ञान ही दृष्टिगोचर होते हैं। लघुता, गति या लय, तुक, निरीक्षण और अनुभूति की व्यंजना, प्रभावशीलता और मनोरंजकता तथा सहजता व सरलता लोकोक्तियों की विशेषताएं

है, जिसके कारण ये आबाल-वृद्धों के कंठ में सहस्त्रों की संख्या में विराजती हैं।

पंडवानी तो लोकोक्तियों का कोष है।पंडवानी गायक ग्रामीण परिवेश में पलता-बढ़ता और पंडवानी गायन करता है।उसके गायन में कथा की प्रासंगिकता के आधार पर लोकोक्ति (हाना) सहज रूप से झरने की तरह झरती है।अपने अनुभव सिद्ध ज्ञान के आधार पर लोकोक्तियों के माध्यम से कथा को प्रमाणिक और जीवंत बनाता है। पौराणिक कथाएं भी समयुगीन लगती हैं। पंडवानी में लोकोक्तियों का प्रयोग कुछ उदाहरणों के माध्यम से दृष्टव्य है -

"नारद महाराज राहय तेन बढ़िया प्रेम के साथ कइथे बेटी मोर ये सलाह ये जेन में ये लईका के प्रान बांच जाय अउ तोरो इज्जत। तो बता महाराज। सांप मरय न लाठी टूटय बेटी।" [162] इस उद्धरण में सांप भी मर जाय और लाठी न टूटे लोकोक्ति का प्रयोग हुआ। आशय यह कि कार्य पूर्ण हो जाय और किसी प्रकार की हानि न हो। "लइका करन जावत हे बोहावत-बोहावत, अरे भईया जेखर कोनो नई होवय रागी तेखर भगवान होथे।" [163] अर्थात् जिसका कोई सहारा नहीं होता उसका सहारा भगवान होता है। भगवान तो सबके आश्रय दाता हैं। कुंवारी कुंती ने कर्ण को गंगा में भगवान भरोसे ही बहाया था। राधा द्वारा अधिरथ को कही गई निम्न उक्ति दृष्टव्य है - "डोकरी कऊवागे देखिस रागी - काय पुतरी बनाबे, काय पुतरी बनाबे - बुढ़ापा गेहे त गेहे खोटापा नई गेहे।" यह उक्ति ऐसे लोगों के लिए प्रयुक्त की जाती है जो बूढ़े हो जाने पर भी नारी सौन्दर्य के प्रति आकर्षित होते हैं।

भीमसेन के -

"अरे एड़ी कर रिसे तरूवा म चढ़न लागे भाग भाई
भीमसेन कहे तोला तोला सरम नई लागे।" [164]

भीम दुर्योधन के कृत्यों से क्रोधित हो जाते हैं। एंड़ी के रिस तरूवा में चढ़ने का आशय अत्यधिक क्रोधित होना है।

"कचरा उठइस अऊ दू टुकड़ा करके कान्हा फेंक दिस। फट ले समझगे समझईया बर इशारा काफी।" [165]

जो बात इशारे से समझ ली जाय। कृष्ण ने यही किया था तिनका उठाकर उसे दो टुकड़े फाड़कर फेंक दिया था। भीम ने उस तिनके का अर्थ समझ लिया और जरासंघ को फाड़कर दाये अंग को बाएं और बांए अंग को दायें फेंक दिया था। यही उक्ति है समझने वाले के लिए इशारा काफी।" देख तो सखी एखर ददा हवय अंधवा तो अंधवा ओ - अंधवा के बेटा अंधवा आय ओ।" [166] दुर्योधन के पानी में गिरने पर द्रौपदी का उक्त

कथन छत्तीसगढ़ की सुप्रसिद्ध लोकोक्ति है, जिसका अर्थ अंधे का बेटा अंधा होगा। जिसका जैसा बाप होगा वैसी संतान होगी - इस संबंध में निम्न लोकोक्ति द्दष्टव्य है -

जइसे-जइसे घर दुवार, तइसे-तइसे फईरका।
जइसे जेखर दाई-ददा, तइसे तेखर लईका॥

सुभद्रा व अर्जुन जब दोनों एक दूसरे को एक टक देखते हैं तो सखियों का कथन -

"सखी सहेली मन फिकर म परगे भाई।
बड़े के काम ल बड़े जानय कहे भईया।" [167]

में बड़े का काम बड़े जाने उक्ति का प्रयोग है। कुंती द्वारा भीमसेन को बकासुर राक्षस के लिए भोजन ले जाने के प्रसंग में कुंती का कथन द्दष्टव्य है -

"पुरूष बली नहीं होत हे, अरे समय होत बलवान।
काहू समय के दिन बड़े, काहू समय के रात।" [168]

अर्थात् पुरूषार्थ ही बड़ा नहीं होता, समय बड़ा होता है। समय के आगे किसी की नहीं चलती।

"नहीं बेटी मोर मुंह ले बात निकलगे। तीर के छुटे बान अऊ मुंह के निकले जबान। लहुट के नई आवे।" [169] शंकर भगवान का अहिरमती के लिए इस कथन में भी लोकोक्ति की छबि द्दष्टव्य है। कमान से निकला बाण और मुंह से निकली हुई बात वापस लौट कर नहीं आती , ठीक समय की तरह जैसे समय पुनः लौटकर नहीं आता।

"त द्रौपती कइथे - जात के कंडरा ताय खाय ल का जानही - अरे बेंदरा का जाने अदरक के सवाद।" [170] इस उद्धरण में बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद का प्रयोग है। ये लोकोक्तियाँ, कहावतें पंडवानी में सहज रूप से मिलती है। चूंकि पंडवानी गायक अपने सामान्य वाणी व्यवहार में लोकोक्तियों का प्रयोग करता है। अतः पंडवानी गायन में भी वह लोकोक्तियों को यह व्यवहृत करता है।

मुहावरे -

वाणी-व्यापार में अपनी भाषा को रोचक और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए मुहावरों का प्रयोग किया जाता है। दरअसल मुहावरे भाषा में प्रयोग होने वाले वाक्य खंड हैं, जिनके प्रयोग से वाक्य सबल और सतेज होते हैं। भाषा शास्त्रियों के अनुसार मुहावरों की उत्पत्ति का रहस्य मानव प्रयत्न की लाघव प्रियता है। वह कम से कम शब्दों में अपने भावों को प्रकट करना चाहता है, साथ ही अपने कथन को रहस्यात्मक और

गोपनीय ढंग से कहना चाहता है। "मुहावरे वास्तव में वाक्य खंड है, जब इनका प्रयोग वाक्य में किया जाता है, तब उस वाक्य की शक्ति और प्रभाव पूर्वापेक्षा बहुत बढ़ जाता है।" [171] मुहावरे व्यक्ति की आर्थिक, सामाजिक स्थितियों को प्रकाशित करते हैं। मुहावरों का क्षेत्र व्यापक है यह सीधे-सीधे जन-जीवन से सम्बद्ध है, जिसमें जन-जीवन का कार्य व्यापार प्रकट होता है। कुछ लोग लोकोक्ति और मुहावरों को एक बताते हैं, जबकि ऐसा नहीं है। लोकोक्ति (कहावत) और मुहावरे भिन्न-भिन्न हैं। लोकोक्ति का प्रयोग बहुधा अन्योक्ति या अप्रस्तुत व्यंजना के लिए होता है। जबकि मुहावरों का प्रयोग लाक्षणिक होता है। मुहावरों में कार्य व्यापार का उल्लेख होता है लोकोक्ति एक प्रकार से नैतिक वाक्य या अनुभूतिजन्य कथन है ।

लोकोक्तियों की तरह ही पंडवानी में मुहावरों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। पंडवानी में प्रयुक्त कहावतों व मुहावरों का सविस्तार वर्णन न कर कुछ उदाहरण ही प्रस्तुत किये जा रहे हैं। अनावश्यक विस्तार से बचने के लिए यह आवश्यक भी है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

"बेटा राक्षस ल मार के आ जही त बने अउ कहीं मोर बेटा ल दानो मार दीस मोर जोगी जँऊहर होगे दाई।" [172] यहां पर "जोगी-जऊँहर" होने का आशय किसी जोगी या साधु से नहीं है। जोगी-जऊँहर मुहावरे का अर्थ सर्वनाश है। कुंती का उक्त कथन छत्तीसगढ़ी का प्रचलित मुहावरा है। गांधारी कहे - टूरी अंवतरे न टूरा। व्यास कहे भगवान के घर देर हे अंधेर नहीं जरूर होही बेटा होही।" [173]

"धरती गरू मोला काबर जनम दिए धरती मा।" [174]

धरती गरू मुहावरे का अर्थ अनावश्यक बोझ है। जो सर्वथा अनुपयोगी और अहितकर हो।

"भैरी बनगे हस का
पोथी बनगे हस का काबर नई बोलस रामा जय हरि।" [175]

उपरोक्त अंश में "भैरा-पोथी" मुहावरा का अर्थ बहरे पन से है न कि पोथी अर्थात् पुस्तक (ग्रंथ) से। पोथी से ज्ञान ग्रहण किया जा सकता है, किन्तु पोथी को ज्ञान नहीं दिया जा सकता क्योंकि उसके कान नहीं होते।

"भीम ल कहे जाना भईया मैं तो जात के कँड़रा अँव, कभू खाय नई रेहेंव तुंहरे घर देखेंव आँखी-धोके।" [176] "आँखी-धोके" का अर्थ आँख धोने से नहीं है अपितु इसका आशय किसी वस्तु की अचानक प्राप्ति से है। "इसी प्रकार केंवट तैं बइठे रहिथस राख नाय।" [177] में "राख नाय" का मतलब सिर में राख डालने से ही नहीं

अपितु विरक्ति और अकर्मण्यता से है। एक अन्य उदाहरण "अरे मोला तो भँईसा कस दिखथे करिया-करिया। नई जानो।" [178] में काला अक्षर भैंस बराबर मुहावरा प्रयुक्त हुआ है। अपढ़ के लिए काले अक्षर अर्थहीन है। यही बात भीम धावन (दूत) से कहता है।

कहावतों और मुहावरों की दृष्टि से पंडवानी ओत-प्रोत है। छत्तीसगढ़ी लोक जीवन में व्यवहृत कहावतें और मुहावरे पंडवानी के भाषा-सौन्दर्य को द्विगुणित करते हैं। लोकोक्तियाँ हों या मुहावरे ये लोक जीवन से ग्रहित हैं, जिनमें लोक का अनुभव सिद्ध ज्ञान समाहित है। निश्चित रूप से ये अनुभव सिद्ध ज्ञान पंडवानी को प्रभावोत्पादक और प्रमाणिक बनाते हैं और यही लोक साहित्य की विशेषता है। जहाँ शिष्ट और लोक भाषा में अंतर परिलक्षित होता है। शिष्ट भाषा का सौन्दर्य असहज और आरोपित होता है, जबकि लोक भाषा का सौन्दर्य अनगढ़ भले ही हो, लेकिन सहज और सुघड़ होता है।

ध्वन्यत्मकता

हम जो अभिव्यक्त करना चाहते हैं जिन वस्तुओं का उल्लेख करना चाहते हैं, उन वस्तुओं के रूप और गुण को शब्द जिस शक्ति के साथ ध्वनित करता है, वहीं उस शब्द की ध्वन्यत्मकता है। ध्वन्यत्मकता के इस गुण से जैसे शब्द स्वयं बोलता है। हमारी आँखों के सामने वह दृश्य उपस्थित कर देता है जिसकी हम कल्पना करते हैं। शब्दों के माध्यम से भाषा का यह सौंदर्य भावों को गहराई तक अंतर मन में ले जाता है। लोक साहित्य में भाषा सौन्दर्य का यह गुण सजीवता और सार्थकता लिए हुए है। ध्वन्यत्मकता लोक भाषा का सौष्ठव है, उसका सौन्दर्य है। लोक मानस का सौन्दर्य बोध उसके लोक साहित्य में सन्निहित है।

पंडवानी का भाषा सौन्दर्य, उसकी ध्वन्यत्मकता के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

"रथ ला हाँकत हे भगवान
कुकुर लुहंगी, साँप संलंगनी
हाथी हदबद, गदहा गदबद
घोड़ा सरपट, पैदल रटपट
सेना करिस पयान।" [179]

उपरोक्त अंश में कुत्ते की मध्यम गति, साँप के सरकने की गति, हाथी की मंद गति, गधे की असंतुलित गति, घोड़े की तेज व पैदल सेना की हड़बड़ी से उत्पन्न ध्वन्यत्मकता भाषा सौंदर्य का अच्छा उदाहरण है।

"दुर्योधन गुर्री-गुरी देखय"

x x x

दुर्योधन मार हड़बीड़-हड़बीड़ गिस, चिरो-बोरो होईस अउ खुल्ला दिखत राहय कपाट तेन में जाके

"कइसे ग ठोकर खावन लागे भाई
कइसे दुर्योधन गिरन लागे भईया

तरमिर-तरमिर-तरमिर गिस, जाके दरवाजा में दनाक ले उल्टा गिरिस।" [180]

हड़बीड़-हड़बीड़, चिरो-बोरो, तरमिर-तरमिर व दनाक शब्द दुर्योधन की क्रोधावस्था व उसकी लज्जाजनक निरीह अवस्था को ध्वनित करते हैं -

"अर्जुन मारे घोड़ा में चाबुक घोड़ा के भगान कका
टप-टिप, टप-टिप भईया घोड़ा भागन लगे
अरे भगे घोड़ा टप-टिप, टप-टिप
मोर धरा-रा धरा-रा ग मोर रथ ल घुमावय अर्जुन ऽऽऽ।" [181]

टप-टिप, टप-टिप शब्द दौड़ते घोड़ों के खुरों से उत्पन्न आवाज को ध्वनित करते हैं। इसी प्रकार धरा-रा-धरा-रा से रथ की तेज गति से उत्पन्न आवाज ध्वनित होती है।

"भगवान कन्हैया ल जइसने पाइस तइसने हर्रस-भर्रस गारी दीस।"

ओ रागी मार भड़भीड़-भड़भीड़ गारी देना चालू करिस। [182] "हर्रस-भर्रस व भड़भीड़-भड़भीड़ गाली-गलौच की उस स्थिति को ध्वनित करते हैं जब मनुष्य क्रोध में संयम खो देता है।"

"मोर चटक-मटक भईया ये खड़ऊवा ल बजावे भईया।" [183]

"चटक-मटक" शब्द में स्वमेव खड़ाऊ से उत्पन्न आवाज ध्वनित होती है।

इसी प्रकार -

"तब पट-पिट-पट-पिट घोड़ा भागत हवे भाई। [184]
सना नना बान छूटन लागे भाई।"

सना नना शब्द से बाण की गति ध्वनित होती है।

पंडवानी में प्रयुक्त लोकोक्तियाँ, मुहावरे और शब्दों की ध्वन्यात्मकता पंडवानी के भाषा सौंदर्य के रंग को और भी चटक व आकर्षक बनाती है। लोक भाषा का लोक

रंगीय सौन्दर्य, पंडवानी लोक गाथा का लोक-लालित्य है, जो उसे शिष्ट भाषा से पृथक पहचान प्रदान करता है।

संदर्भ -

1. भारतीय संस्कृति के स्रोत : भगवत शरण उपाध्याय पृष्ठ : 1
2. काव्यालंकार - 1:16
3. रस गंगाधर : पंडित जगन्नाथ, पृष्ठ : 4
4. काव्य प्रकाश : आचार्य मम्मट : पृष्ठ : 10
5. काव्य के रूप - बाबू गुलाब राय, पृष्ठ : 2-3
6. साहित्य दर्पण - विशवनथ
7. भारतीय काव्य शास्त्र -संपादक कृष्ण बल पृठः 28-29
8. रस मीमांसा - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ-5
9. काव्य के रस - बाबू गुलाब राय पृष्ठ :80
10. साहित्य के रूप - डॉ. राम अवध द्विवेदी :पृष्ठ 215
11. काव्यादर्श - 1, 14 -19
12. साहित्य दर्पण - कविराज विश्वनाथ श्लोक -336
13. पंडवानी - नंदकिशोर तिवारी चौमासा :अंक-4 पृष्ठ:35
14. निजी संग्रह से
15. ----वही----
16. ---- वही ----
17. ---- वही ----
18. ---- वही ----
19. महाभारतः सबल सिंह चौहान, पृष्ठ : 384-385
20. महाभारतः नम्र निवेदन पृष्ठः 3
21. श्री राम चरित मानस : गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ -1
22. महाभारत :पं. दा. श्रीपद् सातवलेकर, पृष्ठ-6
23. महाभारत : श्री सबल सिंह चौहान, पृष्ठ - 1
24. निजी संग्रह से
25. ----वही----
26. खड़ी बोली का लोक साहित्य - डॉ. सत्या गुप्ता पृष्ठ - 224

28. ---- वही ----
29. ---- वही ----
30. ---- वही ----
31. ---- वही ----
32. ---- वही ----
33. ---- वही ----
34. ---- वही ----
35. ---- वही ----
36. ---- वही ----
37. ---- वही ----
38. ---- वही ----
39. ---- वही ----
40. ---- वही ----
41. ---- वही ----
42. ---- वही ----
43. ---- वही ----
44. ---- वही ----
45. ---- वही ----
46. ---- वही ----
47. ---- वही ----
48. ---- वही ----
49. ---- वही ----
50. महाभारत और छत्तीसगढ़ी लोक गाथा पंडवानी का तुलनात्मक अध्ययन : डॉ. बलदाऊ प्रसाद निर्मलकर पृष्ठ : 287
51. नाट्य शास्त्र : भरतमुनि 6/33
52. काव्य शास्त्र : आचार्य मम्मट - 4/27-28
53. साहित्य दर्पण : आचार्य विश्वनाथ 3/3
54. रस गंगाधर : पंडित जगन्नाथ पृष्ठ : 33
55. अग्निपुराण : 349/4.5
56. श्रृंगार प्रकाश : 6/7

57. साहित्य दर्पण : विश्वनाथ : 3/183
58. निजी संग्रह से
59. निजी संग्रह से
60. ---- वही ----
61. ---- वही ----
62. साहित्य दर्पण : विश्वनाथ : 3/214
63. निजी संग्रह से
64. ---- वही ----
65. ---- वही ----
66. साहित्य दर्पण : विश्वनाथ : 3/222
67. भवभूति उ.र. : 3/47
68. निजी संग्रह से
69. सूचक : श्री सुखीराम निषाद नाचा कलाकार
ग्राम भुरभुसी : गंडई, जिला - राजनांदगाँव (छ.ग.)
70. निजी संग्रह से
71. ---- वही ----
72. ---- वही ----
73. साहित्य दर्पण : विश्वनाथ : 3/234
74. निजी संग्रह से
75. ---- वही ----
76. ---- वही ----
77. ---- वही ----
78. ---- वही ----
79. ---- वही ----
80. ---- वही ----
81. साहित्य दर्पण : आचार्य विश्वनाथ - 3/239
82. हिन्दी साहित्य दर्पण : व्याख्याकार - डॉ. सत्यव्रत पृष्ठ - 209
83. निजी संग्रह से
84. ---- वही ----
85. निजी संग्रह से

86. छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन : दयाशंकर शुक्ल , पृष्ठ 269
87. साहित्य दर्पण : विश्वनाथ : 3/245
88. निजी संग्रह से
89. ---- वही ----
90. ---- वही ----
91. ---- वही ----
92. ---- वही ----
93. ---- वही ----
94. हिन्दी साहित्य कोष : पृष्ठ : 202
95. काव्यालंकार : भामह : 3/13
96. काव्यादर्श : दण्डी
97. साहित्य दर्पण विश्वनाथ : 10/1
98. निजी संग्रह से
99. ---- वही ----
100. ---- वही ----
101. ---- वही ----
102. ---- वही ----
103. ---- वही ----
104. ---- वही ----
105. ---- वही ----
106. ---- वही ----
107. ---- वही ----
108. ---- वही ----
109. ---- वही ----
110. ---- वही ----
111. ---- वही ----
112. पंडवानी : नंदकिशोर तिवारी : चौमासा : अंक - 4 पृष्ठ -41
113. निजी संग्रह से
114. निजी संग्रह से
115. ---- वही ----

116. ---- वही ----

117. ---- वही ----

118. दी इंगलिश बैलेड - राबर्ट ग्रेव्स : पृष्ठ : 19

119. भोजपुरी लोकगाथा - डॉ. सत्यव्रत सिन्हा, पृष्ठ : 20

120. लोक साहित्य : डॉ. विद्या चौहान , पृष्ठ : 226

121. भोजपुरी लोकगाथा , डॉ. सत्यव्रत सिन्हा, पृष्ठ : 218

122. छंद विधान की व्यापकता : डॉ. हरिशंकर शर्मा, पृष्ठ :2

123. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास : डॉ. भागीरथ मिश्र : पृष्ठ : 412

124. परिलत : निराला : भूमिका : पृष्ठ 6

125. साहित्य रूप : डॉ. राम अवध द्विवेदी पृष्ठ : 258

126. निजी संग्रह से

127. ---- वही ----

128. ---- वही ----

129. ---- वही ----

130. ---- वही ----

131. ---- वही ----

132. लोक साहित्य : डॉ. विद्या चौहान : पृष्ठ : 236

133. महाभारत और छत्तीसगढ़ लोकगाथा पंडवानी का तुलनात्मक अध्ययन : डॉ. बलदाऊ प्रसाद निर्मलकर : पृष्ठ : 377

134. सूचक : श्री जीवन यदु (साहित्यकार) : खैरागढ़

135. निजी संग्रह से

136. ---- वही ----

137. ---- वही ----

138. ---- वही ----

139. ग्रामगीत : पंडित रामनरेश त्रिपाठी : पृष्ठ 9

140. छत्तीसगढ़ी कविता में लोक संस्कृति का प्रभाव : जीवन यदु (शोध प्रबंध से) पृष्ठ 123

141. मानब और संस्कृति : युलियान ब्रोमलेय रोमान पोदोल्नी : पृष्ठ : 145

142. ---- वही ---- पृष्ठ : 146

143. छत्तीसगढ़ी कविता में लोक संस्कृति का प्रभाव : जीवन यदु

(शोध प्रबंध से)

144. ---- वही ---- पृष्ठ : 123
145. मानव और संस्कृति : युलियान ब्रोमलेय रोमान पोदोल्नी : पृष्ठ : 169
146. समकालीन कविता और धूमिल : डॉ. मंजुल उपाध्याय : पृष्ठ :153
147. काव्य बिम्ब - डॉ. नगेन्द्र : पृष्ठ : 5
148. कालिदास की बिम्ब योजना : डॉ. अवधेश पाण्डेय : लेख : विश्वज्योति अंक : 44.9 : पृष्ठ : 27
149. बिन्दु प्रति बिन्दु : विश्वंभर उपाध्याय : पृष्ठ 42-43
150. निजी संग्रह से
151. साहित्य और सामाजिक संदर्भ : शिव कुमार मिश्र पृष्ठ : 57
152. ---- वही ---- पृष्ठ : 54
153. निजी संग्रह से
154. ---- वही ----
155. मानव और संस्कृति : युलियान ब्रोमलेय रोमान पोदोल्नी पृष्ठ : 172
156. निजी संग्रह से
157. ---- वही ---- (लोकगाथा दसमत कैना)
158. समकालीन कविता और धूमिल : डॉ. मंजुल उपाध्याय : पृष्ठ :130
159. लोक साहित्य सिद्धांत और प्रयोग : डॉ. श्रीराम शर्मा पृष्ठ : 156
160. पृथ्वी पुत्र : डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल : पृष्ठ : 57
161. निजी संग्रह से
162. निजी संग्रह से
163. ---- वही ----
164. ---- वही ----
165. ---- वही ----
166. ---- वही ----
167. ---- वही ----
168. ---- वही ----
169. ---- वही ----
170. ---- वही ----
171. निमाड़ी और उसका साहित्य : डॉ. कृष्णलाल हँस पृष्ठ : 382

172. ---- वही ----

173. ---- वही ----

174. ---- वही ----

175. ---- वही ----

176. ---- वही ----

177. ---- वही ----

178. ---- वही ----

179. छत्तीसगढ़ी लोक गीतों का लोकतात्विक तथा मनो वैज्ञानिक अध्ययन : डॉ. हनुमंत नायडू पृष्ठ : 104

180. निजी संग्रह से

181. ---- वही ----

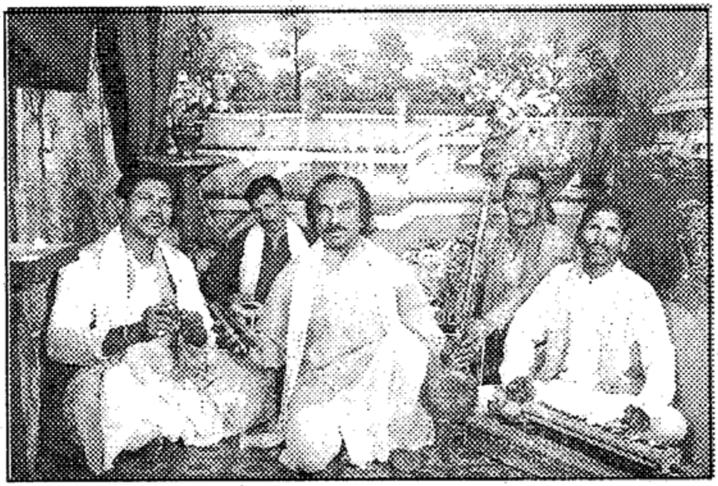
182. ---- वही ----

183. ---- वही ----

184. ---- वही ----

अध्याय - 5

☐ पंडवानी कथा गायन में अभिनय और नाट्यतत्व, वस्तु संरचना और चरित्र के स्वरूप पर उसका प्रभाव



पंडवानी गायक श्री धिरपाल सिंह धुर्वे

पंडवानी कथा गायन में अभिनय और नाट्यतत्व, वस्तु संरचना और चरित्र के स्वरूप पर उसका प्रभाव

अभिनय प्रकृत्या एक जन्मजात कला है। जीवन आरंभ से लेकर मृत्युशैया तक अभिनय है और मानव-जीवन में अभिनय का अंकुरण जीवन के आरंभ काल से ही होता है। मानव इस विश्व रंगमंच पर एक पात्र की ही तरह पदार्पण करता है। अपने क्रिया-कलापों के माध्यम से अपने अभिनय का निर्वाह करता है। उसके जीवन में घटने वाली घटनाएं, दुख-सुख, हर्ष-विषाद, जय-पराजय, हास-परिहास उसके जीवन रूपी नाटक के दृश्य और अंक हैं। अभिनय प्रकृतिजन्य और अभिनय की प्रवृत्ति जन्मजात है।

"मानव जीवन को विशाल और विस्तृत रंगमंच पर होने वाला एक नाटक ही कहा जाता है। मनुष्य के क्रिया-कलाप तथा उसके दैनिक जीवन की गतिविधि इस मानव-जीवन नाटक के विभिन्न अंक और दृश्य हैं। नाटक इसी विशाल नाटक का ही एक लघु गत्यात्मक अनुकरण है। अत: नाटक की उत्पत्ति मानव जीवन की उत्पत्ति के साथ ही सम्बद्ध है और मानव जीवन के विकास के साथ ही क्रमश: उसने भी विकास किया होगा। आदिमानव ने अपने जीवन को अधिक सुखी एवं आनंदपूर्वक बनाने के लिए प्रकृति से संघर्ष और सम्पर्क द्वारा प्रसूत अपने भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए जो विविध माध्यम बनाए, उन्होंने ही विभिन्न कलाओं को जन्म दिया। उन्हीं में नाट्य कला का भी एक स्थान है।" [1]

प्रकृति का प्रत्येक परिवेश चाहे आल्हादकारी हो या विषादकारी नाट्य तत्वों से परिपूरित है। आदिम अवस्था में मानव जब वाणी विहीन था, तब अपनी मनोगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति वह संकेत द्वारा ही करता रहा होगा। वाणी-विकास के साथ ही मनोरंजन की प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हुआ होगा। फलस्वरूप प्रकृति से ही गीत- संगीत व नृत्य का अनुकरण कर मनोरंजन के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

"मानव भी मलय समीर से आल्हादित होता था, कोयल के मधुर-कंठ के साथ अपना सुर मिलाता था, दामिनी-दमक और मेघ-गर्जन पर किलोंले करने लगता था, तथा वसन्त की बहार में स्वयं मुखरित होता था। ऐसे ही समय मेले, सांस्कृतिक पर्व तथा समज्जाओं के लिए उपयुक्त वातावरण उपस्थित होता था और मनुष्य, प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ अपने सौंदर्य की होड़ लगाता था। इसी मादक उन्माद में वह नाचता-

गाता था, स्वतः ही भाव-भंगिमाएं मुखर हो उठती थीं और नाना प्रकार के भाव-विभावों को जन्म देती थी।"[2]

इसी तथ्य को उद्‌घाटित करते हुए श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने लिखा है कि -"जब उसके (मानव) पेट में भूख खाँव-खाँव कर रही थी, तब उसकी आँखे गुलाब पर टंगी थी, टंकी थी। उसका प्रथम संगीत निकला, जब उसकी कामिनियाँ गेहूँ को उखल और चक्की में कूट-पीस रहीं थी। पशुओं को मार कर-खाकर ही वह तृप्त नहीं हुआ उसकी खाल का बनाया ढोल और उसके सिंग की बनाई तुरही। मछली मारने के लिए जब वह अपनी नाव में पतवार का पंख लगाकर जल पर उसे उड़ाए जा रहा था, तब उसके छप-छप में उसने ताल पाई, तराने छेड़े, बाँस से उसने लाठी ही नहीं बाँसुरी भी बनाई।"[3]

विदेशी विचारक अरस्तु के विचार भी कुछ इस प्रकार हैं - उनके मतानुसार वाणी-विलास से पूर्व अपनी आंगिक चेष्टाओं द्वारा ही मनुष्य विभिन्न प्रकार के मूक प्रदर्शन न जाने कब से करता था, क्योंकि अनुकरण करना उसकी सहज एवं जन्मजात प्रवृत्ति है।

"नृत्य-गीत, कथा-संवाद, अभिनय, संगीत आदि का सृजन प्रकृति की विशाल गोद में अनायास ही होता रहता है। नियति नटी के समग्र क्रिया कलापों में नाट्य तत्व के अंकुर दृष्टिगोचर होते हैं। बादलों का उमड़ना, घुमड़ना, बिजली का चमकना-कड़कना, पवन का सरसराना व रिमझिम-रिमझिम बरसात होना, मधुरे-मधुरे मोर नाचना, पतझड़, बसंत, हेमन्त आदि ऋतुओं की चर्चाएं, उगती-उठती लहलहाती फसलों की अन्जान क्रियाएं, अपने सहकार संदेश, सत्य और सीख के सोपान लुटाती हुई कितनी सहज लगती हैं। प्रकृति का यही अनंत, असीम और अटूट योग लोक-नाट्यों के उद्‌गम एवं विकास का मूलाधार कहा जा सकता है।"[4]

मानव का अभिनय की ओर प्रवृत्त होना प्रकृति की अनुकृति है। प्रकृति के क्रिया-कलापों को मानव ने समझा, सोचा और फिर उनका अनुकरण किया और अभिनय इसी अनुकरण का प्रतिफलन है। श्री देवी लाल सामर का विचार है कि - "अनादिकाल से मनुष्य अपने आनंद-मंगल के समय अंग-भंगिमाओं का जो अनियोजित प्रदर्शन करता आ रहा है, वहीं धीरे-धीरे समष्टि के रूप में आयोजन-नियोजन द्वारा लोक नृत्यों का स्वरूप धारण करने लगा। जैसे-जैसे नृत्य अपनी आदि अवस्था से निकलकर उन्नत और सभ्य समाज का श्रृंगार बनने लगा वैसे-वैसे उसके साथ गीत, नाट्य आदि भी जुड़ने लगे और व्यवस्थित नृत्य-नाट्य तथा गीत-नाट्य का प्रादुर्भाव होने लगा।"[5]

मनुष्य अपनी आदिम अवस्थाओं में वन-प्रांतर और गिरि-गुफाओं में रहता था। मुक्ताकाशी विशाल चौड़ी शिलाएं निःसंदेह उसका प्राकृतिक मंच रही होगी। उसकी मूक भाव-भंगिमाएं अभिनय की पहली सीढ़ी थी। मानव सभ्यता की क्रमिक विकास के साथ ही मानव गिरी-कानन को छोड़कर नदियों के किनारे कबीलों और ग्रामों में बसने लगे और अपने मनोविनोद के लिए साधन जुटाए।

श्री जयशंकर त्रिपाठी के अनुसार - "कृषि एवं पशुपालन से लोक जीवन में शांति तथा समृद्धि का सूत्रपात हुआ। बनैले पशु का भय भाग गया। लोक को तरूण जीवन के ललित भावों ने आक्रांत किया। तब अनोखे प्रेम की लोक प्रसिद्ध कहानी के गीतों से आंदोलित होकर तरूणों का हृदय उस कहानी के पात्रों के अनुकरण के लिए रस सिक्त हो उठा। वह अनुकरण सामूहिक समारोह का रूप बना, दिन भर परिश्रम से क्लांत किसान रात की चाँदनी में अनुकरण के माध्यम से हृदय स्पर्शी कथा का प्रदर्शन देखकर और उसके गीत सुनकर जीवन में आनंदमय शक्ति प्राप्त करते थे। बाद में सामाजिक पर्वों पर इसी अनुकरण को परिष्कृत करके अभिनय का रूप दिया गया।"[6]

मनुष्य में अभिनय की प्रवृत्ति प्रकृति का ही अनुकरण है। चूंकि मानव प्रकृति की सर्वोत्तम कृति है। अन्य जीव-जन्तुओं की अपेक्षा मानसिक दृष्टि से वह खोजी और विचारशील प्राणी है। अतः उसने प्रकृति को परखा, समझा, अन्वेषण किया। अपने आमोद-प्रमोद के लिए प्राकृतिक उपादानों का प्रयोग किया और अभिनय की ओर प्रवृत्त हुआ।

पारिवारिक वातावरण में अनुकरण, अभिनय की यह प्रवृत्ति सहज रूप से परिलक्षित होती है।युवा-प्रौढ़ ही नहीं बल्कि बच्चे भी अपनी बाल सुलभ चंचलता के कारण अपने हमजोलियों या अन्य बड़े-बुजुर्गों के हाव-भाव, आंगिक-चेष्टाओं या वाणी-विलासों की नकल करते हैं और परस्पर खिलखिलाकर हँसते-हँसाते हैं। क्या यह अभिनय नहीं है ? यहीं से जीवन में अभिनय की रूचि और दक्षता प्रोत्साहित होती है।

प्रचलित कथा-गायनों में अभिनय तत्व :

मानव जीवन में अभिनय व अनुकरण की प्रवृत्ति यकायक नहीं आती। बल्कि यह कथा गायन व लोक कथाओं के माध्यम से परिपुष्ट होती है। लोक कथाओं में लोक भाषाओं के माध्यम से लोक जीवन की आस्था, परम्परा और लोक विश्वासों का सुस्पष्ट दर्शन मिलता है। विश्रांति व अवकाश के क्षणों में ये लोक कथाएं जहाँ मनोरंजन के साथ प्रेरणा व स्फूर्ति का संचार करती हैं, वहीं किंचित कथा वाचक या कहें कथा कहने वाले कथक्कड़ की भाव भंगिमा, चेहरे की विभिन्न मुद्राएं जिनमें भावों के अनुसार

स्वर का उतार-चढ़ाव होता हैं, अभिनय का बीजारोपण करती हैं।

छत्तीसगढ़ी लोक जीवन में लोक-कथाओं का विशेष महत्व है। धार्मिक, सामाजिक व अन्य अवकाश के अवसरों पर लोक कथाएं बड़ी रूचि के साथ कही-सुनी जाती हैं। कथा कथन की यह परम्परा बड़ी सुदीर्घ है। घरों में दादा-दादी, नाना-नानी, मां-बाप या अन्य बड़े बुजुर्ग कथा-कथन करते हैं। कथा (किस्सा-कहानी) कहने में जो दक्ष होते हैं, जिनके मनोमस्तिष्क में असंख्य लोक कथाएं हिलोरें लेती हैं। उन्हें कथक्कड़ की संज्ञा दी जाती है। फुरसत के क्षणों में इनकी विशेष मांग रहती है। इन्हीं की देखा-सिखी कुछ बच्चे भी किस्सा-कहानी में माहिर होते हैं। वे अपने हमजोलियों के साथ साँझ ढले गाँव के चौपाल में या शोर-शराबे रहित स्थान विशेषकर चबूतरों में इकट्ठे होकर किस्सा का आनंद लेते हैं। छत्तीसगढ़ी लोक कथाओं में कुछ ऐसी लोक कथाएं हैं जिनमें गेयता है। संभवत: लोक कथाओं की इसी आंशिक गेयता ने ही कथा गायन की परम्परा को विकसित किया होगा। इन लोक कथाओं में गायन की परम्परा के साथ-साथ अभिनय की भी झलक मिलती है।

एक छत्तीसगढ़ी लोककथा में एक बुढ़िया अपने बेटा लेड़गा का विवाह करना चाहती है, लेकिन वह गीत गाना नहीं जानती। अत: गीत सीखने के लिए चार सौ रूपये लेकर वह जाती है। रास्ते में उसे एक राऊत मिलता है जो सोहई बनाने के लिए पलास पेड़ की जड़ें खोद रहा था। पैसे की लालसा में वह राऊत जड़ खोदने की क्रियाओं को गीत का रूप दे देता है। बुढ़िया गीत सीखकर वापस घर लौटती है। बुढ़िया के घर वापस आने पर रात में लेड़गा अपनी मां से पूछता है कि वह कहां गई थी ? बुढ़िया गीतों को गाकर बताती है कि वह गीत सीखने गई थी। इसी बीच दुर्भाग्य से कुछ चोर बुढ़िया के घर के पीछे चोरी करने के लिए सेंध लगा रहे होते हैं। बुढ़िया चोरों से अनजान अपने बेटे को गीत गाकर सुनाती है -

कोड़थे बेटा रे कोड़थे बेटा रे खुदुर-खादर रे...

चोर समझते हैं कि बुढ़िया जान गई। अत: चोर जमीन में लेट जाते हैं। बुढ़िया फिर गाती है -

परे हे बेटा परे हे बेटा मोर लाहंगर बरोबर
रे लाहंगर बरोबर

चोर डर कर उकडू बैठ जाते हैं। बुढ़िया आगे गाती है -

देखथे बेटा मोर देखथे बेटा रे टुकुर-टाकर मोर
टुकुर-टाकर, देखथे बेटा मोर टुकुर-टाकर

चोर समझते हैं कि बुढ़िया जान गई। अतः वे भागने लगते हैं। बुढ़िया चौथा गीत गाकर सुनाती है -

भागथे बेटा रे भागथे बेटा रे चचरंग चंईयां रे ...
चचरंग चंईयां रे भागथे बेटा चचरंग चंईयां।[7]

इस प्रकार बुढ़िया के घर चोर चारी नहीं कर पाते

इसी तरह की एक और छत्तीसगढ़ी लोक कथा जिसमें भी कथा-कथन के साथ-साथ गायन परम्परा की झलक मिलती है।

एक अज्ञानी पंडित को परिस्थिति जन्य घटनाओं के कारण लोग विद्वान और ज्योतिष मान लेते हैं। यह समाचार राज दरबार पहुंचता हैं। इस बीच रानी का नवलखा हार चोरी चला जाता है। उक्त पंडित को ज्योतिष - विद्या द्वारा नवलखा हार का पता लगाने कहा जाता है। पता न लगा पाने की स्थिति में राजा द्वारा उसे प्राण दण्ड का हुक्म दिया जाता है। मारे भय के पंडित अपने घर में अपने दुर्भाग्य पर रोता है कि सुबह होते मेरा सिर काट दिया जायेगा। निम्न अंश कथक्कड़ गाकर सुनाते है -

होगे अधरतिया आ जाबे रे निंदिया
आ जाबे रे निंदिया नई बांचस मुड़िया।[8]

पंडित की दो पड़ोसिनें (रानी की दासियां) निंदिया और मुड़िया जिन्होंने हार चुराया है, गीत सुनकर यह समझती है कि पंडित जी जान गए, हमारी चोरी पकड़ी गई। अतः दोनों पंडित के पास आकर अपने प्राणों की रक्षा के लिए उस स्थान का पता बता देती हैं, जहाँ उन्होने नवलखा हार को छुपा रखा कर रखा था। इस घटना से अज्ञानी पंडित की विद्वता सिद्ध हो जाती है। खुदा मेहरबान तो गधा पहलवान।

उपरोक्त दोनों लोक कथाओं को उद्धरित करने का मूल आशय है यह है कि लोक कथाओं के कथा-कथन की परम्परा में गायन की परम्परा के समावेश के कारण कथा-गायन की परम्परा सुविकसित हुई तथा कथा - कथन व कथा गायन में अभिनय का पुट समाहित होने लगा।

छत्तीसगढ़ में कथा वाचन की परम्परा अति प्राचीन है। यहाँ की धर्मप्राण जनता अपनी सुख-समृद्धि व परिवार कल्याण की कामना से विभिन्न अवसरों पर सत्यनारायण की व्रतकथा व श्री मदभगवद् की कथाओं का आयोजन करती है। गृह-प्रवेश, विवाह, गो हत्या-प्रायश्चित आदि के लिए यहाँ सत्यनारायण की कथा के आयोजन की परम्परा है। ये धार्मिक कथाएं ब्राम्हण वर्ग के पुरोहितों द्वारा सम्पन्न की जाती है। पुरोहित द्वारा कथावाचन में विशेष शैली अपनायी जाती है, द्रुत गति से

लयात्मक पठन। पुरोहितों के इस कथा वाचन में अभिनय की कोई गुंजाइश नहीं रहती। अतः धारा प्रवाह इन कथाओं के प्रति यदि धार्मिक आस्था को छोड़ दिया जाय तो अभिनय की दृष्टि से लोगों का विशेष आकर्षण नहीं होता।

छत्तीसगढ़ में विभिन्न लोक गाथाओं को भिन्न-भिन्न समुदाय के लोगों द्वारा पंडवानी की तरह विभिन्न शैलियों में गाई जाती है। यहाँ कथा - कथन की अनेक शैलियाँ प्रचलित हैं। जिन्हें देवार गीत, बांसगीत, बसदेवा गीत, भरथरी गीत, चंदैनी, गोपी-चंदा, ढोला - मारू व पंडवानी आदि रूपों लोक गायकों द्वारा गायी जाती है। लोक गायन के उपरोक्त अधिकांश स्वरूपों में जहाँ जीवन्त अभिनय देखने को मिलता है, वहीं कुछेक कलारूपों में इसका सर्वथा अभाव परिलक्षित होता है।

छत्तीसगढ़ की एक घुमन्तु जाति है देवार। कला प्रवीण यह जाति अपनी आजीविका के लिए सुअर पालती है। नाचना-गाना भी इनकी जीविका का साधन है। पुरूष अपना पारम्परिक लोक वाद्य मांदर व सारंगी (रूँझू) बजाते हैं व देवार महिलाएं व बालाएं नृत्य करती हैं। देवार महिलाएं गांवों में घूम-घूम कर गोदना भी गोदती हैं। अभावों और संत्रासों के बीच रहकर भी इनकी कला कुशलता में कोई कमी नहीं आती। देवार अपना रूंझू बजाकर विभिन्न लोक-गाथाओं का गायन करते हैं। शब्दों के उच्चारण में एक विशेष प्रकार की लयकारी होती है, जिसकी पहचान देवार-गीत के रूप में होती है -

चिरई में सुंदर रे पतरेंगवा साँप सुन्दर मनिहार।
कैना म सुंदर दसमत कैना जग ल मोहे संसार॥

x x x

नौ लाख ओड़िया मन बंधान कोड़े लागे
ओड़नीन माटी ल डोहार ...।
बइठे ग राजा कदम के छंईहा म ब्राम्हन
राजा ह बिन-बिन ढेला म मारे
कइना ल गोटी म करके खियाल ग...।
अरे एके ढेलवा के लागे राजा ददा मुड़ा जाय
दूसरे ढेलवा दसमत लागे भईया मुड़ा जाई लग जाय
तीसरे ढेलवा तन पर लागे मारवं कुदारी के घाव।''[9]

देवारों की इस लोक कथा गायकी में अभिनय तत्व का अभाव रहता है, गेय तत्व ही प्रधान होता है, जो सहज रूप से अपनी शैली - विशेष के कारण मन को भाता

है। कथा गायन की परम्परा में इन देवार लोक गायकों का विशिष्ट स्थान है। अभिनय तत्व से पृथक होकर भी कथा-गायन की यह शैली अत्यंत ही लोक प्रिय है।

इसी प्रकार की लोक-कथा - गायन की परम्परा छत्तीसगढ़ की भ्रमणशील वसदेवा जाति में भी प्रचलित है। अंशत: व्यावसायिकता व मुख्यत: गायकी इनका जातीय कर्म है। ये अपनी विशेष वेशभूषा के द्वारा सहज ही पहचाने जाते हैं। गेरूए या पीले रंग की पगड़ी को विशेष ढंग से सिर पर रखते हैं, जिसका आंचल पीठ को कमर तक घेरता है। माथे पर इष्टदेव (कृष्ण) की पीतल की मूर्ति पगड़ी में लगी रहती है। पांवों में पैजना व हाथ में चुटकी लगा पैजना बजाकर ये अपने गायन के माध्यम से जीवन, कर्म, मुक्ति और मानवता का संदेश देते हैं।

छत्तीसगढ़ में धान कटाई के बाद मिंजाई के समय ये अपने गांवों को छोड़कर सपरिवार बैलगाड़ी से भिक्षाटन के लिए निकल पड़ते हैं। बड़े सबेरे से गांवों में, घरों में जाकर कृष्णावतार, पितृभक्त श्रवण, दानी कर्ण, मोरध्वज,हरिश्चन्द्र आदि की कथाओं का गायन करते हैं। यदा-कदा भाव-विह्वल होकर नाचते हैं -

जय गंगान जय गंगान जय गंगान
बड़े बिहनिया ले दे दे दान।
दू झन अंधरी अंधरा राहय
तेखर बेटा सरवन कुमार। जय गंगान ...।

बसदेवा जाति की इस कथा गायन शैली में भाव, व रस का माधुर्य जिस अनुपात में है उस अनुपात मेंअभिनय की प्रवृति का अभाव है। देवारों की कथा गायन की ही तरह ही इसमें भी गेय तत्व प्रमुख है।

लोक कथा गायन व लोक गाथाओं की दृष्टि से छत्तीसगढ़ का कला जगत अत्यंत ही समृद्ध है। कुछ लोक गाथाओं को विभिन्न समुदाय व जाति के लोग गाते हैं, तो कुछ लोक गाथाओं की गायन शैली की जातिगत विशेष पहचान है। यहाँ राऊत (यादव) जाति का विशेष स्थान है। ये अपनी आजीविका के लिए गोपालन का कार्य करतें हैं। इनका राऊत नाचा वीरोचित व कलापूर्ण नृत्य है, जो दीपावली के अवसर पर सामूहिक रूप से सम्पन्न होता है। इनकी कुछ जातीय लोक गाथाएं है जिन्हें बाँस (एक प्रकार लोक वाद्य जिसे बांस से बनाया जाता है) के साथ गाते हैं। इन गीतों में कंठी ठेठवार, अहिमन रानी, फूलबासन, लोरिक चन्दा आदि की लोक गाथाएं सवक्तव्य गायी जाती हैं। मुख्य गायक कथाओं को गाता है रागी (सहायक) स्वर मिलाकर सहयोग देता है। बांस वादक बाँस बजाकर उन्हें दुहराता है। उदाहारणार्थ छहुरा जनम

कथा प्रसंग का अंश प्रस्तुत है -

> ''अरे सुनि ले ले रे भाई मोंर बोली बचन ल न
> पारे कसई ल राजा दियना बलवाए न
> बच्चा ल मढ़ई के राजा
> महमाया मंदिर मा मोर बलि ल दे देबे न
> कंवल करेजा ल रे लानि के ये दिन
> महदेवा बताए हो ... ।''[10]

बाँस गीत का गायक बैठकर कथा गायन करता है। बाँस गीत के रूप में गाये जाने वाली लोक गाथाओं में अभिनय तत्वों को प्रदर्शित करने की काफी गुंजाइश है, किन्तु गायक केवल एक हाथ के द्वारा विभिन्न भावों को प्रकट करता है।दाहिना हाथ वह अपने कान पर टिकाये रखता है। बाँस गीतों में गायन प्रमुख है और अभिनय गौण।

ढोला - मारू की लोक कथा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में किंचित भिन्नता के साथ लगभग समान रूप से गाई जाती है। राजस्थान की यह मूल लोक गाथा है, फिर भी इस गाथा का गायन छत्तीसगढ़ क्षेत्र में किया जाता है। इस कथा को यहां ढोला-मारू या मारू-कैना तथा गायक व गायन की शैली को ढोल गायन कहा जाता है। इस लोक गाथा की गायन शैली में भी अभिनय की अपेक्षा गायन का ही प्रमुख स्थान है।

''रेवा-परेवा ये दूनो बहिनी	
ढोला ल राखे बिलमाय रे	अल बेला ढोला
तोला का कहिके समझाववं रे	अलबेला ढोला।
एक दिन होगे दू दिन होगे	
होगय गजब दिन चार रे	अलबेला ढोला
मोला फुलवा देखे के साध रे	अलबेला ढोला।
घोड़ा घोड़ सारे में घोड़ा निकाले	
बारा बरस के साजू रे	अलबेला ढोला।
अलियन रेंगय अघ गलियन रेंगय	
रेंगय बावन बजार रे मोर	अलबेला ढोला।
दीदी छोड़त हे कोष्टा दुकान रे	अलबेला ढोला।
तरिया के पार म ढोला पहुंचगे	
आमा के जर म घोड़ा बांधे रे	अलबेला ढोला।

देख तो गिंदर-गिंदर सुवा देख रे अलबेला ढोला।
रेवा-परेवा ये दूनो बहिनी
मया के सुवा भेजाय रे अलबेला ढोला।
देख तो सुवा बोलन चले लाग रे अलबेला ढोला।
आमा ल खावे गोही गिरावे
सुवा ह ये दिन आज रे अलबेला ढोला।
तेला देखय ढोला मोर लाल रे अलबेला ढोला।
गोटी उठा के सुवा ल मारे
माया के सुवा मरिजाय रे अलबेला ढोला।"[11]

ढोला-मारू की तरह छत्तीसगढ़ में गोपी-चंदा की गाथा गाई जाती है। गोपीचंदा अर्थात् गोपीचंद धारानगरी के राजा त्रिलोकी चंद व रानी मैनावती का पुत्र था तथा उज्जयिनी नरेश विक्रमादित्य व राजा भरथरी का भांजा था। चूंकि लोकगाथाएं विशुद्ध रूप से जन मनोरंजनार्थ गायी जाती है। अतः इनमें नाट्य तत्वों की न्यूनता है। नाट्य अभिनय के बजाय केवल गायन ही प्रमुख रूप से उभर कर सामने आता है।

'गोपी चंदा" भी इसी तरह की लोक गाथा है जिसमें जादू टोने व चमत्कार की कथाएं अधिक हैं -

"ओही समय म धोबनीन कपड़ा ल काँचत राहे
ओखर नजर ये दे पड़ि जावे भाई
गोपी के रूप ल धोबनीन देखे हावे
अऊ देख के रूप म मोहाई जावे भाई
भारी रे विद्या हावे बंगाल के
ओही मेर जादू ल पढ़न लागे भाई
ओही मेर धोबनीन जादू ल पढ़े हावय रे
बेटा ल सवा बनाई लेवय भाई
सुवा बनाके धोबनीन अपन घर म ग लेगे भाई
फेर के गदहा बनावन लागे गोपी ल
उपर म कपड़ा लादन लागे भाई।"[12]

गोपी चंदा गायन की ही तरह यहाँ भरथरी गायन की भी विकसित परम्परा है। भरथरी की वैराग्य कथा का गायन इस अंचल के जोगी, साधु व संत करते हैं। यह गाथा गायन स्वान्तः सुखाय भी है और मनोरंजन तथा शिक्षा के लिए भी।

"घोड़ा रोय घोड़सार म
घोड़ सार मा ओ
हाथी रोवय हाथी सार मा
मोर रानी ये ओ महल मा रोवय
मोर राजा रोवय दरबारे ओ, दरबारे ओ
भाई ये दे जी।" [13]

x x x

"आगू-आगू मिरगा दौड़य
जेखर पाछू मा ओ
देख तो दीदी भरथरी ये
साँप सलंगनी ओ
बिछी तुरंगिनी न
हरिना के उचाट
कुकुर लुंगी ये ओ
बाग-चोपी ये न
मोर भागत हे मिरगा सपेटा ओ
ये सपेटा ओ, भाई ये दे जी।" [14]

भरथरी लोक गाथा में भी गायन प्रमुख है, किन्तु अब नए लोक गायक-गायिकाओं ने इस गायन परम्परा में अभिनय का महत्व स्वीकार कर भरथरी में अभिनय का समावेश किया है। श्रीमती सूरूजबाई खांडे व रेखा जलक्षत्री की प्रस्तुति से यह आभास मिलता है। यहाँ की प्रचलित अन्य लोक गाथा है चंदैनी। चंदैनी लोरिक व चंदा के प्रेम की परिणति है। चंदैनी प्रेम गाथा है, जिसमें प्रेम के साथ-साथ लोरिक की वीरता का बखान हुआ है। पहले चंदैनी गायन की परम्परा में अभिनय का पुट नहीं था, किन्तु विगत् दो दशक से चंदैनी गायन शैली नाट्य रूप में परिणित-परिवर्तित दिखाई देती है। चंदैनी गायन में पहले दो ही कलाकार होते थे। मुख्य गायक और रागी (खंजेरी वादक या तबला वादक) चंदैनी गायक इसे चिकारा की संगति में गाते थे। लेकिन अब इसके स्वरूप में एकदम से परिवर्तन आ गया है।चंदैनी दल में अब छै: से दस कलाकार होते हैं और इसका प्रदर्शन अब पूर्णत: लोकनाट्य रूप में होता है। चंदैनी को ये लोक कलाकार कथारूप में न कहकर मंच पर अभिनित करते हैं। लोरिक, चंदा, राजा-रानी, दौना, मालिन आदि चरित्रों को अलग-अलग पात्रों द्वारा जीवन्त किया जाता है।

चंदैनी में लोक नाट्य की सारी विशेषताएं पाई जाती हैं। अत: इसमें अभिनय तत्वों की प्रधानता है। अब यह पूर्ण रूप से लोक नाट्य के रूप में प्रदर्शित होता है।

''खावत मीठ गुड़ चोंवरा ये संगी चुहकत म कुसियार हो गावत म गीत चंदैनी ए संगी, सुनिहौ कान लगाय हो। (राजा महर) के बेटी चन्दा मने मन गुने दिल म बिचारे संगी, ओ समय के बेरा म राजा महर के बेटी चंदा का बोलत हावय दीदी, चौदा झन चेरी ल मन म गुने दिल म बिचारे टुरी बोड़रहीन, दिया बुतैया, बासी चोट्टी, चांदी चरिहा, फरिका पेलन मर रे गड़ौनी तोर जऊँहर होतिस, मर रे गड़ौनी तोर चौपट होतिस टूरी, आज में हा गौरा बाजार जाहँव केहेंव ओ ऽ ऽ ऽ। आज टूरी का चीज खंगे हे का सब्जी खंगे हे, तोर आँखी नई दिखे रे चम्पी ऽ ऽ ऽ।

जऊने समय कर बेरिया में ओ ऽ ऽ
मोर गारी देवय चंदा ये दिन तोर
मोर बोलत हवय दीदी ओ ये दिन तोर
मोर बोलत हवय चंदा ह ये दिन तोर
वही रे समय में ग ये दिन तोर
मोर चम्पी ल ग भईया ये दिन तोर।''[15]

देवार गीत, बाँस गीत, बसदेवा गीत, गोपी चंदा व ढोला-मारू की अपेक्षा भरथरी, चंदैनी व पंडवानी में विस्तार अधिक हैं। ये तीनों गाथाएं महाकाव्यात्मक है। महाकाव्य की सारी विशेषताएं इन लोक गाथाओं में प्रतिफलित होती हैं, जिसमें पंडवानी, चंदैनी व भरथरी से भी अधिक लोकप्रिय व मनोरंजक है।

महाभारत केवल पढ़ने की वस्तु है, उसे पढ़कर ही उसके पात्रों और चरित्रों के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है। जबकि पंडवानी पढ़ने की नहीं अपितु सुनने और देखने की वस्तु है। पंडवानी को बिना पढ़े उसे देख व सुनकर उसके पात्रों से कथा गायक के माध्यम से जीवन्त साक्षात्कार किया जा सकता है। पंडवानी अलिखित है। अत: इसे पढ़ने का सवाल ही नहीं उठता। प्राचीन पंडवानी गायन की परम्परा केवल भजन शैली में थी, जिसमें अभिनय तत्व के दर्शन नहीं होते। अब परिस्थितियाँ बिल्कुल विपरीत हैं। पंडवानी में अब केवल गायन ही नहीं, अपितु अभिनय तत्वों का सुन्दर सम्मिश्रण मिलता है।

छत्तीसगढ़ में कथाकथन व कथा गायन की पूर्व परम्परा में अभिनय की प्रवृत्ति बहुत कम मिलती थी। आधुनिक चंदैनी गायन के साथ-साथ पंडवानी में भी अभिनय की परम्परा अर्वाचीन है। पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि चंदैनी में वादक कलाकारों

के अतिरिक्त भी कई पात्र होते हैं। वह अब पूर्णत: एक लोकनाट्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है , जबकि पंडवानी वादक कलाकारों व रागी के अतिरिक्त केवल एक ही कलाकार द्वारा प्रस्तुत की जाती है। चूँकि इसमें कथा गायन व अभिनय की परम्परा केवल एक ही कलाकार द्वारा निबाही जाती है इसलिए इसे नाट्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती पर वह अपने आप में सम्पूर्ण एकाभिनय तो है ही। पंडवानी में अभिनय व नाट्य तत्व आसानी से दिखाई पड़ते हैं, जो किसी भी नाट्य से किसी माने में कम नहीं है। वैसे तो रामायण व महाभारत को लेकर कई नाटक व नृत्य नाटिकाएं मंचित की जाती हैं। रामायण कथा पर रामलीला की विकसित नाट्य धर्मी व लोकधर्मी परम्परा उपलब्ध होती है। इसी प्रकार महाभारत के प्रसंग विशेषों को नाट्य रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें भी नाट्य धर्मी परम्परा ही प्ररिलक्षित होती है। पंडवानी महाभारत की कथा होकर भी नागर मंचीय परम्परा के विपरीत है। यह पूर्णत: आँचलिक प्रभावों से परिपूर्ण है। कुछ हद तक यह स्थानीय लोकनाट्य शैली नाचा में गायन, नृत्य व अभिनय तीनों समान रूप से मिलते हैं। ठीक इसी प्रकार विगत् दो दशक से प्रचलित पंडवानी गायन में भी कथा कथन के साथ ही गायन, नृत्य व अभिनय की प्रवृत्ति मिलती है। गायन, नृत्य व अभिनय की यह परम्परा शास्त्रीय न होकर पूरी तरह लोक पर आधारित है।

वैसे भी पंडवानी विविध घटनाओं और कर्मों से भरी हुई है। इन घटनाओं और प्रसंगों में अभिनय की बड़ी गुंजाईश होती है, जिसका भरपूर उपयोग पंडवानी गायक श्रोताओं को प्रभावित करने के लिए करता है। वह अपनी गायकी की प्राचीन परम्परा का परित्याग कर खड़ा हो जाता है और उसके पाँव अनायास थिरक पड़ते हें, वह भावों से ओत-प्रोत हो जाता है। यदि बैठा भी है तो वह रोमांचित हो कथा को गायन के साथ-साथ भावाभिनय के माध्यम से उड़ेल देता है।

भावाभिनय की यह आकांक्षा समय-समय पर श्रोताओं दर्शकों और कला समीक्षकों का प्रोत्साहन पाकर परिपुष्ट हुई है। उल्लेखनीय है कि श्री पूनाराम निषाद की पंडवानी में पहले गायन की परिपक्वता तो थी किन्तु अभिनय पक्ष उतना सबल नहीं था। श्री पूनाराम निषाद को प्रसिद्ध रंगकर्मी व नाट्य निर्देशक श्री हबीब तनवीर ने अपने नये थियेटर के माध्यम से नाटकों में प्रस्तुत किया। उन्होंने पंडवानी की प्रस्तुति विभिन्न महानगरीय मंचों पर की। जाहिर है इतने बड़े नाट्य निर्देशक का संसर्ग व अभिनय की तकनीकी दृष्टि पाकर उनके पंडवानी गायन में अभिनय का पक्ष प्रबल होगा ही। कुछ अंतराल बाद पंडवानी गायन क्षेत्र में श्रीमती तीजन बाई प्रतिष्ठित होने लगी। अपनी गायन क्षमता व अभिनय क्षमता के कारण सर्वत्र प्रशंसा की पात्र बनी। उन्हें भारत

सरकार की ओर से पद्‌म श्री से पुरस्कृत व सम्मानित किया गया। इन्हीं दिनों श्री श्याम बेनेगल ने अपने टी.वी. सीरियल भारत की खोज में श्रीमती तीजन बाई को प्रस्तुत किया। निःसंदेह यह पंडवानी की लोकप्रियता, भाव प्रवणता व अभिनय की जीवंतता का परिणाम है। इस उत्साह व परिणाम से अन्य पंडवानी गायक व गायिकाओं को प्रोत्साहन मिला, प्रेरणा मिली और गायन के साथ-साथ स्वस्फुर्त अभिनय पक्ष की ओर ध्यान दिया।

आज कला के विश्व मंच पर पंडवानी की जो प्रतिष्ठा बढ़ी है, उसका कारण पंडवानी में अभिनय तत्व की प्रबलता है। पंडवानी केवल गायन नहीं है यह अभिनय की असीम संभावनाओं का कलारूप है। श्री झाडूराम देवांगन हों या श्री पूनाराम निषाद, श्रीमती तीजन बाई हो या कु. ऋतु वर्मा पंडवानी में उनकी व पंडवानी की प्रतिष्ठा के पीछे इनके अभिनय शैली में जीवन्त प्रभावोत्पादकता का ही हाथ है। आज जन-जन में पंडवानी की लोकप्रियता का प्रमुख कारण गायन की रोचकता के साथ-साथ उसकी साभिनय प्रस्तुती है। पंडवानी की प्रस्तुती में अभिनय का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। जिन्होंने भी मंच पर श्री झाडूराम देवांगन या श्रीमती तीजन बाई का पंडवानी गायन सुना होगा वे इसका सहज अनुभव कर सकते हैं।

"रामे ग रामे रामे ग रामे भाई" की टेर से शुरू करने वाले पंडवानी गायक श्री झाडूराम देवांगन दूसरे ही क्षण -

"ओहिदे भीमे ग आवत हो ही भाई" कहते ही उनके रूप की विकरालता क्रोधाग्नि से जलती रक्तिम आँखे उन्हें भीम के रूप में जीवन्त करती है और फिर दूसरे क्षण वे मात्र पंडवानी गायक की तरह सामान्य रूप से सूत्रधार की तरह कथा को विस्तार देते हैं -

"महाराज भीमसेन आ रहे हैं। भीमसेन आवथे तेन छोटे चिन्हत हे न बड़े चिन्हत हे। मार-मार सबला मारत हे। अश्वत्थामा सोचने लगे भीम अपने आप को वीर समझता है। सारी दल को नाश कर रहा, क्या! कौरव दल को कायर समझ रहा है। गुरू द्रोणाचार्य पुत्र अश्वत्थामा कहते हैं।"[16] - ऐसा कहते ही श्री झाडू राम देवांगन अश्वत्थामा के रूप में प्रस्तुत होते हैं - "मेरे रथ को वहाँ ले जाओ, जहाँ पवन नंदन भीम है वह अपने आपको क्षत्रिय समझकर कौरव दल को तहस-नहस कर रहा है मैं उसे दिखा दूंगा गुरूद्रोणाचार्य का पुत्र हूँ।" फिर अश्वत्थामा की गर्जना करते हुए - "खामोश भीमसेन जानते नहीं मेरा नाम अश्वत्थामा है। चारों देवता तोर रक्षा करहीं इन्द्र, वरूण, यम अउ पवन तभो तोर जीव नई बांचे।"[17] श्री झाडूराम की भरपूर देह-काठी वीर पात्रों के चरित्र

को जीने में सहायक बनती है। वीर पात्रों को अभिनीत करते हुए उनका मुँह गुब्बारे की तरह हो जाता है। आँखे गुस्से से लाल हो जाती है। भृकुटियाँ तन जाती हैं। वीरों की तरह जांघ पर ताल ठोकर, मूंछों पर ताव देते हुए तमूरे को गदा की तरह अपने कंधे पर उठाकर तन जाते हैं। तमूरा पात्रानुकुल अस्त्रों का कार्य करता है। कभी गदा, कभी धनुषबाण तो कभी तलवार बन जाता है तमूरा। उचित आरोह-अवरोह के साथ संवाद की संप्रेषणीयता के कारण पंडवानी पूरी तरह अभिनय ही लगती है। अभिनय की ऐसी सजीवता पंडवानी का वैशिष्ट्य है।

पंडवानी गायक अकेले सारे पात्रों के चरित्रों को अपने अभिनय के माध्यम से उजागर करता है। अभिनय के प्रशिक्षण के अभाव में भी पंडवानी गायक पंडवानी पात्रों को मंच पर एक कुशल अभिनेता की तरह रूपायित कर स्वयं उस पात्र के रूप में साकार उपस्थित होता है। तब वह केवल पंडवानी गायक नहीं बल्कि एक कुशल व दक्ष अभिनेता भी होता है। चाहे वह स्त्री की भूमिका हो या पुरूष की भूमिका सबको सहज निष्चेष्ट व निर्बाध निबाहता है। कुटिल दुर्योधन का चरित्र जीने वाला पंडवानी गायक दूसरे ही क्षण भयंकर भीम का अभिनय करता है और फ्रिर देखते ही देखते वह आर्तनाद करती द्रौपदी के रूप में अभिनय को सजीवता प्रदान करता है , तो कभी शांत, सरल धर्मराज तो कभी अंधा धृतराष्ट्र सब कुछ बिजली की गति से, लेकिन सहज और सामान्य। यह पंडवानी का साभिनय सजीव प्रदर्शन का प्रमाण है।

श्रीमती तीजन बाई का पंडवानी गायन इस समय प्रसिद्धि के शिखर पर है। पंडवानी में अभिनय पक्ष के मामले में शायद ही कोई उसकी बराबरी करे। स्त्री होकर भी मंच पर पंडवानी पात्रों को पूरी सजीवता व सहजता के साथ जीने में वे बड़ी लाजवाब है। तीजन बाई मंच पर खड़े होकर पंडवानी गायन करती है। इसलिए और भी उन्मुक्तता के साथ पूरी तरह से सजीव, नृत्ययुक्त उनकी प्रस्तुती में अभिनय का सुन्दर सम्मिश्रण रहता है। आनुपातिक दृष्टि से अभिनय की प्रधानता होती है। यह पंडवानी का उज्जवल पक्ष है। द्रौपदी चीर हरण के प्रसंग में कोमल हृदया स्त्री होकर भी वह दुर्योधन जैसे दुष्ट पात्र का कठोर आचरण निभाती है। उनके होंठो पर कुटिल मुस्कान के साथ क्रूर अट्टाहस, आंखों में तैरती कामुकता, कुटिलता और कटाक्ष देखकर श्रोता सन्न रह जाता है। आश्चर्यचकित विस्फारित नेत्रों से देखते रहता है। दूसरे ही क्षण अपने लाज की रक्षा के लिए विलाप करती द्रौपदी की करूणा को बड़े ही मनोयोग से प्रस्तुत करती हैं। करूण रूदन, आर्तनाद, आंखों से झर-झर झरते मोती, सिसकियों में डूबे संवाद स्वयं द्रौपदी बनकर श्रोताओं को झकझोर देती है। सन्न श्रोता समुदाय की सहानुभूति और संवेदनाएं

आंसू व सिसकियों के रूप में फूट पड़ती है। जिसके अंतर में अभिनय की कुशलता के लिए प्रशंसा की चमक उनकी आंखों में होती है। यही है अभिनय का चरमोत्कर्ष, जहाँ किसी पात्र को जीने वाला कथा गायक, कथा गायक न होकर स्वमेव पात्र बन जाता है। पात्र का सुख-दुख, हर्ष-विषाद, जय-पराजय पात्र को जीते तक उसका अपना हो जाता है।

एक कलाकार द्वारा सारे पात्रों को जीना बड़ा दुरूह कार्य है, लेकिन यह दुरूहता पंडवानी गायक के लिए कोई बड़ी बात नहीं है। पंडवानी में सैकड़ों पात्र हैं, सारे पात्रों का स्वभाव और कर्म पूरी तरह से अलग-अलग। फिर भी सैकड़ों पात्रों को पंडवानी गायक अभिनित करता है। एक अकेले अपने दम-खम पर। ऐसी कुशलता और ऐसी काबिलियत सबके वश की बात नहीं। दुष्टता, कुटिलता, विनम्रता हास-परिहास,नारी हृदय की कोमलता सारे भावों को क्षण-प्रतिक्षण तत्काल मंच पर बिना अपेक्षित वेशभूषा के सहज और सामान्य रूप से प्रदर्शित करना ही अभिनय की कुशलता है। अभिनय की कुशलता का ऐसा अनुपम उदाहरण सुभद्रा हरण प्रसंग में दृष्टव्य है जिसमें श्रीमती तीजन बाई निर्झर की तरह चंचल, पंछी की तरह उन्मुक्त सुभद्रा और संकोची अर्जुन का किरदार अपने पंडवानी में सजीव साकार करती है -

"रथ चलाये ल मोला नई तो आवय भाई
देवी सोहदरा अर्जुन ल ताना मारे भाई
नारी ल तैं बिल्कुल गय बीते हस भाई
तैं मर्द समान नई बोले ग भाई
मार के ताना ये सहोदरा चलय का
नारी ले गय बीते हवय कहे भाई।"[18]

पंडवानी को जो गायक-गायिकाएं खड़े होकर गाते हैं। उनके ही पंडवानी गायन में अभिनय का पुट है, ऐसी बात नहीं है। अभिनय तो अभिनय है उसके लिए खड़े होकर या बैठकर गाने की मुद्राओं का भेद नहीं है, बल्कि मुद्राओं में ही तो अभिनय है। यह कथागायक की व्यक्तिगत क्षमता और अभिनय कुशलता पर निर्भर है और यह गायक कलाकार के शारीरिक आकार-प्रकार से भी प्रभावित होता है। श्री पूनाराम निषाद के बड़े-बड़े बाल, केवल धोती पहनकर खुले बदन मंच पर उनका पंडवानी गायन अभिनय को सजीवता प्रदान करता है। खुला बदन, सांवला रंग बड़ी-बड़ी आँखे चेहरे का विराट भाव, कभी अट्टाहास कभी मृदु मुस्कान, कभी कारूणिक विलाप, कभी तन कर उठ बैठना, कभी अभिमान पूर्वक घुटनों के बल चलना, कभी सकुचाना,

कभी स्त्री सुलभ संकोच और कभी एकाग्रचित सोच, ये सारे ढंग पंडवानी को अभिनय की कसौटी में कसते हैं, जिसमें पंडवानी खरी उतरती है, सौ फीसदी टंच सोने की तरह।

हाथ जोड़कर अर्जुन का विनम्र भाव से खड़ा होना -

अगा हाथे ग जोड़ के खड़ा ग होव भाई
अर्जुन ह ग खड़े हावे ग मोर भाई।

कहते ही हाथों का जुड़ जाना

"भगवान ह समझगे अर्जुन ह मोर समझगे
तब पीताम्बर फेंकन लागे भाई
अपने मुख ल खोलन लागे भाई

के साथ ही झटपट उठ बैठना जैसे वह स्वयं सचमुच सोया हो और उठकर बैठ रहा हो -

या। अर्जुन कतेकबेर के तैं आए हस। तैं खड़े हस गोड़ डाहर मैं सुते हवं
अपने छाती में लेवन लागे भईया जी
अपने गला में लेवन लागे भईया।" [19]

यह गाकर तमूरे को ही अर्जुन मान उससे गले लिपटकर भेंट करना अभिनय की परिपक्वता का साक्षात् प्रमाण है।

आंगिक और वाचिक चेष्टाएं, उनकी गत्यात्माकता अभिनय है। संवादों के उतार - चढ़ाव के साथ-साथ अंग संचालन के माध्यम से अभिनय जीवंत बनता है। कभी-कभी इसकी जीवन्तता संवादहीन होकर भी मुख मुद्राओं और अंगिक क्रिया कलापों के द्वारा मूकाभिनय के रूप में दिखाई पड़ती है। यह भी पंडवानी गायक की अभिनय कुशलता है। (चूंकि पंडवानी एकाभिनय है) जिस कलाकार को अभिनय में पकड़ जितनी अच्छी होती है उसका पंडवानी गायन उतना ही प्रभावकारी होता है। चूंकि पंडवानी गायक की अभिनय में रूचि और प्रवृत्ति जन्मजात होती है। अत: वह और भी सहज, सौम्य और आकर्षक होता है। ऐसे ही एक बिरले और अभिनय के धनी पंडवानी गायक हैं श्री खम्हन लाल अस्तुरे। छोटी - छोटी दाढ़ी, अट्टाहास के समय दाढ़ी व मूछों के बीच से झांकती दंत मुक्तावली,रक्तिम आंखे,घुटनों के बल वीरोचित पद संचालन का अभिनय पात्रों को मंच पर उतार देता है।

अभिमन्यु का शांता द्वार प्रवेश प्रसंग का अंश उद्धृत है, जिसमें गायक द्वारा दुर्योधन द्रोणाचार्य व अभिमन्यु के चरित्रों को क्षण भर के अन्तर में जीया गया है -
"राजा दुर्योधन सब सेना मन कहे अरे - का देखथव तुमन, तुमन ल सरम भी नी लागे

एक अकेला अभिमन्यु आते, सात-सात दरवाजा में तहलका मचावत हे, कहे का देखत हव ? राजा दुर्योधन के कठोर शब्द ल सुनके द्रोणाचार्य कहे - दुर्योधन जब तक अभिमन्यु के हाथ म धनुष बाण रही तोला कोन कहे -

जब लग अस्त्र रहेव कर माहि
तीन लोक कोऊ जीतत नाहिं ।

तोला कोन पूछत हे दुर्योधन तीन लोक के देवता अगर एक साथ लड़ई करय अभिमन्यु के पास विजय प्राप्त नई कर सकय ।

X X X

दुर्योधन तुम लोग यही विचार करते हो न अभिमन्यु के बाण काट दे और विजय प्राप्त कर ले, ह:ह:ह: लेकिन दुर्योधन तुम लोगों से मुकाबला करने के लिए पाण्डव पक्ष में हर बालक अर्जुन के समान है ।" [20]

अनेक पात्रों को एक ही मंच पर एक साथ, एक समय में, एक ही व्यक्ति द्वारा जीना नि:संदेह कठिन कार्य है। लेकिन पंडवानी गायक के लिए इसमें कोई दिक्कत नहीं है। यही उसकी कला प्रवीणता है , अभिनय की कुशलता है। इन लोक कलाकारों के अभिनय कौशल से लोक मानस तो प्रभावित होता ही है बल्कि शिष्ट वर्ग के उन प्रशिक्षित अभिनेताओं का दंभ भी टूटने लगता है जो लोक कला और लोक कलाकारों को हेय दृष्टि से देखते हैं। आज पंडवानी केवल कथा गायन नहीं है, अपितु अभिनय तत्वों से संपूरित कलारूप है। पंडवानी में अभिनय की संभावनाओं को देखते हुए अनेक पंडवानी गायक साभिनय पंडवानी गायन करते हैं। ऐसे पंडवानी गायकों में श्री झाडूराम देवांगन, पद्म श्री तीजन बाई, श्री पूनाराम निषाद, कु. ॠतु वर्मा के अतिरिक्त शांतिबाई चेलक, मीनाबाई साहू, उषा बाई बारले, श्री खम्हनलाल अस्तुरे, श्री अघनू निषाद, प्रहलाद निषाद व चेतनलाल देवांगन इत्यादि प्रमुख हैं।

वस्तु संरचना और चरित्र के स्वरूप पर प्रभाव -

पंडवानी गायक कथा गायक होते हैं, अभिनय विधान व उसकी बारिकियों से पूरी तरह अंजान। उन्होंने अभिनय का न तो कोई प्रशिक्षण लिया है और ना ही कोई दीक्षा। लेकिन कथा गायन के माध्यम से वे भावों में इतने डूब व रंग जाते हैं कि उनकी भाव प्रवणता को देख कुशल व दक्ष अभिनेता भी दाँतो तले ऊंगली दबा लेते हैं। पंडवानी के विविध पात्रों को जीने वाले एक कथा गायक की सहज और स्वाभाविक अभिनय क्षमता उसे कुशल और प्रशिक्षित अभिनेता की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देती है। पंडवानी के चरित्रों के अनुरूप कथागायक की आंगिक चेष्टाएं, मुख्य मुद्रा व उनके

हावभाव महाभारत के पात्रों को मंच पर एक साथ रूपायित कर देता है।

पंडवानी गायक की यह अभिनय क्षमता महाभारत की वस्तु संरचना को पंडवानी में ढाल कर कथा में नवीनता का संचार करती है। पंडवानी महाभारत की मूल कथा होकर भी आंचलिक लोक लालित्य व लोक तत्वों के सुहागे से और भी दैदिप्यमान हो स्वर्ण किरीट की तरह शोभित होती है। लोक व अभिनय की संजीवनी पाकर शुष्क व निरस कथाएं भी सजीव हो उठती हैं और इसी प्रकार से पंडवानी महाभारतीय वस्तु संरचना को प्रभावित करती चलती है, जिससे कथा क्रम में कई मोड़ आते हैं। कथा गायक अपनी कुशलता के साथ बड़ी सफाई व चतुराई से उन्हें मूल कथा से जोड़ देता है। श्रोताओं को आभास भी नहीं हो पाता कि यह मूल कथा से विछिन्न कथा है बल्कि वह कथा गायक की गायन शैली से और भी चमत्कार पूर्ण और प्रभावशाली हो जाती है। एक बानगी प्रस्तुत है -

ऋषि दुर्वासा द्वारा प्रदत्त माल मंत्र के परीक्षण स्वरूप कुँवारी कुंती एक बालक को जन्म देती है और उसे लोक लाज के भय से गंगा में बहा देती है -

कर्ण मार्ग कर भो अवतारा, कुंती ताहि नीर में डारा। [21]

उस बालक को अधिरथ नामक धीमर (केंवट) अपने घर उठा लाता है। वह और उसकी पत्नी राधा उसका पालन-पोषण करते हैं। कर्ण के बड़े होने पर उसे अन्य समव्यस्क बालक बिना माता-पिता का बेर्रा कहकर तिरस्कृत करते हें, उसे चिढ़ाते हैं।

शूद्र अधीरथ धीमर नामहिं, सो तो गयो अस्नानहिं।
देखा सुंदर बालक आही , सो लै गो अपने गृह माही।
राधा नाम तासु के नारी, प्रतिपालन किन्हों त्यहिं भारी। [22]

X X X

पाँच सात वर्ष के जब भयऊ, बालक संग खेलत तब गयऊ
सब मिति देहि कर्ण को गारी, तेरो कहाँ पिता महतारी। [23]

यह महाभारत की मूल कथा है। अधिरथ कर्ण को नदी से उठाकर लाता है, यह उसके गाँव वालों को ज्ञात है। अधिरथ के गाँव वाले यह भी जानते हैं कि यह बालक बिना माता-पिता का है। अत: कर्ण के हम उम्र साथियों के द्वारा कर्ण को बिना माँ-बाप का कहकर चिढ़ाना या सताना स्वाभाविक है। इसी कथा को पंडवानी गायक अपने गायन व अभिनय कौशल से नया मोड़ देता है। कर्ण जन्म की कथा को लोकाचार व लोक व्यवहारों की दृष्टि से इसकी वस्तु संरचना को प्रभावित करता है। पंडवानी

गायक इसे इस रूप में कहता है -

"अधिरथ मुंदरहा ले मछरी मारे ल गे राहय, नंदिया के धार म लइका ल बोहावत देखिस, कलेचुप ओला उठा के घर लानिस। अधिरथ के कोनो लइका बच्चा नई राहय। केंवटिन कहिथे अइसन में तो हमर बड़ फदीत्ता हो ही। तेखर ले मैं कुछु उदीम लगाँव कहिके केंवटिन अपन पेट म परई अऊ जुनहा फरिया ल बांध लिस। केंवटिन दूरस अम्मल में हे तइसे पोटपिट ले दिखय। गाँव भर गिंजरय अऊ काहय मछरी ले लौ ओ ऽ ऽ ऽ मछरी। जऊने देखय तऊने काहय अई देख तो भगवान के लीला घलो अपरम्पार हे दाई। केंवटिन ल बूढ़त काल म भगवान चिन्हे हे। बने होगे बिचारी-बिचारा मन के एको झन बाल-बच्चा नई रिहिसे।" [24]

पंडवानी गायक की यह लोक दृष्टि है, जो लोक का स्पर्श पाकर विच्छिन्न कथा भी अविछिन्न बन जाती है। पंडवानी गायक इस प्रसंग को अपनी अभिनय क्षमता के आधार पर हू-बहू मंच पर उतार देता है। दोनों हाथों को पेट के समानान्तर प्रदर्शित कर गर्भस्थ शिशु को बताना व गर्भवती स्त्रियोचित भाव-भंगिमा का प्रदर्शन कर उसकी आम-इमली खाने की इच्छाओं का प्रगटीकरण कर लोक मर्यादा व लोकाचार के अनुरूप कथा को आकर्षक बनाता है। विषयान्तरित होने या प्रसंग से हटने का दोषारोपण पंडवानी गायक पर नहीं किया जा सकता। इस तरह पंडवानी में गायक की अभिनय कला वस्तु संरचना और चरित्र के स्वरूप को प्रभावित करती चलती है।

महाभारत की प्रमुख घटनाएं लाक्षागृह की कथा, द्रोपदी स्वयंबर, द्युत क्रीड़ा, द्रोपदी चीरहरण, पांडवों का अज्ञातवास, महाभारत युद्ध प्रसंग , अभिमन्यु वध, भीष्म पितामह की मृत्यु व दुर्योधन-भीम गदा युद्ध सब जगह कहीं न कहीं राजनीतिक चालबाजियाँ हैं। एक प्रकार से महाभारत राजनीतिक विद्वेष, सत्य-असत्य, ईर्ष्या द्वन्द्व की कथा है। किसी भी प्रसंग में ऐसी कथाएं न हों ऐसा नहीं है। महाभारत कथा की पृष्ठभूमि ही बालक दुर्योधन की कुटिलता, छलकपट और ईर्ष्या-द्वेष का आश्रय पाकर आगे बढ़ती है -

"चिंता करि दुर्योधन राई, मारन भीम को रच्चो उपाई।
महाबली सो मारत न मारा, दै के गरल करव सहारा।
एक दिन प्रेम बहुत तब कीन्हा, छल करि गरल भीम को दीन्हा।
तब गंगा में दीन बहाई, बूड़े भीम पतालहिं जाई।" [25]

लाक्षागृह में पांडवों को नष्ट करने की कुचेष्टा भी दुर्योधन का घृणित हथकंडा है, जिसमें वह सफल नहीं होता। दुर्योधन की एक छत्र राज्य करने की लालसा हो या

इसके पीछे इसी भावना से प्रेरित होकर द्रोपदी का चीर हरण या पाण्डवों को वनवास के लिए विवश करना -

"अब द्रौपदी वसन निज त्यागू, बैठि जांघ मम करू अनुरागू।" [26]

X X X

"पकरेसि बसन दुशासन जाई, सरूष प्रचारत पुनि कुरूराई।" [27]

महाभारत की उपरोक्त सारी कथाएं और प्रसंग आद्योपांत पंडवानी में समाविष्ट रहती है, किन्तु पंडवानी तक आते-आते इन कथाओं की वस्तु संरचना अवश्य प्रभावित होती है। इसका कारण लोक तत्व है जो पंडवानी गायक द्वारा कथा में अनायास ग्रहण कर लिए जाते हैं। गायक की अभिनय कुशलता के साथ-साथ स्थानीय लोक विश्वास भी वस्तु संरचना को प्रभावित करते हैं। लाक्षागृह कथा में रंगहा तेली की कथा, युद्ध भूमि की तैयारी में मेडुवा की कथा (जिनका उल्लेख अध्याय 2 में किया जा चुका है) लोक आस्था के सुंदर उदाहरण हैं।

पंडवानी में शौर्य, शांति के साथ-साथ भक्ति का रंग ज्यादा निखरा है। महाभारत में जहाँ युद्ध की विभिषिका है, वहीं पंडवानी में यह सब कुछ होते हुए भी भक्ति भावना, श्रद्धा और विश्वास प्रत्येक क्षण मौजूद मिलते हैं। वैसे भी पंडवानी गायक का प्रारंभिक उद्देश्य भगवद्भजन है। महाभारत के सूत्रधार श्री कृष्ण की भक्ति से पंडवानी रंगी हुई है। पंडवानी की प्रारंभिक वन्दना में श्रीकृष्ण व राम की भक्ति पर पदावली का गायन किया जाता है। पंडवानी पुरोधा श्री झाडूराम देवांगन व अन्य कई गायक पंडवनी गायन में

"रामे रामे रामे रामे रामे गा भाई।"

को टेक पदों के रूप में गाते हैं। पंडवानी का मूल मनोरंजन के साथ भगवान की भक्ति है -

"चरण कमल बलिहारी रघुनाथ कुंवर की।
शोभा बरनी न जाई रघुनाथ कुंवर की।" [28]
"सिया राम भजन कर प्राणी ग
तोर दू दिन के जिनगानी ग।" [29]

X X X

"जै बोलो वृन्दावन विपिन बिहारी न।
गिरवर धारी मोहन मुरारी ये भाई।" [30]

X X X

"कृष्ण कन्हैया रे भाई
राजा कृष्ण कन्हैया रे भाई
कृष्ण कन्हैया दही लुटया ओ गोकुल में
कृष्ण कन्हैया रे भाई।" [31]

वर्तमान में पंडवानी लोकरंजन की सबसे लोकप्रिय लोक विद्या है। यह दार्शनिक द्वन्द्व से नितांत परे है। जहाँ विशुद्ध मनोरंजन की आवश्यकता हो उसे दार्शनिकता के द्वारा सहज सुलभ नहीं कराया जा सकता। दार्शनिक बातें विषय को शुष्क और नीरस बना देती हैं। ऐसी बातें श्रोताओं को रास नहीं आती और गायन उबाऊ लगने लगता है। दर्शन की बातें अभिनय को विलोपित कर देती हैं। पंडवानी के श्रोता और दर्शक केवल मनोरंजन चाहते हैं, शिक्षा तो मनोरंजन के साथ स्वमेव मिलती जाती है। पंडवानी में लोकानुरंजन व अभिनय की यह प्रकृति कलाकार के व्यक्तित्व से भी प्रभावित होती है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व अलग-अलग होता है। पंडवानी गायक का बाह्य व्यक्तित्व उसकी अभिनय कला की ओर भी सुंदर ढंग से प्रस्तुत करने में सहायक होता है।

सन्दर्भ -

1. रूपक रहस्य : डॉ. श्यामसुन्दर दास : पृष्ठ : 1
2. लोकधर्मी प्रदर्शनकारी कलाएं : श्री देवीलाल सामर : पृष्ठ : 122
3. गद्य मुक्तावली : संपादक श्री रामनाथ गार्ग्य पृष्ठ : 71-72
4. लोक नाट्य परम्परा और प्रवृत्तियां : डॉ. महेन्द्र भानावत : पृष्ठ : 4
5. लोक धर्मी , प्रदर्शनकारी कलाएं : श्री देवीलाल सामर : पृष्ठ : 107
6. सम्मेलन पत्रिका : चैत्र-ज्येष्ठ 1885 शक : पृष्ठ : 135
7. निजी संग्रह से
8. ------ वही ------
9. ------ वही ------
10. ------ वही ------
11. ------ वही ------
12. ------ वही ------
13. भरथरी : छत्तीसगढ़ी लोक गाथा : नंदकिशोर तिवारी : पृष्ठ : 1
14. ------ वही ------ पृष्ठ : 10
15. निजी संग्रह से
16. ------ वही ------
17. ------ वही ------
18. ------ वही ------
19. ------ वही ------
20. ------ वही ------
21. महाभारत (गुटका) श्री सबल सिंह चौहान : पृष्ठ : 16
22. ------ वही ------" ------ " ------"
23. ------ वही ------
24. निजी संग्रह से
25. महाभारत (गुटका) श्री सबल सिंह चौहान : पृष्ठ : 23
26. महाभारत (गुटका) श्री सबल सिंह चौहान : पृष्ठ : 116
27. ------ वही ------
28. निजी संग्रह से
29. ------ वही ------
30. ------ वही ------
31. ------ वही ------

अध्याय - 6

- पंडवानी कथा गायन का सांगीतिक पक्ष
- प्रयुक्त वाद्य
- लोकगीत शैलियां
- तालों का प्रयोग



पंडवानी गायक प्रहलाद निषाद

पंडवानी कथा गायन का सांगीतिक पक्ष

समग्र सृष्टि संगीतमय है। पेड़ पौधे, नदी-पहाड़, झरने, पक्षी सब गाते हैं। सबमें संगीत समाया हुआ है। चेतन-अचेतन सब में संगीत की व्याप्ति है। मानव भला इससे पृथक कैसे हो सकता है ? संगीत मानव मन की सुन्दरतम् अभिव्यक्ति है। "सृष्टि के स्वर्णिम विहान से लेकर प्रलय की काली संध्या तक संगीत का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ता है। जीवन ग्रंथ के पृष्ठों को कहीं से भी पलटिए ,कोई भी अध्याय ऐसा नहीं मिलता जिसे संगीत शून्य कह दिया जाय। युग सृष्टा मानव ने जन्म लेते ही गीत सुने और मृत्यु होने पर भी गीत सुनते-सुनते उसने शमशान यात्रा की। घंटे-घड़ियाल और रामनाम सत्य है की ध्वनियों के साथ उसका स्थूल शरीर भी शून्य में खो गया।" [1]

कला मानव संस्कृति की उपज है। रचनात्मकता उसकी सहज प्रवृत्ति है। अपने मनोंगत भावानाओं को अभिव्यक्त करने के लिए वह विभिन्न माधयम का आश्रय लेता है। "अमूर्त भावनाओं को मूर्त रूप देने के लिए हमें किसी भौतिक पदार्थ को माधयम बनना पडता है। यह पदार्थ जितनी ही हमारी आत्मा के निकट होगा उतना ही उत्तम होगा। हीगेल नामक जर्मन दार्शनिक के अनुसार शब्द हमारी आत्मा के सबसे अधिक निकट है। इसलिए शब्दों के माध्यम से अधिक स्पष्ट कर सकते है। ध्वनि में जो रूप होता है। उससे संगीत का जन्म होता है।" [2]

"गीतं वाद्य तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते"

अर्थात जिसमें गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों का समावेश हो वही संगीत है। संगीत का उद्भव कब और कैसे हुआ ? इस पर मतैक्य भले न हो लेकिन यह निश्चित है कि संगीत मानव सभयता के साथ ही विकसित हुआ। जीवन और संगीत का साहचर्य नैसर्गिक है। पुराविदों के अनुसार संगीत का उद्भव स्वयंभू परमेश्वर से हुआ।

"भारतीय परम्परा में संगीत का उद्गम वेदों से माना जाता है। यद्यपि संगीत शास्त्र के विवेचन के प्रसंग में सर्वप्रथम नाम साम संहिता का लिया जाता है , किन्तु उसमें उद्घृत मंत्र प्राय :ऋग्वेद के हैं। ऋचाएं गेय ही थी अत: संगीत की परम्परा इस देश में ऋग्वेद काल से भी बहुत पहले तक पहुँचता है।" [3]

संगीत की दो धाराएं प्रवाहित हैं (1) मार्ग और (2)देशी। "प्रथम में शास्त्र के अनुगमन के द्वारा कला की परिष्कृतता तथा अभिजातता पर धयान दिया जाता है, जबकि दूसरे मे लोकाभिरूचि नियामक तत्व होता है तथा शास्त्र पक्ष गौण है।"[4]

चूंकिसंगीत प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय नहीं है। अत:संगीत की विशद विवेचना पर न जाकर पंडवानी के लोक संगीतिक पक्ष पर ही प्रकाश डाल जा रहा है।

"लोक संगीत" लोक गीतों की आत्मा है। लोक की भावात्मक अभिव्यक्ति के रूप में जन मानस में गहराई तक स_न् संचरित और सुव्यवस्थित है। लोक जीवन में लोक संगीत की बहुलता जन्म से लेकर मृत्यृ पर्यन्त निनादित होती है।

लोक संगीत वह संगीत है जो क्षेत्र (अंचल) विशेष में प्रचलित होता है। इसका न कोई शास्त्रीय आधार होता है और न ही इसकी कोई शिक्षा-दीक्षा। फिर भी आबल - वृद्ध संगीत की इस परम्परा से संपृक्त होते हैं। "देशी संगीत के विकास की पृष्ठ भूमि में लोक संगीत है। जिस देश या जाति का संवेदन शील मानव जिस समय अपने हृदय में भावों को अभिव्यक्त करने के लिए उन्मुख हुआ, इसी अवसर पर स्वयंभू स्वर,लय प्रकृत्या उसके मुख से उद्भूत हुआ और उन्हीं स्वर, गीत और लय को नियम बद्ध कर उनका जो शास्त्रीय विकास किया गया वही देशी संगीत बना।"[5]

शिशु गर्भस्थ होने से लेकर जन्म संस्कारों, बाल्यजीवन के खेलों, विवाह संस्कारों और मृत्यु संस्कारों तक में सर्वत्र लोक संगीत की संप्रभुता लोक जीवन में संरक्षित है। शायद इसीलिए लोक संगीत का क्षेत्र शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा व्यापक और विशाल है। जिसे शिष्ट जन भी स्वीकार करते हैं। "लोक संगीत, लोक कथाएं और लोक गाथाएं सामान्यों के घर-आंगन में पलती रही, सामान्यों की जबान पर चढ़कर ही उच्चवर्णो के पास पहुंचती रही। शिल्प कर्म करने वाली लगभग सभी छोटी - बड़ी जातियां शूद्रों की गिनती में आती हैं। लुहार,सुनार,बढ़ई, कुम्हार, धोबी, नाई, केंवट, तेली, ठाकुर, नट, रथकार, नर्तक, वाद्यवादक अंत में कृषक तक।"[6]

लोक संगीत लोक जीवन के तीज त्यौहारों,पर्वों, उत्सवों और धार्मिक आयोजनों में इस तरह गुंफित है कि इन्हें एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। तीज त्यौहार और आयोजन लोक संगीत के बिना अधूरे और नीरस लगते हैं। "लोक जीवन का सुन्दरतम प्रतिबिम्ब लोक संगीत में दिखाई पड़ता है, क्यों कि लोक गीतों के शब्दों व स्वरों के चयन में कृत्रिमता का अभाव रहता है। उनमें लोक जीवन का सीधा-सादा परिचय होता है। ये व्यक्ति के बाह्य जीवन के साथ-साथ उसके मानसिक भावों के भी परिचायक होते हैं, परंतु उनमें सूक्ष्मता की अपेक्षा स्थूलता और स्पष्टता का अधिक महत्व होता है।"[7] अत: यह कहें कि लोक संगीत महासागर है तो अत्युक्ति न होगी। लोक संगीत से ही शास्त्रीय संगीत का रत्न प्राप्त हुआ है।

सांगीतिक दृष्टि से पंडवानी लोक संगीत की एक विधा है। गीत,संगीत और

अभिनय की त्रिवेणी है । पंडवानी अलिखित लोक गाथा है और इसका प्रमाणिक मूलपाठ अनुपलब्ध है जिसकी भविष्य में उपलब्धता की संभावना भी नहीं है । क्यों कि प्रत्येक गायक की गायन शैली अलग-अलग होती है । मूल कथा को छोड़कर भाषा बदलती रहती है । एक ही पंडवानी गायक के एक ही कथा प्रसंग में यह भिन्नता सहज रूप से दिखाई पड़ती है ।

पंडवानी गायक का अपना एक दल होता है, जिसका अगुवा स्वयं पंडवानी गायक रहता है । वह गायन के साथ- साथ एक हाथ से स्वर-साधन के लिए तमूरा बजाता है और दूसरे हाथ में करताल । चार-पांच सहयोगी कलाकार अन्य वाद्यों के साथ संगत करते हैं ।

छत्तीसगढ़ के लोक गीतों में चाहे वह प्रबंध गीत हो, या लोक गाथा या अन्य फुटकर लोक गीत उनमें सांगीतिक तत्व अनिवार्य रूप से मिलता है । पंडवानी गायक न छंद शास्त्र का ज्ञाता होता है और न ही संगीत शास्त्र का । वह परम्परा से प्राप्त धुनों का इस्तेमाल कर कथा को माधुर्य प्रदान करता है । पंडवानी छन्दबद्ध न होकर लय बद्ध है । शब्दों और स्वरों का सुंदर सम्मिश्रण ।

पंडवानी गायक "रामे ग रामे मोर रामे रामे भईया" से पंडवानी गायन की शुरूआत करता है । लय ही पंडवानी की विशेषता है । पंडवानी गायक लय के अनुसार ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को और दीर्घ को ह्रस्व कर लेता है । जहाँ किसी पंक्ति में अक्षर (मात्रा) कम पड़ते हैं वहाँ अक्षरों को जोड़कर पूरा कर लेता है ।

इन्हीं लयों से पंडवानी में रस का संचार होता है ।गायक गायन की सुविधा और लय पूर्ति के लिए अगा,रागी,भईया,भाई,रामा,बंधुवा आदि शब्दों का प्रयोग करता है । आवश्यकतानुसार टेक पदों को बीच-बीच में दुहराते चलता है ।

पंडवानी गायन में रागी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, वह सहयोगी गायक के रूप में पंडवानी गायक का साथ देता है । पंडवानी गायक जब किसी पंक्ति को बीच में छोड़ देता है तब रागी उसे विस्तार देता है

पंडवानी गायक - "चरण कमल बलिहारी
रागी - रघुनाथ कुंवर की ।
पंडवानी गायक - रामा, शोभा न वरनिजाई
रागी - रघुनाथ कुंवर की ॥" [४]

रागी अपने मजाकिया स्वभाव और हावभाव के कारण कथा में हास्य रस का संचार कर श्रोता वर्ग को चैतन्य बनाये रखता है । पंडवानी गायक के विषयांतरित होने या विस्मरण की स्थिति में बड़ी चतुरता के साथ गायक को वह सजग करता है जिसे श्रोता व

दर्शक समझ नहीं पाते। गायन के साथ-साथ रागी मंजीरा या घुंघरू भी बजाता है।

पंडवानी गायक बीच-बीच में विभिन्न प्रचलित और लोकप्रिय स्थानीय लोकधुनों का समावेश अपने गायन में करता है जिससे कथा का रस माधुर्य और बढ़ जाता है। "लोकगाथाओं में संगीत अनिवार्य रूप से रहता है। बिना संगीत के माध्यम से लोक गाथाओं के महत्व को हम समझ नहीं पाते हैं। लोक गाथाओं में साहित्य का अभाव रहता है। उनमें सूक्ष्म भावों की व्यंजना नहीं पाई जाती। अतएव संगीत ही लोकगाथाओं को भावपूर्ण एवं सुमधुर बनाती है। इनकी लोकप्रियता का सबसे कारण संगीत ही है। इनकी संगीत लिपि बनाना अत्यंत कठिन होता है। अधिकांश लोकगाथाएं द्रुत गति में गायी जाती है। इनकी अपनी ही एक अलग संगीत पद्धति होती है जिसे लोक संगीत (फोक म्यूजिक) कहते हैं।" [९]

लोक संगीत की दृष्टि से पंडवानी का सांगीतिक पक्ष सम्पन्न और समुन्नत है जहाँ प्राचीनतम लोक वाद्‌यों ने इसके लोक-तत्वों की रक्षा की है वहीं नवीनतम वाद्‌यों ने भी इसे प्रभावित किया है और पंडवानी की मधुरता को बढ़ाया है।

प्रयुक्त वाद्‌य

मानव जिन विभिन्न माध्यमों से अपने अन्तरमन की भावनाओं को अभिव्यक्त करता है , संगीत उनमें प्रमुख माध्यम है। राग-अनुराग, ईर्ष्या-द्वेष, विजय-पराजय, क्रोध-भय, सुख-दुख, हर्ष-विषाद आदि मनोगत भावों की अभिव्यक्ति में स्वरों का क्रम उपस्थित रहता है।

स्वर अमूर्त है। गायन के द्वारा स्वर की अमूर्तता और अनिश्चितता को बार-बार दोहराना सहज संभव नहीं हो सकता। इसलिए स्वर की अमूर्तता को मूर्तता प्रदान करने के लिए वाद्‌यों की आवश्यकता पड़ी। मानव ने अपनी सहज क्रियाओं में इसे चुटकी और ताली (थपोली) के द्वारा पूरी की। संभवतः वाद्‌यों के विकासक्रम की शुरूआत यहीं से शुरू हुई होगी। इनके द्वारा गायन में निश्चितता, तारतम्यता के साथ ही वह कर्णप्रिय और प्रभावोत्पादक हो जाता है। वाद्‌यों के अभाव में गायक अधिक देर तक नहीं गा सकता तथा अपने स्वर और ध्वनि को सम बनाने में असमर्थ रहते हैं।

वाद्‌य के द्वारा गायक को जहाँ गायन में सहायता मिलती है वहीं श्वास विश्राम के लिए पर्याप्त अवसर मिलता है। वाद्‌य गायन को जहाँ सुमधुर बनाते हैं वहीं गायक और श्रोता में तन्मयता के लिए विशिष्ट माध्यम भी है। मनुष्य के दैनिक क्रियाकलापों में वाद्‌यों की उपस्थिति सहज दृष्टिगोचर होती है।

"सरल लोक जीवन में वाद्य प्रत्येक स्थान पर विद्यमान रहते हैं। प्रातःकाल जब स्त्रियां चक्की चलाती हैं तो घरघराहट ही उसके स्वर में मिलकर वाद्य का रूप धारण कर लेती है। बच्चा पैदा होने पर माताओं की प्रसन्नता के मूक स्वर को थाली वाद्य द्वारा स्वर मिल जाते हैं। ढेंकली चलाने वाला आदमी पानी की सरसराहट को छपछप कर ताल पर ही गा चलते हैं। गाड़ी हांकने वाला व्यक्ति बैलों की घंटियों और खुरों की आवाज से ही अपना स्वर मिला लेता है। बर्तन मांजने वाली स्त्री बर्तन की खनखनाहट को ही अपने गीत का माध्यम बना लेती है। धोबी कपड़ों की फटाफट से ही अपने स्वर को मुखरित कर संगीत की सृष्टि कर लेता है। इस प्रकार हम प्रत्येक स्थान पर गाने वाले के लिए वाद्य उपस्थित पाते हैं।"[10]

"लोक जीवन में शिशु के गर्भस्थ होते ही आनंदाभिव्यक्ति के लिए विभिन्न माध्यमों से संगीत उत्पन्न किया जाता है जिसका प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। गर्भ से बाहर आने के बाद लौकिक जीवन में शिशु संगीत के प्रति आकृष्ट होता है। रोने पर टीन-टप्पर या थाली या विभिन्न आवाजों को सुनकर चुप हो जाता है। वहीं शिशु जब थोड़ा बड़ा हो जाता है, तब विभिन्न माध्यमों से स्वयं संगीत की सृष्टि करता है। जिन माध्यामों से संगीत के स्वर फूटते हैं वहीं उसका वाद्य है। कोहड़ा (कुम्हड़ा) अंडा (अरंडी) के पत्ते की पोंगरी (पुंगली) को फूंक कर ध्वनि उत्पन्न करता है। सन (पटसन) की दो लकड़ी को जोड़कर तथा छोर में छोटा सा पत्थर बांधकर, उसे घूमाकर उत्पन्न करता है। गोही (आम की गुठली) को घिस कर और मिट्टी से अपना बेन बाजा बना लेता है। खाली शीशी, घोंघी (घोंघा) आदि को फूंककर ध्वनि उच्चरित करता है। पीपल के पत्ते को बजाता है या फिर मुँह से सीटी मार संगीत उत्पन्न करता है। पोरों (मिट्टी का खिलौना), बर्तन में बासी या भात के सीथे (पके हुए अन्न कण) से कागज मढ़कर नंगाड़ा व तबला का सृजन कर लेता है और मस्त होकर अपने अनगढ़ तुतले बोलों में गाता है - "फागुन महराज अब के गए ले कब आबे" बाल जीवन की ये क्रियाएं संगीत के प्रति उसकी अभिरूचि और गीत में वाद्यों की उपयुक्तता को ही प्रगटित करती हैं।

लोक गीतों में वाद्यों की अनिवार्यता स्वतंत्र दिखाई पड़ती है। ये बात और है कि स्थान, जाति और समय के अनुसार इनमें भिन्नता रहती है। जो माध्यम जिस स्थान में सहज रूप में मिल जाते हैं वे वाद्य के रूप में गढ़ लिए जाते हैं। ये क्षेत्र विशेष के विशिष्ट वाद्य होते हैं। जैसे छत्तीसगढ़ क्षेत्र में यादव जाति के लोगों द्वारा बजाया जाने वाला लोक वाद्य बाँस। यह बाँस से बना लगभग चार फुट लंबा वाद्य होता है,

जिसमें आर-पार छेद (सुराक) होती है। उपर स्वर निकालने के लिए तेज फूं क की आवश्यकता होती है। यह मधुर ध्वनि के साथ घोर गर्जन भी उत्पन्न करता है। बाँस बजाना सबके बस की बात नहीं। यादव जाति का पारम्परिक व पैतृक व्यवसाय है गोपालन। इस जाति के लोग गोपालन के लिए जंगलों में निवास करते हैं। जंगलों में बाँस आसानी से उपलब्ध होता है जिससे उन्होने बाँस का निर्माण किया।

"लोकवाद्य अपने उत्पत्ति काल में ऐसे साधनों से उत्पन्न हुआ जो प्रतिदिन के कार्यों में आते रहे। आज भी आसाम का बहुत प्रचलित लोक वाद्य दो बाँसों से बनता है जो बहुत मधुर ध्वनि उत्पन्न करता है। ये बाँस लोक जीवन के क्रिया के अंग ही होंगे। लोक वाद्य संगीत के साथ संगत देने वाले उपकरण ही नहीं रह गए अपितु वह स्वतंत्र रूप से भी बनाये जाने लगे और श्रोताओं को इन अर्थहीन किन्तु अनुभूति पूर्ण स्वरों में भी मानवीय संवेदनशीलता अनुभव होने लगी। यह संगीत का अत्यंत विकसित स्वरूप है।" [11]

गीतों में वाद्यों की परम्परा पौराणिक काल से चली आ रही है, जो इनके महत्व को प्रगटित करती है। "जीवन में वाद्यों का प्रमुख स्थान रहा है। पौराणिक गाथाओं में भी हम वाद्यों को किसी न किसी रूप में पाते हैं। शिवजी डमरू बजाते थे, जो आज तक लोक वाद्य बना है। इसका प्रयोग नेपाल तथा तराई प्रान्त के लोक जीवन में मिलता है। विष्णु के हाथ में शंख मिलता है, जिसे बजाकर विष्णु ने प्रथम नाद उत्पन्न किया था। कृष्ण के हाथ में बंसी का होना भी जीवन में वाद्यों की व्यापकता का द्योतक है। रामायण काल में रावण संगीतज्ञ था। किवंदती है कि ब्रम्हा ने ढोल की रचना त्रिपुर राक्षस के रक्त से मिट्टी सानकर तथा उसी के चमड़े से मढ़कर की थी।" [12]

लोक गायन में वाद्यों के दो प्रमुख कार्य है प्रथम स्वरों के आरोह-अवरोह के अनुसार चलना तथा द्वितीय लय को बनाए रखने के लिए ताल संभाले रखना। इस दृष्टि से वाद्य के तीन प्रकार है - (1) तार-वाद्य जिनमें तार द्वारा संगीत उत्पन्न होता है। तार के लम्बेपन या छोटेपन तथा ढीला करने या उन्हें कसने से स्वर उत्पन्न होता है। तार जितना लम्बा होगा स्वर नीचे जायेगा और तार जितना छोटा स्वर उतना ऊंचा होगा। (2) फूंक वाद्य - यह फूँककर बजाया जाता है और (3) ताल वाद्य - जो ताल मात्रा के लिए बजाये जाते हैं। इनका प्रयोजन गीतों को संतुलित मात्रा में बाँटे हुए आगे बढ़ाना है।

लोक संगीत में वाद्यों की जितनी विविधता देखने को मिलती है, शास्त्रीय संगीत में उतना नहीं। इस दृष्टि से छत्तीसगढ़ का लोक संगीत तो और भी सम्पन्न है।

छत्तीसगढ़ में लोकवाद्यों की विविधता और उपलब्धता लोक जीवन में संगीत प्रेम का परिचायक है। बाँस, बाँसुरी, नगडेवन, अलगोजवा, मोहरी, बीन, तम्बुरा, चिकारा, सरांगी, इसरार, दफड़ा, चांग, नंगारा, दमऊ, सींग बाजा, टिमकी, तासक, मांदर, मांदरी, ढोलक, ढोलकी, खंझेरी, मंजीरा, करताल, घांघरा, घुंघरू आदि लोकवाद्यों की लम्बी सूची है। इन लोक वाद्यों के साथ ही अनेक शास्त्रीय व विदेशी वाद्यों का प्रयोग लोक गीतों में होने लगा है। इनमें तबला, हारमोनियम, बेंजो (बुलबुल तरंग) व क्लारनेट, केसियो प्रमुख हैं।

प्रत्येक वाद्य की अपनी शैली और विशेषता होती है, जिसके कारण उनकी स्वतंत्र पहचान कायम रहती है, जिसका सर्जक लोक ही है। "इन सभी वाद्यों का विकास लोक जीवन से ही हुआ है। बालक आम की गुठली घिसकर पपिरहा बनाकर वाद्य रूप में प्रयोग करते हैं अथवा ज्वार के पत्तों को मोड़कर मन बहलाने के लिए अपना बाजा तैयार कर लेते हैं। पंडित अपनी पूजा में शंख और घड़ियाल बजाना नहीं भूलते। वृद्धजन कीर्तन के समय करताल अवश्य बजाते हैं। इन लोक वाद्यों ने हमारे जीवन के साधना और भक्ति पक्ष को सदैव बल दिया। मीरा भी नाची तो पैरों में घुंघरू बांधना नहीं भूलीं।"[13] लोक गीतों में वाद्यों का प्रयोग स्थान विशेष, उसकी सुलभता और बहुत हद तक गीत की प्रकृति के अनुसार किया जाता है।

पंडवानी लोकगाथा है। संगीतात्मकता की दृष्टि से पंडवानी की अपनी अलग पहचान है। पंडवानी में प्रयुक्त वाद्यों की दृष्टि से हम इसे निम्नत: दो प्रकार से विभक्त कर सकते हैं -

(1) प्राचीन परम्परा (2) अर्वाचीन परम्परा

यह निर्विवादित है कि लोकगीत, लोककथाएं, लोक गाथाएं, पहेली इत्यादि श्रमपरिहार और मनोरंजन के लिए कहीं-सुनी जाती रही हैं। लोक कथाएं, लोक गाथाएं, पहेली आदि सीधे-सरल अगेय किस्से कहानी के रूप में प्रचलित है जहाँ इन्हें गाने की प्रकृति ने जन्म लिया वहीं गायन के लिए वाद्यों की आवश्यकता प्रतीत हुई और वाद्यों का प्रयोग किया जाने लगा। पंडवानी भी इसी का प्रतिफलित रूप है, वाद्यों की दृष्टि से।

पंडवानी की प्राचीन परम्परा में वाद्यों की बहुलता नहीं थी। पंडवानी गायक जिसे "भजनहा" कहा जाता था। तमूरा और करताल का प्रयोग वाद्य के रूप में करते थे। तमूरा स्वर साधन के साथ ही ताल संतुलन के लिए प्रयुक्त होता था। भजनहा का करताल और रागी की खंझेरी भी ताल संतुलन के लिए ही उपयोगी थे। "तईहा जमाना

में कहाँ के अतेक बाजा-गाजा पाबे। तमूरा, करताल, खंझेरी,मंजीरा,इही हमर बाजा ये। मंजीरा नई राहय त फूल काँस के लोटा। दू ठन गोटी ल धर के मिला के बजा। डोंगर होवय के टाठा, घर होवय के दईहान, रात होवय के बिकाल, जाड़ होवय के पानी। लारी म सकलाय छूटे हे पंडवानी, निर्गुनी भजन। अब कहाँ....... नवा जामना आगे अउ नवाँ-नवाँ बाजा, हमला उमझय नहीं त कहाँ ले खटाबो।"[14]

निसंदेह प्राचीन परम्परा के पंडवानी गायकों की यह पीड़ा लोक संगीत की अस्मिता की रक्षा के लिए हमें सोचने को विवश करती है। वे आज की ताम-झाम व चमक-दमक वाली दुनिया में अपने को असहाय पाते हैं। केवल पंडवानी गायकों के साथ ही नहीं अपितु कमोवेश यह स्थिति सभी लोक गायकों के साथ है।

तमूरा, करताल, खंझेरी के साथ गाने वाले पंडवानी गायक अब कम ही मिलते हैं, जो हैं वे भी स्वान्तः सुखाय गाते व लीन रहते हैं। इस प्रकार वाद्यों की दृष्टि से यह प्राचीन परम्परा ओझल हो गई है या कहें कि समाप्ति पर है तो अनर्थ न होगा। इन प्राचीन लोक वाद्यों के स्थान पर जिन पंडवानी गायकों ने लोक रूचि और व्यवसायिकता को ध्यान में रखकर अपने गायन में नवीनतम वाद्यों को समाविष्ट किया, उनकी प्रतिशतता लगभग सौ के है और इसे वाद्यों की दृष्टि से अर्वाचीन परम्परा कही जा सकती है। आज प्राचीन लोक वाद्यों का स्थान और विदेशी वाद्यों ने ले लिया है।

जहाँ तक पंडवानी गायन में स्वर साधन के लिए प्रयुक्त वाद्य का सवाल है वहाँ निश्चित रूप से तमूरे की प्रमुखता है। यह बात प्राचीन परम्परा के गायकों के संबंध में ही लागू होती है। नए गायकों के लिए तमूरा केवल प्रदर्शन की वस्तु रह गई है। इस का स्थान अब हारमोनियम ने ले लिया है। पुरानी पीढ़ी के गायक - गायिकाओं को छोड़कर नई पीढ़ी के पंडवानी गायक-गायिकाओं के स्वर-साधन का माध्यम हारमोनियम है। पुराने गायक अपने गायन के पूर्व स्वर बांधने का कार्य तमूरे से लेते थे किन्तु अब हारमोनियम के द्वारा तमूरे का स्वर बांधते हैं। नए गायक-गायिकाओं में मजे की बात तो यह है कि हाथ में रखे तमूरे के तार को वे झंकृत भी नहीं करते। शायद उनकी मानसिकता यह हो कि पंडवानी गायन में तमूरे का होना जरूरी हैं, प्रदर्शन ही प्रमुख है। उसकी उपयोगिता हो, न हो तमूरा बजे या न बजे।

पंडवानी में प्रयुक्त वाद्य

(1) **तमूरा** - तमूरा आदिवाद्य है। इसे कहीं - कहीं इकतारा या चौतारा भी कहा जाता है। इसका संबंध संगीत-प्रवीण नारद जी से जोड़ा जाता है। इसका उपयोग भजन

गायन में प्रमुखता से किया जाता है। सांई, जोगी, नाथपंथी, साधु व भिखारी इसका उपयोग करते हैं। यह सहज, सुलभ सस्ता वाद्य है। यह स्थानीय तौर पर उपलब्ध वस्तुओं से बनाया जाता हैं। एक छोटे गोल किन्तु कुछ चपटे तुम्बा में लगभग तीन फुट लम्बा बाँस का टुकड़ा फँसा दिया जाता है, तुम्बे का उपरी हिस्सा गोलाकृति में काटकर उसे गोईहा (गोह) की खाल से मढ़ा जाता हैं। बाँस के उपरी हिस्से पर खूँटी व तुम्बा के नीचले भाग के बाँस के नीचले छोर में तार कस देते हैं। यह तार पीपल या लोहे का होता है। तारों की संख्या एक से लेकर तीन तक होती है। गायक तारों को अपने स्वर के अनुरूप कस कर झंकृत करता है, जिससे ध्वनि उत्पन्न होती है। तमूरे के तार को अपने एक हाथ की तर्जनी से उपर नीचे चोंट कर झंकृत करता है।अधिकतर वे गायक जो दूसरे हाथ से करताल बजाते हैं वे यह उपक्रम करते हैं। ऐसे पंडवानी गायकों में श्री झाडूराम देवांगन, श्री पूनाराम निषाद, श्री रेवा राम साहू, श्री खम्हन लाल अस्तुरे, श्री प्रहलाद निषाद, श्री अघनू निषाद, श्री चेतन देवांगन प्रमुख है. पंडवानी के लगभग समस्त पुरूष गायक उपरोक्त प्रकार से ही तमूरा बजाते हैं।

पंडवानी गायिकाओं में तमूरा बजाने का अलग ही ढंग हैं। ये गायिकाएं बाएं हाथ में तमूरा रखकर दांये हाथ से झुनकी द्वारा तमूरा बजाती हैं। झुनकी मोटे तार की बनी होती है। जिसका अग्रभाग नुकीला होता है जिसमें घुंघरू गूंथे होते हैं। "झुनकी के अग्रभाग से तमूरे की तार को चोट देने पर तमूरा झंकृत होता है साथ ही झुनकी में बंधे घुंघरूओं से भी झंकार उत्पन्न होती है।

तमूरे के उपरी भाग पर मयूर पंख व रंग-बिरंगी कलगी लगी होती है, जो तमूरे में आकर्षण पैदा करती है। इधर पंडवानी गायक-गायिकाओं का ध्यान तमूरे की सजावट पर अधिक गया है वे उसे रंग-पेंट से रंग कर चमकदार जरी-गोटे, फीते आदि लगाकर आकर्षक बनाते हैं। रक्षा-बंधन की राखी बांधी जाती है। पंडवानी गायन के प्रारंभ में गायक-गायिकाओं द्वारा भगवान श्री कृष्ण के साथ-साथ तमूरे व करताल की पूजा - प्रार्थना की जाती है। तमूरे में सजा-मयूरपंख जहाँ श्री कृष्ण के मोर-मुकुट से तादात्म्य स्थापित करता है वहीं तमूरे में बंधी राखी सफल गायन के लिए भगावन से रक्षा की कामना का द्योतक है। यह लोक गायक की लोक-भावना और लोक - आस्था का जीवन्त स्वरूप है।

कुछ पंडवानी गायकों ने तमूरे में लाने व रखने की सुविधा की दृष्टि से आमूल परिवर्तन किया है। चूंकि तुम्बा हल्का होता है और फूटने का डर सदैव बना रहता है। शायद इसलिए वे तुम्बा और बाँस के स्थान पर धातु का उपयोग करने लगे हैं

जो दो भागों में विभक्त रहता है। तुम्बा के स्थान पर बाजार में उपलब्ध स्टील या पीतल केदो कटोरों को तुम्बे के आकार में बनाया जाता है, तथा बांस के स्थान पर लोहे की पोली छड़ जो दो भागों में विभक्त रहती है को कसा जाता है। इस प्रकार का तमूरा मजबूत तो होता ही है , देखने में भी अच्छा लगता है। इसे गायन के पश्चात् तीन भागों में आसानी से विभक्त कर रखा जा सकता है। श्री खम्हन लाल अस्तुरे अपने गायन में इसी प्रकार के धातु निर्मित तमूरे का उपयोग करते हैं।

(2) **करताल** - करताल को कुछ लोग खड़ताल भी कहते हैं। करताल का अर्थ स्वयं अपने आप में स्पष्ट है। करताल अर्थात् हाथ का ताल। यह लोक वाद्य भारत के लगभग सभी भागों में प्रचलित है। तमूरे के साथ इसका अन्योन्याश्रित संबंध है। यह लगातार एक ही लय में ताल देने के लिए उपयोगी है। भजन गायकों, साधु-संतों का यह प्रिय वाद्य है। यह दो लकड़ियों के टुकड़ों से बना होता है, जिसमें घुंघरू लगे होते है। करताल का प्रयोग प्राय: पुरूष गायक ही करते हैं । यह ताल द्वारा गीत की लय को संतुलित रखता है।

(3) **खंझेरी** - खंझेरी भी ताल वाद्य है जो लकड़ी को खोदकर बनाई जाती है। एक ओर गोहिया (गोह) की खाल मढ़ी जाती है। लकड़ी वाले भाग में छेद कर घुंघरू या टीन-पीतल की तस्तरियाँ लगायी जाती है, जो झंकार उत्पन्न करती है। खंझेरी को एक हाथ की ऊँगलियों व हथेली से बजाया जाता है तथा दूसरे हाथ (जिसमें खंझेरी पकड़ी जाती है) की ऊँगलियों व अंगूठे से आवश्यकतानुसार दबाया जाता है जिससे अपेक्षित ताल उत्पन्न होता है। स्टील व पीतल की बनी हुई खंझेरी बाजारों में मिलती है। पंडवानी में यह पहले प्रमुख वाद्य था, किन्तु वर्तमान में इसका प्रयोग अब नहीं होता। अव्यवसायिक भजनहा व पंडवानी गायक ही इसका प्रयोग करते हैं।

(4) **हारमोनियम** - वर्तमान में पंडवानी गायन में हारमोनियम का प्रमुख स्थान है। स्थानीय बोली में "रहिमुनिया" या हरमुनिया कहा जाता है। स्वर-साधन के लिए तमूरा केस्थान पर इसका प्रयोग किया जाता है। इसकी सरलता व मधुरता के कारण प्राय: सभी छत्तीसगढ़ी लोक गीतों में इसका प्रयोग होने लगा है। चूंकि यह विदेशी वाद्य का परिवर्तित रूप है फिर भी संगत के लिए सर्व सुलभ है। इसमें तीन सप्तक होते हैं, जिनमें रीड को दबाने से संगीत के स्वर उत्पन्न होते हैं। लोक वाद्यों की अपेक्षा यह काफी महंगा वाद्य है फिर भी संगत के लिए बदलते परिवेश में यह सहज ग्राह्य है। हारमोनियम पेटी (संदूक) के आकार का होता है अत: स्थानीय लोक भाषा में इसे पेटी भी कहा जाता है।

(5) **बैंजो (बुलबुल तरंग)** - बेंजो भी हारमोनियम की तरह 'रीड' से बजाया जाने वाला वाद्य है। यह पूर्णतः विदेशी वाद्य है जिसे उसकी मधुरता और कर्णप्रियता के कारण लोक कलाकारों ने सहज स्वीकार कर लिया। छत्तीसगढ़ की लोक कला मंडलियों में इसकी अनिवार्यता लगभग सुनिश्चित है। पंडवानी गायन में बेंजों का प्रयोग प्रमुखता के साथ होता है।

बैंजो में दो तार लगे होते हें जिन्हें दाहिने हाथ से झंकृत किया जाता है तथा बाएं हाथ की ऊंगलियों से रीड को दबाकर उपेक्षित स्वर उत्पन्न किया जाता है। वर्तमान में इसके नए-नए रूप व वादन के नए ढंग इजाद किए गए हैं। बेंजों में स्वर मंडल के लिए अनेक तार लगे होते हैं। बेंजों को गज से बजाकर वायलिन, व लौह छड़ से बजाकर जलतरंग व सितार की तरह झंकृत किया जाने लगा है। इस फन में स्व. श्री जोहन राम साहू ग्राम खैरबना (कवर्धा) लोक गायक व लोक वादक को विशेष महारत हासिल थी। वे श्री खम्हनलाल अस्तुरे ग्राम गुनर बोड़ (बेमेतरा) के पंडवानी दल में बेंजों वादन का कार्य करते थे।

(6) **तबला** - तबला ताल की दृष्टि से पंडवानी में प्रयुक्त प्रमुख वाद्य है। तबला वादक गायक के गायन के अनुसार ताल देकर लय को संतुलित रखता है। तबला में दो वाद्यों की एक जोड़ी होती है जिसे 'नर' व 'मादा' कहा जाता है। लोक भाषा में इसे 'काठा' और 'दुग्गड़' कहा जाता है। काठा सीसम, बीजा, खम्हार आदि लकड़ी को खोलकर बनाया जाता है। जिस पर बकरे की खाल को चमड़े की मोटी रस्सी द्वारा मढ़ी जाती है। उपर चमड़े के बीच भाग में राल आदि से स्याही लगायी जाती है। 'दुग्गड़' मिट्टी या स्टील, पीतल, रांगा आदि धातु का बना होता है। यह गोलाकार में काठा से कुछ ज्यादा चौड़ा होता है। काठा की ही तरह इसे भी बकरे की खाल से मढ़ा जाता है। काठा का मुंह सकरा और दुग्गड़ का चौड़ा होता है।

पंडवानी में खंझेरी का प्रयोग तबला के ही कारण बंद हुआ होगा, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि खंझेरी की अपेक्षा इसमें अधिक शुद्धता व स्पष्टता के साथ ताल-मात्राओं को सुगमता से उत्पन्न किया जाता है। तबले की इसी विशेषता के कारण लोक कलाकारों ने इसे भी हारमोनियम, बेंजो की तरह सहज रूप से स्वीकार कर लिया है। अपनी इस लोकप्रियता के कारण यह वाद्य आगे चलकर लोक वाद्य के रूप में प्रतिष्ठित न हो जाय ऐसा कोई कारण नहीं।

(7) **ढोलक** - ढोलक या ढोलकी, लोकगीतों में इसका भी प्रचलन दिखायी पड़ता है। विवाह आदि के अवसरों पर लोक जीवन में इसकी पूजा की जाती है।

पंडवानी गायन में यह सहायक वाद्य के रूप में तबले के साथ प्रयुक्त होता है। ढोलक बजाना आनंद का सूचक है। स्त्रियां शिशु जन्म के अवसर पर 'सोहर' व 'दादरा' गीतों में ढोलक बजाती है। यह बीजा, शीशम या खम्हार की लकड़ी को खोलकर बनाया जाता है। इसके दोनों मुंह किंचित भिन्नता के साथ गोलाकार होते हैं। बीच का भाग चौड़ा होता है। ढोलक को बकरे की खाल से मढ़ा जाता है। सिरे पर लोहे की चूड़ियों की सहायता से आवश्यकतानुसार स्वर को उतारा व चढ़ाया जा सकता है। कुछ वादक इसे हाथ में घुंघरू व ऊंगलियों में कमची (खपची) बाँधकर बजाते हैं। छत्तीसगढ़ी लोकगीतों में इसका प्रयोग बहुतायत रूप से होता है।

(8) **बाँसुरी** - बाँसुरी लोक वाद्य के साथ-साथ आदि वाद्य है, जिसका प्रभाव छत्तीसगढ़ी लोक जीवन में स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। चरवाहा संस्कृति के पोषक राऊत (यादव) गाय चराने जब जाते हें तब बाँसुरी उनके साथ जरूर होती है। यह बाँस की बनी होती है। आजकल बाजारों में लोहे या पीतल की बाँसरी भी मिलती है। भगवान श्रीकृष्ण का संबंध तो बाँसुरी से ही था। यह सुलभ और सस्ता वाद्य है।

पंडवानी गायन में पहले बाँसुरी का प्रयोग नहीं होता था किन्तु अब गायकों ने इसे भी सहायक वाद्य के रूप में चुना है। इसकी मधुरता और कर्णप्रियता तो जगजाहिर है। शायद इसी वजह से बाँसुरी का उपयोग पंडवानी में होने लगा है। श्री पुनीत राम साहू (ग्राम - फुलवारी) की मंडली में बाँसुरी का प्रयोग होता है।

(9) **मंजीरा** - ताल देने के लिए एक ही प्रकार की आवृत्ति से बजने वाले वाद्यों को आधे साज माना गया है। क्योंकि इसमें ताल देने की क्षमता तो है ही पर स्वर देने की नहीं फिर भी अपने आप में ये मधुर होते हैं। इनमें मंजीरा प्रमुख है। पंडवानी गायन में मंजीरा और मंजीरहा (मंजीरा वादक) के बिना आनंद अधूरा लगता है। अधिकतर 'रागी' ही मंजीरा बजाने का कार्य करते हैं। वे अपने हास्य विनोद और हावभाव से श्रोताओं का भरपूर मनोरंजन करते हैं।

यह पीतल और काँसे की मिली हुई धातु से बना होता है। दो मंजीरों को आपस में टकराने से मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है। मंजीरा के अभाव में कांसे के लोटे को गोंटी (पत्थर के छोटे टुकड़ों) से चोट देकर मंजीरे का काम लिया जाता है।

जैसे-जैसे नये वाद्यों का प्रयोग संगीत क्षेत्र में होने लगा है। वैसे-वैसे इन नये वाद्यों ने लोक संगीत को भी प्रभावित किया है। पंडवानी इससे अप्रभावित नहीं है। आजकल पंडवानी गायन में क्लारनेट, केसियो, मीराकस आदि का प्रयोग दिखाई देने लगा है। हालांकि ऐसे पंडवानी दलों की संख्या नहीं के बराबर है। वाद्यों की दृष्टि से

पंडवानी आक्रांत है। कभी-कभी वाद्यों की अधिकता पंडवानी में श्रोता के लिए बाधा का कारण बनती है। पंडवानी गायक के स्वर और शब्द वाद्यों की झंकार में खो जाते हैं। ऐसी बात न हो कि वाद्यों का प्रयोग न हो, बल्कि सीमित और संतुलित हो। वाद्यों के दबाव से लोकगीतों की आत्मा न मरे, रस और अनुभूति की धारा बाधित न हो। तभी अधिकाधिक वाद्यों का प्रयोग सफल और सार्थक हो सकेगा। फिल्मी अंधानुकरण से बचकर ही लोक तत्वों की रक्षा की जा सकती है। अन्यथा लोकगीतों को भयावह और विध्वंसक स्थितियों से ज्यादा दिनों तक बचाया नहीं जा सकता।

लोकगीत शैलियाँ

लोक गीत लोक मानस की अनुभूतियों की लयपूर्ण अभिव्यक्ति है। इसमें लोक जीवन का इतना विशद चित्रण मिलता है कि उसमें उस देश की मूल संस्कृति समाहित रहती है। यही मूल संस्कृति वहाँ की लोक संस्कृति के रूप में लोक गीतों में संरक्षित रहती है। "गीत मनुष्य का स्वभाव है। हमारे जीवन में ऐसा कोई भी कार्य नहीं जो बिना गीत के हों। किसान खेत में हल चलाता है तो गीतों के साथ, मजदूर मिट्टी कूटता है तो गीत के साथ, स्त्रियां दही बिलोती है तो गीत के साथ और चक्की पीसती है तो चक्की के स्वर के साथ, गीत की सुमधुर कड़ियाँ गूंजती आई हैं।" [15]

लोक गीतों के संबंध में श्री रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि "ग्राम गीत तो प्रकृति का वह उद्यान है जो जंगलों में, पहाड़ों पर नदी-तटों पर स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ है।" [16] श्री श्रीधर मिश्र के अनुसार "लोक गीत, लोक नि:सृत प्राकृतिक गान है जिसमें लोक का उल्लास, उसकी पीड़ा, उसका हृदय एवं समस्त जीवन व्यक्त हुआ है। इन लोक गीतों का चित्र फलक इन्द्रधनुषी है , जो क्षितिज के एक छोर से उठता है और दूसरे छोर पर समाप्त होता है। वह अपने वितान में बहुचित्र छिपाये रहता है जिसके कोष में एक नहीं विभिन्न रंग है और उनकी सम्मिलित छटा अपना अनुपम प्रभाव रखती है।" [17]

"लोक गीत विद्या देवी के भौतिक उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास-प्रश्वास है। सहजानंद में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सच्चिदानंद में विलीन हो जाने वाली आनंदमयी गुफाएं हैं।" [18] "सामान्य लोक जीवन की पार्श्व भूमि में अचिंत्य रूप से अनायास ही फूट पड़ने वाले मनोभावों की लयात्मक अभिव्यक्ति लोकगीत कहलाती है।" [19] "मैं मानता हूँ कि लोक गीत समूची संस्कृति के पहरेदार होते हैं।" [20] डॉ. श्याम परमार के अनुसार "लोक गीत, लोक साहित्य का ही गीत प्रधान अंग है। जिसका उद्भव नगर और ग्राम के संयुक्त साधारण

जन के मध्य होता है।" [21]

"इन गीतों से एक ओर जहाँ हमारे धरातल की दृढ़ता, आदर्श की उच्चता और लक्ष्य की स्पष्टता का पता चला है, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण सभ्यता और संस्कृति का भी सहज स्वाभाविक दर्शन हुए बिना नहीं रहता।" [22]

श्री नरोत्तम स्वामी व स्वर्गीय पारीक के अनुसार "आदिम मनुष्य के हृदय के गानों का नाम लोकगीत है। मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसके उमंगों की, उसके करूणा की कहानी इसमें चित्रित है। काल का विनाशकारी प्रभाव इन पर नहीं पड़ता। किसी कलम ने इन्हें कलमबद्ध नहीं किया पर ये अमर हैं।" [23]

"लोकगीत स्वर माधुर्य से युक्त एक अधर से दूसरे अधर पर थिरकने वाले लोक हृदय की वह अभिव्यक्ति है जिसमें जीवन और संस्कृति की सम्पूर्ण व्याख्या, परम्परा और इतिहास का हाथ पकड़कर चलती है।"[24] "गीत मानों कभी न छिजने वाले स्रोत हैं।" [25] "डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय तो लोकगीतों को लोक साहित्य की आत्मा मानते हैं। लोक साहित्य में लोकगीतों की ही प्रधानता है। सच तो यह है कि ये इसकी आत्मा है।" [26] देवेन्द्र सत्यार्थी के अनुसार - "लोकगीत किसी संस्कृति के मुंह बोलते चित्र हैं।" "लोकगीतों का जीवन अमर और अनश्वर है। समय के घात-प्रतिघातों में उसका बाह्य रूप बदलता रहता है। नए गीतों का जन्म होता है। उस समय तक प्रचलित रहने के पश्चात् उनका रूप परिवर्तित होने लगता है और एक दिन उसके भग्नावेश ही रह जाते हैं किन्तु गीतों की परम्परा सर्वथा नष्ट नहीं होती। पुराने गीतों के स्थान पर नये गीत जन्म लेते हैं और गीतों का जीवन चिरन्तन बनकर सतत् रूप से प्रभावित होता रहता है।" [27] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "ग्राम गीत आर्येत्तर सभ्यता के वेद हैं।" [28]

लोकगीत लोकमन के अन्तर्भावों का दर्पण है। जिसमें जटिलता, दुरूहता और गोपनीयता के लिए कोई स्थान नहीं है। ये हृदय के भावों की सीधी-सच्ची और साफ तस्वीर हैं।लोक संस्कृति के मूल को अपने अन्दर समाहित किए ये लोकगीत झरने की तरह स्वच्छंद,फूलों के मानिंद सौरभित और नदी की तरह सतत प्रवाहमान हैं। छत्तीसगढ़ में लोकगीतों का संसार वृहद् और विशाल है। लोकगीतों की विविधताओं में स्थानीय लोक जीवन सतत् अवगाहन करता है। लौकिक सभ्यता, आचार-विचार, व्यवहार, रीति-रिवाज और परम्पराएं लोकगीतों में प्रतिबिम्बित होती हैं। सभ्यता और संस्कृति इनमें ही उद्घाटित होती हैं।

हर लोक गीत का अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है। अपनी परम्परा, पर्व और

आयोजनों के अनुरूप ये अभिव्यक्त होते हैं। विवाह के अवसर पर विवाह गीत, शिशु जन्म पर सोहर गीत, होली के अवसर पर फाग गीत, नवरात्रि पर्व में जँवारा (जस) गीत, दीपावली के समय सुवा गीत आदि गाने की परम्परा है। इनकी अपनी पृथक पहचान और पृथक गायन शैली है। पंडवानी महाकाव्यीय लोकगाथा है, जिसमें लोक जीवन के सम्पूर्ण क्रिया कलापों का विस्तृत फलक है। संस्कार, आचार-विचार, रीति-रिवाज और परम्पराओं का सबका चित्रण है।जीवन की व्यापकता में इन लोक गीतों का समावेश सहज और स्वाभाविक रूप से होता है।

पंडवानी गायक जीवन के इन क्रिया व्यवहारों से मूल रूप से जुड़ा होता है। वह लोक जीवन के तीज त्यौहारों और मानवीय संस्कारों का सहभागी और अविभाज्य अंग होता है। अत: अपने गायन में वह इन सांस्कारिक और पार्विक क्षणों में गाए जाने वाले लोकगीत शैलियों का प्रयोग कर गायन को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए किसी प्रकार की कोताही नहीं करता। पंडवानी में प्रयुक्त लोकगीत शैलियों के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं -

(1) **सोहर गीत** - पंडवानी गायन की अपनी एक निश्चित धुन (गायन शैली) है। इस शैली में और भी अनेक लोकगीतों और लोकधुनों का समाहार मिलता है। कथा प्रसंगों में प्रसंग के अनुसार गायक लोक गीतों को शामिल करने का लोभ संवरण नहीं कर पाता। पंडवानी पात्रों की जन्मकथा जैसे भीष्म जन्म कथा, कर्ण जन्मकथा, पांडव कौरव जन्म कथा आदि प्रसंगों में छत्तीसगढ़ में प्रचलित सोहरगीतों का सुन्दर समन्वय मिलता है। किसी व्यक्ति के घर पुत्र या पुत्री जन्म के अवसर पर छट्ठी के दिन पंडवानी का आयोजन होता है। संतानोत्पत्ति के आनंदमूलक 'छट्ठी' के मांगलिक समय में पंडवानी गायक सोहर गीत गाकर गृह स्वामी को बधाई देता है व नवजात शिशु के दीर्घ व यशस्वी जीवन की मंगल कामना करता है। रामकृष्ण, दशरथ-नंद, कौशिल्या और यशोदा गीतों में साकार होकर बधाई संदेश के माध्यम बनते हैं। सामान्य व्यक्ति भी दशरथ और नंद तथा सामान्य शिशु भी राम कृष्ण की संज्ञा और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। इस आनंदोत्सव में गाया जाने वाला गीत छत्तीसगढ़ में 'सोहर' कहलाता है। "कुछ विद्वान सोहर की निरुक्ति सुघर शब्द से मानते हैं, जिसका अर्थ सुन्दर है।" [29] "सोहर का संबंध सौर गृह से है।" [30] "एक अन्य मत के अनुसार सोहर का संबंध सूतिका का ही अपभ्रंश रूप है।"[31] सोहर का संबंध सोहना अर्थात् अच्छा लगना और मोहक से है। छट्ठी का मांगलिक अवसर स्वजन-परिजन, पास-पड़ोस और पूरे गांव को अच्छा लगता है। कर्ण जन्म प्रसंग के अंतर्गत पंडवानी में प्रयुक्त सोहर गीत का लोक लालित्य

द्रष्टव्य है -

"जुग-जुग जिए तोर लाला मदन गोपाला ये
ओ बहिनी तोर घर बेटवा विराजे उछल मंगल होवे न
काखर भये श्री रामे काखर भये लक्ष्मण हो
बहिनी काखर भरत भुलावे,राजा के घर सोहर ओ बहिनी बाजथे
आनंद बधाई
कौशिल्या के भये श्री रामे, सुमित्रा के भये लक्ष्मण हो
बहिनी कइकई के भरत भुवाले राजा के घर सोहर ओ
बहिनी बाजथे आनंद बधाई।
अनधन भरे तोर कोठी ह
पुलकत गांव हर ओ
बहिनी ध्रुव प्रहलादजइसे होही
अमर करही तोर नावे ल ओ
जुग-जुग जिये तोर लाला......
जय हो,जय हो राधा तोर जय हो, अधिरथ तोर
बालक भगवान बरोबर होही। बढ़िया आशीर्वाद दीन।"[32]

पंडवानी गायक की लोक मंगल की भावना से गरीब की झोपड़ी राजमहल बन जाती है। संतान के ध्रुव प्रहलाद की तरह यशस्वी होने की कामना की जाती है। यह लोक की निष्कलुष और अपराजेय मंगल भावना है।

"लोक साहित्य में व्यक्ति तब तक नहीं गाया जाता जब तक कि वह समष्टि की किसी भी उदात्त कल्पना का मूलाधार न बने। इसमें राम-सीता, शिव -पार्वती, दशरथ-कौशिल्या और नंद -यशोदा भी तभी स्थान पाते हैं जब वे अपने देवत्व को भूल मानवीय स्वरूप में अवत्तीर्ण होकर मनुष्य के सुख-दुख में साथी हो उठते हैं। इनमें किसी के घर पुत्र जन्म लेने पर बधाई नंद बाबा के घर ही भेजी जाती है।" [33]

"जन्मे श्री कृष्ण मुरारी, भक्तन हितकारी
हो ललना
रोहिनी नक्षत्र अधिरात जनम शुभधारी हो
तिथि अष्टमी बुधवार, ललना जनम शुभ धारी
धन जसोदा बाबा नंद, हमरे घर पग धारे
धन देवकी-बसदेव, जिहाँ प्रभु लिए अवतारे

ओ बहिनी मथुरा म लिए अवतारे
गोकुल झूले पालना हो।"[34]

विवाह गीत

पंडवानी कथा के विवाह प्रसंगों में विवाह गीतों को सम्मिलित किया जाता है। इन विवाह गीतों को स्पर्श करते हुए गायक पंडवानी में कथा की तारताम्यता बनाये रखता है। फलतः ये गीत आरोपित नहीं लगते बल्कि पंडवानी गायन में घुलमिल जाते हैं। छत्तीसगढ़ी विवाह गीत विभिन्न वैवाहिक संस्कारों (नेंग) के अनुसार गाये जाते हैं जैसे - चुलमाटी, भाँवर, दहेज व बिदा। पंडवानी गायक का मुख्य उद्देश्य पंडवानी गायन होता है। इसलिए वैवाहिक संस्कारों के मुख्य गीतों की झलक पेश करते हुए कथा क्रम को आगे बढ़ाते हैं। इन गीतों में चुलमाटी, तेलचघ्घी, भड़ौनी व दहेज संबंधी गीत प्रमुख है। द्रौपदी विवाह प्रसंग से कुछ अंश उद्घृत है -

"राजा द्रुपद के नगर में एक से एक सुन्दर बाजा बजाथे। सखी मन सुन्दर बिहाव गीत गावथे -

काँहवा ले हरदी रे तोरो जनामन
काँहवा ले हरदी तुम लिए अवतार।
मरार बारी मरार बारी दाई मोरो जनामन
बनिया दुकाने में लिए हंव अवतार।
कहँवा ले पर्रा कहँवा ले पर्रा तुहँरो जनामन
कहँवा ले पर्रा तुम लिए अवतार।
बाँस के भिरहा बाँसे के भिरहा दाई मोरो जनामन
कँड़रा घर दाई में लियेंव अंवतार।"[35]

x x x x

"भईया अईसने सुघ्घर गीत गावयँ तेल हरदी चढ़ाय के बेर -
एक तेल चढ़िगे दुई तेल चढ़िगे दुलरू के माथे
ओ दुलरू के माथे मड़वा म दुलरू तोर बदन कुमलाय।
दुए तेल चढ़िगे ....।"[36]

"सब बरतिया मन के स्वागत करे बर गीत। त भड़ौनी गीत कइसे गाथे -
नंदिया तीर की पटवा भाजी उल्हवा-उल्हवा दिखथे रे
आय हे बरतिया मन ह बुढ़वा-बुढ़वा दिखथे रे।
नंदिया तीर के पटवा भाजी पट-पट-पट-पट करथे रे।

तैं हा गिजिर-गिंजिर हाँसथस ग
अखरी ल मारे तोर पखरी ल मारे तोर गारी झन देबे
गारी झन देबे भईया .....।"[37]

x x x x

"सुन्दर भाजी खवइन , नेंग करीन। भाँवर में लइन सुन्दर टिकावन परे लगिस। पाँचों पांडो लाइनवार बैठिन अऊ द्रौपती बइठिस वामांगी।

यही धरम ले धरम हे ओ अओ दाई फेर धरम नई पाबे ओ।
छेरी के दूध छेरकाईन ओ ये मोर दाई
भँईसी के दूध भईसाइन ओ।
गैया के दूध बड़ मीठ न ये ओ मोर दाई
कोन तोर टीके नोनी अचहर-पचहर
कोन तोर टीके धेनू गाय
ये नोनी सीता ल बिहावे राजा राम।"[38]

x x x x

"जइसे सुन्दर राम अऊ सीता के बिहाव होइसे अइसने पाँचो भाई अऊ द्रौपदी के भांवर परथे -

दाई तोर टीके नोनी अंचहर-पंचहर ओ ....
ददा तोर टके धेनू गाय।
ये ओ नोनी सीता ल सीता ल बिहावे राजा राम
यही धरम ले धरम हे ओ
चना खाये बर पइसा दे देन ददा
पान खाये बर पइसा दे देन
ये चुटुक चुटुक चुमा ले ले न अ ओ मोर दाई
पान खाये बर पइसा दे देन।"[39]

x x x x

टीके के बाद में सुन्दर बरतिया बिदा करथे। राजा द्रुपद अऊ रानी सुद्रोणी के मन व्याकुल हो जथे काबर बेटी के बिदा ये येहा। कहिथे आज तक तोला मैं कोरा में खेलायेंव -

"तैं पहुना होगे आज ले हमर बर बेटी पहुना होगे
द्रुपत नगर में रहितेस बेटी दाई के मया बढ़ाते हो।
सब ला बढ़िया बिदा करिन -

रामे रमऊवा ले ले ये सगा रामे रमऊवा लेले
तुम हम डुमरी के फूले ये भाई तुम डुमरी के फूले
जान हवय ग बड़ दूरे रे भईया
जोरे पिरीत झन टूटे ये भईया
जाना हवय ग बड़ दूरे।" [40]

सुवा गीत -

सुवा गीत नारी हृदय की पीड़ा की अभिव्यक्ति है। जिसमें उसकी करूणा, आँसू और आर्त के स्वर हैं। दीपावली के समय छत्तीसगढ़ में स्त्रियाँ गोल घेरा बनाकर बीच में मिट्टी का सुवा (तोता) एक टोकनी में रखकर ताली पीट कर नृत्य करती हैं। सुवा को माध्यम बनाकर वे अपने नारी हृदय की बात गीतों में व्यक्त करती हैं।

पंडवानी में इस गीत का प्रयोग द्रष्टव्य है -

"नारद महाराज आके ओ छोटे बालक सुंदर धर लिस धर के सुंदर -
तर हरि नाहना मोरि ना मोरि नाहना रे सुवना
तह हरि न नाह नरि ना ह नरि सुवना
काखर संग खेलिबे , काखर संग खइबे रे सुवना
कोन रहि ग मन बांध न रे सुवना कौन रहिमन बाँध
ये गा राम सन खेलिबे, लखन संग खइबे रे सुवना
भरत भईया ग मन बांध न रे सुवना भरत भईया संग मन बांध
ये गा तर हरि नहना मोर न हिर नाहना रे सुवना।

x x x x

गंगा मइया सुंदर झुलावत हे -
आये हवय राम ये दे आए हवय लक्ष्मन सुवा रे
आए हवय लक्ष्मन भाई।
चलो-चलो सखी मिल सुवा गीत गाबो रे सुवा
आए हवय लक्ष्मन भाई॥
भईया गंगा भईया सुंदर लोरी गीत गावत-गावत
सुन्दर सुवा -गीत गावत सुन्दर करन ल भईया
खेलावत -खेलावत लेगे लगिस।" [41]

नाचा गीत (नचौड़ी)

नाचा छत्तीसगढ़ का लोकनाट्य रूप है। यह लोक जीवन में मनोरंजन का

प्रमुख साधन है। नाचा में प्रयुक्त पांरपरिक गीतों को नचौड़ी कहा जाता है। नचौड़ी द्रुत गति - लय में गाया जाने वाला लोकप्रिय गीत है। इन गीतों मे हास्य-व्यंग्य, प्रेम- विरह और भक्ति के साथ-साथ पारिवारिक जीवन के चित्र प्राप्त होते हैं। पंडवानी में नचौड़ी गीतों व धुनों का प्रयोग कथा के बीच-बीच में बहुतायत रूप से किया जाता हैं पंडवानी में प्रयुक्त नचौड़ी गीत व धुनें निम्न उदाहरणों में दृष्टव्य है -

"भोला ल पूछे पारबती ग।
शंकर ल पूछे पारबती।
रामा हरिदर्शन कब होय ग।
शंकर ल पूछे पारबती ॥
हँस के मुरारी अर्जुन ल पूछे ग
भोला ल पूछे पारबती।

अर्जुन -

मोर संग तैं दुवारका चल गा
भोला ल पूछे पारबती।
रामा हरिदर्शन कब होय गा।
भोला ल पूछे पारबती ॥" [42]

x x x x

"एक झन ग बेटा हवय नामे हर करन हवय
अरे मोर बेटा लागथे करेजवा में घुना।
माता कुंती व्याकुल होगे नेत्र ले ऑसु के धार बहे लगिस-
अेरे बेटा लागथे करेजवा में घुना
ये सरीर केदुख ल काला काहवॅ न।" [43]

आल्हागीत -

आल्हा वीर कथात्मक लोकगाथा है । छत्तीसगढ़ में लोग इसे वर्षा ऋतु के समय बड़े चाव से गाते हैं। लोगों का यह विशवास है कि आल्हा गाने से वर्षा होती है। आल्हा में युद्धों का सजीव वर्णन है। पंडवानी में भी युद्ध विषयक प्रसंगों की अधिकता है। दोनों ही लोक गाथाओं में वीर चरित्रों का बाहुल्य है, इस दृष्टि से आल्हा व पंडवानी में साम्यता है। आल्हा - उदल व उनके भाईयों को पांडवों का अवतार माना जाता है। पंडवानी के युद्ध प्रसंगों में आल्हा गीत गाने की परम्परा लोकगायकों में मिलती है। यह गीत बड़े ओज पूर्ण ढंग से गाया जाता है।

"एक डाहर पांचो भाई पांडव अऊ एक डाहर राजा दुर्योधन के पूरा दल। ओ समय जब लड़ई होथे संगी -

एक बान तब कीन्ह प्रहारा, दूजो बान तब दियो चलाय।
तीजे बान जब मारन लागे, अरे बान के शोभा बरन न जाय।
ले के गदा तब भीम प्रहारे, ओ अर्जुन सर-सर बान चलाय।
पांच बान तब फीका होई जाय, लेकर अर्जुन देखन लागे।
सावन बरसा झड़ी लगाय, भीमसेन तब गदा प्रहारे।
अरे छक-छक तलवार जाय, नकुल लेके बोलन लागे।
ऐसो लड़े युद्ध हमारो यार, ऐसो सोचे मौका पावे।
लेके बान चलायो जाय, खून-खून के धार बोहागे।
हाथी तब चिंघाड़ो जाय, ऊंट कहिथे मरगे-मरगे।
भीमसेन तब गदा प्रहारे, तेखर बाद प्रहारन लागे॥
अरे सावन बूंद बरनि नहीं जाय।"[44]

x x x x

"कमल व्यूह में पहुँच जाते हैं अर्जुन
बड़े-बड़े बाण तब अर्जुन लीन्हा
कौरव दल म वार कीन्हा।
बाण के बरसा होवन लागे
चारों दिशा शर भर जाय।
मारो-मारो कहन लागे।
अर्जुन के रथ घेरे जाय
बाण के बरसा होवन लागे॥"[45]

x x x x

"ये तरफ रात्रि बीते के बाद में सूर्य नारायण के उदयकाल होते दोनों दल सेना के तइयारी -

अरे दोऊ दल बाजा बाजे अऊ गरजे सिंह समान,
अऊ क्षत्री गण रण हाथ में हवयं साजत बान।
हाथी वाला हाथी म चढ़गे, घोड़ा वाला घोड़ा सवार।
हाथी वाला हाथी म चढ़गे, ऊंट वाला ऊंट सवार।

खच्चर वाला खच्चर चढ़य, रथ वाला होय सवार।
पैदल वाला पैदल चलय, दोऊ दल होइस तैयार।
दऊड़न लागय मारन लागय दोनों दल होइस तैयार।" [46]

उपरोक्त लोकगीत शैलियों के अतिरिक्त पंडवानी में करमा, भरथरी, देवार व ढोला लोकगीत शैलियों के भी दर्शन होते हैं - कुछ उदाहरण प्रस्तुत है -

करमा गीत -

करमा आदिवासियों का नृत्य गीत है। जिसमें मांदल की थाप पर आदिवासी युवक और युवतियां समूह में नाचते-गाते हैं। पंडवानी में प्रयुक्त करमा शैली -

"कृष्ण समान सारथी पाववँ, क्षण भर में कौरव मार गिराववँ।
काहय येखर बात ल सुन -
अरे हाय रे हाय रे काया माटी हे न तन ह माटी हेन
येखर का भरोसा काया माटी हेन
येखर का ठिकाना चोला माटी हे न।
हरिचंद्र अस दानी ह चल दिस
बाल्मीकी अस ज्ञानी।
अरे बाली जइसन बीर चलेंगे।
रावन कस अभिमानी रे। काया माटी रे "[47]

"राजा पांडु के घर म जनम लेवँ। व्यास नारायण ल बलाके जब मोर नामकरण करे गिस तो पहेला नाम अर्जुन पड़िस उत्तरा।

भटक-भटक जीव जाही ग हरि तो बिना
हरि के भजन तैं कर ले।
अर्जुन अस कोनो धनुष धारी नई हे ग
द्रौपती कस कोनो महतारी नई हे ग
भटक-भटक जीव जाही ग भाई तोर बिना
हरि के भजन जीव - हरि ले।" [48]

भरथरी गीत

भरथरी एक लोक गाथा है जिसमें राजा भरथरी का चरित्र-चित्रण है। इस लोकगाथा को गाने की स्वतंत्र शैली है जिसे भरथरी गीत कहा जाता है। इस शैली का उपयोग पंडवानी में भी किया जाता है।उदाहरण द्रष्टव्य है -

"अरे भईया तैं तो क्षत्रीय पुत्र अस तोर ये सन्यासी बने के कारण मालूम होथे यार। द्रौपती ल झगरा करके छोड़ न जाने यहाँ तक तैं आए हस, के झगरा द्रोपती तोला कर देहे। अर्जुन लाज वस होगे अऊ दूनो हाथ जोड़ के कहे महराज -

हाथ जोड़ अर्जुन बोले हे विनय करे गा
ब्राम्हण सुन मोर बात
कहना मोर सुनि लेबे,
झगरा नई हे ग, ये लड़ाई नहीं
मैं तो नारद के बचन ल पालथों ये दे पालथों
भाई ये दे जी।
सुन के ब्राम्हण देवता मन गले दिन लगाय
जय हो अर्जुन तोर जय हो।"[49]

देवार गीत -

देवार एक घुमन्तु जाति है। यह कला-प्रवीण जाति है। ये अपने लोकवाद्य सारंगी रूझूँ बजाकर लोकगाथाओं का गायन करते हैं। इनकी गायन शैली बड़ी लोचदार और मनमोहक होती है। इनके द्वारा गाये जाने वाले गीत देवार गीत कहलाते हैं। देवार गीत का अंदाज ही निराला होता है लोकगीतों में इनकी अलग ही पहचान है। देवार लोकगीत शैली का प्रयोग पंडवानी में यदा-कदा होता है -

"अरे बड़े-बड़े डोंगा तरंग उठे, डगमगावत हे डोंगा हमार।
अरे आघु म भारी तूफान हे माझी, सम्हार अपन पतवार।
अरे नौठन छेदा ले पानी समावथे, कइसे हो ही बेड़ा पार।
अरे तैं बइठे हस मुस्कात, तोर कोन हवय लगवार।"[50]

ढोला गीत -

'ढोला-मारू' छत्तीसगढ़ में प्रचलित लोकगाथा है, जिसमें ढोला और मारू की प्रेम-कथा चित्रित है। इस लोकगाथा को गाने की पृथक और स्वतंत्र शैली है। इस कारण इस गायन शैली को ढोला गीत कहा जाता है। पंडवानी में इस शैली का भरपूर उपयोग हुआ है -

"तोला कोन पूछत हे दुर्योधन तीन लोक के देवता अगर एक साथ लड़ई करे अभिमन्यु के पास विजय प्राप्त नई कर सकय -

द्रोणाचारे अब बोलय रे अलबेला ढोला
सुन लेबे ग राजा महराज अलबेला ढोला

अभिमन्यु आज आए रे अलबेला ढोला
येखर शक्ति ग अगाध रे अलबेला ढोला
ये तो अर्जुन के लाल रे अलबेला ढोला
बन आये कौरव के काल रे अलबेला ढोला
अब तुम करव ये विचार रे अलबेला ढोला
धनुष देहू अब काट रे अलबेला ढोला
द्रोणाचार ग महराज अलबेला ढोला।" [51]

"जब तोर पिता मोला सादी करके लानिस। संग म भाँवर घूमेंव नर-नारी बेटा तोर ददा मोर एँड़ी ल खूंदे। मैं का काहँव दाई मोर पति ह मजकहा हे का ? पाछे तरफ ल देखेंव बेटा -

जन्म के कनवा तोर ददा हे गा हीरा मोरी
जन्म के कनवा तोर ददा हे गा हीरा मोरी

जनम के कनवा, का करवँ दाई आज मोर पति अंधा हे त दुनिया के पति ल देखना गुनह हे कहिके पाँच पंच के सामने में ये कपड़ा ल लाके -

अगा दूनो आंखी म पट्टी डारेंव ग हीरा-मोरी
महाभारत गावों का संगी पंडवानी गाववं ॥" [52]

चन्दैनी गीत -

चन्दैनी लोकगाथा है, जिसमें लोरिक व चन्दा की प्रेम कहानी तथा लोरिक की वीरता का वर्णन है। 'लोरिक चंदा' की यह गाथा आज लोक नाट्य के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। इसकी गायन शैली भी भिन्न व स्वतंत्र है।इस गाथा की गायन शैली को चंदैनी गीत कहा जाता है। पंडवानी में इस लोकगीत शैली का उपयोग हुआ है।

"भीम ब्राह्मनीन ल वचन हार के आए हवं बेटा, के तोर बेटा के बदला में मोर बेटा ल दूहूँ। जाकर ओखर दुख ल दुर करो लाला।
पांडव भारत में केवल ब्राहमण अऊ गऊ के कारण जनम लेहे -

ब्राहमनीन घर भीम दऊडन हवें भाई
ब्राहमनीन दाई ओ ऽऽऽ
झन रोबे दाई मैं हववं दाई
दाई हो ऽऽऽ

तोर बेटा के बदला मैं जाहूँ मईया
जाहूँ न ऽऽऽ।" [53]

लोक भजन -

पंडवानी में लोक भजनों का सर्वाधिक उपयोग हुआ है। लोक भजन की सीधी-सादी शैली श्रेता के अन्तरमन को सहज रूप से प्रभावित करती है। पंडवानी गायक पंडवानी के प्रारंभ में, अंत में और कथा-प्रसंगों के बीच में अनेकों लोक भजनों को गाता है। ये लोक भजन तुलसी, कबीर और सूर के होते हैं जो लोक जीवन में घुल-मिल गए हैं। लोक भजन शैली से तो पंडवानी आप्लावित है -

"ये सुमिरन कर ले न मोर मना
बीती जावथे उमरिया ग भजन बिना।
हरि के सुमिरन भज ले मोरो मना।
ये व़रूण नगर पांडव आवन लागे ग
पांचो ये पांडो वरून नगर पहुँचे ग
सुमिरन कर ले मोरो मना।
ये मन-मन कुंती अस गुनन लागे ग
सुमिरन कर ले तोरो मना
बारम बारा नई मिले चोला के अवतारा
हरि सुमिरन भज ले ग मोरो मना।" [54]

x x x x

"कुंती कथे तोर जऊँहर होतीस चंडाल, काखर घर के घर बूड़ी करबे। उधारी ये। एक दिन देबे तो करबे। चल दाई जब के बात देखे जाही -

चोला माटी हे न ये काया माटी हे न
गाले हरि के भजन ल रे चोला मांटी हे न
माटी के ओढ़ना माटी के बिछौना
माटी के लगही सिराना
माटी ह माटी मिल जाही
ये तन हवय पुराना। चोला माटी हे न ये काया माटी न।" [56]

पंडवानी की जहाँ स्वतंत्र गायन शैली है, वहीं पंडवानी में स्थानीय प्रचलित लोक गीत शैलियों को भी स्वाभाविक रूप से अपनाया गया है। पंडवानी गायन लोक गीतों का गुलदस्ता है जिसमें विभिन्न लोक गीत शैलियाँ रंग-बिरंगे फूलों की तरह

सुशोभित है, जिनकी खूशबू की अनुभूति एक ही साथ की जा सकती है। पंडवानी गायन में विभिन्न लोकगीत शैलियों का जैसा सम्मिश्रण है, वैसा अन्य लोक गाथाओं में दुर्लभ है। पंडवानी की पंक्ति-पंक्ति में लोकगीतों की आभा और मिट्टी की मोहक गंध है।

तालों का प्रयोग -

जिस प्रकार मानव जीवन एक निश्चित काल क्रम के अभाव में नीरस और अव्यवस्थित हो जाता है, उसी प्रकार संगीत भी ताल के अभाव में नीरस व ऊबाउ लगता है। ताल संगीत का सुगठित व सुव्यवस्थित स्वरूप निश्चित करता है, चाहे वह शास्त्रीय संगीत हो या लोक संगीत, दोनों में ही क्रिया का नाप है दोनों तालबद्ध हैं, बशर्ते कि यह लोक संगीत की अपेक्षा शास्त्रीय संगीत में ज्यादा प्रमाणिक और संतुलित-सुव्यवस्थित है। लोक कलाकार भी ताल पर ही नाचता है, गाता है। ताल से बाहर वह बेताल कहलाता है। लोक संगीत में ताल का सौन्दर्य और सौष्ठव अपेक्षाकृत अव्यवस्थित अप्रमाणिक भले ही हो किन्तु कृत्रिमता से परे अकृत्रिम है। उसमें प्रकृति से प्राप्त लयबद्धता है।

'ताल' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने अपना मंतव्य प्रकट किया है। 'संगीतार्णव' संस्कृत ग्रंथ में ताण्डव (पुरूष) नृत्य से 'ता' तथा लास्य (स्त्री) नृत्य से 'ल' वर्णों के संयोग से ताल शब्द की व्युत्पत्ति दर्शायी है -

"तांडव स्याधवर्णेन लकारो लास्य शब्दभाक्
यदा संगच्छते लोके तदा तालः प्रकीर्तित :।" [57]

संगीत दर्पण में ताकार से शंकर या शिव और लकार से पार्वती या शक्ति दोनों का योग ताल कहा गया है -

"ताकारे शंकरः प्रोक्तो लकारे पार्वती स्मृता
शिव शक्ति समायोगात्ताल नामामि धीयते।" [58]

"ताल शब्द की व्युत्पत्ति में ऐसे अनेक लक्ष्ण प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध है। जिन तथ्यों का आधार लिया गया है, मूलतः उनके भावों में पृथकता नहीं है। ता, धित्, थू, न्ना आदि शब्दों के द्वारा अखंड कालगति को छन्दों या पदों में विभाजित करने जो प्रयोग हुए उन्हें ताल कहा गया।" [59]

बिना ताल-मात्रा के संगीत प्रभावोत्पाकद नहीं बनता वह श्रोता के अन्तर मन में आनंद, उत्साह और उत्तेजना का संचार करने में समर्थ नहीं होता, फिर वह संगीत, संगीत नहीं रह जाता। संगीत ताल से ही सामर्थ्यवान बनता है। "संगीत में छन्द और ताल ही यथार्थतः स्वरों को गति प्रदान करते हैं। काल-क्रिया के नाप को ही ताल कहते हैं।" [60]

पौराणिक ग्रंथों के आधार पर ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि सारा ब्रम्हांड एक निश्चित गति-लय से बंधा हुआ है। सारे जीव-जंतुओं के जीवन में समय का एक निश्चित और निर्धारित क्रम है। पृथ्वी सूर्य का एक चक्कर निश्चित समय पर लगाती है, जिसके कारण दिन-रात होते हैं। ऋतुएं समय पर आती है। पेड़-पौधे समय पर पुष्पित और पल्लवित होते हैं। समुद्र में ज्वार-भाटा निश्चित क्रम में आता है। यानी पूरी प्रकृति काल बाधित है। यही काल बंधन ही संगीत में ताल कहलाता है। संगीत में लयात्मकता के लिए ताल आवश्यक है। ताल के बिना संगीत निष्प्रभावी और निष्प्राण हो जाता है। ताल संगीत का प्राण है, उसकी धड़कन है।

वाद्य के अभाव में संगीत में लय निर्वाह के लिए चुटकी या ताली बजायी जाती है। चाहे वह शास्त्रीय संगीत हो या लोक संगीत। पद चाप द्वारा भी लय-निर्वाह का प्रयास होता है। ताली के द्वारा लय-निर्वाह का प्रयास अत्यंत प्राचीन और सार्वभौमिक है। संभवत: ताली शब्द से ही ताल की संकल्पना की गई हो या काल-क्रम की गणना में प्रयुक्त ताल से ताली शब्द भाषा-व्यवहार में आया हो, जो भी हो। यह लोक की कल्पना है क्योंकि लोक पहले हैं और वेद शास्त्र बाद में। शास्त्रीय संगीत लोक संगीत की आधारशिला पर ही आज भव्य प्रासाद के रूप में प्रतिष्ठित है। पंडित कुमार गंधर्व की यह मान्यता है कि " हमारे शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति इसी लोक संगीत से हुई।" [61]

राजस्थान संगीत नाटक अकादमी द्वारा लोक संगीत पर आयोजित परिसंवाद में लोक संगीत के ताल स्वरूपों पर विभिन्न विद्वानों का निष्कर्षत: महत्वपूर्ण निर्णय इस प्रकार है -

(1) लोक-संगीत की लयात्मकता को शास्त्रीय संगीत की लयात्मकता के द्वारा मापने के प्रयास होते रहे हैं। ऐसे प्रयास अनुचित ही नहीं बल्कि लोक संगीत के संरक्षण और संवर्धन के लिए घात भी है। वैसे लघु तालों की निश्चित मात्रा का लोक गीतों में निर्वाह अवश्य होता है।

(2) लोक संगीत के तालों में केवल ताल या भरी का प्रयोग है। शास्त्रीय तालों के समान काल या खाली का उचित स्थान पर सदैव निर्वाह करना लोक गायकों के लिए संभव नहीं होता।

(3) लोक संगीत में लयात्मकता का निर्वाह जिन वाद्यों से होता है, उनमें बजने वाले बोलों के लिए क्लिष्ट शास्त्रीय नियमों का पालन नहीं किया जाता। ऐसे असंख्य लय वाद्य वादक लोक संगीत में विद्यमान है जिन्हें न अक्षर

- ज्ञान है न जिन्हें ताल के बोल कंठस्थ हैं।"[62]

लोक संगीत में लोक वादकों को अक्षर-ज्ञान भले ही न हों, उन्हें ताल-बोल कंठस्थ न हों, वे संगीत के शास्त्रीय नियम से भिज्ञ न हों, किन्तु लयात्मकता के निर्वाह के लिए वे सदैव सक्षम होते हैं, लोक गीत उनके ताल पर ही गत्यात्मक है। लय-निर्वहन की उनकी यह क्षमता पूरी तरह काल क्रम में विभाजित है। यही लोक संगीत का ताल है।

छत्तीसगढ़ी लोक-संगीत में 'ताल' शब्द के स्थान पर 'पार' व्यवहृत होता है। पार का आशय किनारा, तट अर्थात् बंधन से है। जिस तरह से नदी के मर्यादित व सुव्यवस्थित प्रवाह के लिए किनारों का बंधन आवश्यक है। उसी प्रकार संगीत के विषय में काल-क्रम के बंधन के लिए ताल आवश्यक है। छत्तीसगढ़ी लोक संगीत में इसे पार कहा जाता है। पार ताल का लोक भाषायीकरण है। पार कहने से ही ताल का ज्ञान होता है। जैसे बिहाव पार, परघनी पार, जँवारा पार, देवारी पार, डाँहकी पार, पंडवानी पार, नाचा पार, करमा पार इत्यादि। लोक दृष्टि से विभिन्न लोक ताल है, जिन पर लोकगायक व लोक नर्तक थिरकते हैं। विभिन्न लोकगीतों में वाद्य भिन्न-भिन्न ताल से बजते हैं। निम्न राऊत दोहे में ताल परिवर्तन का निहितार्थ दृष्टव्य है -

का पार बजाये बजनिया, मोरो मन नई आय।
अरे करमा पार बजा तेमा, मोर मन झूमर जाय॥

(भावार्थ - ओ बाजा बजाने वाले (वादक) तुमने कौन सा पार (ताल) बजाया मुझे अच्छा नहीं लगा। अरे करमा पार बजाओ ताकि मेरा मन झूम-झूम जाय।)

ताल के संबंध में यह लोक मानस की अपनी परिकल्पना है और यह परिकल्पना उसके विभिन्न लोकगीतों की लयबद्धता में साकार होती है। लोक संगीत में तालों की विरलता व शिथिलता हो सकती है, किन्तु लोकसंगीत ताल से परे नहीं है। यह शिथिलता उसकी सुंदरता है। पंडवानी में विभिन्न लोकगीत शैलियाँ समावेशित हैं। पंडवानी में प्रयुक्त तालों के कुछ उदाहरण निम्नानुसार है - सुभद्रा हरण प्रसंग - तीजन बाई

(1) मोर सना नना नना नना नना ना मोहन
तारी बिना बजावत हरि गुन गावत भैया
प्रभु आकर लाज रखबे गा मोर भाई
भरे सभा में लाज रखबे गा मोर भाई

(दादरा)

1	2	3	4	5	6
ना	धा	विं	ना	धा	घिं
X			0		
			ऽ	मो	र
			-	म	म
स	न	ना	न	न	ना
म	म	म	म	म	म
न	न	ना	ना	ना	ऽ
म	म	म	ग	रे	ऽ
मो	हं	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
रे	ग	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऩ
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	सा	सा
			म	ता	री
			म	म	म
बि	ना	ब	जा	व	त
म	म	म	म	म	म
हरि	गु	न	गा	व	त
मम	म	म	ग	र	रे
भै	या	ऽ	ऽ	प्र	भु
रे	ग	ऽ	ऽ	ध	सा
आ	क	र	ला	ऽ	ज
रे	ग	ग	रे	सा	सा
रख	बे	ऽ	गा	ऽ	ऽ
रेरे	ग	ग	रे	सा	सा
मोर	भा	ऽ	ई	ऽ	ऽ
सासा	सा	सा	सा	ऽ	ऽ
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ		
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ		

1	2	3	4	5	6
ना	धा	ति	ना	धा	धिं
X			0		
			ऽ	ग	रे
			ऽ	ध	सा
स	भा	में	ला	ऽ	ज
रे	ग	ग	रे	सा	सा
रख	बे	ऽ	गा	ऽ	ऽ
रेरे	ग	ग	रे	सा	सा
मोर	मा	ऽ	ई	ऽ	ऽ
सासा	सा	ऽ	सा	ऽ	ऽ

2) तब पाँव खड़ऊवा ये ओ
मोर पाँव खड़ऊवा ये न
तब गले डारे माला ग
तब चंदन डारे माला ग
चंदन माथा चमकन लगे न
मोर हाथ कमंडल ददा
ये अर्जुन चले ग भाई
ये दे भेष बना के भईया
गांडीवधारी अर्जुन ग

(कहरवा)

1	2	3	4	5	6	7	8
X				0			
						त	ब
पां	व	में	ख	ड़ऊ	वा	ये	ऽ
प	ध	नि	ध	प	प	म	ऽ
वो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	मो	र
म	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ग	ग
पां	व	में	ख	ड़ऊ	वा	ये	ऽ
ग	ग	ग	ग	रेरे	सा	सा	सा
ना	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ		
सा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ		

शेष पंक्तियाँ उपरोक्त स्वर में हीं।

						मो	र
						सा	नि
हा	ऽ	थ	क	मं	ऽ	ङ	ल
सा	रे	ग	ग	ग	रे	रे	सा
ये	द	दा	ऽ	ऽ	ऽ	ये	अर
सा	सा	सा	ऽ	ऽ	ऽ	सा	निनि
जु	न	ऽ	च	ले	ऽ	गा	ऽ
सा	रे	ग	ग	ग	रे	रे	सा
भा	ई	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ		
सा	सा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ		

शेष पंक्तियां इसी तरह गाई जायेंगी।

(3) हाथ जोड़े अर्जुन बोले ग ब्राम्हण सुन मोर बात
कहना मोर सुनि लेबे
झगरा नई हे ग ये लड़ाई नहीं
मैं तो नारद के वचन पालथौं ये दे पालथौं भाई ये दे जी
सुन के ब्राम्हण देवता मन, गले दिन लगाय
जय हो अर्जुन तोर जय हो

(दादरा)

1	2	3	4	5	6	7	8
धा	धा	तिं	ना	धा	तिं	(भरथरी पार)	
X			0				
हा	ध	जो	ड़े	अर	जुन		
प	प	ध	प	प	म		
बो	ले	गा	ऽ	ब्राम	हन		
म	म	म	ऽ	गग	रेरे		
सुन	मो	रे	बा	ऽ	त		
रेरे	रे	ग	रे	रे	सा		
कह	ना	मो	रे	सु	नि		
रेरे	रे	ग	रे	सा	सा		
ले	बे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ		
सा	सा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ		
				झ	ग		
				म	म		
रा	नई	हे	गा	ऽ	ऽ		
म	मम	म	ग	रे	रे		
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ये	ल		
र	ऽ	ऽ	ऽ	म	म		
ड़ा	ई	न	हीं	ऽ	ऽ		
म	म	ग	ग	रे	रे		

1	2	3	4	5	6	7	8
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	मै	तो		
रे	ऽ	ऽ	ऽ	ध़	सा		
ना	रद	के	ब	च	न		
रे	मम	म	म	रे	रे		
पा	ल	थौं	ऽ	ये दे			
रे	ग	रे	ऽ	सा	सा		
ये	दे	जी	ऽ	ऽ	ऽ		
सा	सा	सा	ऽ	ऽ	ऽ		

(4) भोला ल पूछे पार्वती अ ग शंकर ला पूछे पार्वती
रामा हरिदर्शन कब होय ग भोला ला पूछे पार्वती
हँस के मुरारी अर्जुन ल पूछे भोला ला पूछे पार्वती।

(कहरवा)

1	2	3	4	5	6	7	8
X				0			
							भो
							ध
ला	ला	पू	छै	पा	ऽ	र	व
ध	ध	ध	ध	प	ध	प	म
ती	वो	ऽ	भो	ला	ला	पू	छै
म	ग	ऽ	रे	रे	रे	रे	ग
पा	ऽ	र	व	ती	ऽ	रा	मा
रे	ग	रे	सा	सा	ऽ	ध	ध
ह	रि	द	र	स	न	क	ब
ध़	ध़	सा	सा	रे	रे	ग	ग
होही	गा	ऽ	भो	ला	ला	पू	छै
रेरे	सा	ऽ	सा	र	र	ग	ग
पा	ऽ	र	ब	ती	ऽ	ऽ	
रे	ऽ	सा	सा	सा	ऽ	ऽ	

सामान्यत: पंडवानी में कहरवा, दादरा और दीपचंदी (चाँचर) और कहीं-कहीं पांच मात्राओं का ताल जो शास्त्रीय संगीत के ताल झपताल को सूचित करती है, का प्रयोग होता है।

सन्दर्भ :-

1. संगीत शास्त्र : आचार्य डॉ. जगदीश सहाय कुल श्रेष्ठ :पृष्ठ : 6
2. हिंदुस्तानी संगीत शास्त्र : द्वितीय भाग : भगवत शरण शर्मा : पृष्ठ : 5
3. संगीत बोध : डाँ. शरच्चन्द्र श्री धर परांजये : प्रस्तावना।
4. भारतीय संगीत का इतिहास : डाँ. शरच्चन्द्र श्री धर परांजये : प्रस्तावना : पृष्ठ : 6
5. भारतीय लोक संगीत की आत्मा : श्री ओंकार नाथ ठाकुर : पृष्ठ : 293
6. भारतीय संस्कृति में शूद्रों का योगदान : डॉ. मु.ब.शहा (संचेतना) अंक : 60 पृष्ठ : 81
7. सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति अंक) : लोक गीतों का पक्ष - श्री महेश नारायण सक्सेना पृष्ठ :333
8. निजी संग्रह से
9. भोजपुरी लोकगाथा : डॉ. सत्यव्रत सिन्हा : पृष्ठ : 28-29
10. सम्मेलन पत्रिका : लोक संस्कृति अंक : लोक नृत्य और लोक वाद्यों में. जीवन की व्याख्या : श्रीमती शांती अवस्थी एम.ए., पृष्ठ : 374
11. खड़ी बोली का लोक साहित्य : डॉ. सत्यगुप्ता पृष्ठ : 159
12. सम्मेलन पत्रिका : लोक संस्कृति अंक : पृष्ठ : 376
13. खड़ी बोली का लोक साहित्य : डॉ. सत्यगुप्ता पृष्ठ : 159
14. सूचक - श्री फिरंगी राम यादव भजनहा ग्राम पंडरिया (गंडई) जि. राजनांदगांव (छ.ग.)
15. रविशंकर शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ : निमाड़ का लोक साहित्य : रामनारायण उपाध्याय : पृष्ठ : 165
16. ग्राम साहित्य : भाग - 1 रामनेरश त्रिपाठी पृष्ठ : 55
17. भोजपुरी लोक गीतो के विविध रूप - प्रो. श्री धर मिश्र : पृष्ठ : 52
18. सम्मेलन पत्रिका : लोक संस्कृति अंक : पृष्ठ : 250-251
19. लोक गीत और लोक संगीत परम्परा (जोधपुर) : चैत्र संवत् : 2013
20. धरती गाती है : देवेन्द्र सत्यार्थी आमुख
21. भारतीय लोक साहित्य : श्याम परमार : पृष्ठ : 73
22. निमाड़ी लोक गीत : रामनारायण उपाध्याय : पृष्ठ : 6-7
23. राजस्थान के लोकगीत (पूर्वार्द्ध) प्रस्तावना : पृष्ठ : 12
24. छत्तीसगढ़ी लोक गीतों का लोक तात्विक तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययन - डॉ. हनुमंत नायडू : पृष्ठ : 22
25. धीरे वही गंगा - देवेन्द्र सत्यार्थी, भूमिका पृष्ठ - 9
26. भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन : डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय : पृष्ठ : 14
27. लोक साहित्य - डॉ. विद्या चौहान पृष्ठ : 45

28. छत्तीसगढ़ी लोक गीतों का परिचय : भूमिका : पृष्ठ : 5
29. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास : षोडश भाग खंड - 1 : पृष्ठ : 107
30. .... वही .... खंड - 2, अध्याय : 2 पृष्ठ : 208
31. मैथिली लोक गीतों का अध्ययन, डॉ. तेज नारायण लाल : पृष्ठ : 101
32. निजी संग्रह से
33. लोक साहित्य के बदलते परिवेश - रामनारायण उपाध्याय : सापेक्ष : लोक संस्कृति अंक पृष्ठ : 202
34. निजी संग्रह से
35. .... वही ....
36. .... वही ....
37. .... वही ....
38. निजी संग्रह से
39. .... वही ....
40. .... वही ....
41. .... वही ....
42. .... वही ....
43. .... वही ....
44. .... वही ....
45. .... वही ....
46. .... वही ....
47. .... वही ....
48. .... वही ....
49. .... वही ....
50. .... वही ....
51. .... वही ....
52. .... वही ....
53. .... वही ....
54. .... वही ....
55. .... वही ....
56. .... वही ....
57. मृदंग - मंजरी - सौरीन्द्र मोहन ठाकुर पृष्ठ : 27
58. .... वही ....
59. भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन : डॉ. अरूण कुमार सेन : पृष्ठ : 47
60. .... ''............'' .... पृष्ठ - 49
61. चौमासा : अंक : 4 पृष्ठ : 56
62. भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन :डॉ. अरूण कुमार सेन पृष्ठ : 61-62

अध्याय - 7

- ❑ पंडवानी कथा गायन का बदलता हुआ स्वरूप
- ❑ परिवर्तन का रूप
- ❑ कारण
- ❑ गुण-दोष



पंडवानी गायिका अमृता साहू

पंडवानी कथा गायन का बदलता हुआ स्वरूप

परिवर्तन एक सहज प्रक्रिया है। मूर्त-अमूर्त वस्तुओं में परिवर्तन का प्रभाव स्वभाविक रूप से दृष्टिगोचर होता है। मनुष्य के जीवन में उसके आचार-विचार, रहन-सहन और समान्य व्यवहार में यह साफ - साफ परिलक्षित होता है। मूर्त वस्तुओं पर परिवर्तन की प्रक्रिया की अनुभुति शीघ्र हो जाती है। किन्तु अमूर्त वस्तुओं की परिवर्तन प्रक्रिया और उसक परिवर्तित स्वरूप का अनुभव काफी देर बाद होता है। परिवर्तन समय सापेक्ष है। परिवर्तन समय की मांग तथा युगीन धारा के अनिवार्य तत्व हैं। प्रकृति स्वयं में परिवर्तशील है। "परिवर्तन ही जीवन की निरसता को सरसता में बदलता है।"[1]लाख चाहने पर भी दुनिया से प्रभावित हुए बिना नही रहा जा सकता। परिवर्तन आंशिक भी हो सकता है और पूर्णतः भी। वेशभूषा के संबंध में यह बात अपने आप स्पष्ट हो जाती है। पारंपरिक वेशभूषा भी कितनी जल्दी प्रभावित हो परिवर्तित हो रही है, यह बात किसी से छुपी नही हैं। खान-पान रहन -सहन और वाणी -व्यवहार में पारस्परिक प्रभाव के कारण परिवर्तन हो रहा है।

परिवर्तन के इस दौर में हमारा लोक साहित्य भी अप्रभावित नहीं है। यदि यह कहा जाय कि लोक साहित्य परिवर्तन की प्रक्रिया से प्रभावित नहीं बल्कि लुप्तप्राय हो रहा है तो अनर्थ न होगा। आज लोक साहित्य के जानने - समझने वालों की संख्या दिनों -दिन क्षीण होती जा रही है। यह एक गंभीर समस्या है। यह केवल परिवर्तन तक ही सीमित रहता तो कोई बात नहीं। दरअसल परिवर्तन का प्राथमिक स्वरूप ही किसी वस्तु को उसके मूल स्वरूप से अलगाती है। अतः परिवर्तन एक सहज स्वीकार्य प्रक्रिया है। अपनी पहचान और प्रभाव कायम रखने के लिए परिस्थितिजन्य कारणों से परिवर्तन को स्वीकार करना ही पड़ता है। अन्यथा इस समझौते के बिना तो जीवन की कल्पना नही की जा सकती।

परिवेश में बदलाव के कारण भी परिवर्तन को अनिच्छा से ही सही, किन्तु उसे स्वीकार करना पड़ता है और फिर आधुनिक परिवेश का प्रभाव व्यापक और जबरदस्त है कि देखते- देखते जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यवहृत कर्म बदल जाते हैं। यह आधुनिकता हितकर -अहितकर दोनो ही संभव है। मजे की बात तो यह है कि "आधुनिकता और परम्परागत परस्पर विरोधी तो नहीं किन्तु चोंच लड़ाने से दोनों बाज नहीं आते। जब आधुनिकता का नशा चढ़ता है तो फैलता हुआ वह कितना आगे बढ़

जायेगा, कहना कठिन है। ऐसे में परम्परावादी, रूढ़िवादी कहे जाते हैं और परम्परा उनके लिए अजायबघर का पसरा हुआ सुस्त कछुआ रह जाती है या फिर आधुनिक कक्ष का एक शो पीस। दूसरी ओर आधुनिकता अंतराष्ट्रीयतावाद के कौशल और प्रयोग की भूल-भूलैया में खो जाती है।" [2] लेकिन अति आधुनिक होना भी खतरे से खाली नहीं। आधुनिकता के जबरदस्त प्रभाव के कारण जहाँ हमारे लोक साहित्य हमारी संस्कृति और लोक कला केवल प्रदर्शन की वस्तु रह गयी है वहीं कतिपय आधुनिक लोग इसका व्यवसायीकरण कर रहे हैं। "इस दुर्घटना का एक कारण यह भी है कि जब एक राष्ट्र में शिक्षा का प्रसार होने लगता है तो वह अपने मौखिक साहित्य का अनादर करने लगता है, हम अपने मौखिक साहित्य को अपनाने में लज्जा का अनुभव करते हैं और इस प्रकार प्रगतिवान संस्कृति आश्चर्य जनक ढंग से मौखिक साहित्य को नष्ट कर डालती है।" [3]

हमारा लोक साहित्य आज इन्हीं दुष्प्रभावों से पीड़ित है। शहर तो शहर आज गांवों में विवाह के अवसर पर महिलाओं का विवाह गीत गाना बंद सा हो गया है। लाऊड्स्पीकरों व बड़े-बड़े बाक्स में कैसेट के माध्यम से विवाह गीत बजते हैं। क्या यह लोक साहित्य को समाप्त करने की साजिश नहीं है ? यह साजिश भी आधुनिकता व परिवर्तन की प्रक्रिया से प्रभावित है। आधुनिकता की अंधी दौड़ हमें परिवर्तन के मार्ग से एक दिन किसी अंधी खाई में ढकेल दे तो आश्चर्य नहीं। परिवर्तन से हम प्रभावित होकर, हमारा लोक साहित्य प्रभावित होकर जिस कदर अपना मौलिक स्वरूप खो रहे हैं, वह न हमारे लिए श्रेयस्कर है और न लोक साहित्य के लिए।

परिवर्तन की आंधी लोक -जीवन को भी बुरी तरह प्रभावित कर रही है। ऐसे में हमारी पारम्परिकता गुम हो जाये तो आश्चर्य नहीं। लेकिन क्या हम चुप बैठे रहें ? अपनी परम्परा के संरक्षण और संवर्धन के लिए कुछ न करें ? ये कुछ ऐसे प्रश्न है जो हमें परिवर्तन के इस दौर में सोचने के लिए विवश करते हैं। "आधुनिक काल में लोक जीवन की पारम्परिकस्तब्धता टूटने लगी और स्वाधीनता के पश्चात् तो उसके टूटने का क्रम बहुत तेज हो गया। गांवों में नयी राजनीतिक आर्थिक परिस्थियां और तज्जन्य प्रभाव उभरे। इसके फलस्वरूप सामाजिक जीवन बहुत तेजी से बदलने लगा। शिक्षा का प्रसार होने लगा। शहरों से संपर्क घना हो गया। फलस्वरूप गांव की अति भावात्मक मानसिकता,व्यावसायिकता, उपयोगिता और बौद्धिक चतुराई से सम्पन्न होती गई। संबंधों और मूल्यों में बहुत बदलाव आए। प्रकृति और पर्वों के प्रति रागात्मक लगाव कम होता गया। राजनीति के प्रभाव ने एक ओर लोक जीवन को अपने अधिकारों के

प्रति सचेत किया, दूसरी ओर उसमें भयानक टूटन, स्वार्थ मन्यस्तता असुरक्षा भर दिया । आज लोक जीवन एक दूसरा ही लोक जीवन है । चाहे भला हो या बुरा यही यथार्थ है और इसकी संस्कृति अत्यंत संक्रांत और बहुआयामी बन गई है । नए संदर्भों में एक ओर लोक -चेतना अत्यंत जटिल बन गई है, दूसरी ओर स्थायी रूप में वर्तमान प्रकृति के प्रति उसका लगाव कम हो रहा है । इस लगाव की कमी का परिणाम यह हो रहा है कि जंगल, बाग-बगीचे कटते चले जा रहे हैं और खेत बनते जा रहे हैं ।"[4]

परिवर्तन से लोक जीवन प्रभावित होगा तो उसकी परम्परा प्रभावित होगी, उसकी संस्कृति और उसका लोक साहित्य प्रभावित होगा । उसका स्वरूप परिवर्तित होगा । इस संदर्भ में निम्न उदाहरण इस बात का प्रमाण है -

ददरिया छत्तीसगढ़ का लोक प्रिय लोक गीत है । इसमें छत्तीसगढ़ी लोक - जीवन का युगानुरूप चित्रण होता है । समयुगीन परिस्थितियों को ये अभिव्यक्त करते हैं । स्वतंत्रता के पूर्व महात्मा गांधी के साथ अन्य नेता व छोटे - बड़े लोग अंग्रेजों के खिलाफ आजादी के लिए प्राणपन से समर्पित थे । गांधी जी के आव्हान पर अपना सर्वस्व देश के लिए अर्पण कर देते थे । उस समय गांधी टोपी का चलन था । बड़े नेता से लेकर आम जनता तक सभी धारण करते थे - ददरिया में इसका चित्रण देखिए -

पहार - परबत दिखे ल हरियर ।
टोपी वाला नई दिखे बदे हववं नरियर ॥

निःसंदेह 'टोपी वाला' का आशय यहाँ उन्हीं लोगों से है जो आजादी के लिए लड़ रहे थे । समय बदला, परिस्थितियां बदली और परिवर्तन की इस प्रक्रिया में इस ददरिया का स्वरूप भी बदला । टोपी वाला के जगह साइकिल वाला प्रयुक्त होने लगा -

पहार - परबत दिखे ल हरियर ।
साइकिल वाला नई दिखे बदे हववं नरियर ॥

तब साइकिल का प्रचलन गांवों तक पहुँच गया था । लेकिन वर्तमान में अब मोटर वाला इस ददरिया में सुनाई पड़ता है । यह समय के अनुरूप परिवर्तन की ही प्रक्रिया है । परिवर्तन के इस क्रम में हमारे लोक गीतों के साथ-साथ लोक कथाएं और लोक गाथाएं भी प्रभावित हुईं । लोक गाथाओं की गायन शैली ही नहीं अपितु कथन का स्वरूप बदला । लोक साहित्य की आधार-भूमि पर साहित्य का सृजन हुआ इसलिए किंचित कथानक और चरित्र में भी परिवर्तन की आंशिक झलक मिलती है । इसका कारण युगीन परिस्थितियां भी हो सकती हैं । पंडवानी,परिवर्तन की इस प्रक्रिया से अप्रभावित, परे है, ऐसा दावा कदापि नहीं किया जा सकता ।

पंडवानी कथा गायन का प्रारंभ भजन के रूप में हुआ। इसका उल्लेख पूर्व में कियाजा चुका है। स्वांत: सुखाय गायन की यह परम्परा आज व्यावसायिकता से मुक्त नहीं हैं। जब कोई वस्तु या कला व्यावसायिकता की परिधि में आ जाती है तब वह उपभोक्ता वाद के कारण उपभोक्ता की अभिरूचि और मांग के अनुरूप ढाल दी जाती है। स्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तन होते हैं। "प्रक्रिया और प्रस्तुतीकरण में समयानुसार परिवर्तन होगें। उदाहरण के लिए छत्तीसगढ़ी नाचा का रूप बदल रहा है। चंदैनी की प्रस्तुतीकरण सोलो न रहकर ग्रुप में होता जा रहा है। लोक कलाकारों की मंडलियां नाचा में फिल्मी प्रभाव पैदा करने की कोशिश करने लगी है। पारम्परिक हास्य प्रणाली या मुद्राएं बदलती जा रही हैं। इस तरह का परिवर्तन चिन्ता का विषय हो सकता है। अपने अत्यंत यशवन्त कलारूप को खोना संस्कृति के लिए बड़ा हानिप्रद है। नाचा अपने मूल रूप में हास्य व्यंग्य के माध्यम से गम्भीर सामाजिक समस्याओं को भी सामने रखता था। कलाकारों की सामाजिक चेतना कलारूप में आसपास के जीवन के यथार्थ को व्यक्त कर देती थी। जब कोई व्यक्ति उसे कलारूप में देखता है तो अपने लोकनाट्य के प्रति उसका चिंतित होना स्वाभाविक है। पर लोक मंडलियां अपनी जरूरतों के अनुसार परिवर्तन कर रही है और उसके दर्शक समूह भी अब उसी रूचि के हैं जो उन्हें देख रहे हैं।"[5] दरअसल यह बदलाव का प्रमुख कारण दर्शकों की रूचि ही है। यदि कलाकार अपनी प्रस्तुतिकरण में बदलाव नहीं लाता तो स्वाभाविक है दर्शक उसे स्वीकार नहीं करेंगे और दर्शक दीर्घा की यह अस्वीकृति उसे सहज स्वीकार्य नहीं है। इसलिए उसके कलारूप में परिवर्तन निश्चित है।

पंडवानी गायन एक व्यक्ति से प्रारंभ हुआ जो भजनहा कहलाया और फिर भजनहा के सहयोग के लिए सहयोगी की आवश्यकता हुई जो 'रागी' कहलाया। तब पंडवानी, पंडवानी ही थी, पांडव की गाथा। परन्तु अब पांडवों की गाथा होकर भी पंडवानी , पंडवानी नहीं अब वह महाभारत कहलाती है। कोई पंडवानी कथा गायक अपने आपको महाभारत गायक कहलाना ज्यादा सम्मानजनक समझता है। यह उनके द्वारा गायन के समय मंच पर लगाये जाने वाले 'बैनर' से प्रदर्शित होता है। बाकायदा जिसमें लिखा रहता है - अमुक महाभारत पार्टी। पंडवानी का महाभारत हो जाना ही अपने आप में बड़ा परिवर्तन है। पंडवानी में जब दो ही कलाकार थे तब पूर्णतय: मौखिक परम्परा का निर्वाह होता था। चूंकि पंडवानी गायक का शहरी परिवेश से संबंध तब नहीं के बराबर होता था। इसलिए उसकी भाषा शैली पूरी तरह अपनी थी। भाषा में मिट्टी की गंध समाहित रहती थी। एकबानगी प्रस्तुत है -

"तेखर बर सगा बर खोजे बर भाई।
गिंजरत हववं पिरथी में ग भाई।
दुनिया दुनिया में घूमत हवं भाई
कोनो बर नई मिलय भाई
ये ले न कागज तहूँ बाँच ले न भाई
कागज देखावय भीमसन का भाई
चेहरा-रूप ल बाँचत हवय भाई
मेछा अईंठत हवय बेटा कोतमा के भाई
वाह... वाह कैना मूंगा कहे भाई
भईया नकुल बर में शादी करवं भाई
तरी डाहर कागज फेर बांचत हवय भाई
जेन जेठ भाई के दरसनी देहै भाई
ओखर अढ़ई घूंट खून पिहंव कहे भाई
ओखरे मांग सेंदूर कस भरवं कहे भाई
जेला जब सुने भीमसन ह भाई
भले मरि जाबो एक भाई रे भाई
नई छोड़वँ मूंगा सेन्दूरागढ़ ल भाई
पाँच झन बेटा माता कोतमा के भाई
एक झन मरबो गढ़ सेंदूरा में भाई
बिना भांवर पारे नई छोड़वं भाई
अरे-अरे धावन तैं सुनि लेबे भाई" [6]

लेकिन अब ऐसी ठेठ छत्तीसगढ़ी बोली पंडवानी में सुनने को नहीं मिलती। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण हमारी बोली भी प्रभावित हुई है। अब न हम हिन्दी ही बोलते हैं और न ही छत्तीसगढ़ी। हिन्दी का पूर्ण प्रभाव हमारी बोली में भी आरोपित लगता है। पंडवानी कथा गायन इस प्रभाव से पीड़ित है। माटी की गंध खो सी गई है। इसका अनगढ़ सौन्दर्य प्रभाव जो मन को गहराई तक स्पर्श करता था वह छिछला जान पड़ता है। भाषा सौन्दर्य कृत्रिम, आरोपित और गढ़ने के प्रयास में प्रभावहीन लगता है। "लक्ष्मण कुमार रूक जाओ मैं तुम्हें देखना चाहता हूं और ये भी जानना चाहता हूं के माता सुभद्रा का गोरस पक्का है या रानी भानमती का। दोनों राजकुंवर हैं अभिमन्यु चिन्ताराम लक्ष्मण को ललकार रहे हैं -

दोनों राजकुंवर है, दोनों क्षत्री का बालक हैं
दोनों राजकुंवर है, दोनों क्षत्री का बच्चा है।
आज पता लग जायेगा
अरे लक्ष्मण कुमार

आज पता लग जायेगा किस माँ का गोरस पक्का है वीर अभिमन्यु लक्ष्मण कुमार ऊपर बाण प्रहार कर दीस चिंताराम। अऊ ओ बालक लक्ष्मण कुमार फरसा लेकर दौड़े। जब दोनों बंधु, दोनों भाई संग्राम करे उस समय अईसे लगय -

दोनों वीर दिखत हैं ऐसे
बालि संग सुग्रीवहिं जैसे।
जइसे बालि और सुग्रीव के संग्राम होईस।"[7]

पंडवानी में दो कलाकारों के स्थान पर आज पाँच छै: कलाकारों का अपना दल होता है। जिसका मुखिया स्वयं पंडवानी गायक होता है। पंडवानी का आयोजन एक निश्चित राशि या चढ़ोत्तरी के आधार पर होता है। पहले पंडवानी गायक भेंट में जो मिल जाता उसी से संतुष्ट हो लेता। अब तो आयोजन के लिए "मोल-भाव" होते हैं। "हमारे देश में भी पूंजीवादी व्यवस्था ने तथाकथित लोक संस्कृति के "लोक" को पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली में शामिल किये बिना पूंजीवादी माल के प्रभाव से तोड़ना शुरू कर दिया है। इस व्यवस्था ने लोक संस्कृति के विभिन्न कलारूपों को अपने व्यवसाय और मुनाफाखोरी का सामान बना लिया है, लेकिन उसके सामाजिक तबके को सर्जनात्मक विकास का अवसर एवं सुविधा देने की चिन्ता उसे नहीं है। लोक संस्कृति के सामने यही समस्या और संकट है।"[8]

लोक संस्कृति के आयोजनों पर पूँजीवादी व्यवस्था हावी है। इस व्यवस्था ने लोक कला को प्रदर्शन की वस्तु बना दिया है। यह प्रदर्शन और व्यवसायिकता का ही प्रभाव है कि आज बाजार में लोकगीतों के नाम पर श्रोताओं, दर्शकों की अभिरूचि की आड़ लेकर मांसल सौन्दर्यात्मक गीत बेचे जाते हैं। एक प्रकार से यह हमारी लोक संस्कृति और लोककला की हत्या है। लोकगीतों के नाम पर नित नए प्रयोग किए जा रहे हैं। "आप देखते होंगे कि एक साथ लोक संस्कृति के प्रति कितनी निगाहें सक्रीय हैं। कभी हम मान लेते हैं कि संस्कृति का लक्षण अपरिवर्तन है। यह एक रूढ़ सामाजिक कलरव है। इसकी जरूरत रंजन के लिए है। इसीलिए उच्च्व वर्ग इसकी रक्षा के लिए बेचैन है। उपभोक्ता सुख के लिए वह रक्षित वह लोक संस्कृति को ऊंची कीमत पर क्रय के लिए तैयार। आपने देखा होगा कि बस्तर, झाबुआ और छत्तीसगढ़ की कितनी लोक

मंडलियों को अब अपने गाँव जाने की फुर्सत नहीं है। तीजन बाई का पंडवानी अभिनय अब महंगा सांस्कृतिक कार्यक्रम है।"[9] यह तो निश्चित है कि पंडवानी गायन में जिन्होंने नाम कमाया है, जिन्होंने पंडवानी गायन को विश्वमंच पर स्थापित किया है। इस सोहरत के कारण उनकी मांग होगी। उनके कार्यक्रम महंगे होंगे पर वे आज भी विपन्ना अवस्था में है। इसका लाभ तो बड़ी-बड़ी कंपनियां उठा रही है। उनके कथा गायनों के कैसेट धड़ल्ले से जारी हो रहे हैं। इन कलाकारों को क्या मिला ? केवल नाम और पारिश्रमिक के नाम पर कुछ राशि और कंपनियों ने कमाए लाखों। केवल पंडवानी गायन ही नहीं बल्कि हर लोक कला की कमोबेश यही स्थिति है। यह भी परिवर्तन का प्रभाव है कि लोक कलाकार आधुनिकता की चमक-दमक और आकर्षण के व्यामोह में फँस जाता है।

आधुनिकता के आकर्षण ने पंडवानी गायन के स्वरूप को केवल बाह्य रूप से ही नहीं अपितु आंतरिक रूप से भी बदलाव की ओर प्रेरित किया है। पंडवानी का आंतरिक कलेवर ही नहीं , उसका बाह्य कलेवर उसकी साज-सज्जा पूरी तरह बदली हुई है। पहले पंडवानी गायक की वेशभूषा सामान्य थी , आम छत्तीसगढ़िया की तरह पंछा, बंडी या धोती कमीज, पर अब ऐसा नहीं है। वेशभूषा पर भी आधुनिकता का प्रभाव है। कलगी माला अंग से विलोपित हो गए हैं। जरी गोटे और चमक-दमक की आधुनिक वस्तुओं ने अब उसका स्थान ले लिया है। पंडवानी दल के सारे सदस्य एक ही रंग और एक ही तरह के पोषाक पहनते हैं। पंछा-बंडी, धोती और कमीज भी आधुनिकता के रंग में रंगे होते हैं। पंडवानी गायिकाएं परम्परा निर्वाह की दिशा में अति उत्साहित नजर आती हैं। वे आम छत्तीसगढ़ी महिला नहीं सिल्क-काटन की कीमती चमकीली साड़ियाँ पहनी अंग-प्रत्यंग पर लोकाभूषणों के नाम पर कृत्रिम किन्तु कीमती गहनों से लदी किसी गौंटनीन से कम नहीं लगती। मुख पर कृत्रिम सौन्दर्य प्रसाधनों का जमावड़ा। किसी भी कोण से यह बाह्य सज्जा, यह आवरण अपना नहीं लगता। आवरण तो आवरण ही होता है।

कृत्रिमता, आवरण और परिवर्तन-परिवर्धन की यही स्थिति पंडवानी में प्रयुक्त वाद्य तमूरा के साथ भी मिलती है। तमूरा , तमूरा नहीं जैसे प्रदर्शन की वस्तु है और केवल प्रदर्शन की। उसकी बनावट, उसकी सजावट में कहीं से भी ग्रामीण सौन्दर्य के दर्शन होते नहीं। कुछेक पंडवानी गायक -गायिकाओं के तमूरा के तार झंकृत होना भी नहीं जानते। खंझेरी तो लगभग लुप्तप्राय हो चुकी है। नये वाद्यों ने पंडवानी पर अन्य लोकगीतों की तरह अपना अधिकार जमाया है। नये वाद्यों के प्रयोग ने पंडवानी को

मधुरता और सरसता प्रदान किया। पंडवानी कथा गायन लोकप्रिय हुआ। नए वाद्यों का प्रवेश स्वागतेय है, किन्तु हमारे लोक वाद्यों की विलुप्तता चिन्ता का विषय है। समय जिस गति से बदल रहा है। बदलाव की यह गति कभी सुखद और कभी दुखद होती है। बदलाव की गति और स्थिति हमारे आचार-विचार के साथ-साथ हमारी लोककला को भी प्रभावित कर रही है। नये-नये वादयों ने कुछ हद तक लोक संगीत में कुछ बोझिलता पैदा की है और जब अपनी चीज किसी आवरण के कारण बोझिल लगे तो फिर अपनापन उस चीज के प्रति कहां रह जाता है ? परिवर्तन से प्रभावित पंडवानी परायी न लगे इस बात के प्रति जागरूकता की आवश्कता है। हम सचेष्ट रहें कि पंडवानी की मौलिकता बनी रही अंदर से भी और बाहर से भी।

आज विज्ञान का युग है। विज्ञान ने सबको प्रभावित किया। नए-नए वैज्ञानिक आविष्कारों ने हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष के साथ-साथ हमारी दिनचर्या को भी प्रभावित किया है। हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप वैज्ञानिक प्रगति ने औद्योगीकीकरण को जन्म दिया। नये-नये औद्योगिक तीर्थ बने। शहरों से लेकर कस्बों और गाँवों तक इसके पाँव जमने लगे। छत्तीसगढ़ में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों (कच्चे माल) के आधार पर भिलाई में इस्पात संयंत्र की स्थापना हुई। उन्नति के नये द्वार खुले। कोरबा जैसे आद्योगिक नगर बसे। सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ में कई छोटे-बड़े कारखाने खुले। छत्तीसगढ़ की इस औद्योगिक विकास ने अन्य प्रान्तों के लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया। विभिन्न प्रान्तों से आये लोगों के साथ उनकी संस्कृतियों का समागम हुआ और एक-दूसरे को प्रभावित किया। एक नये सांस्कृतिक परिवेश का उदय हुआ। मिली-जुली नई संस्कृति पनपी। प्रेम, सौहार्द्र, सद्भावना और वैचारिक आदान-प्रदान की संस्कृति। भिलाई में लौह संयंत्र की स्थापना के साथ रोजगार की नई संभावनाएं खुली। रोज़ी-रोटी की तलाश में गाँवों से लोग भिलाई आये। वैसे भी उस समय अवर्षा व सिंचाई के अभाव में खेत सूखे रह जाते, किन्तु आदमी सूखता कहां है ? अदम्य जिजीविषा उसे नई संभावनाओं की खोज के लिए उत्साहित और प्रेरित करती है।

भिलाई एक नया औद्योगिक तीर्थ बना। सांस्कृतिक दृष्टि से लघु भारत। कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक, कच्छ से लेकर असम तक की समन्वित संस्कृति का भारत।तब भला अपने ही अंचल के लोग इस आकर्षण से व रोजी-रोटी की नई संभावनाओं से अप्रभावित कैसे रह सकते थे। छत्तीसगढ़ के लोग भी छत्तीसगढ़ के केन्द्र बिन्दु भिलाई में अपनी मेहनत का अलख जगाने अपने श्रम के साथ अपनी लोक कला को साथ लेकर आए औद्योगिक परिवेश के साथ ही सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण

हुआ। कल-कारखानों की आवाजों के साथ करमा, ददरिया, सुवा-गौरा नाचा, पंडवानी, चंदैनी, पंथी की सुमधुर ताने गूंजने लगी। लोक गीतों व लोक नाट्यों से वातावरण गमकने लगा। गांव से कलाकार आये और वहीं रम गये। रोजी-रोटी की आवश्यकता पूरी जो होने लगी। छत्तीसगढ़ी लोककलाओं के प्रचार-प्रसार व विकास के लिए भिलाई इस्पात संयंत्र भिलाई द्वारा छत्तीसगढ़ी लोक कला महोत्सव का आयोजन किया जाने लगा। छत्तीसगढ़ के दूरस्थ अंचलों के लोक कलाकारों को आमंत्रित कर उन्हें कला प्रदर्शन के लिए नए अवसर दिये गये। लोक कला और लोक कलाकारों के लिए यह आयोजन सार्थक सिद्ध हुआ। भव्य और विशाल मंच हजारों दर्शकों की उपस्थिति लोककलाकारों के लिए कौतुहल का किन्तु सुखद अनुभव था।

पंडवानी की स्वर- लहरी से संपूर्ण भिलाई गूंजने लगा। यही वह मंच है जिसने पंडवानी गायिका पद्म श्री तीजन बाई और कुमारी ऋतु वर्मा को पंडवानी के क्षेत्र में विश्व में प्रतिष्ठित किया। श्री झाडू राम देवांगन, श्री पूना राम निषाद व अन्य पंडवानी गायकों को प्रस्तुत कर यह मंच गौरान्वित हुआ। पंथी गायन के क्षेत्र में श्री देवदास बंजारे को विश्व ख्याति दिलाने में सिद्ध हुआ। भिलाई के इस आयोजन ने लोककला के लिए नए क्षितिज का निर्माण किया। नई दिशा दी और नए आयाम दिए। गांवों के चौपालों से निकलकर पंडवानी कस्बों, नगरों और महानगरों में अपनी पहचान बनाई। इस दरम्यान पंडवानी के प्रस्तुतीकरण में परिवर्तन हुए। पंडवानी ने अपने इस संक्रमण काल में बहुत कुछ पाया तो बहुत कुछ खोया भी। खोने और पाने की स्थिति में पंडवानी के स्वरूप में परिवर्तन स्वाभाविक था। परिवर्तन का यह स्वरूप पंडवानी में स्पष्टतः परिलक्षित हो रहा है।

शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने लोगों की सोच और समझ में बदलाव लाया। बदलाव की इस स्थिति से लोककला भी प्रभावित हुई। लोगों की रूचि बदली, रूझान बदला। मौखिक परम्पराओं का हास होने लगा। लोकगीत, लोक कथाएं, लोक गाथाओं का विस्तृत दायरा सिमटने लगा। केवल पुरानी पीढ़ी के पास यह संग्रहित रही, नई पीढ़ी का झुकाव इसके प्रति कम होने लगा। पुरानी परम्पराएं सिमटने लगीं। पंडवानी इस प्रकिया से ज्यादा प्रभावित हुई। पंडवानी की कापालिक शैली की कथाओं में वेद सम्मत कथाओं का मिश्रण होने लगा। पुराने पंडवानी गायकों के प्रति श्रोताओं ने अरूचि दिखाई। नए गायकों जिन्होंने मूल महाभारत की कथा गाना प्रारंभ किया था उन्हें सर आंखों पर उठा लिया। "हरेली तिहार - त्यौहार का दिन था। गांव में श्री ईतवारी राम साहू पंडवानी गा रहे थे। उस दिन 'कर्रा-कुसुवा दानव' का प्रसंग चल रहा था।

पंडवानी गायक ईतवारी राम साहू शास्त्र सम्मत कथा को छोडकर दंतकथाओं की लोक पर चल रहे थे। गायकी में न ओज था न माधुर्य। झाडूराम देगांवन से सहा नहीं गया और उन्होंने पंडवानी गायक साहू की आलोचना कर दी। साहू ने चुनौती दे दी। कबीर के सूरमा की तरह झाडूराम देवांगन ने चुनौती स्वीकार कर ली। तम्बूरा और करताल लेकर दो घंटे तक पंडवानी गाते रहे। उपस्थित लोग इनकी गायकी से प्रभावित हुए और तब से इन्हें पंडवानी गायन हेतु निमंत्रण मिलना प्रारंभ हो गया।"[10] यह भी उल्लेखनीय है श्री झाडू राम देवांगन तब युवा थे और उन्होंने श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत की दोहा -चौपाइयों को कंठस्थ कर लिया था, जिसे उन्होंने एक लूगरा (साड़ी)की कीमत के एवज में कलकत्ता,प्रवासी उनके गांव निवास मंगलू से प्राप्त किया था। कहने का आशय यह कि दंत कथाओं के स्थान पर वेदोक्त कथाएं प्रतिष्ठित होने लगी। वैसे भी दंत कथाओं का कोई आधार नहीं होता। वे प्रमाणिक नहीं होती केवल लोक विश्वास और लोकमान्यताओं के आधार पर गाई जाती हैं। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से दंत कथाओं केप्रति लोगो में अविश्वास पैदा होने लगा। वे पंडवानी कथाओं का प्रमाणित आधार चाहते थे। पांडवों की कथा का एक मात्र प्रमाणित आधार महाभारत ही है। अतः प्रमाणित कथाएं श्रोताओं को भाने लगी। कथा परिवर्तन की दृष्टि से यह शुरूआत ही थी जो आगे चलकर और भी लोक प्रिय हुआ।

दंत कथाओं का प्रचलन कम होने लगा। महाभारत की वेदोक्त कथाओं की लोकप्रियता से पुरानी पीढ़ी के गायक जो पढ़े-लिखे थे उन्होंने महाभारत का अध्ययन प्रारंभ किया जो अनपढ़ थे वे मन मार कर रह गए। वर्तमान पंडवानी गायन परिवर्तन के इसी दौर का प्रतिफलन है। दंतकथाएं विलुप्त होने लगीं -

"भारी राजा सुनेव जैता पुर में भाई
एको झन नई ये जैतापुर में भाई
एको झन मरद घलो नई काहय भाई
ठाढ़ राणी देखेवं जैतापुर में भाई
पांच झन बेटा माता कोतमा के भाई
पांचो कर खटिया मरघट्टी गए भाई
ऐसा गारी देवथे धावन ह भाई
ऐती गारी देवत हे धावन ह भाई
फरकथे भुजा भीमसन के भाई
कोन बीर कन्द मूल खावथे भाई

तेला देखथे भीमसन ह भाई

कइसे मोर भुजा फरकथे भाई।"[11]

इस तरह की पंडवानी अब सुनने को नहीं मिलर्ती। जैतापुर का किसी शास्त्र में उल्लेख नहीं मिलता यह लोक की निधी है। जैतापुर के स्थान पर हस्तिनापुर महाभारत में प्रमाणिक है। यही अंतर पंडवानी व महाभारत की संपूर्ण कथाओं में है। कथाओं के घटना क्रम और सूत्र भी भिन्न-भिन्न। यह भिन्नता लोक और वेद की भिन्नता है।

"करन जब जमुना में कूदे बर गीस सूर्य नारायण प्रकट होके किहिस बेटा तुम क्यों जमुना में कूद के प्राण दे रहे हो ? करन कथे -

माता-पिता हम जानत नाहिं,

बालक खेल खेलावत नाहिं।

बाप ल जानवं न महतारी ल जानवं। मोला बेर्रा कहिथे तेखर सेती संसार में का जी हूँ। सूर्य नारायण किहिस बेटा तू मेरा पुत्र है। तब करन कथे पिता जननी को जाई ? त महतारी कोन ये ? त अगिन चीर के पगड़ी दे के किहिस -

अगिन चीर जानहिं संसारा

अऊ पहिनहिं ताहू मातु तुम्हारा।

बेटा ये अगिन चीर के पगड़ी पहिन सकही जउन तोर महतारी ये।"[12]

इस तरह की प्रमाणिक व वेद सम्मत कथाओं को लोगों ने सम्मान दिया और सुना। फलस्वरूप पंडवानी में वेदमती शैली का गायन प्रारंभ हुआ। कथा की दृष्टि से पंडवानी में यह महत्वपूर्ण परिवर्तन है।

प्रचार-प्रसार तंत्र (मीडिया) ने भी पंडवानी गायन के बदलाव में सकारात्मक भूमिका निभायी। आकाशवाणी केन्द्रों की स्थापना से लोक कलाकारों और लोक कला के प्रचार-प्रसार के लिए महत्वपूर्ण कार्य हुए। लोक कलाकारों की गायन कला को रेडियो के माध्यम से प्रस्तुत किया गया। उस समय छत्तीसगढ़ी गीतों को भी रेडियो में स्थान मिला। "1964 में भोपाल आकाशवाणी केन्द्र से मेरा पहला कार्यक्रम प्रसारित हुआ।"[13] संभवतः रेडियो से पंडवानी का यह पहला प्रसारण है। छत्तीसगढ़ में रायपुर में आकाशवाणी केन्द्र की स्थापना ने संभावनाओं के क्षितिज को और विस्तार दिया। स्थानीय लोकगीतों के अनवरत प्रसारण से लोककलाकारों में रेडियो प्रसारण के प्रति आकर्षण बढ़ा। फलस्वरूप पंडवानी गायकों ने एक नई ऊर्जा और नये उत्साह के साथ अपने गायन को मांजा, उन्हें अवसर मिला और उल्लसित हुए। छत्तीसगढ़ की लोक कला को प्रचार-प्रसार का साधन मिला। पंडवानी गायकों ने अपनी मंडलियां गठित की। रेडियो की इस जादुई चमत्कार ने श्रोताओं को भी प्रभावित किया और आकाशवाणी

से प्रसारित होने वाले पंडवानी गायकों को पंडवानी गायन हेतु आमंत्रित किया जाने लगा। इस प्रकार से पंडवानी में व्यवसायिकता का पदार्पण हुआ। इस व्यवसायिकता ने गायकों में एक प्रकार से प्रतिद्वंद्विता की भावना ला दी। प्रतिद्वंद्विता ने पंडवानी गायन को परिष्कृत किया। नये वाद्य यंत्रों के प्रयोग को प्रोत्साहित किया। लोक कलाओं के संरक्षण संवर्धन और प्रचार-प्रसार के लिए शासन की ओर से अनेक प्रयास प्रारंभ हुए। केन्द्र सरकार ने सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना की। मध्यप्रदेश में भी आदिवासी लोककला परिषद् की स्थापना हुई। सांस्कृतिक केन्द्रों में लोक कलाओं के सांस्कृतिक आदान-प्रदान की दिशा में लोक कलाकारों को एक-दूसरे प्रान्तों में भेजना प्रारंभ किया। इस माध्यम से लोक कलाकारों को सम्पूर्ण सुविधा सुलभ हुई, साथ ही यश लाभ की दृष्टि से भी आयोजन कारगर सिद्ध हुए। श्री झाडूराम देवांगन, श्री पूनाराम निषाद, श्रीमती तीजन बाई, कु. ऋतु वर्मा, आदि पंडवानी गायकों ने देश के सारे प्रान्तों में अपना पंडवानी गायन प्रस्तुत किया। साथ ही विदेशों की भी यात्रा की और पंडवानी गायन की परम्परा से विश्व को परीचित कराया। इस प्रोत्साहन ने भी पंडवानी को परिमार्जित करने के लिए अन्य पंडवानी गायकों को प्रेरित किया। उन्होंने अपने गायन और अभ्यास को निरंतरता प्रदान की। मध्यप्रदेश आदिवासी लोक परिषद् भोपाल ने कई स्थानों पर पंडवानी प्रसंग का आयोजन कर पुरानी पीढ़ी के पंडवानी गायकों के साथ ही उदीयमान गायक-गायिकाओं को आमंत्रित कर उनका उत्साहवर्धन किया। इसका सुखद परिणाम यह हुआ कि आज पंडवानी के सैकड़ों गायक-गायिकाएं पंडवानी गायन के परिपोषण के लिए प्राणपन से संलग्न है। यह अपने आप में एक उपलब्धि है ,लोक कला के संरक्षण-संवर्धन के लिए।

सांस्कृतिक केन्द्रों व म.प्र. आदिवासी कला परिषद् भोपाल व संस्कृति विभाग छत्तीसगढ़ शासन ने पंडवानी गायकों को महत्वपूर्ण मंचों पर पंडवानी गायन का अवसर दिया तथा उन्हें विदेश भी भेजा। म.प्र. आदिवासी लोक कला परिषद् भोपाल द्वारा श्री झाडूराम देवांगन की पंडवानी गायिकी पर केन्द्रित मोनोग्राफ का प्रकाशन किया गया। इस बीच दूरदर्शन में भी नगरों-महानगरों के साथ ही गाँव-कस्बों में अपना प्रभाव जमाना शुरू कर दिया था। टी.वी. के जादुई आकर्षण ने लोक कलाकारों को आकर्षित किया। अनेक पंडवानी गायक-गायिकाओं को टी.वी. में पंडवानी गाते देख जनमानस प्रभावित हुआ। टी.वी. के प्रभाव ने पंडवानी गायकों को भी प्रभावित किया। दूरदर्शन पर प्रसारित महाभारत सीरियल की प्रस्तुति ने पंडवानी गायक-गायिकाओं को अभिनय की ओर प्रेरित किया। महाभारत का जीवंत स्वरूप देख पंडवानी कलाकारों ने अपने

गायन में अभिनय को प्रमुखता दी। पंडवानी में अभिनय पक्ष सबल हुआ और इसकी लोकप्रियता बढ़ी। भोपाल दूरदर्शन के एक कार्यक्रम में श्रीमती तीजनबाई का पंडवानी गायन हुआ। म.प्र. के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम मोहम्मद सफी कुरैशी और म.प्र. के मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह जी इस कार्यक्रम में श्रोता के रूप में उपस्थित हुए। प्रसंग द्रौपदी स्वयंबर का था। तीजन बाई के गायन में अभिनय पक्ष बड़ा सबल होता है। अपने हाथ में तम्बूरे को धनुष की तरह लेकर मछली की आंख को बेधने का प्रसंग कर रही थी, धनुष के साथ ही तीजनबाई की नजरें ऊपर की ओर थी और कहा - "रागी मोर निशाना ठीक हे नहीं ? रागी ने तत्काल जवाब दिया - नहीं। नजर नीचे होना चाहिए। तब तीजनबाई ने चुटकी ली। अरे अतके ल जानतेंव त भोपाल काबर आतेंव।" उनकी इस चुटकी पर श्रोता समुदाय के साथ राज्यपाल और मुख्यमंत्री जी खिलखिलाकर हँस पड़े। यह अभिनय का ही कमाल था।

इन दिनों पंडवानी गायक पंडवानी गायन में प्रयोग कर रहे हैं। एक दल में पंडवानी गायन का कार्य एक ही व्यक्ति करता है और रागी उसका साथ देता है। किन्तु अब दो लोग भी गायन करते हैं। यह प्रयोग ऊषा बाई बारले के पंडवानी गायन में देखने को मिला। ऊषाबाई बारले स्त्री पात्रों की भूमिका निबाहती हैं और उनका एक साथी पुरूष पात्रों का वाचन,गायन व अभिनय करते हैं बिल्कुल नाटक की तरह। पंडवानी में परिवर्तन का यह रूप द्रष्टव्य है -

ऊषाबाई -	"करन तोला यकीन नई हे बेटा तो ये दे मैं ये ला पहिर डरेंव बेटा। जनम देंव लेकिन धर के तोला गोरस नई पियायेंव बेटा, आना मोर गोदी में सुंदर बइठ जा करन। सुन्दर मोर दूद ल पीले करन। आ करन आ बेटा।
रागी -	आजे दाई ओ सचमुच माता जानेंव मईया सचमुच तैं मोर माता अस माँ
ऊषाबाई -	सच में करन
रागी -	गोरस मोला पिया देबे ओ मईया।
ऊषाबाई -	पीले करन, दूध पीले बेटा पीले मोर लाल।
रागी -	माँ
ऊषाबाई -	हाँ करन
रागी -	मोला गोरस पिला दे माँ। माँ के गोरस कइसन, होथे आज तक नई पीये हवँ माँ।
ऊषाबाई -	पीले करन दूध पीले बेटा। आज बड़ा आनंद के साथ अपन बेटा

करन ल बड़ा सुंदर थन पकड़ा के गोरस पियावत हे। करन तोला पियावत -पियावत समझावत हँव।" [14]

कई प्रसंगों में जिसमें पात्रों की अधिकता होती है , वहाँ ये विभिन्न पात्रों के संवादों को क्रमश: बोलते हैं। पंडवानी में परिवर्तन का यह रूप कितना लोकप्रिय होगा ? इसे तो भविष्य ही बतायेगा। यदि लोकप्रिय हुआ और पंडवानी गायक इस तरह परिवर्तन से प्रभावित होते रहे तो पंडवानी भी 'चंदैनी' की तरह लोक नाट्य का रूप ले ले (जिसमें पात्रों को कई लोगों द्वारा अभिनित किया जाता है)तो आश्चर्य नहीं। पंडवानी गायन में ऊषाबाई बारले की तरह श्री भागवत राम साहू (कूरलू) भी प्रयोग कर पंडवानी गाते हैं। पंडवानी में परिवर्तन चाहे कथा की दृष्टि से हो या वाद्यों की दृष्टि से अवश्य प्रभावित है।

पंडवानी गायन के स्वरूप में एकप्रकार का और परिवर्तन दृष्टि गोचर होने लगा है। वह है पंडवानी की जुगल बंदी। एक दल द्वारा स्वतंत्र पंडवानी के स्थान पर दो पंडवानी दल एक ही मंच पर आमने-सामनले बैठकर प्रतिद्वन्द्वी के रूप में पंडवानी गायन करते हैं। बिलकुल कव्वाली की तरह। पंडवानी गायक क्रमश: कथा को आगे बारी-बारी से बढ़ाते हैं। इस तरह का प्रयोग विगत चार-पांच वर्षो से भिलाई इस्पात संयंत्र द्वारा आयोजित छत्तीसगढ़ी लोक कला महोत्सव में किया जा रहा है।

परिवर्तन के इस दौर में पंडवानी में जहाँ अभिनय परिपुष्ट हुआ है, वहीं भाषा की दृष्टि से पंडवानी का लोक लालित्य दुष्प्रभावित हुआ है। पंडवानी गायक अपनी भाषा छत्तीसगढ़ी के साथ बहुतायत रूप से हिन्दी का प्रयोग करता है। शायद इसका कारण नगरीय मंचों का प्रभाव हो। छत्तीसगढ़ व छत्तीसगढ़ के बाहर बड़े-बड़े नगरों में पंडवानी का आयोजन होता है। श्रोता हिन्दी भाषी होते हैं। भावावेश में पंडवानी गायक हिन्दी मिश्रित छत्तीसगढ़ी बोलता है। कभी-कभी पूरी तरह अशुद्ध हिन्दी। लोक कलाकार की गरिमा ही नष्ट हो जाती है। यह परिवर्तन पंडवानी की अस्मिता पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। पंडवानी, पंडवानी नहीं जैसे महाभारत हो। पंडवानी का अस्तित्व तो उसे छत्तीसगढ़ी में ही गाने से हैं।

"अगर अपेन माँ का गोरसपान किया है तो एक-एक कर बारी-बारी से आ जाना। तुम्हारा मुकाबला न करूँगा तो माता सुभद्रा का बेटा कहलाना छोड़ दूँगा।

एक-एक कर आ जाना,
सबको यम लोक पठाऊँगा।

अभिमन्यु पागल के समान चिल्लाने लगा। राजा दुर्योधन कहे अभिमन्यु तू कुछ नहीं

कर सकता सब सामने आ जाओ। अभिमन्यु एक अकेला है। रथ कैसे चलाये और बाण कैसे चलाये। लेकिन वो अर्जुन का कुमार था चिन्ता राम।" [15]

पंडवानी गायक हिन्दी बोलने का लोभ संवरण नहीं कर पाता। खासकर युद्ध प्रसंगों में। उत्तेजना के इस क्षण में पंडवानी गाते-गाते वीरों की तरह उत्तेजित होना स्वाभाविक है, किन्तु अपनी बोली को भूला जाना बड़ा अखरता है। तब पंडवानी के सहज सौंदर्य को ग्रहण का सा लग जाता है। कई पंडवानी गायक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं। ये शब्द कुछ तो सामान्य रूप से बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले हैं सो तो ठीक है, किन्तु आम लोगों की तरह जब पंडवानी गायक में भी अंग्रेजी के प्रति मोह जाग जाता है, तब वह कचोटता है। लोक की आभा खो जाती है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

"कन्हैया कथे दीदी येखर हाथ मन डुप्लीकेट लगे रिहिन का ओ। अतका बात ल सुन के कहे - नहीं बेटा का बतावं कन्हैया डुप्लीकेट नहीं ये सही बात ये।[16]

दुर्योधन कथे फेंक दवं, हाँ फेंक दे। हाँ रेडी दुर्योधन -

धर के डंडा फेंकन लागे भईया।" [17]

पंडवानी कथा गायन के इस बदलते स्वरूप को एकदम सुखद नहीं कहा जा सकता। परिवर्तन के दौर में परिवर्तन स्वाभाविक है, परिवर्तन से बचा नहीं जा सकता है। परिवर्तन के कारण आज लोक कला का स्वरूप प्रभावित हुआ है। फिर भी इतना प्रभावित न हो कि कुरूप लगे, अपनी पहचान ही खो दे। परिवर्तन की इस प्रक्रिया में निसंदेह पंडवानी लोकप्रिय हुई है। लेकिन लोक प्रियता को बरकरार रखने के लिए परिवर्तित होते रहना श्रेयस्कर न होगा। अपनी पहचान के लिए अपनी परम्पराओं का निर्वाह भी जरूरी है और समय के साथ चलना भी।

आज पंडवानी गायन प्रसिद्धि के शिखर पर है। पंडवानी की इस प्रक्रिया से हम भले ही आत्म संतुष्ट और गौरान्वित हों, पर हम पंडवानी की मौलिकता को नष्ट कर रहें हैं। आज जो पंडवानी गाई जा रही है, विभिन्न शासकीय उपक्रमों द्वारा पंडवानी के नाम पर जो प्रस्तुत करवाया जा रहा है, वह पंडवानी नहीं महाभारत का कथा वाचन है। पंडवानी गायक-गायिकाएं नाम, पैसे और प्रसिद्धि के लिए जो गा रहें हैं वे पंडवानी के साथ कितना न्याय कर रहे हैं ? क्यों खोती जा रही लोक की आभा ? व्यवसायिकता की दृष्टि से पैसे के लिए पीतल पर सोने की पॉलिस कर लाभ लिया जा सकता है, भले ही क्षणिक हो। किन्तु खरे सोने पर पीतल या किसी और धातु की पालिश क्यों ?

संदर्भ

1. लोक गीतों के परिमार्जन का प्रश्न : मुंकुद कौशल सापेक्ष (लोक संस्कृति अंक) पृष्ठ : 281
2. लोक शिल्प की छत्तीसगढ़ी परम्परा : डॉ. उमेश मिश्र सापेक्ष (लोक संस्कृति अंक) पृष्ठ : 277
3. लोक गाथा और इतिहास : बद्रीनारायण : चौमासा अंक : 33 पृष्ठ : 16
4. परिप्रेक्ष्य : राम दरश मिश्र सापेक्ष (लोक संस्कृति अंक) पृष्ठ : 17
5. लोक संस्कृति : शुद्धता और मिलावट : माधुरी सिंह : सापेक्ष (लोक संस्कृति अंक) पृष्ठ : 114
6. निजी संग्रह से
7. .... वही ....
8. लोक संस्कृति की रक्षा का सवाल : खगेन्द्र ठाकुर सापेक्ष : लोक संस्कृति अंक : पृष्ठ 92
9. लोक संस्कृति और परिवर्तन का आसंग : डॉ. कमला प्रसाद पाण्डेय : चौमासा : अंक 35:पृष्ठ : 5
10. पंडवानी : झाडूराम देवांगन : लेखक नंदकिशोर तिवारी
11. निजी संग्रह से।
12. ...... वही ....
13. पंडवानी : झाडूराम देवांगन (मोनोग्राफ) लेखक नंदकिशोर तिवारी
14. निजी संग्रह से
15. ...... वही ....
16. ...... वही ....
17. ...... वही ....

अध्याय - 8

- ❑ पंडवानी के प्रमुख कलाकार
- ❑ परिचय तथा उनकी विशिष्टताएं



पंडवानी गायिका पद्मश्री तीजनबाई

पंडवानी के प्रमुख कलाकार परिचय तथा उनकी विशिष्टताएं

छत्तीसगढ़ी लोक गाथाओं में पंडवानी सर्वाधिक लोक प्रिय लोक गाथा है। महाभारत से जुड़ी होकर भी पंडवानी की कथाएं अपने लोक रंग और लोक शैली के कारण भी लोक प्रिय हैं। आज पंडवानी लोक प्रियता के जिस शिखर पर है, उसे वहां प्रतिष्ठित करने में अनेकों नए पुराने पंडवानी गायक-गायिकाओं का योगदान है। जिन्होंने अपनी कला-साधना और कथा-गायन के माध्यम से पंडवानी को प्रतिष्ठा दी, और सम्मान दिलाया, उन्हें विस्मृत नहीं किया जा सकता। लोक कला के संरक्षण और संवर्धन के लिए उनका त्याग और उनकी साधना निसंदेह अभिनंदनीय है। पंडवानी के अनेकों गायक और गायिकाएं हैं। उनमें से प्रमुख कलाकारों का जीवन परिचय और उनकी विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला जा रहा है।

स्व. नारायण लाल वर्मा

आज पंडवानी की जो लोक प्रियता है। एक भव्य के प्रासाद के रूप में जिस तरह वह प्रतिष्ठित है, उसकी नींव को खड़ा करने में अनेकों पुराने पंडवानी गायकों के त्याग और लगन के ईंट -पत्थर लगे हुए हैं। उनमें स्व. नारायण लाल वर्मा प्रमुख हैं। उनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है फिर भी अनुमानित जन्म वर्ष 1884 है। इनका जन्म स्थान ग्राम झीपन जि. रायपुर है। इनके पिता का नाम श्री मुड़िया वर्मा व माता जी का नाम आसमती वर्मा था। किसान परिवार में पैदा हुए श्री नारायण वर्मा की शिक्षा-दीक्षा नहीं हो पाई थी, लेकिन पढ़े-लिखे लोगों के साथ उनका उठना-बैठना था, फलस्वरूप कुछ पढ़-लिख लेते थे। गाने-बजाने का शौक तो इन्हें बचपन से था। महाभारत की कथाओं के प्रति इनका विशेष लगाव था। लगभग 12 वर्ष की उम्र से ही इन्होंने पंडवानी गायन प्रारंभ कर दिया था।

कम उम्र और गायन की परिपक्वता ने इन्हें लोकप्रियता दी। उम्र बढ़ने के साथ-साथ इनका पंडवानी गायन भी निखरा। छत्तीसगढ़ के गाँव-कस्बों और नगरों में इन्हें आमंत्रित किया गया। रायपुर, दुर्ग, बिलासपुर जैसे कई शहरों के साथ-साथ कलकत्ता जैसे कई महानगरों में भी पंडवानी-गायन का परचम लहराया। तमूरा, करताल और खंझेरी ही इनके प्रमुख वाद्य थे। इनके रागी का नाम भुवन सिंह वर्मा था इनके गायन

में प्रमुख रूप से वीर रस, करूण रस व श्रृंगार रस का समावेश होता था। अर्ध वीरासन (हनुमान आसन) में बैठकर पंडवानी गाने वाले श्री वर्मा जी वेद सम्मत कथाओं के साथ-साथ दंतकथाओं का भी गायन करते थे।

कहा जाता है कि एक बार जिस गाँव में इनका पंडवानी-गायन चल रहा था, वहाँ रात में उसी समय चोरी हो गई। इस कारण शासन द्वारा इनके कार्यक्रम पर रोक लगा दी गई और इन्हें थाने में बंद कर दिया गया। श्री वर्मा जी ने इसका विरोध किया और थाने में ही उपवास प्रारंभ कर दिया। थानेदार ने उन्हें मनाया, भोजन के लिए आग्रह किया, किन्तु वे नहीं माने और निराहार रहकर थाने में ही अट्ठारह दिनो तक पंडवानी गायन किया। पंडवानी गायन उनके जीवन का उद्देश्य था। उन्होंने लगभग सत्तर वर्ष तक पंडवानी गायन किया। उनकी पंडवानी सुनने लोग दूर-दूर से आते थे और पंडवानी में रम जाते थे। दिनांक 5.12.1971 को श्री नारायण लाल वर्मा स्वर्ग सिधार गए।

स्व. श्री बोधीराम यादव

जिनका नाम इतिहास के पृष्ठों पर दर्ज होता है, लोग उन्हें यदा-कदा याद कर लेते हैं प्रसंग वश उनकी चर्चा होती है। पर कुछ ऐसे भी नाम होते हैं, जो लोगों के हृदय में अपना स्थान बना लेते हैं। भले ही उनका नाम इतिहास में दर्ज हो या न हो। ऐसा ही एक नाम है स्व. श्री बोधीराम यादव का। इनके पिता श्री का नाम हीरालाल और इनकी माता श्री का नाम फूलमत बाई था। इनकी जन्मतिथि के संबंध में निश्चित जानकारी नहीं मिलती। ये ग्राम -पंडरिया (गंडई), जिला-राजनांदगाँव के निवासी थे।

बाल्यावस्था से ही ये अपना पैतृक व्यवसाय गोपालन व गोचारण का कार्य करते थे। फलस्वरूप प्रकृति के बीच पले-बढ़े। इनके पड़ोस में श्री कपिलनाथ यादव रहते थे जो उस समय इस क्षेत्र के नामी गायक कलाकार थे। वे ब्रम्हानंद, सूर, तुलसी और कबीर के भजनों का गायन करते थे। श्री बोधीराम जी उनसे प्रभावित हुए और उनकी संगति की, उन्हें अपना गुरू माना। गाय चराकर सांझ ढले घर आते तो रात्रि में साथियों के साथ खंझेरी बजाते। भजनों के प्रति उनके लगाव के कारण वे इस अंचल में भजनहा के नाम से प्रसिद्ध हुए। पंडवानी भी गाते थे। उनकी पंडवानी विशुद्ध रूप से कापालिक शैली की पूर्णत: दन्तकथाएं थी, जिनका महाभारत से कोई सरोकार नहीं था। कथा भी अलग और पात्रों के नाम भी अलग। वे जहाँ भी जाते लोग उन्हें घेर लेते और पंडवानी प्रारंभ हो जाती। स्कूली शिक्षा-दीक्षा से कोसों दूर, फिर भी सैकड़ों भजन, कथाएं और पंडवानी उन्हें कंठस्थ थी। बिना किसी अवरोध के घंटो गाते थे। उन्होंने

पंडवानी गायन में नई पीढ़ी तैयार की। इनके प्रमुख रागियों में श्री राम स्वरूप यादव, श्री ...गी यादव, श्री दशरथ यादव आज भी स्वांत: सुखाय यदा-कदा पंडवानी व लोक भजनों का गायन करते हैं।

श्री बोधीराम यादव का निधन सत्तर वर्ष की आयु सन् 1985 में हुआ।

स्व. श्री झाडूराम देवांगन

दंत कथाओं के रूप में प्रचलित पंडवानी गायन को वेदसम्मत और प्रमाणिक दोहो-चौपाईयों के माध्यम से जिन्होने नई दिशा दी, परिवर्तन के लिए प्रेरित किया, उनमें श्री झाडूराम देवांगन ही प्रमुख हैं। एक प्रकार से यह पुरानी परम्परा के प्रति विद्रोह था। इस विद्रोह का कारण पंडवानी को नए रूप में सप्रमाण प्रस्तुत करने की उत्कंठा थी, जो सफल सिद्ध हुआ। इसी के फलस्वरूप श्री झाडूराम देवांगन पंडवानी पुरोधा के नाम से पूजे जाते हैं।

औद्योगिक नगरी भिलाई से करीब आठ किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में एक गाँव है बासिन। यही वह उर्वरा भूमि है जिसने अपने आँचल में श्री झाडूराम देवांगन को पैदा कर पाला और पोषा। श्री झाडूराम देवांगन को भी उनकी निश्चित जन्मतिथि मालूम नहीं। उनका जन्म 1927 में हुआ। उनके पिता का नाम श्री हगरूराम देवांगन था। इनका प्रारंभिक जीवन काफी संघर्षपूर्ण रहा। इनकी शिक्षा-दीक्षा मुश्किल से चौथी तक हुई। जब ये तीसरी कक्षा में अध्ययनरत थे, तभी इनके पिताजी की मृत्यु हो गई, कुछ दिनों बाद इनके घर में चोरी भी हो गई। फलस्वरूप पारिवारिक परेशानियाँ बढ़ी, फिर भी येन-केन प्रकारेण इनकी माता जी ने इन्हें चौथी तक पढ़ाया। पारिवारिक जिम्मेदारी के कारण ये आगे नहीं पढ़ सके तब तक श्री झाडूराम देवांगन बालक ही थे, पारिवारिक चिन्ताओं से दूर। पिताजी की मृत्यु ने इन्हें एकाएक जिम्मेदार बना दिया, परिवार के पालन-पोषण के लिए। पैतृक व्यवसाय (कपड़ा बुनना) सीखने के लिए ये अपनी बहन के घर नगपुरा (दुर्ग) चले गए। कपड़ा बुनना सीखा। इस व्यवसाय में पारंगत हो, बासिन लौटे और स्वतंत्र रूप से अपना व्यवसाय प्रारंभ किया। इनका विवाह बचपन में ही हो गया था।

श्री झाडूराम देवांगन बचपन से ही गाते-बजाते थे। वैसे भी गांवो में लोकगीतों की आनंद-वर्षा हर समय होती रहती है। चाहे खेत हों या खलिहान, जंगल हो या पहाड़ श्रम में संलग्न किसान और मजदूर गीतों में ही विश्रान्ति पाते हैं। पर्व-विशेष में लोकगीतों का अपना अलग आनंद होता है। ददरिया, करमा, सुवा, भोजली, नचौड़ी जस-पचरा,

पंडवानी, चंदैनी ये सारें गीत यहाँ लोगों के कंठ में बालपन से ही रच-बस जाते हैं। श्री झाडूराम की इस अभिरूचि को देखकर इनके लिए इनके पिता जी ने ढोलक खरीद दिया था , जिसे ये बजाते और गाते। पारिवारिक कठिनाइयों के समय भी ये संगीत से अलग नहीं हुए। गाँव में गायन मंडली के साथ जाते और जस-पचरा, फाग आदि गाते।

वस्त्र-बुनने का कार्य जब प्रारंभ किया तो इसी से परिवार का भरण-पोषण होने लगा। एक लुगरा (साड़ी) गांव के ही मंगलू निषाद को एक रूपया में उधारी बेचा। पैसा देने में घिस करने लगे। उन्हीं दिनों मंगलू कलकत्ता प्रवास पर गए थे वहाँ से वे सबल सिंह चौहान कृत महाभारत खरीद लाये थे। लुगरा की कीमत मांगने पर मंगलू महाभारत बेचकर उधारी चुकाने की बात करते। महाभारत की कीमत तीन रूपये थी। अत: झाडूराम जी ने मंगलू को दो रूपये और देकर महाभारत खरीद ली और उसका अध्ययन जारी रखा। वे गाँव के ही श्री दुरूग सिंह ठाकुर से भी प्रभावित हुए वे महाभारत की टीका किया करते थे। इस तरह झाडूराम जी की महाभारत कथा के प्रति रूचि बढ़ी। महाभारत के दोहों चौपाईयों को उन्होंने कंठस्थ कर लिया।

संयोग से इस बीच एक और घटना घटी। हरियाली (हरेली) त्यौहार के दिन गांव में श्री ईतवारी राम साहू का पंडवानी गायन हो रहा था। श्री साहू उस दिन कर्रा-कुसुवा दानव की कथा का गायन कर रहे थे। श्री ईतवारी राम साहू दंतकथाओं के आधार पर पंडवानी गायन करते थे, शास्त्र से बिल्कुल हट कर। झाडूराम देवांगन चूंकि उस समय सम्पूर्ण महाभारत को कंठस्थ कर चुके थे, अत: उन्हें यह नागवर लगा। उन्होंने श्री साहू जी की आलोचना कर दी। श्री साहू को बड़ा बुरा लगा। उसने झाडूराम जी को पंडवानी गाने की चुनौती दी। झाडूराम जी ने चुनौती स्वीकार कर पंडवानी गायन उसी मंच पर प्रारंभ किया। तमूरा और करताल लिया हाथ में और ऐसी पंडवानी गाई कि श्रोता प्रभावित हुए बिना न रह सके। आत्म विश्वास ने मार्ग प्रशस्त किया, तब से श्री झाडूराम देवांगन अनवरत पंडवानी गायन करते रहे।

पंडवानी ने झाडूराम जी को प्रतिष्ठा दी और झाडूराम जी ने पंडवानी गायन को एक नई दिशा दी, एक नया रूप दिया। प्रसिद्धि की इस स्थिति में इनका आकाशवाणी से पहली बार पंडवानी गायन 1964 में भोपाल से प्रसारित हुआ, तब से अनवरत ये पंडवानी गायन को अपना धर्म और कर्म मानकर पंडवानी गायन करते रहे। इंदिरा गांधी के सम्मुख इन्हें पंडवानी का सौभाग्य प्राप्त हुआ। 1974-75 में दिल्ली के अशोक होटल में पंडवानी गायकी की। 1981-82 में विदेशों की यात्रा की इस दौरान फ्रांस, जापान, इटली, रूस, अमेरिका, ईरान, ईराक, एडिनबरा, कागडिप आदि में पंडवानी

छत्तीसगढ़ का नाम रोशन किया। 1983-84 में श्री झाडूराम पर केंद्रित ...का प्रकाशन म.प्र. आदिवासी लोक कला परिषद् भोपाल द्वारा किया गया। ...9 में संगीत नाटक अकादमी की ओर से राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित हुए। वर्ष ...91 में म.प्र. शासन द्वारा तुलसी सम्मान से अलंकृत हुए। यह सब श्री झाडूराम ...न के सम्मान के साथ-साथ पंडवानी और छत्तीसगढ़ की लोक कला का सम्मान ...

श्री झाडूराम देवांगन वेदमती शैली के पंडवानी गायक थे। वेदमती शैली का गायन उनकी पंडवानी की विशिष्टता थी। अपने कथन की प्रमाणिकता के लिए दोहों - चौपाईयों का वे गायन करते थे -

रथ के आवाज होथे, गुरू द्रोणाचार्य कथे -
वाह !
अगा कोने बीर येहा आवत हवे भाई
सात्यकी ल देखन लागे ग मोर भाई।

सात्यकी ल देख के गुरू द्रोणाचार्य कथे कस सात्यकी

जेहि मग अर्जुन सके न जावा,
चाहत गगन उड़ावन धावा।

अर्जुन के मोला जीते के हिम्मत नई होईस अऊ तें मोला फटाफट मारथस।[1]

श्री झाडू राम जी के पंडवानी गायन में विभिन्न लोकधुनों का समाहार मिलता है। इस कारण पंडवानी और भी कर्ण प्रिय और रोचक लगती है। भावाभिनय का आकर्षण इनके गायन की विशिष्टता है। प्रसंग में पात्रानुकुल चेहरे का हाव-भाव, वाणी का प्रवाह एक नई अनुभूति देता है। कभी भीम का घोर गर्जन, कभी धर्मराज का नम्र निवेदन कभी द्रौपदी की लज्जाशीलता को अपने भावाभिनय के द्वारा सहज रूप से प्रदर्शित करने में प्रवीण श्री झाडूराम जी को देख सुखद आश्चर्य होता था। किसी भी गाने में वे प्रशिक्षित अभिनेता से कम नहीं लगते।

प्रसंगों की व्याख्या भी बड़े सहज और सरल ढंग से करना उनकी विशेषता थी। इसके लिए वे दृष्टांत भी देते, जिससे कथा और भी बोधगम्य हो जाती। पंडवानी का ओज और माधुर्य साथ-साथ प्रवाहित होता। श्रोताओं को चैतन्य बनाए रखना इनकी विशेषता थी। कथा में जरा भी निरसता पैदा नहीं होने देते। बीच-बीच में रामे ग रामे रामे ग रामे भईया की टेर की पुनरावृत्ति और नई-नई लोक धुनें सरसता पैदा करती- एक प्रयोग देखिए -

अर्जुन कथ अर करन

लड़े के पहिली समझ लेबे ग

अऊ लड़े के पहिली समझ लेबे

तोला जानेंव बलवान लड़े के पहिली समझ लेबे

ये कुंती के हम पुत्र कहावन, अर्जुन हे मम नाम।

धर्मराज के भ्रात कहाववं, करवं मैं संग्राम।"[2]

छत्तीसगढ़ की लोक कला और पंडवानी गायन की परम्परा श्री झाडूराम देवांगन को पाकर धन्य हुई। श्री झाडूराम जी ने पंडवानी गायन को केवल प्रमाणिक और परिमार्जित नहीं किया अपितु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठा दिलाई और उसके स्वरूप को निखारा।

पद्म श्री पूनाराम निषाद

श्री पूनाराम निषाद का जन्म 26 नवम्बर सन् 1939 को ग्राम रिंगनी जिला दुर्ग में हुआ। इनके पिता का नाम स्व. लक्ष्मण निषाद और माता का नाम बुधवंतीन बाई है। इनकी स्कूली शिक्षा कक्षा चौथी तक है। बचपन से ही इनकी रूचि गाने-बजाने में थी। पंडवानी गायन की ओर प्रेरित होना एक सहज संयोग था। पंडवानी गायक श्री झाडू राम देवांगन का कार्यक्रम ग्राम नारधा में चल रहा था। श्री निषाद जी रोज सारे कार्य छोड़ कर उनकी पंडवानी सुनने जाते। उनकी गायन शैली और धुनों को सुनकर पूना राम निषाद इतने प्रभावित हुए कि पंडवानी को उन्होंने अपनी आत्मा में बिठा लिया और श्री झाडूराम देवांगन को गुरू मानकर पंडवानी गायन का शुभारंभ किया। कुछ ही दिनों बाद आस पास के क्षेत्रों से पंडवानी गायन हेतु आमंत्रण मिलना प्रारंभ हो गया। उनका उत्साह बढ़ा और दक्षता भी बढ़ी निरंतर अभ्यास से।

सुप्रसिद्ध लोक कला मर्मज्ञ और जाने-माने नाट्य निर्देशक श्री हबीब तनवीर ने पूनाराम जी का पंडवानी गायन सुना और प्रभावित हुए। फलस्परूप इन्हें अपने नया थियेटर में शामिल कर दिल्ली में पंडवानी गायन का अवसर दिया, इनके गायन की बड़ी प्रशंसा हुई। श्री हबीब तनवीर का संसर्ग पाकर इनकी प्रतिभा के उत्कर्ष की दिशा में यह शुभ लक्षण था। 1973-74 में रायपुर में 18 दिनों तक पंडवानी का गायन किया। पुरानी दिल्ली के अजमल खाँ पार्क में भी 18 दिनों तक संपूर्ण महाभारत का गायन किया फलस्वरूप लोककला की उत्कृष्ट सेवा के लिए 1975 में संगीत नाटक अकादमी की ओर से राष्ट्पति महामहिम फखरूद्दीन अली अहमद द्वारा सम्मानित किया गया।

एक बड़ी उपलब्धि थी। 1976 में श्री पूनाराम निषाद जी को भारत सरकार द्वारा वानी गायन के लिए भारतीय सांस्कृतिक दल के साथ विदेश भेजा गया। वहाँ इन्होंने ोरिका, कनाडा, पूर्वी जर्मनी, पश्चिमी जर्मनी, चेकोस्लाविया, पेरिस और इंग्लैंड में ानना पंडवानी गायन प्रस्तुत किया। गांव के चौपालों में गाने वाले लोक गायक की तेभा विश्वमंच पर स्थापित हुई। पंडवानी से विश्व के लोग परिचित हुए। आकाशवाणी, दर्शन से भी पंडवानी प्रसारित हुई। म.प्र. कला परिषद और म.प्र. आदिवासी लोककला रेषद भोपाल ने पूनाराम जी को सम्मानित सदस्य के रूप में शामिल किया। तब से कर आज तक ये पंडवानी गायन कर रहे हैं।

श्री पूना राम निषाद विभिन्न छत्तीसगढ़ी लोकगीतों के भी ज्ञाता हैं। सुवा, ास-पचरा, फाग, गौरा, बिहाव-गीत, ददरिया गाने व विभिन्न वाद्य बजाने से माहिर ं। पंडवानी व लोक कला के विकास व संरक्षण के लिए भी ये जागरूक हैं। इनके द्वारा ाठित लोक कला मंच पंडवानी इनकी जागरूकता का प्रमाण है। इस मंच के माध्यम से प्रतिवर्ष अलग-अलग स्थानों पर लोक कला महोत्सव का आयोजन किया जाता है। इस आयोजन में पारम्परिक लोक कलाकारों को आमंत्रित कर प्रोत्साहित किया जाता है। पंडवानी गायन के साथ-साथ लोक कलाओं के इस आयोजन का इनका कार्य स्तुत्य है। यही कलाकार की निष्ठा व कला के प्रति समर्पण का भाव है।

पंडवानी गायन में इनकी अपनी अलग ही बात है। केवल धोती पहन कर शेष खुले बदन में पंडवानी प्रस्तुत करते हैं। गले में माला शोभित रहती है। माधुर्य इनके गायन की विशिष्टता है। ये श्री झाडूराम देवांगन के शिष्य हैं अत: इनकी पंडवानी गायकी वेदमती शैली की है। इनके पंडवानी का आधार श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत ही है। महाभारत की कथाओं को अपनी आंचलिक संस्कृति के अनुरूप प्रस्तुत करना इनकी विशेषता है। बीच-बीच में दोहों और चौपाईयों का गायन और भी भला लगता है। एक बानगी प्रस्तुत है -

"अगा राजा दुर्योधन ह बोलन लागे भाई,
भईया तुम्हारे विचारे क हवे गा मोर भाई।

तब शकुनि कथे दुर्योधन हमर परम हितैषी जतेक राजा है -

सबला निमंत्रण देई ग देव व भईया,
सब ला नेवता देइग देवव भईया।
करन, दुशासन, सबके सब बोले लगिन तब दुर्योधन

लिख-लिख निमंत्रण भेजन लागे भाई

दूतकर हाथ म देवन लागे भाई।" 3

ऐसे मूर्धन्य कलाकार को पाकर छत्तीसगढ़ की माटी गौरान्वित हुई है।

पद्म श्री डॉ. तीजन बाई

पद्म श्री तीजन बाई किसी परिचय की मोहताज नहीं हैं। पंडवानी और ती बाई एक-दूसरे का पर्याय बन चुकी हैं। आज देश -विदेश में लोक कला के क्षेत्र छत्तीसगढ़ की जो विशेष पहचान बनी है, उसका कारण पंडवानी की लोक प्रियता और इस लोक प्रियता में तीजन बाई की सहभागिता है। तीजन बाई की गायन क्षम और अभिनय की कुशलता के फलस्वरूप पंडवानी प्रदेश व देश की सीमा को लांघ क विश्व - क्षितिज में प्रतिष्ठित हुई है।

तीजन बाई का जन्म 8 अगस्त 1956 को ग्राम अंटारी (पाटन), जिला दुर्ग शिकारी (पारधी) परिवार में हुआ। माता श्री मती सुखबती बाई व पिता श्री झुनुक लाल थे। तीजन बाई को पंडवानी गायन की प्रेरणा इनके नाना बृजबाल पारधी गनियारी से मिली। वे पंडवानी गाते थे। उन्हें देख-सुनकर बाल्यास्था में ही तीजन बाई ने पंडवानी गायन प्रारंभ कर दिया था।आपने पंडवानी का औपचारिक प्रशिक्षण श्री उमेंद सिंह देशमुख से पाया। इनकी शादी बचपन में ही हो गई थी। ससुराल आने पर भी तीजन बाई का गाना नहीं छूटा। कुछ संकोच से ही सही पर मौका मिलते ही गाती। यह उनके ससुराल वालों को अच्छा नहीं लगा। इन्हें प्रताड़ित किया जाता, मगर कला साधक कब अपनी कला साधना को छोड़ता है, बिल्कुल नहीं। भले ही इसके लिए उसे कष्ट उठाना पड़े, परेशानियां झेलनी पड़े। तीजन बाई के साथ भी यही हुआ। इनके पति भी नहीं चाहते थे कि तीजन पंडवानी गाए। पति ने घर से निकालने की धमकी दी फिर भी इन्होंने पंडवानी से अपना नाता नहीं तोड़ा। अंततः तीजन ससुराल से निकाल दी गई। अभावों व संत्रासों के बीच रहकर कष्ट और पीड़ा झेलकर भी पंडवानी गायकी का सफर जारी रखा। कहते हैं कि आग में जलकर ही सोना खरा उतरता है। तीजन के साथ भी यही हुआ। तिरस्कारों, उलाहनों, अभावों और संत्रासों की अग्नि में तप कर तीजन सोने की तरह खरी उतरी और पंडवानी गायन के क्षेत्र में छत्तीसगढ़ की लोक -कला को अमर कर दिया।

तीजन बाई ने अपना सार्वजनिक पंडवानी गायन चंदखुरी (दुर्ग) में पहिली बार प्रस्तुत किया। लोगों से भरपूर सराहना मिली, उन्हें प्रोत्साहन और आशीर्वाद मिला।

आशीर्वाद और प्रोत्साहन के फलस्वरूप वह नि:संकोच भाव से आगे बढ़ती गई। ानी गायन की उनकी अद्‌भूत क्षमता पर एक बारगी विश्वास नहीं होता। महिला र भी नि:संकोच भाव से पंडवानी पात्रों को जीना सचमुच अपने आप में कौतुहल विषय है। इस बीच इन्होंने अपनी मंडली के हारमोनियम वादक श्री तुलसी राम मुख से दूसरी शादी की। तीजन बाई ने पहली विदेश यात्रा 1985-86 में पेरिस के त महोत्सव के दौरान की। कलाकारों का सम्मान करने वाले भिलाई इस्पात संयंत्र तीजन बाई को अपने सांस्कृतिक विभाग में 7 जुलाई 1986 से सेवा पर रखा गया। कई पुरस्कार व सम्मान मिले। जिनमें प्रमुख हैं -1994 में श्रेष्ठ कला आचार्य मान, 1996 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, 1998 में देवी अहिल्या सम्मान, 99 में ईसुरी सम्मान, 27 मई 2003 को गुरूघासीदास विश्वविद्यालय बिलासपुर ने .लिट की मानद उपाधि प्रदान की। इनके अतिरिक्त आपको महिला नौ रत्न सम्मान ला शिरोमणि सम्मान, आदित्य विक्रम् बिड़ला पुरस्कार आदि प्राप्त हो चुके हैं।

तीजन बाई की पंडवानी प्रस्तुती में भाव- प्रवणता से प्रभावित होकर भारत रकार ने इन्हें पद्‌म श्री से अलंकृत किया। यह केवल तीजन बाई का नहीं अपितु संपूर्ण ारी जगत का सम्मान था, छत्तीसगढ़ की लोक कला का सम्मान था। तीजन बाई ने वल देश-प्रदेश के भीतर ही पंडवानी प्रस्तुत नहीं की, बल्कि विदेशों में भी अपना ायन प्रस्तुत कर इस अंचल को गौरान्वित किया। देश का सम्मान बढ़ाया। फ्रांस, र्मनी, इंग्लैण्ड, स्वीट्‌जरलैण्ड, जर्मनी, मालया, यूनेशिया, तुर्की, यूरोप, इटली, यमन, ारिसस, रियुनियान, साईप्रस, तुर्कस्तिान, बंग्लादेश, आदि अनेक देशों की इन्होंने यात्राएं कर पंडवानी की प्रस्तुती दी।

आज पंडवानी गायन के क्षेत्र में सर्वाधिक लोकप्रियता तीजन बाई की है। इस लोक प्रियता के मूल में इनकी गायन क्षमता और अभिनय की दक्षता है। नारी होकर भी ओजस्वी स्वर और अभिनय - कौशल बरबस ही श्रोताओं को सम्मोहित कर लेता है। पारम्परिक वेशभूषा में और भी आकर्षक लगने वाली तीजन बाई का पात्रानुकूल मंच पर चलना-फिरना और नृत्य करना कम आकर्षक नहीं होता। विभिन्न अस्त्रों के रूप में तमूरा का उपयोग,गदा की भांति उसका संचालन, धनुष बाण के सदृश्य तानकर निशाना साधना इनकी कला कुशलता का परिचायक है। भीम की भाँति गरजना, पीड़ित द्रौपती की तरह सिसकियाँ भरना, कभी अपमानित सैरेन्ध्री की भाँति नागिन की तरह फुफकारना, कभी वीर योद्धा की तरह रण भूमि में उतरना सब कुछ सहज और सामान्य रूप से निभाती हैं। अभिनय की सजीवता इनकी पंडवानी गायन की विशिष्टता है। गायन में गूँथे हुए लोकगीत और लोकधुनें भी पंडवानी को प्राणवान बनाती हैं। पुरूषार्थ प्रदर्शन में तो पुरूष भी इनके सामने अदना और फीके लगें। दुर्योधन हो या शकुनि, भीष्म

पितामह हो या अर्जुन , द्रोणाचार्य हो या परशुराम सारे चरित्रों को सहज अभिव्यक्ति देना इनकी विशेषता है। यही इनकी लोकप्रियता का मूल है -

"मन मोहन राजा हरि के भजन में लगे राहो न जी
दिन रात अर्जुन ल ताना बोलय, सहोदरा ऽऽ
अर्जुन मने मन सोचत हवय "

तोला काला बताववं दिल के दरद भारी हे। एक दिन बारा बजे रात के बिचारी छटपटा‹ चार बजे रात के पहट के एक अकेली बइठ के रथ में बड़े प्रेम के साथ सखी -सहेली ‹ साथ आगे चलने लगी है ग भाई। सहोदरा पहुँचगे अर्जुन के पास में। हाथ-गोड़ सम्हा‹ के रथ के नीचे कूद के कथे - महाराज तुम तो गया बीते हो, एक कनी कम से कम मो रथ ल चला देवव ताकि मोर तड़फत दिल ल, आत्मा ल शांति मिल जतिस।[4]

ऋतु वर्मा

यदि तीजन बाई पंडवानी का पर्याय है, तो कुमारी ऋतु वर्मा सुखद संभावनाओं का स्वर्णिम भविष्य है। कौन जानता था कि रूआबांधा (भिलाई) की झोपड़ पट्टी की गलियों में चंचल तितली की तरह इठलाती, इतराती, सकुचाती एक छोटी सी अल्हड़ बालिका पंडवानी गायन के क्षेत्र में अंचल का नाम रोशन करेगी। ऋतु नाम छोटा है, उम्र छोटी है, किन्तु काम बहुत बड़ा है।

ऋतु वर्मा का नाम तीजन की तरह पंडवानी गायन के क्षेत्र में अनजाना नहीं है। अपनी किशोरावस्था में ही ऋतु सफलता की सीढ़ियाँ तय करती हुई उस मुकाम पर पहुँच चुकी है, जिसके लिए जीवन में लंबे संघर्ष की जरूरत होती है, लंबी साधना की जरूरत होती है। सफलता और उपलब्धियों का जो मुकाम ऋतु वर्मा को मिला है, उसके पीछे उसकी असाधारण और विलक्षण प्रतिभा की करामात है। ऐसी विलक्षणता सब में नहीं होती।

ऋतु वर्मा के पिता का नाम श्री लखनलाल वर्मा है। वेशभूषा से पूरी तरह एक योगी की तरह, भगवा कुर्ता-लुंगी, लम्बी-सफेद दाढ़ी-मूँछे, गले में रूद्राक्ष धारण किए हुए। जिन्दगी की ढलान पर अनुभवों का कोष के लिए बाँटने को आतुर जिसने ऋतु वर्मा के पिता होने का गौरव पाया। भिलाई के औद्योगिक वातावरण में गाँव का माहौल। एक छोटा सा झोपड़ा जिसके अंदर ऋतु वर्मा को उनकी पंडवानी गायकी पर मिले पुरूस्कार, सम्मान, स्मृति चिन्ह और प्रशस्ति पत्रों का जखीरा है। कच्ची दीवारों पर खूंटी में टंगे इन सारे सम्मान-बोधक, फ्रेम जड़ी प्रशस्तियों के शब्द-शब्द ऋतु वर्मा की पंडवानी गायन को ध्वनित करते हैं। यह झोपड़ा, झोपड़ा नहीं उपलब्धियों का भव्य

भागार है, जहाँ यह प्रतिभा पली और बढ़ी। माँ भी निश्छला और निराभिमानी किन्तु पुत्री की यश-कांति से दीप्त।

ऋतु वर्मा का पंडवानी गायन की ओर प्रेरित होना भी एकदम सहज और सामान्य घटना है। तब ऋतु वर्मा 4-5 वर्ष की थी। रूआबांधा में नौ दिनों तक पंडवानी कार्यक्रम हुआ। ऋतु भी घर परिवार के लोगों के साथ पंडवानी सुनने जाती। वहां आकर अपनी सहेलियों के सामने पंडवानी गाने का उपक्रम करती। तुतले बोल सुन सहेलियां हंस देती। पर ऋतु गाना बंद नहीं करती। ऋतु के अंतस में पंडवानी गायन का अंकुर फूटने लगा। वह दिन भर उछलती-कूदती और नाचती-गाती। उसके इस बाल सुलभ चंचलता को एक दिन पड़ोस के एक राऊत ने देखा और प्रोत्साहित किया और गांव में ही पंडवानी गायन का आयोजन कर डाला। तब तक ऋतु 7 वर्ष की हो गई थी। उसकी रूचि बढ़ती गई जो भी पंडवानी गायक आते उन्हें देखती-सुनती। श्री झाडूराम देवांगन को सुना। ऋतु की लगन को देखकर सिल्हाटी (गंडई) के गुलाब दास जो रूआबांधा में रहकर भिलाई इस्पात संयंत्र में नौकरी करते हैं, ने पंडवानी गायन में पारंगत किया। कार्यक्रम का सार्वजनिक प्रदर्शन प्रारंभ हुआ तब से ऋतु निरंतर आगे ही बढ़ती रही। म.प्र. आदिवासी लोक कला परिषद् भोपाल के श्री बसंत निरगुणे ने ऋतु की प्रतिभा को परखा और भोपाल में पंडवानी गायन के लिए आंमत्रित किया। देश के बड़े-बड़े महानगरों में पंडवानी गायकी के साथ-साथ विदेशों की यात्राएं की। जर्मनी और इंग्लैण्ड में पंडवानी गाकर ख्याति अर्जित की।

मुश्किल से दूसरी कक्षा तक स्कूल में पढ़ी ऋतु ने साक्षरता अभियान के अंतर्गत अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी की। साथ ही पंडवानी के माध्यम से लोगों को साक्षरता का संदेश दे पढ़ने-लिखने के लिए निरक्षरों को प्रेरित किया। अपने से बुजुर्ग पंडवानी गायक-गायिकाओं के प्रति उसके मन में अटूट श्रद्धा और सम्मान है।

सहजता,सरलता,और सरसता ऋतु की पंडवानी गायकी की विशेषता है। ऋतु की वाणी में अब ओज और माधुर्य का प्रभाव झंकृत होने लगा है। बालपन की कोमलता पीछे छूट गई है। अभिनय और गायन में परिमार्जन के कारण प्रौढ़ता और परिपक्वता श्रोताओं को प्रभावित करती है।

" दुशासन ह तऊन मनमाड़े जोर से खींचय। अब बिल्कुल धीरे होगे -

धीरे - धीरे ग खींचय
आराम से साड़ी खींचे लागिस
ये दे खींचन लागय।

बिचारा दुशासन साड़ी खींचत-खींचत रागी पसीना छूटगे। बिदुर ल मालूम राहय कि भगवान कृष्ण आके द्रौपती के सहायता करत हे।" [5]

स्व. रेवा राम साहू

स्व. श्री रेवाराम साहू का जन्म दिनांक 8.9.1946 को ग्राम देवरी, जिला दुर्ग में हुआ। आपके पिता जी का नाम श्री धनऊ राम साहू। आपकी शिक्षा मात्र चौथी कक्षा तक थी।

आपने 12 वर्ष की उम्र से पंडवानी गायन प्रारंभ किया। तब से लेकर आपने छत्तीसगढ़ के लगभग प्रमुख नगरों व कस्बों के अलावा टाटानगर (बिहार), तिरोड़ी, नागपुर (महाराष्ट्र) में पंडवानी गायन प्रस्तुत किया। भारत-भवन भोपाल में 22 दिसम्बर 85 से 8 जनवरी 86 तक पंडवानी गाई। श्री हबीब तनवीर के नया थियेटर दिल्ली की ओर से त्रिमूर्ति भवन दिल्ली में 1975 तथा 1986 में पंडवानी की प्रस्तुती दी। इसके अतिरिक्त अगस्त 1982 में लंदन, हालैण्ड, पूर्वी जर्मनी, पश्चिमी जर्मनी व फ्रांस की यात्रा की। भिलाई के पंत स्टेडियम व म.प्र. आदिवासी लोक कला परिषद् भोपाल के सौजन्य से आपने महाराष्ट्र मंडल रायपुर में पंडवानी गायन कर ख्याति अर्जित की। कथा की सरसता व लोक धुनों का माधुर्य आपकी गायकी की विशिष्टता थी।

मीना बाई साहू

पंडवानी की लोक प्रियता के पश्चात् पंडवानी गायकों की अपेक्षा गायिकाओं की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई। लड़कियां जो मंच पर आने से डरती थीं, उन्होंने भी हाथ में तमूरा थाम कर गायन प्रारंभ किया। तीजन बाई को मिली लोकप्रियता और प्रसिद्धि ने इस दिशा में प्रेरणा का कार्य किया। इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर मीना बाई साहू ने भी अपना पंडवानी गायन प्रारंभ किया।

मीना बाई का जन्म 15.9.64 को ग्राम रनचिरई जिला - दुर्ग में हुआ।इनके पिता का नाम श्री चैतराम साहू है। इनकी शिक्षा-दीक्षा केवल पांचवी तक हुई। पंडवानी गायन की प्रेरणा इन्हें श्री तुलसी साहू से मिली जो महाभारत पढ़ा करते थे। तुलसी साहू को ही ये अपना गुरू मानती हैं। ये कापालिक शैली की गायिका हैं और लगभग 10 वर्ष की आयु से पंडवानी गायन कर रही हैं। देश के प्राय: प्रमुख नगरों में पंडवानी गायकी प्रस्तुत कर चुकी मीना बाई को अनेकों पुरस्कार व सम्मान प्राप्त हुए हैं।

पंडवानी गायकी में अपना विशेष स्थान रखने वाली मीना बाई का गायन व अभिनय पक्ष बड़ा सबल है। इनकी इस विशिष्टता में इनके रागी श्री राधेश्याम साहू का योगदान भी सराहनीय है, जो एक विशेष अंदाज से रागी का काम करते हैं। स्थानीय

परिवेश और लोक रंग में रंगी इनकी पंडवानी प्रस्तुती का निम्न अंश दृष्टव्य है -

"दस हजार हाथी के ताकत से भीमसन खम्भा ल हलाय त खम्भा हाले न डोले

त गदा रे उठाय भीम अगा मारन लागे न

त खम्भा ल टोरे

एक गदा के मारिस त गदा ले छर्री-दर्री होगे अऊ पाँच भाई पांडव कुंती सहित उही गुफा ले लाख भवन ले निकलगे। कुछ दूर में पहुँचीस कका - भीमसेन का करे -

अगा धीरे-धीरे खांद ल टमड़न लागे भाई

दाई ओ ऽऽ..... कुंती कथे काये बेटा। मैं का बतावँ दाई ओ खम्भा ल टोरे के बेर मैं गदा ल भुला गेवँ।" [6]

खम्हन लाल अस्तुरे

पंडवानी गायन में जिन पंडवानी गायकों का उनकी गायकी की लोकप्रियता के कारण विशिष्ट स्थान है उनमें एक नाम खम्हन लाल अस्तुरे का भी है।

खम्हनलाल अस्तुरे का जन्म 2.1.55 को ग्राम झलमला, तह. बेमेतरा, जिला-दुर्ग में गंधर्व परिवार में हुआ। इनके पिता श्री मनराखन दास गंधर्व उच्च कोटि के लोक कवि थे। कविता जैसे उनकी जुबान पर खेलती-थिरकती थी। उनकी बातों में ही कविता का आनंद मिलता था। खम्हन लाल के दादा भी उच्च कोटि के इसरार वादक और लोक गायक थे। इस तरह इनके परिवार का वातावरण काव्य व संगीत मय रहा। इस वातावरण का प्रभाव भी अस्तुरे जी पर पड़ा और बचपन से ही गाने बजाने लगे। पंडवानी गायन की प्रेरणा इन्हें श्री बहोरन दास निर्मलकर व श्री संजीवन प्रसाद चौबे से मिली। छत्तीसगढ़ के विभिन्न गांवों-कस्बों व शहरों में इनका पंडवानी गायन हुआ जहाँ इन्हें खूब प्रशंसा मिली। टाटानगर व कर्नाटक हेगड्डु के नाट्य गृह में इन्हें सम्मान मिला जो बड़ी उपलब्धि है।

पंडवानी गायन के पूर्व श्री खम्हन लाल नाचा में परी व जोकर बनते थे। जोकड़ई में तो ये बड़े लाजवाब लगते हैं। यही कारण है कि इनकी पंडवानी में इनका अभिनय पक्ष सबल है। विभिन्न लोक गीतों व लोक धुनों को पंडवानी में शामिल कर गाना इनकी विशिष्टता है। संवादों का आरोह-अवरोह भी सम्मोहक लगता है। पंडवानी की घटनाओं को समयुगीन परिस्थितियों से जोड़कर कथा को सरस बनाना इनकी विशेषता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है देश प्रेम व राष्ट्रीयता के संबंध में -

दुर्योधन ! तुम लोगों से मुकाबला करने के लिए पांडव पक्ष में हर बालक अर्जुन के समान है -

हाथी के झुंड में पहुँचे। भीमसेन हाथी उठाके
हाथी के झुंड में पहुंचे। भीमसेन हाथी उठाके

हाथी के ऊपर हाथी ल पटके भाई
भीमसेन हाथी ल घुमा के हाथी में पटके
घोड़ा के ऊपर घोड़ा ल पटके भाई
रथ के ऊपर रथे ल पटके भाई।"[९]

चेतन देवांगन

स्व. श्री झाडूराम देवांगन के शिष्य श्री चेतन देवांगन का जन्म 1956 में पहन्दा जिला दुर्ग में हुआ। इनके पिता का नाम श्री कोदूराम व माता का नाम बिन्दा बाई है। ये आठवीं उत्तीर्ण हैं। विद्यार्थी जीवन में सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे, नाटक मंडली व लीला में भी अभिनय करते थे। बाल्यकाल की यह अभिरूचि पुष्पित और पल्लिवत हुई। सन् 1967 में प्रथम बार श्री झाडूराम जी का पंडवानी गायन सुनकर उनसे प्रभावित हुए और उन्हें गुरू मानकर उनसे पंडवानी गायन की शिक्षा ली। ये वेदमती शैली के गायक हैं।

छत्तीसगढ़ से बाहर बिहार, उड़ीसा, जबलपुर व मंडला में भी उन्होंने अपना गायन प्रस्तुत कर वाहवाही लुटी है। भारत-भवन भोपाल में भी इन्हें पंडवानी गायन का अवसर मिला। पंडवानी गायन के साथ-साथ पंडवानी के संरक्षण व संवर्धन के लिए 1986 में इनके द्वारा छत्तीसगढ़ी पंडवानी कला मंच की स्थापना की गई तब से लेकर अब तक प्रत्येक वर्ष अलग-अलग स्थानों पर पंडवानी मेला का आयोजन किया जाता है। इस मेले में छत्तीसगढ़ के प्रमुख पंडवानी गायक उपस्थित होकर पंडवानी गाते हैं। 1988 से श्री चेतन जी आकाशवाणी रायपुर से पंडवानी गा रहे हैं। ये पंडवानी के लिए पूरी तरह समर्पित हैं।

कुमारी प्रभा यादव

वेदमती शैली की पंडवानी गायिकाओं में कु. प्रभा यादव का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। ये स्व. श्री झाडूराम देवांगन की शिष्या हैं। इनका जन्म 26.4.1970 को ग्राम + पोस्ट-बंगोली (कुर्रा) थाना खरोरा, जिला-रायपुर में हुआ। इनके पिता का नाम श्री रामसिंग यादव है। तीसरी कक्षा में पढ़ते समय इनकी पंडवानी गाने की इच्छा हुई अत: कु. प्रभा की इच्छा का ध्यान रखते हुए गाँव वालों की सलाह पर इनके पिताजी ने नन्हीं बालिका को श्री झाडूराम देवांगन के चरणों में सौप दिया। श्री देवांगन जी से पंडवानी

उषाबाई - का केहे महराज

रागी - तोर सादी नई होय हे अहिरमती। कुँवारी हाथ के भोजन नई खाववं बाई। ले जा।" [8]

यह शैली कितनी लोक प्रिय होगी, इसे भविष्य ही बतायेगा।

सामे शास्त्री देवी

पंडवानी की कापालिक शैली की गायिका श्रीमती सामे शास्त्री का जन्म 20.5.63 को ग्राम जोगीपुर तह.-बेमेतरा , जिला-दुर्ग में हुआ। पिता का नाम श्री फूलचंद। इनकी स्कूली शिक्षा दूसरी तक है। सामेदेवी को बचपन से ही गीत गाने का शौक था। जहाँ भी संगीत का कार्यक्रम होता उसे बड़े चाव से सुनती और घर आकर उसका अनुसरण करती। पंडवानी गायन की शिक्षा श्री कांशीराम, ग्राम-कठिया, जि.-रायपुर से प्राप्त की। इनका पंडवानी गायन छत्तीसगढ़ के विभिन्न क्षेत्रों में, गांवों-कस्बों व शहरों में हुआ है जहाँ काफी शोहरत मिली। 1981 से आकाशवाणी रायपुर से पंडवानी प्रस्तुत करती आ रहीं।

सामान्य वेशभूषा में पंडवानी प्रस्तुती इनकी विशेषता है। पंडवानी गायन के साथ पंथी व चंदैनी गीतों का सुन्दर समन्वय बड़ा कर्णप्रिय लगता है। सामे शास्त्री खड़े होकर अपना गायन प्रस्तुत करती हैं। प्रसंगानुसार भावाभिनय इनकी विशिष्टता है।

स्व. अघनू राम निषाद

श्री अघनू राम निषाद पंडवानी के लोकप्रिय गायक थे। इनका जन्म 4.5.1950 को ग्राम छाटा तहसील पाटन, जिला-दुर्ग में हुआ था। इनके पिताजी का नाम परदेशी राम निषाद था। ये चौथी कक्षा उत्तीर्ण थे। पंडवानी में इनकी रूचि श्री भंगीराम वर्मा, ग्राम सोरम, तह.-पाटन की पंडवानी सुनकर हुई और उन्हें ही अपना गुरू माना। सन् 1970 में पहली बार पंडवानी का सार्वजनिक रूप से गायन किया। लोगों को प्रोत्साहन मिला तब से अनवरत पंडवानी गाते रहे। मलाजखंड, गंडई,आरंग, राजिम, महादेव घाट, आमदी, धमतरी, धमधा के अतिरिक्त छत्तीसगढ़ के विभिन्न गाँवों व कस्बों में अपना गायन प्रस्तुत कर प्रसिद्धि पाई।

इनकी गायन शैली वेदमती रही। पंडवानी प्रसंगों में लोकधुनों का समन्वय व आवश्यकतानुसार दृष्टान्त कथाओं को उद्घृत करना इनके गायन की विशेषता थी।

"सेना के नाश करते हुए भीमसेन शेर के समान गरजते हुए आगे बढ़े। ये तरफ

करना आपकी विशिष्टता है। पंडवानी के लिए आप प्राणपन से समर्पित हैं। इस क्षेत्र को आप से बड़ी आशाएं हैं।

"धर्मराज सुनके
अति ग हर्षित होवन लागे भाई

रागी धर्मराज अति हर्षित होगे। बाजा - रूंजी बजनिया ले के साथ में -

कइसे ग धर्मराज आवय जी
धर्मराज आगे संगी
कान्हा के कइसे चरन में गिरय जी

भगवान कन्हैया के चरन में गिरगे। भगवान कन्हैया उठा लिस अऊ उठा के अपन छाती में लगा लिस।

धर्मराज कइथे -
हे यदुनंदन प्राण पिरीते, तुम बिन ज़ीयत बहुत दिन बीते।
हे केशव..... ।"[11]

शांति बाई चेलक

शांति बाई चेलक का जन्म दिनांक 31.12.1963 को ग्राम पिरदा तहसील बेरला में हुआ। आपके पति का नाम श्री लखन लाल चेलक है।आपकी शिक्षा दूसरी कक्षा है। पंडवानी गायक की प्रेरणा आपको अपने पिता स्व. श्री आशा राम बघेल से मिली। आपके पिता जी 'रास मंडली' किया करते थे। आपके पंडवानी गायक की शैली वेदमती है।आपने अपना पहला पंडवानी कार्यक्रम 15 जून 1976से प्रारंभ किया। तब से लेकर अब तक सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ व छत्तीसगढ़ से बाहर देश के विभिन्न प्रांतों के महानगरों में आपका पंडवानी गायन हो चुका है। अनेक संस्थाओं से आपको सम्मान मिला है।

आपकी वेशभूषा और पंडवानी गायन में लोकरंगी आभा झिलमिलाती है। पूरी तरह ग्रामीण पहनावा बड़ा भला लगता है। चेहरे का हावभाव व प्रसंगानुसार भावाभिनय आपके गायन को प्रभावशाली बनाता है। गायन में विभिन्न लोकधुनों का समन्वय आपकी प्रस्तुती को प्रभावशाली बनाता है।

ईश्वरी प्रसाद चंद्राकर

ईश्वरी प्रसाद का जन्म 1960 में कुरूद जिला- रायपुर में हुआ। आपके पिता का नाम श्री नरोत्तम लाल चन्द्राकर है और आपकी स्कूली शिक्षा 9वीं है। 1976 में

गायन की शिक्षा-दीक्षा ली तथा पंडवानी का स्वतंत्र गायन 1981 में प्रारंभ किया।

प्रभा जी छत्तीसगढ़ अंचल के विभिन्न क्षेत्रों में अपना पंडवानी गायन प्रस्तुत कर चुकी है। इनकी पंडवानी को सुनकर जस गुरू तस चोला वाली बात सोलह आने सही लगती है। श्री झाडूराम देवांगन की पंडवानी गायकी की शैली पूरी तरह से इनके गायन में मिलती है। वही ओज, वही माधुर्य, वही भावाभिनय, लोक भजनों की वही कर्ण प्रिय धुनें बड़ी सुखद लगती है।

"ये काया के गुमान काबर,
अउ ये चोला के गुमान काबर।
अउ अतका अभिमान काबर
ये तो चार दिन के सगा
ये तो चार दिन के पहुना
अतका अभिमान काबर
अत्याचारी रावन भरगे, दुर्योधन अभिमानी।
नई तो बाँचिस ओखर कुल में एको देवईया पानी॥
चोला के गुमान काबर।" [10]

प्रहलाद निषाद

श्री प्रहलाद निषाद का जन्म दिनांक 15.01.1971 को ग्राम सिंघनगढ़, तह.-कवर्धा, जिला कवर्धा में हुआ। इनके पिताजी का नाम श्री फंदी राम निषाद है। ये पेशे से शिक्षक हैं। ये मूलत: वेदमती शैली के गायक हैं प्रसंगानुसार ये कापालिक शैली का भी गायन करते हैं। आपने भी अघनूराम निषाद (छाँटा वाले) का पंडवानी गायन सुना और प्रभावित हुए। अघनू राम जी को अपना गुरू माना और पंडवानी गायकी प्रारंभ की। आप 1978 से पंडवानी गायन कर रहें हैं तब से अनवरत यह क्रम जारी है। कवर्धा तहसील में खासकर सिल्हेटी - लोहारा क्षेत्र में इनकी पंडवानी गायन की बड़ी मांग है। छट्‌ठी से लेकर अन्य बड़े आयोजनों में इन्हें सुनने का अवसर मिलता है। दुर्ग, राजनांदगांव व बालाघाट जिले में इनकी पंडवानी को लोग बड़े आदर से सुनते हैं।

कथा प्रसंग को युगीन परिस्थितियों से जोड़कर व्याख्या करना आपकी विशेषता है। चूंकि आप अध्ययन शील हैं अत: आपके गायन में धर्म,दर्शन और अध्यात्म का अच्छा समन्वय मिलता है। लोकगीतों व लोकधुनों का प्रयोग करना व कथा प्रसंग को आंचलिक परिवेश से जोड़कर स्थानीय लोक विश्वासों व लोक संस्कारों का उल्लेख

"मोर हाथ जोड़ के भानमती मीठ बोले या

रामा जय हरि...

भानमती कइथे -

मोर बेटा कहाँ हे दिखत नई ये दाई ओ

प्रानपति, आप मन अकेला कइसे आए हव। मोर लखनी कुमार कहाँ हे। लखनी कुमार के देखे बिना मैं छन भर जी नई सकवं मोला पति बता दे। राजा दुर्योधन हे तऊन मौनी बनगे। कोंदा बनगे।"[12]

लोक की खनक, लोक की गमक लक्ष्मीबाई की पंडवानी का वैशिष्ट्य रहा है।

सुशीला ठाकुर

पंडवानी गायिका सुशीला बाई ठाकुर का जन्म सन् 1968 में रामसागर पारा रायपुर में हुआ। इनके पिता का नाम स्व. श्री पंचूराम ठाकुर है। सुशीला बाई को पंडवानी गायन की प्रेरणा पद्म श्री तीजन बाई से मिली। तीजन बाई को ही ये अपना गुरू मानती हैं। पंडवानी गायन को सुशीला बाई सरस्वती का वरदान मानती है। इन्होंने अपना पंडवानी गायन 1977 में प्रारंभ किया तब से लेकर अब तक इनकी पंडवानी गायन की साधना जारी है।

अंचल के विभिन्न गांवों-कस्बों व नगरों-महानगरों में ये अपनी पंडवानी गायकी प्रस्तुत कर चुकी हैं। पंडवानी गायन के लिए इन्हें अनेकों सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। आकाशवाणी रायपुर से नियमित रूप से प्रसारण भी एक उपलब्धि है।

दया बाई ध्रुव

श्रीमती दया बाई ध्रुव का जन्म ग्राम दुपचेरा तहसील बालोद, जिला-दुर्ग में हुआ। इनकी आयु लगभग 54 वर्ष है इनके पिता का नाम श्री भगवान सिंह ध्रुव है।

दयाबाई ने ग्राम के ही श्री हलाल खोर नेताम से प्रेरणा व प्रोत्साहन पाकर पंडवानी गायन प्रारंभ किया और गुरू श्रीमती हराबाई कुर्रे से पंडवानी गायन की शिक्षा ली। दयाबाई कापालिक व वेदमती दोनों ही शैलियों का गायन करती हैं। ये अपने क्षेत्र के प्राय: सभी गाँवों व कस्बों-शहरों में पंडवानी की प्रस्तुती देकर अनेक सम्मान व पुरस्कार प्राप्त कर चुकी है। 1984 में आकाशवाणी रायपुर से स्वर-परीक्षण पास किया और तब से आकाशवाणी से भी पंडवानी गा रही है। दंतकथाओं और वेद सम्मत कथाओं का समन्वित गायन की विशिष्टता है।

पढाई बंद कर आप नाचा पार्टी से जुड़े। यहीं से आपकी सांस्कृतिक अभिरूचि परिपुष्ट होने लगी। स्कूली जीवन में आप नाटक तथा लीला मंडली में भाग लेते रहे आपके शिक्षक श्री प्यारेलाल चंद्राकर ने आपको सदैव प्रोत्साहन दिया।

1978 में आपने श्री चेतन देवांगन का पंडवानी गायन सुना और प्रभावित हुए तब पंडवानी गाने की दृढ़ इच्छा-शक्ति लेकर पंडवानी गायन प्रारंभ किया। आपकी दृढ़ इच्छा शक्ति को देखकर श्रीमती रूक्मणी चंद्राकर ने आपको महाभारत ग्रंथ भेंट में दी। आकाशवाणी से श्री झाडूराम देवांगन का पंडवानी गायन सुनकर आपने अभ्यास का क्रम जारी रखा। दो वर्ष के कठिन अभ्यास व महाभारत के अध्ययन के बाद अपने आपको पंडवानी गायन के लिए समर्थ पाया।

आपने पंडवानी के माध्यम से परिवार नियोजन का संदेश रायपुर जिले में गांव-गांव पहुंचाया। छत्तीसगढ़ से बाहर विभिन्न प्रांतों में भी आपके गायन को सराहना मिली। आप पंडवानी की वेदमती शैली के गायक हैं। 1984 से आप आकाशवाणी रायपुर से पंडवानी प्रस्तुत करते आ रहे हैं। आप से कला जगत को बड़ी उम्मीद है।

स्व. लक्ष्मी बाई बंजारे

लक्ष्मी बाई बंजारे पंडवानी की वरिष्ठ गायिका रही हैं। इनका जन्म सन् 1944 में ग्राम कातुलबोड़ तहसील व जिला दुर्ग में हुआ। इनके पिता का नाम श्री अमर सिंग था व इनके पति का नाम श्री राजिम नयन है। लक्ष्मी बाई अट्ठारह वर्ष की उम्र से पंडवानी गाती रही। पंडवानी गायन की प्रेरणा इन्हें इनके पिता जी से मिली। नौ वर्ष की उम्र से रामायण व महाभारत पढ़ती थी, अत: महाभारत कथा के प्रति इनकी रूचि स्वाभाविक थी। इनके गुरू का नाम स्व. श्री दयाराम बंजारे है, जो कातुलबोड़ के ही निवासी थे।

लक्ष्मीबाई वेदमती शैली की गायिका थी। ये 1975 से आकाशवाणी से पंडवानी गायन करती रही। छत्तीसगढ़ के बड़े गाँवों कस्बों व नगरों में इनका पंडवानी गायन हो चुका है। इनके पंडवानी गायन में छत्तीसगढ़ी बोली का माधुर्य बड़ा ही कर्णप्रिय लगता था। इनकी आवाज भी बड़ी मधुर थी। इन्हें पंडवानी गायन के लिए अनेकों पुरस्कार व सम्मान मिल चुके हैं। इन्हें गायन के साथ-साथ इनके तम्बूरे की झंकार मन को आल्हादित कर देती थी। वेशभूषा में सादगी और पंडवानी गायन में सहजता इनकी विशिष्टता थी। लोक गीतों व लोकधुनों व लोकोक्तियों से इनकी पंडवानी हृदय को स्पर्श करती -

पंडवानी गायन के क्षेत्र में आपका कोई गुरू नहीं है, ऐसा आप मानते है। आपने पहले लाठी भांजना व बॉस बजाना सीखा (जो इनका जातीय स्वभाव व कला है) बॉस वादन से आपको पंडवानी गायन की प्रेरणा मिली। आप कापालिक शैली के गायक हैं, जिसे आपने सुनकर सीखा है। आपने छत्तीसगढ के अनेकों गावों, कस्बों और नगरों में अपना पंडवानी गायन कर विशेष स्थान बनाया है।

आप विकलांग हैं, आपका बांयाँ पाँव अपंग है। लेकिन यह विकलांगता, यह अपंगता आपके गायन के लिए बाधक नहीं है, बल्कि और अधिक उत्साह से आप पंडवानी गायन में रमे हैं। आपका यह उत्साह और कला-प्रेम निःसन्देह अभिनंदनीय है। आकाशवाणी रायपुर से आपकी पंडवानी प्रसारित होती है।

परस राम धीवर

परस राम धीवर का जन्म माह अगस्त 1961को ग्राम ससहा, तहसील बलौदाबाजार, जिला -रायपुर में हुआ। आपके पिता जी का नाम श्री भागीरथी धीवर तथा माता जी का नाम सोनकुंवर धीवर है। आपने स्कूली शिक्षा प्राप्त नहीं की है, किन्तु संगीत में अभिरूचि व स्वाध्याय से रामायण आदि पढ़ लेते हैं। पढाई -लिखाई के नाम पर आप हस्ताक्षर से ज्यादा कुछ नहीं कर सकते।

पंडवानी गायन की प्रेरणा आपको अन्य पंडवानी गायकों की पंडवानी देख सुनकर हुई। गुरू के विषय में आपकी स्थिति एकलव्य की तरह है। श्री चेतन देवांगन को गुरू मानकर आपने पंडवानी गायन प्रारंभ किया। कुछ अंतराल बाद चेतन देवांगन ने आपको शिष्य स्वीकार कर मार्गदर्शन दिया। 1978 से विधिवत पंडवानी गायन प्रारंभ कर अब तक गा रहे हैं। इस बीच आपको पुरस्कार व सम्मान भी मिला है। आप वेदमती शैली के गायक हैं।

कु. सावित्री ठाकुर

सावित्री ठाकुर का जन्म (तिथि अज्ञात) सन् 1981 में रूआबांधा भिलाई, जिला-दुर्ग में हुआ।इनके पिता का नाम श्री गुलाब राम ठाकुर है। इन्हें पंडवानी गायन की प्रेरणा श्री प्रेमलाल बघेल रूआबांधा से मिली। इनके गुरू का नाम श्री गुलाबदास मानिकपुरी है। इस तरह सावित्री, ऋतु वर्मा की गुरू-बहन हैं। सावित्री ने 1989 में आठ वर्ष की उम्र से पंडवानी गायन प्रारंभ किया। इनकी शिक्षा मात्र कक्षा चौथी है। सावित्री वेदमंती शैली की गायिका है व श्री सबल सिंह चौहान कृत महाभारत के आधार पर पंडवानी गाती हैं।

मनमोहन सिन्हा

श्री मनमोहन सिन्हा का जन्म 23.02.1954 को ग्राम डोडकी तहसील धमतरी जिला रायपुर में हुआ। इनके पिता का नाम स्व.श्री विक्रम सिन्हा था जो अपने समय के कुशल लोक गायक , लोक वादक तथा लोक संगीत व लोक संस्कृति के मर्मज्ञ थे । इन्ही की छत्रछाया में बालक मनमोहन का मन संगीत ने मोह लिया विद्यार्थी जीवन में सांस्कृतिक कार्यक्रमों ये भाग लेते थे। जब ये दसवीं कक्षा में थे तभी से पंडवानी गायक प्रारंभ किया। पंडवानी गायन के क्षेत्र में मनमोहन जी अपने पिता श्री को ही गुरू मानते हैं। ये वेदमती शैली के गायक हैं। रायपुर,दुर्ग और [illegible] जिले के सैकडों गावों में अपना पंडवानी गायन प्रस्तुत कर ख्याति अर्जित कर चुके हैं। श्रोताओं के स्नेह आदर भाव व अपनापन को ही मनमोहन जी पुरस्कार व सम्मान मानते हैं। यह इनका बड़प्पन है। आकाशवाणी से पंडवानी गायन को ये अपनी उपलब्धि मानते हैं । लोक गीतों व लोक धुनों का सुन्दर समन्वय इनके गायन की विशिष्टता है।

पुनीत राम साहू

पंडवानी गायकों में पुनीत राम साहू का नाम अनजाना नहीं है।श्री पुनीत राम साहू का जन्म सन् 1960 में ग्राम - नेवारी तहसील सिमगा जिला-रायपुर में हुआ। इनकी शिक्षा पॉचवी है। इनके पिता का नाम श्री केदार साहू है। बाल्यावस्था से ही रामायण मंडली में जाते थे।अत: संगीत के प्रति इनका लगाव सहज था। श्री चेतन देवॉगन की पंडवानी सुनकर इन्हें पंडवानी गायन की प्रेरणा मिली। श्री साहू जी चेतन देवॉगन को अपना गुरू मानते हैं।

पुनीत राम साहू वेदमती शैली के गायक हैं। अपने क्षेत्र के आस-पास विभिन्न गॉवों में अपनी प्रस्तुती दे चुके हैं, जहॉ इन्हें भरपूर स्नेह और प्रोत्साहन मिला। बिलासपुर -कोरबा क्षेत्र में भी आपका पंडवानी गायन काफ़ी लोक प्रिय है। आपको अनेकों पुस्कार व सम्मान प्राप्त हुए हैं। सरलता और सरसता आपकी विशिष्टता है।

रामनाथ यादव

श्री रामनाथ यादव का जन्म दिनांक 5.12.42 को ग्राम सेन भाठा, तह.महासमुंद जिला रायपुर में हुआ। आपके पिता का नाम श्री आनंद राम यादव है।

करते थे। पिता का सांगीतिक प्रभाव इन पर पड़ा, फलस्वरूप बाल्यावस्था में ही संगीत की ओर अभिरूचि बढ़ी। श्री भागवत प्रसाद जी उत्कृष्ट कोटि के गायक व वादक हैं इन्हें संगीत की अच्छी जानकारी है। काफी दिनों तक इन्होंने कुरलू नाच पार्टी का संचालन भी किया। इसके बाद पंडवानी गायन की ओर प्रवृत्त हुए। पंडवानी गायन की शिक्षा उन्होंने अपने गुरू श्री बिसौहादास उर्फ अनाड़ी दास से प्राप्त की। वेदमती व कापालिक दोनों शैली में कथा गायन इनकी विशेषता है।

अपने अंचल के विभिन्न गांवों व कस्बों में पंडवानी गायन प्रस्तुत कर लोकप्रियता हासिल की है। पंडवानी गायन की विधा को इनसे बड़ी आशा है।

उत्तरा कुमारी

उत्तरा कुमारी नई पीढ़ी की गायिका है और 1994 से अपना गायन प्रारंभ किया है। इनका जन्म दिनांक 13.09.1978 को ग्राम कूरलू, तहसील कवर्धा, जिला - कबीरधाम में हुआ। पंडवानी गायन की शिक्षा इन्होंने अपने पिता श्री भागवत प्रसाद साहू से प्राप्त की। कापालिक व वेदमती दोनों ही शैलियों का कथा गायन इनकी विशेषता है। "होनहार बिरवान के होत चिकने पात" इस कहावत को चरितार्थ करती कुमारी उत्तरा का भविष्य उज्जवल प्रतीत होता है।

सन्दर्भ

1. निजी संग्रह से
2. ----- वही -----
3. ----- वही -----
4. ----- वही -----
5. ----- वही -----
6. ----- वही -----
7. ----- वही -----
8. ----- वही -----
9. ----- वही -----
10. ----- वही -----
11. ----- वही -----
12. ----- वही -----

विभिन्न गांवों व शहरों में पंडवानी गाकर ख्याति अर्जित की है। कम उम्र में गायन, स्वर की कोमलता और बाल सुलभ चंचलता के साथ भावाभिनय सावित्री की परिपक्वता का आभास देता है। सावित्री की गायकी सज-सँवर कर निश्चित रूप से एक दिन प्रतिष्ठित होगी ऐसी आशा है।

चैती बाई साहू

चैतीबाई साहू का जन्म दिनांक 12.6.67 को ग्राम कुरूद, तह. व जिला - दुर्ग में हुआ। इनके पति का नाम श्री निरंजन लाल साहू है। इन्हें पंडवानी गायन की प्रेरणा इनके माता-पिता से मिली व इन्हें प्रोत्साहित किया। इनकी गुरू पद्म श्री तीजनबाई हैं। ये कापालिक शैली की गायिका है।

इन्होंने पंडवानी गायन 1981 से प्रारंभ किया तब से लगातार पंडवानी गायन से जुड़ी हुई हैं। इस बीच इन्होंने विभिन्न शासकीय आयोजनों में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत कर लोकप्रियता हासिल की है। विभिन्न गाँवों-कस्बों और शहरों में भी इन्हें पंडवानी गायन का अवसर मिला। अनेकों पुरस्कार व सम्मान मिले।

बिसौहादास उर्फ अनाड़ी दास

श्री बिसौहादास जी पुरानी पीढ़ी के पंडवानी गायक है। इनका जन्म 5.5.1933 को ग्राम बहेरा तहसील , बेमेतरा, जि.-दुर्ग में हुआ। इनके पिता का नाम श्री भूधर दास है। पंडवानी गायन की प्रेरणा इन्हें रावन (झीपन) वाले श्री नारायण लाल वर्मा से मिली, उनसे ही गुरू दीक्षा ली। बिसौहादास जी ने 1952 से पंडवानी गायन प्रारंभ किया। ये मूलत: कापालिक शैली के गायक हैं, किन्तु समय की मांग के अनुसार बाद में वेदमती शैली में भी गायन प्रारंभ किया। छत्तीसगढ़ के विभिन्न गांवों-कस्बों व शहरों में अपना गायन प्रस्तुत कर काफी ख्याति अर्जित की है। कापालिक व वेदमती शैली का सुन्दर समन्वय इनकी पंडवानी की विशिष्टता है। विलुप्त होती लोक धुनों व लोक गीतों का गायन नवीनता का आभास देता है।

भागवत प्रसाद साहू

श्री भागवत प्रसाद साहू का जन्म दिनांक 07.10.1953 को ग्राम कुरलू तहसील कवर्धा, जिला- कबीरधाम में किसान परिवार में हुआ। आपके पिताजी श्री केशवप्रसाद साहू कुशल लोकगायक थे। चिकारा बजाकर लोक भजनों का गायन

करते थे। पिता का सांगीतिक प्रभाव इन पर पड़ा, फलस्वरूप बाल्यावस्था में ही संगीत की ओर अभिरूचि बढ़ी। श्री भागवत प्रसाद जी उत्कृष्ट कोटि के गायक व वादक हैं इन्हें संगीत की अच्छी जानकारी है। काफी दिनों तक इन्होंने कुरलू नाच पार्टी का संचालन भी किया। इसके बाद पंडवानी गायन की ओर प्रवृत्त हुए। पंडवानी गायन की शिक्षा उन्होने अपने गुरू श्री बिसौहादास उर्फ अनाड़ी दास से प्राप्त की। वेदमती व कापालिक दोनों शैली में कथा गायन इनकी विशेषता है।

अपने अंचल के विभिन्न गांवों व कस्बों में पंडवानी गायन प्रस्तुत कर लोकप्रियता हासिल की है। पंडवानी गायन की विधा को इनसे बड़ी आशा है।

उत्तरा कुमारी

उत्तरा कुमारी नई पीढ़ी की गायिका है और 1994 से अपना गायन प्रारंभ किया है। इनका जन्म दिनांक 13.09.1978 को ग्राम कूरलू, तहसील कवर्धा, जिला - कबीरधाम में हुआ। पंडवानी गायन की शिक्षा इन्होने अपने पिता श्री भागवत प्रसाद साहू से प्राप्त की। कापालिक व वेदमती दोनों ही शैलियों का कथा गायन इनकी विशेषता है। "होनहार बिरवान के होत चिकने पात" इस कहावत को चरितार्थ करती कुमारी उत्तरा का भविष्य उज्जवल प्रतीत होता है।

सन्दर्भ

1. निजी संग्रह से
2. ----- वही -----
3. ----- वही -----
4. ----- वही -----
5. ----- वही -----
6. ----- वही -----
7. ----- वही -----
8. ----- वही -----
9. ----- वही -----
10. ----- वही -----
11. ----- वही -----
12. ----- वही -----



नाम - डॉ. पीसी लाल यादव

माता - स्व. श्रीमती सोनकुंवर यादव

पिता - स्व. श्री कोमल राम यादव

जन्मतिथि - 09.06.1955

जन्मस्थान - टिकरीपारा, गंडई, जिला-राजनांदगाँव

शिक्षा - एम.ए. (हिन्दी, लोक संगीत), पी-एच.डी.

लेखन - हिन्दी व छत्तीसगढ़ी

प्रकाशित कृतियां :

1. प्रेमगीत (संकलन) - म.प्र. आदिवासी लोककला परिषद भोपाल
2. गांधी गीत (संकलन) - म.प्र. आदिवासी लोककला परिषद भोपाल
3. मोर गाँव के कोरा (छत्तीसगढ़ी गीत संग्रह)
4. आँखे खुल गई (प्रौढ़ साहित्य) राज्य शिक्षा संस्थान, इंदौर (म.प्र.)
5. छत्तीसगढ़ का डंडा नृत्य गीत- द.म.क्षे. सांस्कृतिक केन्द्र नागपुर
6. सुरता के सुतरी (छत्तीसगढ़ी गीत संग्रह)
7. जहाँ पाषाण बोलते हैं
8. सरग निसैनी (छत्तीसगढ़ी शिशु गीत)
9. छत्तीसगढ़ी संस्कार गीत
10. तारों की बरात (हिन्दी बाल गीत)
11. कुकड़ूँ कूँ मुर्गा बोला (हिन्दी बाल गीत)
12. दिन आए फूलों के (हिन्दी बाल गीत)
13. हमारा घर (हिन्दी बाल गीत)
14. ढोल बाजे ढम ढमाढम (हिन्दी बालगीत)

विशेष :-

1. छत्तीसगढ़ी लोकगाथाओं, लोकनाट्यों, लोककथाओं, लोकगीतों (सुवा, ददरिया, नाचा गीत, जस गीत, बिहाव गीत) हाना, जनौला आदि का संकलन।
2. छत्तीसगढ़ी सांस्कृतिक संस्था दूध मोंगरा का संचालन व निर्देशन 1976से
3. छत्तीसगढ़ी फिल्मों में गीत लेखन व अभिनय
4. राज्य स्तरीय व राष्ट्रीय संगोष्ठियों में शोध पत्र वाचन। लेख कहानी, कविताएँ, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। दूरदर्शन व आकाशवाणी से प्रसारण

सम्प्रति - शा. पूर्व मा. शाला गोकना (गंडई), जिला-राजनांदगांव में उच्च वर्ग शिक्षक
मो. 94241-13122